॥श्रीः॥

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला

173

नाटककार कालिदास प्रणीतम्

मेघदूतम्

(विस्तृत भूमिका, मूल, अन्वय तथा हिन्दी अनुवाद, 'चन्द्रिका' हिन्दी व्याख्या, व्याकरणात्मक टिप्पणीयों, परिशिष्ट तथा आचार्य मल्लिनाथ की संजीवनी टीका सहित)

व्याख्याकार

डॉ. राकेश शास्त्री



चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या, आयुर्वेद तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक

दिल्ली-110007 (भारत)

॥श्रीः॥

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला

173

काव्यकार कालिदास विरचितम्

मेघदूतम्

(विस्तृत भूमिका, मूल, अन्वय तथा हिन्दी अनुवाद 'चन्द्रिका' हिन्दी व्याख्या, व्याकरणात्मक टिप्पणियों, परिशिष्ट एवं आचार्य मल्लिनाथ की संजीवनी टीका सहित)

सम्पादक एवं व्याख्याकार

डॉ० राकेश शास्त्री डी.लिट्

बी.ए. (आनर्स-संस्कृत), साहित्य-पुराणेतिहासाचार्य

(लब्धस्वर्णपदकद्वय), पी-एच.डी. (वेद), डी.लिट् (साहित्य)

सेवानिवृत्त, अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग

श्री गोविन्द गुरु राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

बाँसवाड़ा (राज.)



चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्य-विद्या, आयुर्वेद एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक

दिल्ली–110007 (भारत)

प्रकाशक:

चौखम्भा पब्लिशर्स

गोकुल भवन, के-37/109, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी-221001 (भारत)

शाखा:

चौखम्भा ओरियन्टालिया

पोस्ट बाक्स नं. 2206

बंग्लो रोड, 9-यू.बी., जवाहर नगर

(किरोड़ीमल कॉलेज के पास)

दिल्ली-110007 (भारत)

फोन: (011) 40230818, मो. 9910289743

email : chaukhambhaorientalia@gmail. Com

WWW. chaukhambhaorientalia.com.

द्वितीय संस्करण-2024

मूल्य: रू. 425/-

मुद्रक : राधा आफसेट प्रोसेस एण्ड प्रिन्टर, नई दिल्ली

प्राक्कथनम्

महाकवि कालिदास के नाम से शायद ही कोई संस्कृत प्रेमी, परिचित नहीं होगा। विद्वत्परम्परा सामान्यरूप से कालिदास के नाम से कुल सात ग्रन्थों को अपनी स्वीकृति प्रदान करती रही है, किन्तु कुछ विद्वानों को छोड़कर इस दिशा में किसी भी विद्वान् ने विचार करने का प्रयास नहीं किया कि कालिदास नाम से जब अनेक कवि हुए हैं, उनमें कौन से कालिदास की इनमें से कौन–कौन रचनाएँ हैं?

इस दिशा में हमने कुछ विनम्र प्रयास किया है, जिसे आधार बनाकर कालिदास की काव्य–चेतना, कालिदास की उपमा–योजना, कालिदास की वैज्ञानिक–दृष्टि तथा महाभारतकार एवं उनकी काव्य कला इन सभी ग्रन्थों की भूमिका में हमने विद्वत्समुदाय का ध्यान इस ओर आकर्षित करने का प्रयास किया। तदनुसार–

उक्त सात कृतियाँ वस्तुतः एक या दो कालिदासों द्वारा विरचित न होकर तीन के द्वारा प्रणीत रही हैं, जिनमें,

प्रथम, ईसा पूर्व प्रथम शती में स्थित नाटककार कालिदास, जिन्होंने क्रमशः मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम् तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् इन तीन नाटकों की संरचना करके संस्कृत नाट्य साहित्य को समृद्धि प्रदान की और अपने यश को दिग्दिगन्त में प्रसारित किया।

द्वितीय, अश्वघोष के पश्चात् ईसा की चतुर्थ शती के उत्तरार्द्ध एवं पंचम शती के पूर्वार्द्ध अर्थात् गुप्तकाल में स्थित काव्यकार कालिदास, जिन्होंने क्रमशः कुमारसम्भवम्, मेघदूतम् और रघुवंशम् इन तीन काव्यों का प्रणयन किया और 'उपमा कालिदास्य', 'दीपशिखा कालिदास' एवं 'क इह रघुकारे न रमते' इत्यादि विद्वत्प्रशस्तियों से अलंकृत हुए।

तृतीय, 470 ई. के लगभग स्थित कामकोटि पांतन के मूकशंकर के शिष्य कोटिजीत उपनाम वाले कालिदास, जिन्होंने षड्ऋतुओं को आधार

बनाकर 'ऋतुसंहार' नामक शृंगार रस से आप्यायित गीतिकाव्य की संरचना की।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन के मुख्यरूप से दो ही उद्देश्य हैं। **प्रथम,** विद्वानों में महाकवि कालिदास के विषय में कालिदास–त्रय के सिद्धान्त को प्रस्थापित करने का विनम्र प्रयास **द्वितीय,** संस्कृत प्रेमी अध्येताओं तथा विद्वानों के लिए एक साथ सरल भाषा में मेघदूतम् का प्रामाणिक संस्करण उपलब्ध कराना। आशा है उक्त दोनों उद्देश्यों में हमारे इस प्रयास को विद्वत्समुदाय सहजरूप से स्वीकार करेगा।

अन्त में, उन सभी विद्वानों के श्रीचरणों में प्रणत एवं कृतज्ञ भाव से विनम्रांजलि निवेदन करता हूँ, जिनकी कृतियों से इसके लेखन में सहायता प्राप्त हुई है।

पुनश्च, आज तक जो भी संस्कृत की सेवा मैं कर सका हूँ या कर पा रहा हूँ, वह सब मेरे **प्रातःस्मरणीय श्रद्धेय गुरुवर एवं धर्मपिता डॉ. धर्मेन्द्रनाथजी शास्त्री** (देहरादून) **के श्रीचरणों की प्रेरणा व शुभ आशीर्वाद का ही परिणाम है।** अतः इस अवसर पर उन्हें भी कोटिशः नमन के साथ स्मरण करना, मैं अपना पुनीत–कर्तव्य समझता हूँ।

इसी कामना के साथ कि उनके आशीर्वाद से निर्बाधरूप से सारस्वत साधना इसीप्रकार चलती रहे।

इति शुभम् ।

विदुषां वशंवद

डॉ.राकेश शास्त्री

21 मार्च, 2021

1–जे–38
हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
बाँसवाड़ा(राज.) 327001
9460308623

समर्पण



प्रातःस्मरणीय, परमश्रद्धेय,
पूजनीय माता–पिता को जिनका
शुभ एवं स्नेहिल आशीर्वाद
आज भी मेरे तथा मेरे परिवार के सभी सदस्यों के
मस्तक पर विराजमान है

राकेश शास्त्री

विषयानुक्रमणिका

विषयानुक्रमणिका

•••

।। श्रीः ।।

भूमिका

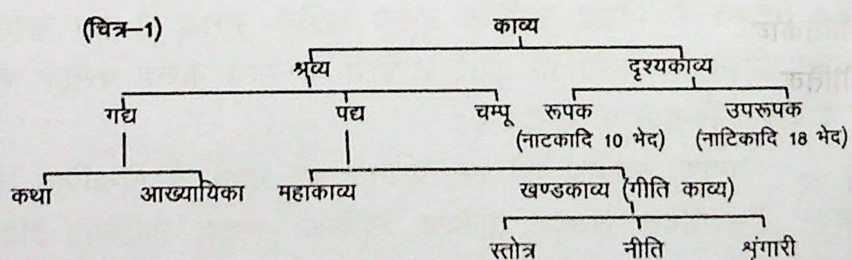
संस्कृत भारत की ही नहीं, अपितु विश्व की सर्वाधिक प्राचीन भाषा है। सम्पूर्ण विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद भी इसी भाषा में निबद्ध है। यदि हम भारत के प्राचीन वास्तविक स्वरूप को जानना चाहते हैं, तो हमारे समक्ष संस्कृत के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है। संस्कृत में निबद्ध साहित्य इतना अधिक समृद्ध है कि उसकी उपमा विश्व के किसी भी दूसरे साहित्य के साथ करना वस्तुतः सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

सम्पूर्ण साहित्य को हम प्रथमतः दो भागों में विभाजित कर सकते हैं– वैदिक संस्कृत साहित्य, लौकिक संस्कृत साहित्य। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत संहिताग्रन्थों से लेकर ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, वेदांग एवं सूत्रग्रन्थों तक समस्त साहित्य आता है। वैदिक संस्कृत के समानान्तर ही एक लौकिक संस्कृत धारा भी अविरल गति से प्रवाहमान होती दिखाई देती है, जिसके दर्शन हमें पुराणों में होते हैं। सम्भवतः इसी कारण विद्वानों ने 'पुराणं पंचमो वेदः' कहकर इन्हें वेद के निकट स्वीकृति प्रदान की। यह संस्कृत अत्यन्त सरल एवं जनसामान्य की भाषा के रूप में रही है।

किन्तु बाद में रामायण काल से इसी भाषा में काव्यों की रचना की गई। जहाँ से लौकिक संस्कृत के व्यवस्थित रूप में दर्शन होते हैं। इसीकारण रामायण को आदिकाव्य और महाकवि वाल्मीकि को आदि–कवि कहा जाता है।

उपलब्ध समस्त लौकिक संस्कृत साहित्य को शैली की दृष्टि से सर्वप्रथम दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– दृश्यकाव्य और श्रव्यकाव्य। दृश्यकाव्य के अन्तर्गत रूपक, उपरूपक आदि आते हैं तथा श्रव्यकाव्य को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं– गद्य, पद्य और चम्पूकाव्य।

इनमें भी पद्यकाव्य के पुनः दो भेद महाकाव्य और खण्डकाव्य तथा गद्यकाव्य के कथा और आख्यायिका किए जा सकते हैं। पद्य काव्य के भेद खण्डकाव्य को विषय की दृष्टि से स्तोत्र, नीति और श्रृंगारी काव्यरूप में तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। इस सम्पूर्ण विभाजन को हम सरलरूप में इसप्रकार भी समझ सकते हैं–



इनमें स्तोत्र, नीति–विषयक काव्य प्रायः मुक्तक काव्य रूप में उपलब्ध होते हैं। यहाँ मुक्तकों से अभिप्राय उन स्वतन्त्र छन्दोबद्ध रचनाओं से है, जिनमें पूर्वापर प्रसंग की अपेक्षा नहीं होती है, अपितु इनका प्रत्येक पद्य स्वतन्त्ररूप से अपने अभिप्राय को अभिव्यक्त करने में पूर्णतया समर्थ तथा स्वतः पूर्णरूप से रसास्वादन कराने में सक्षम होता है। महाकवि भर्तृहरि द्वारा विरचित श्रृंगार–शतक, नीति–शतक वैराग्य–शतक तथा विज्ञान–शतक ये चारों ही मुक्तककाव्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।[1]

---

[1]. द्रष्टव्य– लेखक द्वारा सम्पादित एवं अनूदित महाकवि भर्तृहरिकृत शतक चतुष्टयम्, प्रकाशक– चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली, 2021 ।

(क) **गीतिकाव्य का स्वरूप–** काव्य का वह स्वरूप, जिसमें पद्यबद्ध रचनाएँ होने के साथ–साथ पूर्वापर प्रसंग की आवश्यकता नहीं होती अर्थात् प्रत्येक पद्य भावाभिव्यक्ति में पूर्णतया स्वतन्त्र होता है। इसप्रकार शास्त्रीय दृष्टि से खण्डकाव्य का ही दूसरा नाम 'गीतिकाव्य' है, जिसमें काव्यतत्त्व के साथ–साथ संगीतात्मकता की प्रमुखता और भावों की प्रधानता होती है। प्राचीन ग्रन्थों में गीतिकाव्य के स्वरूप पर विस्तार से विचार किया गया है।[1]

उक्त बातों को ध्यान में रखते हुए ही विद्वानों ने गीतिकाव्य को परिभाषित करने का सुन्दर प्रयास किया है– 'गीतिकाव्य भाव–प्रधान होते हैं। इनमें अन्तरात्मा की ध्वनि होती है। जीवन का कोई एक पक्ष वर्णित होता है। महाकाव्य यदि जीवन की समग्रता है तो गीतिकाव्य में घनत्व विद्यमान है, महाकाव्य में शिथिलता है तो गीतिकाव्य में एकाग्रता और तन्मयता है।'[2]

(ख) **गीतिकाव्य का उद्भव और विकास–** जिसप्रकार सभी प्रकार की साहित्यिक विधाओं का उद्‌गम स्थल वेद को माना गया है, ठीक उसीप्रकार गीतिकाव्य के बीज भी हमें ऋग्वेद में सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं, क्योंकि विभिन्न देवी–देवताओं की स्तुतियों में वहाँ पर मुक्तक स्तोत्र साहित्य के मूल तत्त्व प्रयुक्त हुए हैं। इन स्तुतियों में भी हमें भावुकता परिलक्षित होती है।

इसके पश्चात् विकासक्रम की दृष्टि से गीतिकाव्य के लक्षण हमें आदिकाव्य रामायण, पुराण, महाभारत आदि में अनेक स्थलों पर विभिन्न देवी–देवताओं की स्तुतियों के रूप में प्राप्त होते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि यहाँ तक के साहित्य में प्राय स्तोत्र गीतिकाव्य के ही

---

1. (अ) मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कारः क्षमः सत्ताम्। अग्निपुराण– 338/36।
(आ) खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च। साहित्यदर्पण– 6/339
(इ) पूर्वापरनिपेक्षेणापि येन रसचर्वणा क्रियते तदेवमुक्तम्। ध्वन्यालोक ।

2. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, संस्कृत साहित्य संस्थान, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, पृष्ठ–521 ।

दर्शन होते हैं, जिसे हम धार्मिक गीतिकाव्य भी कह सकते हैं। परवर्ती पौराणिक साहित्य में इसका विकसित रूप देखने को मिलता है।

किन्तु लौकिक संस्कृत साहित्य में गीतिकाव्य का वर्तमान स्वरूप हमें विधिवत् रूप से **काव्यकार कालिदास** के 'मेघदूत' तथा **ऋतुसंहारीय कालिदास** के 'ऋतुसंहार' में परिलक्षित होता है। इसके बाद इस परम्परा का दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ घटकर्पर विरचित 22 पद्यों में निबद्ध 'घटकर्पर काव्य' है, जिसमें वर्षाऋतु के आरम्भ में एक विरहिणी पत्नी दूर स्थित अपने पति के पास अपना संदेश भेजती है।

पुनः इसी प्रणयसंदेश परम्परा में कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का गीतिकाव्य साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, जिनमें कृष्णमूर्ति का यज्ञोल्लास, श्रीराम शास्त्री क। मेघ प्रति संदेश, महाकवि विक्रम का नेमि दूत, वेदान्त दैशिक का हंस–सन्देश, रुद्र वाचस्पति का भ्रमरदूत, वेंकटाचार्य का कोकिल–सन्देश एवं कृष्णचन्द्र पन्त का चन्द्र–दूत विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

इसी परम्परा को पोषित करने वाले ग्रन्थों में महाकवि जयदेव विरचित 'गीतगोविन्द' विशेषरूप से कथनीय है। महाकवि हाल (सन् 124 ई.) की गाथा सप्तशती, महाकवि भर्तृहरि (सप्तम शताब्दी) का नीतिशतक, शृंगारशतक, वैराग्यशतक एवं विज्ञानशतक, महाकवि अमरूक (लगभग 900 ई.) का 'अमरुकशतक', महाकवि विल्हण की 'चौर पंचाशिका' आदि इसी परम्परा के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।

महाकवि हाल के अनुकरण पर ही गोवर्धनाचार्य ने आर्या सप्तशती की रचना की। इसी प्रसंग में ध्यातव्य है कि गीतिकाव्यों की परम्परा में पण्डितराज जगन्नाथ का योगदान अविस्मरणीय रहेगा, क्योंकि उन्होंने पीयूषलहरी, सुधालहरी, करुणालहरी, यमुनावर्णन, भामिनी विलास आदि ग्रन्थों का प्रणयन करके स्तोत्र गीतिकाव्य में अद्भुत श्रीवृद्धि की।

इसके अतिरिक्त इसी गीतिकाव्य परम्परा के दूसरे कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ इसप्रकार हैं– शारंग्धर–पद्धति, उद्भट–सागर, शंक–राचार्य का चतुःशतक, पुष्पदन्त का महिम्नस्तोत्र, आनन्दवर्धनाचार्य का देवीशतक, यामुनाचार्य का चतुःश्लोकी स्तोत्ररत्न तथा महाकवि जयदेव का गंगास्तव, कवीन्द्र–रससमुच्चय, सदुक्ति–कर्णामृत, सूक्ति मुक्ता–वली, सुभाषितावली, पद्यावली, पद्यरचना, काव्यसंग्रह तथा सुभाषित रत्न भाण्डागारम् इत्यादि।

(ग) **गीतिकाव्य की विशेषताएँ**– उपलब्ध गीतिकाव्यों के आधार पर हम कुछ विशेषताओं का यहाँ उल्लेख कर रहे हैं, जिनके कारण इन्हें सहृदय समाज में लोकप्रियता प्राप्त हुई–

1. **शृंगारिकता**– गीतिकाव्यों में कुछ काव्य शृंगार प्रधान हैं, किन्तु वहाँ प्रेम का उदात्त स्वरूप ही चित्रित हुआ है तथा उसके बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा अन्तःसौन्दर्य को प्रधानता प्रदान की गई है। शृंगार के दोनों पक्ष संयोग और वियोग का प्रभावी चित्रण इन काव्यों में देखने को मिलता है। कालिदास का मेघदूत, ऋतुसंहार तथा भर्तृहरि का शृंगारशतक इसके सर्वोत्तम उदाहरण हैं।

2. **कोमल भावों की प्रधानता**– इन काव्यों में हमें मानव के अत्यन्त कोमल भावों का उदात्त चित्रण देखने को मिलता है। इन काव्यों में भयानक, बीभत्स आदि रसों का प्रायः अभाव ही रहा है। यही कारण है कि इनमें शृंगार, शान्त अथवा वीर रस को प्रधानता प्राप्त हुई है।

3. **संगीतात्मकता**– सभी प्रकार के गीतिकाव्यों में यह विशेषता भी हमें प्रमुखरूप से देखने को मिलती है कि यहाँ पर सभी गेयात्मक छन्दों का चयन किया गया है, यही कारण है कि इन काव्यों में सहृदय सामाजिक के हृदय को स्पर्श करने वाली वीणा की झंकार–सी स्वर–मधुरिमा का सहज ही अनुभव किया जा सकता है।

4. **भावपक्ष की प्रमुखता–** इसके अतिरिक्त गीतिकाव्यों में भाव, कल्पना, संवेदन शीलता एवं अनुभूति आदि काव्य के भावपक्ष विषयक तत्त्वों को भी प्रमुखता मिली है। कलापक्ष यहाँ प्रायः सभी कवियों की दृष्टि में गौण ही रहा है। विशेषतया धार्मिक दृष्टि से लिखे गए गीतिकाव्यों में संवेदनात्मक भावों की प्रबलता का मार्मिक स्वरूप प्रवाहरूप में यहाँ पर सहज ही देखा जा सकता है ।

5. **प्रसाद एवं माधुर्य गुणों की प्रधानता–** इसके अलावा इन काव्यों में ओजगुण का प्रायः अभाव ही रहा है, क्योंकि भाषा का अत्यन्त सरलरूप, कोमलकान्त पदावली के साथ सहजता और सरसता में अभिवृद्धि करता हुआ, यहाँ सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है, जिसे प्रसाद एवं माधुर्य के प्राधान्यरूप में देखा जा सकता है।

6. **जीवन के सभी पक्षों का चित्रण–** ध्यातव्य है कि संस्कृत गीतिकाव्यों में जीवन के सभी पक्षों प्रेम, भक्ति, सुख, दुःख, वैराग्य आदि सभी का स्पर्श किया गया है। वास्तविकता तो यह है कि मानव के जीवन–दर्शन को, जो मुखरता आकर्षकरूप में इन काव्यों में प्राप्त हुई है, वह अन्यत्र काव्य की किसी विधा में उपलब्ध नहीं है।

7. **कल्पना की स्वच्छन्दता–** इन काव्यों में विषय–विशेष की सीमाओं से परे कवि हृदय को कल्पनाओं के सागर में स्वच्छन्दरूप से गोते लगाने में अपेक्षाकृत अधिक आनन्द प्राप्त हुआ है। यही कारण है कि यहाँ अनुभूति की मार्मिकता, निरीक्षण की सूक्ष्मता, भाषा की सरसता और सरलता, अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग, विचारों की नवीनता एवं छन्दों की व्यवस्था को विशेष स्थान मिला है। इसके अतिरिक्त गीतिकाव्य में धार्मिक भावना, नैतिक–शिक्षा, अनुभव की गम्भीरता, नखशिख वर्णन एवं प्रकृति का मनोहारी बाह्य एवं आन्तरिक चित्रण भी हमें देखने को मिलता है, जिनका हम यहाँ विस्तार भय से उल्लेख नहीं कर रहे हैं।

(घ) **गीतिकाव्य में दूतकाव्य परम्परा–** संस्कृत साहित्य में मेघदूत ही दूतकाव्य विषयक प्रथम एवं सुव्यवस्थित रचना प्रतीत होती है और इसके बाद यह परम्परा अबाध गति से गीतिरूप में प्रवाहित होकर अद्यावधि पर्यन्त अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है, क्योंकि इसी की छाया पर हंस–दूत, पवनदूत, पिकदूत, चन्द्रदूत, पादपदूत, मनोदूत, पान्थदूत आदि अनेक दूतकाव्यों का प्रणयन इस क्षेत्र में अनेकानेक कवियों द्वारा किया गया। विप्रलम्भ शृंगार की पृष्ठभूमि में नायक–नायिका का दूत द्वारा अपने प्रियतम को मर्मस्पर्शी सन्देश प्रेषण ही इन काव्यों का मुख्य विषय होता है।

यद्यपि काव्य की अन्य विधाओं के समान ही इस विधा के दर्शन भी हमें ऋग्वेद में उपलब्ध हो जाते हैं, क्योंकि वहाँ पर इन्द्र अपनी सरमा नामक शुनी (कुतिया) को बृहस्पति की गायों को खोजने के लिए भेजते हैं, इस प्रसंग में सरमा अपने दौत्य–कार्य को अत्यन्त निपुणतापूर्वक सम्पन्न करती है। तत्पश्चात् वाल्मीकि रामायण में वानरराज सुग्रीव ने सीता का पता लगाने के लिए हनुमान् आदि वानरों को प्रेषित किया था।

इसीप्रकार महाभारत में भी दूतसंप्रेषण के अनेक प्रसंगों का उल्लेख हुआ है, जिनमें युधिष्ठिर के दूतरूप में श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर दुर्योधन की सभा में जाना तथा नलोपाख्यान के अन्तर्गत हंस–दमयन्ती संवाद में हमें दूतकाव्य के व्यवस्थित दर्शन होते हैं। इसके बाद भागवत में गोपियों के अहंकार को दूर करने के लिए श्रीकृष्ण अश्वत्थ, पलास, वट, तुलसी आदि वृक्षों से कृष्ण का पता पूछने के क्रम को सार्वभौम के पदांक नामक दूतकाव्य की रचना के आधाररूप में देखा जा सकता है।

इसी भागवत में श्रीकृष्ण द्वारा अपने सहचर उद्धव को गोकुल भेजकर अपने समाचार देकर भेजना आदि भी दूतकाव्य की ही श्रेणी में परिगणित हैं। इसी आधार पर गोस्वामी ने उद्धव सन्देश, माधव कवीन्द्र

ने उद्धवदूत एवं रुद्रन्याय वाचस्पति ने भ्रमरदूत की संरचना की, जबकि रुपगोस्वामी के हंसदूत का आधार भागवत के दशम स्कन्ध के 90 वें अध्याय का श्रीकृष्णचरित तथा शुकदेव–प्रसंग रहा है, जहाँ पर उन्मत्तावस्था में गोपियाँ कुररी, चक्रवाकी, चन्द्र, मलयानिल, कोकिल, मेघ, हंस, नदी और पर्वतादि को सम्बोधन करके श्रीकृष्ण विषयक वार्ता को जानना चाहती हैं।

इसके अलावा भागवत के ही रुक्मिणी विवाह प्रसंग में ब्राह्मण द्वारा श्रीकृष्ण के पास भेजे गए सन्देश को आधार बनाकर लक्ष्मण सूरि ने विप्रसन्देश नामक अपने दूतकाव्य की संरचना की। इसी क्रम में बौद्धों के जातक साहित्य में भी पक्षियों के सन्देशवाहक होने का वर्णन उपलब्ध होता है, जहाँ पर वाराणसी का एक सेठ 'कलण्डुक' नामक अपने दास की खोज करने के लिए एक शुक को भेजता है, जिसकी जानकारी प्राप्त करके, उसकी सूचना भी वह 'शुक' वापस आकर अपने स्वामी को प्रदान करता है।

इसके अतिरिक्त 'महाउम्मग' आदि जातकों में भी पक्षियों द्वारा संदेश भेजने का कार्य कराया गया है। इसप्रकार उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण के आधार पर हम कह सकते हैं कि काव्यकार कालिदास का मेघदूत संस्कृत जगत् का प्रथम व्यवस्थित दूतकाव्य है, जिसे आधार बनाकर परवर्ती अनेकानेक कवियों ने अपने दूतकाव्यों की संरचना की।

इसी क्रम में महाकवि भवभूति द्वारा मालती–माधव नाटक में माधव का सन्देश मेघ द्वारा नायिका मालती के पास भेजने का उपक्रम किया गया है तथा अन्य दूतकाव्यों के रूप में वीरेश्वर के वाङ्मण्डनदूत काव्य, जम्बू का चन्द्रदूत, धोयि नामक कवि का पवनदूत आदि काव्य काव्यकार कालिदास के मेघदूत को आधार बनाकर ही लिखे गए। इसके बाद में भामह तथा भोजदेव ने भी सम्प्रति अनुपलब्ध कुछ दूत काव्यों का उल्लेख किया है, जिनका आधार आदर्श रूप में मेघदूत को ही स्वीकार किया जा सकता है।

कुछ दूतकाव्यों के विषय में हम यहाँ संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं–

1.	घटकर्पर	ई.पू. प्रथम शती	घटकर्पर काव्य
2.	धोयी कवि	12वीं शती	पवनदूत काव्य
3.	वेदान्तदेशिक	13वीं शती	हंससन्देश काव्य
4.	उद्दण्ड कवि	15वीं शती	कोकिल संदेश काव्य
5.	वामनभट्ट बाण	15वीं शती	हंससन्देश काव्य
6.	चरित्रसुन्दरमणि	15वीं शती	शीलदूत काव्य
7.	रूपगोस्वामी	16वीं शती	हंसदूत,उद्धव सन्देश
8.	पूर्ण सरस्वती	16वीं शती	हंस सन्देश काव्य
9.	विष्णुत्राता	16वीं शती	काक सन्देश काव्य
10.	वासुदेव	17वीं शती	भृंग सन्देश काव्य
11.	विनयपुत्र	17वीं शती	चन्द्रदूत काव्य
12.	विष्णुदास	17वीं शती	मनोदूत काव्य
13.	रामाराय	18वीं शती	मनोदूत काव्य

उपर्युक्त दूतकाव्यों के अलावा भी मेघदूत को आधार बनाकर अनेक कवियों द्वारा चेतोदूत, मेघदूत समस्या, मेघ सन्देशविमर्श, मेघप्रति सन्देश, भ्रमरदूत, पिकदूत, गोपीदूत, तुलसीदूत, पान्थदूत एवं भक्तिदूत आदि दूतकाव्यों का प्रणयन किया गया। इसी प्रसंग में उल्लेखनीय यह भी है कि लगभग 814 ई. में जैन कवि जिनसेन ने पार्श्वाभ्युदय नामक काव्य की संरचना की, जिसमें जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ के जीवन चरित का उल्लेख करते हुए, मेघदूत के प्रत्येक श्लोक की एक पंक्ति को जोड़कर इस काव्य की रचना की है तथा 15वीं शती में विक्रम नामक कवि ने भी 'नेमिदूत' काव्य का लेखन भी इसीप्रकार किया है।

इसके अतिरिक्त विदेशी विद्वानों को भी मेघदूत काव्य ने अत्यधिक प्रभावित किया, यही कारण है कि अट्ठारहवीं शती में जर्मन कवि शीलर ने इसी काव्य को आधार बनाकर 'मारिया स्टुअर्ट' नामक

नाट्यग्रन्थ की रचना की, जिसमें एक बन्दी बनायी गयी रानी ने मेघ के माध्यम से अपना सन्देश फ्रांस की भूमि को भेजा है।

(ङ) **महाकवि कालिदास**

दसवीं शताब्दी में स्थित राजशेखर द्वारा स्पष्टरूप से तीन कालिदासों के विषय में संकेत[1] करने पर भी भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वत्परम्परा ने इस विषय में गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया, यदि कुछ विद्वानों ने इस सम्बन्ध में विचार किया भी तो यह कहकर मनःतोष कर लिया कि कालिदास ने नाटक, काव्य और गीतिकाव्य इन तीन विधाओं पर ग्रन्थों का प्रणयन किया है, इसलिए सम्भवतया राजशेखर ने कृति–विधान को दृष्टिगत रखकर ही यह कथन किया है।

कुछ विद्वानों ने राजशेखर द्वारा उद्धृत कालिदास त्रयी का अभिप्राय प्रसिद्ध कवि कालिदास की तीन प्रमुख एवं मधुर रचनाओं रघुवंशम्, कुमारसम्भवम् और मेघदूतम् से ग्रहण करके संतोष कर लिया, किन्तु किसी ने भी इस विषय पर गहन चिन्तन और मनन की आवश्यकता अनुभव नहीं की।[2] इसलिए इन तीनों ही कालिदासों के एक मानने से अन्य दो कालिदासों के साथ न्याय नहीं हो सका और वे काल के गाल में विर्लीन हो गए।

यद्यपि बीसवीं शती के प्रथम चरण में स्थित मद्रास के विख्यात विद्वान् प्रो. टी. एस. नारायण शास्त्री ने नौ कालिदासों की खोजपूर्वक पहचान करने का प्रयास किया[3] तथापि अधिकांश विद्वत्परम्परा ने

---

[1]. एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।
श्रृंगारे ललितोद्‌गारे कालिदासत्रयी किमु ।। सूक्तिमुक्तावली

[2]. महाकवि कालिदास , डॉ रमाशंकर तिवारी, पृष्ठ– 2 ।

[3]. (क) ई.पू. षष्ठ शताब्दी में स्थित उज्जैन के राजा हर्ष विक्रमादित्य की सभा के कालिदास, इनका उपनाम 'मातृगुप्त' था। इन्होंने मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमो–

कालिदास को तीन या अधिक मानने की बात तो दूर, उनके दो अलग–अलग व्यक्ति होने के सम्बन्ध में भी विचार का औचित्य नहीं समझा। इसलिए लगभग सम्पूर्ण विद्वत्परम्परा ने कालिदास को एक व्यक्ति मानकर ही उनके स्थान, काल एवं कृतियों के निर्धारण में अपनी सम्पूर्ण समीक्षात्मक मेधा का भरपूर उपयोग किया।

मैंने देखा कि विद्वानों की एक लम्बी परम्परा कालिदास को ई. पू. प्रथम शताब्दी में स्थापित करने के लिए दृढ़–प्रतिज्ञ है तथा दूसरी उसे चतुर्थ अथवा पंचम शती में स्थापित करने के लिए सप्रयास तर्कों को प्रस्तुत करने में लगी है, किन्तु जब हमने उनके इन्हीं तर्कों को सूक्ष्म निरीक्षण मानकर नियोजित किया, तो गुत्थी का स्वतः ही समाधान होता प्रतीत हुआ, क्योंकि इनमें से अधिकांश तर्क नाटककार

र्वशीयम् तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम्, तीन प्रसिद्ध नाटकों एवं सेतुबन्ध नामक महाकाव्य की रचना की।

(ख) मालव संवत् के संस्थापक मालव नरेश विक्रमार्क (ई.पू. 50) की सभा के कालिदास जिनका उपनाम मेघारुद्र था, जिन्होंने कुमारसम्भवम्, मेघदूतम् और रघुवंशम् इन तीन काव्यों का सृजन किया ।

(ग) 470 ई. में स्थित कामकोटिपांतम के मूकशंकर के शिष्य कालिदास इनका उपनाम कोटिजीत था। इन्होंने ऋतुसंहार, शृंगारतिलक, श्यामलादण्डक, नवरत्न माला इत्यादि ग्रन्थों का प्रणयन किया।

(घ) धारा के अधीश मुँज के समकालीन परिमल कालिदास, इनका उपनाम पद्मगुप्त था। इन्होंने 'नवसाहसांक चरित' नामक काव्य की संरचना की।

(ङ) 'नलोदय' काव्य के प्रणेता कालिदास जो 'यमक कवि' की संज्ञा से भी प्रसिद्ध थे।

(च) 'चम्पू भागवत' के रचयिता नव कालिदास ।

(छ) अकबरी दरबार के 'कालिदास अकबरीय' जो अनेक समस्याओं की पूर्ति के लिए प्रसिद्ध हैं।

(ज) 'लम्बोदर' प्रहसन के रचयिता कालिदास तथा

(झ) 'संक्षेप शंकर विजय' के प्रणेता 'अभिनव कालिदास' इनका उपनाम माधव था।

महाकवि कालिदास – डॉ. रमाशंकर तिवारी पृष्ठ–2 पर पादटिप्पणी।

कालिदास और काव्यकार कालिदास पर पृथक् रूप से सटीक प्रतीत हुए। तदनुसार–

प्रथम, ईसा पूर्व प्रथम शती में स्थित नाटककार कालिदास, जिन्होंने क्रमशः मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम् तथा अभिज्ञान शाकुन्तलम्, इन तीन नाटकों की संरचना करके संस्कृत नाट्य–साहित्य को समृद्धि प्रदान की और अपने यश को दिग्दिगन्त में चारों ओर प्रसारित किया।

द्वितीय, अश्वघोष के पश्चात् ईसा की चतुर्थ शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं पंचम शती के पूर्वार्द्ध अर्थात् गुप्तकाल में स्थित काव्यकार कालिदास, जिन्होंने क्रमशः कुमारसम्भवम्, मेघदूतम् और रघुवंशम् इन तीन काव्यों का प्रणयन किया और 'उपमा कालिदासस्य', 'दीपशिखा कालिदास' एवं 'क इह रघुकारे न रमते' इत्यादि विद्वत्प्रशस्तियों से अलंकृत हुए।

तृतीय, 470 ई. के लगभग स्थित कामकोटि पांतन के मूक शंकर के शिष्य कोटिजीत उपनाम वाले कालिदास, जिन्होंने षड्ऋतुओं को आधार बनाकर "ऋतुसंहार" नामक शृंगार रस से आप्यायित गीति काव्य की संरचना की।

डॉ. रमाशंकर तिवारी की परिमल प्रकाशन, दिल्ली से 2001 में प्रकाशित लघु पुस्तक 'नाटककार कालिदास और काव्यकार कालि–दास' में विद्वान् लेखक ने अपनी एकीकृत कालिदास विषयक पूर्व स्थापित मान्यता का खण्डन करते हुए दो कालिदासों को पृथक्रूप में ही मान्यता प्रदान की है। साथ ही, उन्हें क्रमशः ई.पू. प्रथम शती तथा पंचम शती के पूर्वार्द्ध में भी स्थापित किया है।

उनके विवेचन का मुख्य आधार इन दोनों कालिदासों की काव्य–दृष्टि, सौन्दर्य–व्यंजना एवं भाव–संसार ही प्रमुख रूप से रहा है। तर्क अकाट्य हैं, जिन्हें कोई भी व्यक्ति सहज ही हृदयंगम कर सकता है। अतः प्रस्तुत विवेचन प्रमुखरूप से उसी कृति के आधार पर

किया जा रहा है। आशा है अन्य विद्वान् भी इसी दिशा में तटस्थ भाव से चिन्तन हेतु प्रयत्नरत होंगे।

इसी प्रसंग में एक बात और विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि कालिदास की काव्यचेतना के आधार पर यदि हम इनका काल–निर्धारण करते हैं, तो जहाँ एक ओर हमारी कालिदास–त्रय विषयक समस्या का समाधान स्वतः ही हो जाता है, वहीं दूसरी ओर आचार्य भरत, भास एवं अश्वघोषादि के सम्बन्ध में उनकी काल–निर्धारण विषयक दृष्टि भी स्पष्ट हो जाती है।

(च) **कालिदास–त्रय**

यहाँ सर्वप्रथम हम बाह्य साक्ष्यों की अपेक्षा अन्तःसाक्ष्यों पर विचार करते हुए नाटककार कालिदास और काव्यकार कालिदास इन दोनों के भिन्नता विषयक चिन्तन को प्रस्तुत कर रहे हैं–

1. वस्तुतः नाटककार कालिदास का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ, जब बौद्धधर्म के प्रति आस्था में धीरे–धीरे शिथिलता आ रही थी तथा ब्राह्मणधर्म का अभ्युत्थान हो रहा था। इसी कारण नाटककार कालिदास अभिज्ञान शाकुन्तलम् के मंगलाचरण में भगवान् शिव की अष्ट मूर्तियों का वर्णन 'प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिः'[1] इत्यादि कथन करके तत्कालीन समाज में प्रचलित वैदिक देवताओं के प्रति स्थिर अविश्वास को निरस्त करने का प्रयास करते हुए से प्रतीत होते हैं।

इसीप्रकार अभिज्ञान शाकुन्तलम् के षष्ठ अंक में प्रयुक्त पात्र के माध्यम से कवि वैदिक–यज्ञों का समर्थन थोड़ा संकोचपूर्वक कर रहा है, क्योंकि उस समय बौद्ध–धर्म हिंसा का प्रबल विरोधी था।

सहजं किल यद्विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम्।

---

1. या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः,
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।। शाकुन्तलम्–1/1 ।

पशुमारणकर्म दारुणोऽनुकम्पा मृदुरेव श्रोत्रियः।।[1]

2. इसीप्रकार 'मालविकाग्निमित्रम्' नामक नाटक में बौद्धधर्म की सम्मान्य पात्र परिव्राजिका 'कौशिकी' को प्रेम प्रसंगों में भूमिका प्रदान करना, नाटककार कालिदास की बौद्धधर्म के प्रति भिन्न मनोभूमि की ओर संकेत करता प्रतीत हो रहा है। इसके विपरीत काव्यकार कालि–दास हमें स्थिरमुद्रा में वैदिक मान्यताओं की व्याख्या करते हुए से प्रतीत होते हैं। यहाँ नाटककार के समान संकोचायित भावना के दर्शन हमें नहीं होते हैं। इसप्रकार के अनेक प्रसंग हमें कुमारसम्भव,[2] मेघदूत[3] और रघुवंश[4] में भी देखने को मिल जाते हैं।

3. इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि नाटककार कालिदास ने गान्धर्व विवाह का उल्लेख किया है,[5] जबकि रघुवंश एवं कुमारसम्भव दोनों ही महाकाव्यों में 'प्राजापत्य' विवाह को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। यद्यपि ये दोनों ही विवाह मनुसम्मत हैं तथापि इस तथ्य से नाटककार कालिदास और काव्यकार कालिदास का पृथक् होना अवश्य प्रतीत होता है।

4. यह लगभग सर्वसम्मत तथ्य है कि दोनों कालिदास अपने समीपवर्ती युग के वैभव–विलास से अत्यधिक प्रभावित हैं, किन्तु श्रृंगार विषयक काव्यचेतना के सम्बन्ध में हमें इन दोनों में भिन्नता भी स्पष्ट सी प्रतीत होती है, क्योंकि दोनों कालिदास शृंगार की कमनीयता को समान आदर प्रदान करते हुए भी –

(क) नाटककार कालिदास हमें इस दृष्टि से कुछ अधिक रोमांटिक प्रतीत होते हैं, जबकि काव्यकार कालिदास हमें इस धरातल पर अपेक्षाकृत क्लासिक से लगते हैं।

---

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – 6/1 ।
2. कुमारसम्भवम् – 1/17, 51, 2/12, 15 ।
3. मेघदूतम्– 1/45 ।
4. रघुवंशम् – 1/44, 68, 2/26, 65, 5/1, 25, 11/25 ।
5. गान्धर्वेण विवाहेन बह्वयो राजर्षिकन्यकाः।
   श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः।। अभिज्ञानशाकुन्तलम्– 3/21 ।

(ख) नाटककार कालिदास की काव्यचेतना कल्पना के कोमल प्रणय संसार में विचरण करती है, जबकि काव्यकार कालिदास संस्कृति के परिनिष्ठित संयम और मर्यादा में आबद्ध रहे हैं।

(ग)नाटककार कालिदास हृदय की सुकुमार वृत्तियों पर शासन के बन्धन को स्वीकार करते हुए प्रतीत होते हैं, जबकि काव्यकार इन वृत्तियों पर संयम के प्रबल पक्षपाती रहे हैं।

(घ) नाटककार कालिदास की सर्वत्र प्रणय के प्रति समर्पण एवं उन्मुक्त भावना झलकती है, जबकि काव्यकार प्रणय की स्वच्छन्दता को मर्यादा से नियन्त्रित करना चाहते हैं।

(ङ) नाटककार कालिदास यदि राग को महत्त्व प्रदान करते हैं तो काव्यकार कालिदास सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति कटिबद्ध प्रतीत होते हैं।

(च) नाटककार का शरीर को कष्ट देकर तप के प्रति[1] विशेष लगाव रहा है तो काव्यकार का योग एवं उससे मोक्ष–प्राप्ति[2] के प्रति विशेष रुझान दृष्टिगोचर होता है, क्योंकि रघुवंश में राजा रघु के अतिरिक्त अन्य अनेक नायक भी अपने पुत्रों को राज्य का भार सौंपकर 'योग' का अवलम्बन करके संसार में आवागमन से मुक्त हो गये हैं।[3]

(छ) सूक्ष्मदृष्टि से विचार करने पर हमें नाटककार कालिदास की सौन्दर्य–भावना में सूक्ष्मतातिशयता की प्रतीति होती है, जबकि काव्यकार की सौन्दर्य भावना में विलासिता और स्थूलता के दर्शन होते हैं। कुमारसम्भव में प्रयुक्त नख–शिख वर्णन[4] तथा मेघदूत में यक्षिणी

---

1. (क) तपःप्रभावात् प्रत्यक्षं सर्वमेव तत्रभवतः। शाकुन्तलम्– 7/33 के बाद ।
   (ख) अभिज्ञानशाकुन्तलम्–7/11,12 में कठोर तपोवर्णन ।
   (ग) विक्रमोर्वशीयम् – 5/17 ।
2. रघुवंशम्–3/70, 7/71, 8/10, 11, 14, 19, 20–25, 18/26, 33 ।
3. रघुवंशम्– 18/33 ।
4. कुमारसम्भव, सर्ग– 8 ।

के सौन्दर्य–प्रसंग[1] इस कथन में प्रमाणरूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त नायिकागत दृष्टि भी नाटककार कालिदास और काव्यकार कालिदास की भिन्नता का आभास कराती है, क्योंकि यहाँ नाटकों में प्रयुक्त प्रायः सभी नायिकाएँ स्वाभाविक सौन्दर्य के कारण अप्रतिम सुन्दरियाँ हैं। यही कारण है कि –

मालविका के सौन्दर्य पर मुग्ध अग्निमित्र उसके रचनाकाल में विधातारूपी चित्रकार को शिथिल समाधि वाला तक कह देता है,[2] जो नाटककार की सौन्दर्य के प्रति सूक्ष्मदृष्टि का परिचायक ही कहा जा सकता है। ऐसे ही कुछ अन्य स्थल भी इस प्रसंग में अवलोकनीय हैं, जिनमें एक स्थल पर नितम्बादि का उल्लेख भी किया गया है–

वामं संधिस्तिमितवलयं न्यस्तहस्तं नितम्बे
कृत्वा श्यामाविटपसदृशं स्रस्तमुक्तं द्वितीयम्।
पादङ्गुष्ठालुलितकुसुमे कुट्टिमे पातिताक्षं
नृत्तादस्याः स्थितमतितरां कान्तमृज्वायतार्धम्।।[3]

यहाँ मालविका मुग्धा नायिका के रूप में चित्रित की गयी है, जो चित्र में स्थित राजा से इस कारण रूठ जाती है कि वे उससे बोल नहीं रहे हैं।[4] इस नाटक में राजा द्वारा मालविका को पकड़ने आदि क्रियाओं से प्रणय की उतावली का आभास भी होता है।[5]

इसके विपरीत काव्यकार कालिदास के महादेव कुमारसम्भव के अन्तर्गत न तो पार्वती के प्रथम दर्शन के अवसर पर उसकी सौन्दर्य सम्पदा पर रीझते हैं और न ही उसके द्वितीय दर्शन के अवसर पर; उन्होंने किसी प्रकार की उतावली ही प्रदर्शित की है।

---

1. मेघदूतम्– 2/22, 46 ।
2. सम्प्रति शिथिलसमाधिं मन्ये येनेयमालिखिता । मालविकाग्निमित्रम्– 2/2 ।
3. मालविकाग्निमित्रम् – 2/6 ।
4. मालविकाग्निमित्रम्– 3/7, 8 ।
5. मालविकाग्निमित्रम्– 4/10 ।

कमोबेश यही स्थिति हमें विक्रमोर्वशीयम् में भी देखने को मिलती है। वहाँ रथ में निश्चेष्ट पड़ी उर्वशी के सौन्दर्य ने राजा पुरुरवा को प्रथम दृष्ट्या इतना अधिक आकर्षित नहीं किया है[1], जितना बाद में 'अस्याः सर्गविधौ' इत्यादि स्थल[2] पर उसे लुभाया है। कुछ ऐसा ही हमें अभिज्ञान शाकुन्तलम् में दुष्यन्त के प्रेम–प्रसंग में भी देखने को मिलता है। इस सम्बन्ध में डॉ. रमाशंकर तिवारी के विचार विशेषरूप से अवलोकनीय हैं[3]–

'शकुन्तला के रूप–चित्रण में तो कालिदास की रोमानी चेतना उसके निसर्ग–सिद्ध सौन्दर्य के आकलन में यथार्थ की स्थूलता से हटकर वायवी तथा कल्पना रमणीय बन गयी है। 'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्'[4] से लेकर 'न प्रभा तरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्'[5] वसुधातलात्'[5] तक जाते–जाते वह मानो रोमांटिक मनोभंगिमा में पृथिवीतल से ऊपर उठ गया है।'

इतना ही नहीं, उस स्थल पर तो दुष्यन्त की रोमांस की सीमा ही पार हो गयी है, जब वह शकुन्तला के सौन्दर्य पर रीझते हुए कह उठता है कि–

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै–
रनाविद्धं रत्नं मधुनवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।।[6]

यह प्रेम भी वस्तुतः मर्यादा से शासित पल्लवित दाम्पत्य रति का चूड़ान्त विकास नहीं कहा जा सकता है, किन्तु इसे हम यहाँ

---

1 . तदेतदुन्मीलय चक्षुरायतं निशावसाने नलिनीव पंकजम्।। विक्रमो.– 1/6 ।
2 . विक्रमोर्वशीयम्– 1/10।
3 . नाटककार कालिदास और काव्यकार कालिदास डॉ. तिवारी, पृष्ठ– 13 ।
4 . अभिज्ञानशाकुन्तलम्– 1/19 ।
5 . अभिज्ञानशाकुन्तलम्– 1/24 ।
6 . अभिज्ञानशाकुन्तलम्– 2/10 ।

रोमांटिक–प्रेम का ही आदर्शीकृत संस्करण कह सकते हैं। इस दृष्टि से दुष्यन्त वस्तुतः नाटककार का काव्यात्मक प्रवक्ता कहा जा सकता है।[1] इसी प्रसंग में अन्यत्र एक स्थल पर आश्रमवासी कन्याओं के सौन्दर्य को देखकर दुष्यन्त के मुख से अनायास निकले वचन–

'दूरीकृता खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः।'[2]

सौन्दर्य के प्रति नाटककार की दृष्टि को प्रदर्शित करते हैं। इसके ठीक विपरीत काव्यकार कालिदास सौन्दर्य की निन्दा कराकर अपनी गरिमामयी दृष्टि का परिचय प्रदान करते हैं–

'निनिन्दरूपं हृदयेन पार्वती
प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।'[3]

इसप्रकार की सौन्दर्यभावना विषयक अनेक प्रसंग नाटककार कालिदास और काव्यकार कालिदास को इन दोनों की चिन्तन भूमि के स्तर पर परस्पर भिन्न सिद्ध करते हैं। इसके अतिरिक्त इन दोनों कालिदासों के काव्य–शिल्प पर भी सूक्ष्मदृष्टि से चिन्तन करने पर हमें इनका पार्थक्य स्वतः ही आभासित होने लगता है।

नाटककार कालिदास का भाव हमें रस व्यंजकता के प्रति समर्पित सा प्रतीत होता है, क्योंकि उनकी मान्यता है कि नाट्य का रस–प्रस्रवण युक्त होना आवश्यक है। इसी कारण हमें उनके तीनों नाटकों में श्रृंगाररस की स्रोतस्विनी के अजस्र–प्रवाह के दर्शन होते हैं, जबकि काव्यकार कालिदास की दृष्टि हमें रस व्यंजना की अपेक्षा अन्य काव्यांगों पर टिकी हुई अधिक प्रतीत होती है। यही कारण है कि मेघदूत के विप्रलम्भ श्रृंगार में मार्दवता अधिक स्फुटरूप नहीं ले सकी है।

---

[1]. महाकवि कालिदास – डॉ. रमाशंकर तिवारी, पृष्ठ – 331 ।

[2]. अभिज्ञानशाकुन्तलम्– 1/17 ।

[3]. कुमारसम्भवम्– 5/1 ।

इसके अलावा इन दोनों कालिदासों की भिन्नता का प्रतिपादन करने वाला अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अन्य तथ्य हमें यह भी प्रतीत होता है कि–काव्यकार कालिदास को शौर्य के उपमानरूप में 'स्कन्द' अत्यधिक प्रिय रहा है। इसीलिए उन्होंने 'रघुवंश' नामक महाकाव्य में अपने सभी शौर्य सम्पन्न नायकों की उपमा 'स्कन्द' से दी है,[1] इतना ही नहीं हमारे विवेच्य मेघदूत में भी दो स्थलों पर उन्होंने 'स्कन्द' का उल्लेख किया है,[2] जबकि कुमारसम्भव में तो सर्वत्र ही 'स्कन्द' का ही मुक्त कण्ठ से यशोगान हुआ है।

इसके विपरीत नाटककार का लेशमात्र आकर्षण हमें उनके प्रति दिखायी नहीं देता है, क्योंकि यहाँ उन्होंने एक स्थल पर भी 'स्कन्द' को शौर्य के प्रतीक अथवा उपमानरूप में प्रस्तुत नहीं किया है। इसप्रकार सब तरह के पूर्वाग्रहों से रहित होकर, यदि हम इस विषय पर सूक्ष्म विचार करते हैं तो निश्चय ही, हमें नाटककार और काव्यकार सर्वथा पृथक्–पृथक् प्रतीत होते हैं। यही स्थिति 'दीपक' का उपमान रूप में प्रयोग करने के विषय में कही जा सकती है, क्योंकि काव्यकार ने अनेक स्थलों पर इसके उपमानरूप में सुन्दर प्रयोग किए हैं,[3] जबकि नाटककार ने एक भी स्थल पर इसका इस रूप में प्रयोग नहीं किया है।

इस संदर्भ में एक बात और विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि महाकवि कालिदास के काल–निर्धारण के सम्बन्ध में विद्वानों ने अपने उत्कट प्रयासों द्वारा जितने भी साक्ष्यों का अन्वेषण किया है, उनमें अधिकाँश कुमारसम्भव, मेघदूत और रघुवंश के रचयिता काव्यकार कालिदास पर तो घटित हैं, नाटककार कालिदास उनसे सर्वथा

---

1. रघुवंशम् –2/75, 3/55, 6/1, 2, 4, 11/83, 14/22, 17/67 ।
2. मेघदूतम्. –1/47, 48 ।
3. कुमारसम्भवम्–1/28, 3/48, 4/30 ।
   रघुवंशम्– 5/37, 6/67, 12/1 ।

असम्पृक्त ही प्रतीत होते हैं। साथ ही, 'अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः' इत्यादि प्रसिद्ध आभाणक भी कुमारसम्भव, मेघदूत और रघुवंश इन तीन काव्यों के प्रणेता काव्यकार कालिदास के भिन्न होने की ओर ही संकेत करता प्रतीत होता है।

इस प्रसंग में यह तथ्य भी विशिष्ट महत्त्व रखता है कि रघुवंश के रचयिता कालिदास को तात्कालिक विद्वानों ने 'दीपशिखा-कालिदास' आदि कहकर उन्हें नाटककार कालिदास से भिन्न करने का प्रयास किया भी है, किन्तु हम इस विषय में इन उक्तियों के अभिप्राय को समझ नहीं सके हैं, अतः आवश्यकता केवल इस दृष्टि से चिन्तन और मनन करने की है।

दूसरी शताब्दी ईसा में स्थित महाकवि अश्वघोष की बात भी इस प्रसंग में उठना स्वाभाविक है। उन्होंने सम्भवतः बाद में बौद्धधर्म स्वीकार किया था, क्योंकि उनके काव्यों में पौराणिक मान्यताओं के प्रति आकर्षण स्पष्टरूप से प्रतीत होता है। उनके काव्य का मुख्य उद्देश्य बौद्ध-धर्म का प्रचार करना था। ये वस्तुतः नाटककार कालिदास के परवर्ती थे अर्थात् **भास** के बाद **नाटककार कालिदास** और उनके बाद **अश्वघोष** एवं तदनन्तर **काव्यकार कालिदास**, यह क्रम यों ही ठीक प्रतीत होता है।[1]

इसी क्रम में यह बात भी ध्यातव्य है कि 'कृष्णचरित' का रचयिता समुद्रगुप्त को माना जाता है, उन्होंने नाटककार और काव्यकार दो भिन्न कालिदासों का कथन किया है।[2] इनके अनुसार नाटककार कालिदास 'शूद्रक' विक्रमादित्य के राजकवि थे, जिन्होंने शाकुन्तलादि तीन नाटकों का प्रणयन किया और काव्यकार कालिदास पश्चाद्भावी थे, जो समुद्रगुप्त के अमात्य 'सान्धि-विग्रहिक' और युवराज के सचिव थे, इन्होंने रघुवंशादि काव्यों की रचना के साथ-

---

1 . नाटककार कालिदास और काव्यकार कालिदास डॉ. तिवारी, पृष्ठ-31।

2 . वही, पृष्ठ- 31।

साथ समुद्रगुप्त को भी 'कृष्णचरित' काव्य लिखने की प्रेरणा प्रदान की।

प्रो. आर. जी. तिवारी ने भी पौराणिक–सन्दर्भों के आधार पर तीन विभिन्न कालों में तीन कालिदासों का अनुमान किया है। उन्होंने ऋतुसंहार के रचयिता कालिदास को उज्जैन के विक्रमादित्य के दरबार में ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में, दूसरे नाटककार कालिदास को ईसा की चतुर्थ शताब्दी के अन्त में गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का राजकवि बताते हुए, तीसरे काव्यकार कालिदास को ईसा की पंचम शताब्दी में कुमारगुप्त के संरक्षण में स्थित बताया है। उनके इस कथन से भी कालिदास–त्रय की पुष्टि तो होती ही है।[1]

इसके अतिरिक्त प्रो. आर. डी. कर्मस्कर ने भी कम से कम दो कालिदासों का भिन्न अस्तित्व मानते हुए प्रथम को ई.पू. प्रथम शती में तथा दूसरे को गुप्तकाल में स्थित माना है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद की मान्यता भी नाटककार कालिदास और काव्यकार कालिदास दोनों को भिन्न मानने के सम्बन्ध में ही रही है।[2] इसीप्रकार वेदों एवं संस्कृत साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान् जयपुर वास्तव्य डॉ. सुधीर कुमार गुप्त भी कम से कम दो कालिदास मानने के पक्षधर ही रहे हैं। उनके मत में–

'नाटककार कालिदास को लेखक लगभग पिछले एक वर्ष से रघुकार कालिदास से पृथक् मानने लगा है। इसकी पुष्टि जहाँ श्री जीवाराभ कालिदास द्वारा सम्पादित समुद्रगुप्त विरचित कृष्णचरित के उपलब्ध अंश से होती है। वहाँ कवि की तिथि के निर्णय के लिए दी गयी युक्तियों का विश्लेषण स्पष्ट बताता है कि ईस्वी पूर्व प्रथम

---

[1] . विस्तृत विवेचन के लिए द्रष्टव्य लेखककृत नाटककार कालिदास प्रकाशक– चौखम्भा ओरियण्टालिया, दिल्ली, 2019 ।

[2] . नाटककार कालिदास और काव्यकार कालिदास डॉ. तिवारी, पृष्ठ– 32।

शताब्दी की समर्थक युक्तियाँ नाटकों पर आश्रित हैं और पंचम शताब्दी की पोषिका युक्तियों का आधार काव्य रहे हैं।'[1]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षरूप में कहा जा सकता है कि कविवर राजशेखर के कथन को आधार मानकर गहन चिन्तन एवं मनन करने पर, सभी साक्ष्यों का आलोडन विलोडन करके हमें ई. पू. प्रथम शती में नाटककार कालिदास तथा ईसा की पंचम शती के पूर्वार्द्ध में अर्थात् गुप्तकाल में काव्यकार कालिदास एवं 470 ई में ऋतुसंहारीय कालिदास की स्थिति प्रतीत होती है तथापि पूर्णतया तटस्थ भाव से पर्याप्त चिन्तन, मनन एवं परिशीलन करते हुए इस दृष्टि से पृथक् से शोध किए जाने की अभी भी महती आवश्यकता है।

(छ) **नाटककार का स्थिति–काल** (ई.पू. प्रथम शती)–

महाकवि कालिदास के काल–निर्णय के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने विचार–विमर्श किया है। इनमें प्रायः सभी विद्वानों ने रघुवंश एवं शाकुन्तलादि कृतियों को एक ही कालिदास की रचनाएँ मानते हुए, मुख्यरूप से दो दृष्टियाँ प्रस्तुत की हैं –

(i) विद्वानों का एक वर्ग कालिदास के नाम से प्रसिद्ध सात रचनाओं[2] का रचयिता एक ही कालिदास को मानकर उन्हें ई.पू. प्रथम अथवा द्वितीय शताब्दी में रखने का पक्षधर रहा है।

(ii) जबकि विद्वानों का दूसरा बड़ा वर्ग सभी रचनाओं का रचयिता एक ही कालिदास को मानकर भी उन्हें गुप्तकाल में स्थित मानने का पक्षपाती है।

---

[1]. मेघदूत की वैदिक पृष्ठभूमि और उसका सांस्कृतिक संदेश, डॉ. सुधीर कुमार गुप्त, प्रकाशक– भारती मंदिर, नई बस्ती, खुर्जा, (उ.प्र.), मई, 1954, आमुख, पृष्ठ– 4 ।

[2]. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम्, मालविकाग्निमित्रम्, रघुवंशम्, कुमारसम्भवम्, मेघदूतम्, ऋतुसंहारम्।

यद्यपि ये दोनों ही मत अपने–अपने मन्तव्य के समर्थन में पर्याप्त एवं प्रबल–प्रमाण प्रस्तुत करते हैं तथापि विद्वानों की इस विषय में आज भी एक सम्मति नहीं हो सकी है, सूक्ष्मदृष्टि से चिन्तन करने पर इसका कारण यही प्रतीत होता है कि कालिदास के कम से कम दो भिन्न व्यक्तित्व होने के कारण ही वस्तुतः सभी तर्क किसी एक कालिदास पर सम्पूर्णरूप से घटित नहीं होते हैं, किन्तु यदि हम विद्वानों द्वारा प्रस्तुत इन्हीं तर्कों को नाटककार कालिदास और काव्यकार कालिदास के रूप में अलग–अलग मानकर विचार करते हैं, तो इस गुत्थी का समाधान स्वतः ही हो जाता है।

जैसा कि हम पूर्व में भी उल्लेख कर चुके हैं कि प्रसिद्ध विद्वान् प्रो. आर. जी. तिवारी ने पौराणिक संदर्भों के आधार पर तीन कालिदासों का अनुमान करते हुए इसी दिशा में चिन्तन प्रस्तुत किया है। उनके मत में ये तीनों कालिदास विभिन्न कालों में विद्यमान थे,[1] फिर तीन व्यक्तियों को एक ही काल में स्थित करने का सायास प्रयास भला कैसे सफल हो सकता है? बस यही बिन्दु महत्त्वपूर्ण एवं विचारणीय है।

यही कारण है कि आज तक लगभग प्रत्येक दूसरे संस्कृत विद्वान् द्वारा कालिदास के तिथि–निर्णय का प्रयास किए जाने पर भी सर्वसम्मत एक मान्यता स्थापित नहीं हो सकी है। इस प्रसंग में प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् डॉ. रामचन्द्र तिवारी द्वारा डी.लिट् की उपाधि हेतु लिखे गये 'कालिदास तिथि–संशुद्धि'[2] नामक विशाल ग्रन्थ का उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा।

विद्वान् लेखक ने इस ग्रन्थ में भी एक कालिदास की मान्यता को स्वीकार करते हुए अनेक शिलालेखीय प्रमाणों को प्रस्तुत करके महाकवि कालिदास को सप्तम शती के लगभग स्थापित किया है,

---

[1] .नाटककार कालिदास और काव्यकार कालिदास डॉ. तिवारी, पृष्ठ– 31।

[2] . कालिदास तिथि संशुद्धि– डॉ. रामचन्द्र तिवारी, यूनिक ट्रेडर्स, दिल्ली।

जबकि डॉ. रमाशंकर तिवारी ने अपनी कृति 'नाटककार कालिदास और काव्यकार कालिदास' में उनकी प्रायः सभी मान्यताओं का क्रमशः सप्रमाण खण्डन किया है,[1] जो वस्तुस्थिति को पुनः जानने के लिए प्रेरित करता है।

कहने का अभिप्राय यही है कि यह बिन्दु वस्तुतः अधुना यावत् विचारणीय ही बना हुआ है, भले ही इस पर अनेक ग्रन्थों का प्रणयन क्यों न हो गया हो, क्योंकि सर्वसम्मति से अन्तिम निर्णय अभी तक भी नहीं हो सका है। इसलिए हम यहाँ पिष्टपेषण न करके इस सम्बन्ध में कुछ अन्य शैली से चिन्तन करने का विनम्र प्रयास कर रहे हैं, आशा है विद्वत्समाज इससे सहमत होगा।

महाकवि कालिदास के काल निर्धारण से पूर्व यह उल्लेखनीय है कि कालिदास के दो या तीन होने में विश्वास प्रकट करने वाली परम्परा के अन्तर्गत उल्लेखनीय विद्वानों में जहाँ एक ओर महाकवि राजशेखर एवं समुद्रगुप्त आदि का नाम ग्रहण किया जाता है, वहीं दूसरी ओर प्रो. टी. एन. नारायण शास्त्री, प्रो. आर.जी. तिवारी, प्रो. आर. डी. कर्मरकर, श्री जयशंकर प्रसाद एवं अधुनातन प्रतिष्ठित विद्वान् डॉ. रमाशंकर तिवारी, डॉ. सुधीरकुमार गुप्त, प्रो. अनन्तशर्मा(ब्यावर) एवं डॉ. रमाशंकर पाण्डेय[2] का नाम विशेषरूप से उद्धृत किया जा सकता है।

इनमें भी डॉ. रमाशंकर तिवारी ने तो प्रचुर अन्तःसाक्ष्यों को प्रस्तुत करते हुए नाटककार कालिदास और काव्यकार कालिदास को भिन्न मानते हुए अपनी पूर्व में स्थापित मान्यता का ही खण्डन कर दिया है, क्योंकि इससे पूर्व में प्रकाशित कृति 'महाकवि कालिदास'[3] में

---

[1]. नाटककार कालिदास और काव्यकार कालिदास, डॉ. तिवारी, पृष्ठ–6।

[2]. मालविकाग्निमित्रम्, व्याख्याकार–डॉ. रमाशंकर पाण्डेय, चौखम्बा सुर भारती, वाराणसी, भूमिका– पृष्ठ 9, संस्करण– 2003 ।

[3]. महाकवि कालिदास, डॉ. तिवारी, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ– 14।

उन्होंने कालिदास को एक मानते हुए इन्हें ईसा की चतुर्थ शती के उत्तरार्द्ध और पंचम शती के पूर्वार्द्ध के मध्य स्थापित किया था।[1]

उनके तर्कों का हमने भी तटस्थ होकर निरपेक्षभाव से सूक्ष्म अध्ययन किया तो उन्होंने हमें भी अत्यधिक प्रभावित किया। अतः हम यहाँ डॉ. रमाशंकर तिवारी जी के मत से पूर्ण सहमति व्यक्त करते हुए, कुछ तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में नाटककार कालिदास के समय के सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत कर रहे हैं –

(i)नाटककार कालिदास नाट्यशास्त्र के नियमों एवं सिद्धान्तों से पूर्णरूप से परिचित प्रतीत होते हैं, उनके नाटकों में प्रयुक्त नाट्योक्ति, अर्थप्रकृति, अवस्था, अर्थोपक्षेपक एवं सन्धि आदि नाट्य सिद्धान्तों का कुशल प्रयोग इस बात के प्रबल एवं पुष्ट प्रमाण है।[2] विद्वानों ने आचार्य भरत का समय ई.पू. द्वितीय शती निर्धारित किया है। अतः नाटककार कालिदास को आचार्य भरत के पश्चात् ई.पू. प्रथम शती में मानना संगत प्रतीत होता है। यों भी नाटककार के सभी नाटकों में आचार्य भरत का प्रभाव स्पष्टरूप से परिलक्षित होता है तथा उनके दूसरे नाटक में तो उर्वशी को दिए गए शाप के प्रसंग में उनके नाम का उल्लेख भी हुआ है।

(ii) भास के नाटकचक्र में गणपति शास्त्री ने भास को, आचार्य पाणिनि और चाणक्य,इन दोनों से पहले पंचम शताब्दी ई.पू. में स्थित माना है,[3] जबकि आचार्य बलदेव उपाध्याय इन्हें विक्रम पूर्व चतुर्थ शती में स्वीकार करते हैं।[4] महाकवि भास के नाटकों का गहन अध्ययन करने पर प्रतीत होता है कि वे नाट्यशास्त्र से परिचित नहीं

---

[1] . महाकवि कालिदास, डॉ. तिवारी, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ– 14।

[2] . संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ– 270

[3] . भास नाटकचक्र, डॉ. गणपति शास्त्री, भूमिका, पृष्ठ–215 ।

[4] . संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ– 491 ।

हैं। अतः उन्हें आचार्य भरत का समकालिक अथवा पूर्वकालिक स्वीकार करना समीचीन प्रतीत होता है।

इसी आधार पर डॉ. रमाशंकर तिवारी ने भास को नाटककार कालिदास से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व स्थित माना है तथा इसी प्रसंग में उन्होंने डॉ. रामचन्द्र तिवारी के उस मत का सप्रमाण खण्डन भी किया है, जिसके अनुसार भास को कालिदास से मात्र बीस वर्ष बड़ा माना है।[1]

(iii) इस प्रसंग में यह बात भी विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि नाटककार कालिदास ने पारिपार्श्विक द्वारा मालविकाग्निमित्रम् की प्रस्तावना में– 'प्रथितयशसां भास–सौमिल्लक–कविपुत्रादीनां प्रबन्धान् अतिक्रम्य वर्तमान कवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं बहुमानः' इत्यादि कथन कराया है।

इससे इतना तो सुनिश्चित रूप से कहा ही जा सकता है कि उस समय नाटककार कालिदास रंगमंच के उदीयमान नक्षत्र थे तथा तब तक उनकी प्रतिष्ठा 'भास' इत्यादि नाटककारों की तुलना में प्रस्थापित नहीं हुई थी। इस दृष्टि से भास का काल ई.पू. चतुर्थ शती मानना सम्यक् प्रतीत होता है, क्योंकि विद्वानों ने आचार्य भरत को ई.पू. द्वितीय शती में स्थित माना है।[2]

अतः भास और आचार्य भरत के काल–निर्धारण एवं मालविकाग्निमित्रम् के उक्त कथन के परिप्रेक्ष्य में चिन्तन करने पर नाटककार कालिदास को ई.पू. की अत्यन्त समीप अर्थात् प्रथम शती में भास से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पश्चात् स्थित मानना युक्तियुक्त प्रतीत होता है।[3]

---

[1]. नाटककार कालिदास और काव्यकार कालिदास डॉ. रमाशंकर तिवारी, पृष्ठ–18 पर पाद टिप्पणी ।

[2]. धर्मशास्त्र का इतिहास, डॉ. पी.वी. काणे, भाग– 1 ।

[3]. नाटककार कालिदास और काव्यकार कालिदास डॉ. तिवारी, पृष्ठ– 36 ।

(iv) इसके अतिरिक्त नाटककार कालिदास को ई.पू. प्रथम शती में स्थापित करने के पक्ष में कुछ अन्य तर्क भी दिए जा सकते हैं, जो इसप्रकार हैं–

(क) ई.पू. 150 में स्थित शुंगवंशीय राजा पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र को नाटककार कालिदास द्वारा मालविकाग्निमित्रम् का नायक बनाना।

(ख) वैदिक कर्मकाण्ड का समर्थन, वैदिक शब्दावली, अपाणिनीय प्रयोग एवं भाषा शैली नाटककार कालिदास को ई.पू. प्रथम शती में स्थापित करते हैं।[1]

(ग) अभिज्ञान शाकुन्तलम् की सामाजिक एवं आर्थिक दशा नाटककार को बौद्धधर्म से प्रभावित सिद्ध करती हैं, क्योंकि उस समय हिन्दू देवी–देवताओं के सम्बन्ध में श्रद्धाविहीन विचार प्रचलित थे। शाकुन्तलम् की नान्दी में प्रयुक्त 'प्रत्यक्षाभिः' पद इस बात का प्रबल प्रमाण कहा जा सकता है, क्योंकि कवि यहाँ तत्कालीन देवता–विषयक अविश्वास को दूर करने का प्रयास करता हुआ सा प्रतीत होता है।

(घ) दूसरी ओर यह भी सत्य है कि नाटककार कालिदास के समय में वस्तुतः बौद्धधर्म के प्रति अश्रद्धा बढ़ रही थी तथा ब्राह्मणधर्म का अभ्युदय हो रहा था और यह समय ब्राह्मणवंशी शुंग नरेशों के काल के कुछ बाद ही सम्भावित कहा जा सकता है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् के षष्ठ अंक में कर्तव्यकर्म के रूप में यज्ञ–यागादि का विधान ब्राह्मण के लिए आवश्यक बताना[2] तथा हिंसापरक होने पर भी याज्ञिक ब्राह्मणों के हृदय की कोमलता का उल्लेख[3] उक्त कथ्य को पुष्ट करते प्रतीत होते हैं।

(ङ) डॉ. राजबली पाण्डेय, प्रो. आप्टे, प्रो. शारदारंजन राय, प्रो. शेवणेकर, प्रो. के.सी. चट्टोपाध्याय, रायबहादुर चिन्तामणि विनायक

---

1. कालिदास के अपाणिनीय प्रयोग– डॉ. उषा सिंहल, परिमल प्रकाशल, दिल्ली
2. सहजं किल यद्विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम्। शाकु.– 6/1 ।
3. पशुमारण कर्म दारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः। वही– 6/1 ।

वैद्य, सर विलियम जोन्स, डॉ. पीटर्सन, आचार्य एस. राय, प्रो. आई. आर. बालसुब्रह्मण्यम्, डॉ. चन्द्रशेखर पाण्डेय, आचार्य बलदेव उपाध्याय, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी आदि अनेक विद्वानों ने महाकवि कालिदास का समय अनेक तर्क–वितर्क प्रस्तुत करने के पश्चात् ई.पू. प्रथम शताब्दी निर्धारित किया है।[1] उनके तर्कों में से अधिकांश तर्क नाटककार कालिदास पर सम्यक्तया घटित होते हैं।

(च) परम्परा से प्रसिद्ध है कि कालिदास विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे और वे शकारि विक्रमादित्य थे, जिनके नाम का संवत् आज भी भारतवर्ष में चल रहा है। ज्योतिर्विदाभरण में उल्लिखित यह श्लोक कालिदास को विक्रमादित्य की सभा का रत्न सिद्ध करता है,[2] क्योंकि विक्रमोर्वशीय नाटक में पुरुरवा और उर्वशी की प्रेमकथा वर्णित होने पर भी नामकरण 'विक्रम' के आधार पर किया गया है। इस नाटक में कवि ने दो बार[3] श्लिष्ट पद द्वारा 'विक्रम' पद का उल्लेख सोद्देश्य किया है।

(छ) प्रयाग के पास 'भीटा' नामक गाँव की खुदाई में प्राप्त मिट्टी के पदक पर शाकुन्तल नाटक के प्रथम अंक का चित्र झोपड़ी, रथ, चार घोड़े, अस्थिपंजर पुरुष और हरिण आदि अंकित हैं। पुरातत्त्व वेत्ताओं ने इस पदक को शुंगकाल के आसपास का माना है, जो नाटककार कालिदास को ई.पू. प्रथम शती में सिद्ध करता है।[4]

---

1. लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास–जयकृष्ण प्रसाद खण्डेलवाल, पृ.–70।
2. धन्वन्तरि क्षपणकामरसिंह शंकुवेताल भट्टघटखर्परकालिदासाः।
   ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य।
   ज्योतिर्विदाभरण– 22/10 ।
3. (क) दिष्ट्या महेन्द्रोपकारपर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्धते भवान्। प्रथम अंक
   (ख) अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः । प्रथम अंक
4. महाकवि कालिदास, डॉ. प्रभुदयालु अग्निहोत्री, भाग–1, पृष्ठ–11 ।

(ज) अभिज्ञान शाकुन्तलम् के प्राचीन हस्तलेख की प्रस्तावना में– 'रस–भाव–विशेष–दीक्षागुरु–विक्रमादित्य–साहसांकनाम्ना' उल्लि–खित है तथा भरत वाक्य में 'गणशतपरिवर्तैरेवमन्योन्यकृत्यैः' में प्रयुक्त 'गण' पद राजनैतिक अर्थ अभिव्यंजित करता है, जो वस्तुतः ई.पू. प्रथम शती के आसपास के गणराज्य का सूचक है।[1]

(झ) कुषाण नरेश 'कनिष्क' के समकालीन ईस्वी सन् प्रथम शताब्दी के उत्तरार्द्ध में स्थित बौद्ध–कवि अश्वघोष और कालिदास के काव्य में कथानक सृष्टि, वर्णन शैली, अलंकारों एवं छन्दों का अत्यधिक साम्य, वस्तुतः काव्यकार कालिदास पर प्रभाव के परिणाम स्वरूप रहा है, न कि अश्वघोष पर काव्यकार कालिदास के प्रभाव से है।

जबकि विद्वानों ने इसे अश्वघोष पर कालिदास का प्रभाव मानकर काल निर्धारण का प्रयास किया है, जो ठीक नहीं बैठता है और वह ठीक बैठ भी कैसे सकता है? क्योंकि विद्वानों का सायास यही प्रयास तो कालिदास के काल–निर्धारण में सबसे बड़ी बाधा है, क्योंकि हम मान बैठे कि कालिदास जैसा सर्वश्रेष्ठ कवि अश्वघोष जैसे सामान्य बौद्धकवि का अनुकरण भला कैसे कर सकता है?

वस्तुतः कालिदास के काल–निर्धारण में एक बड़ी समस्या विद्वानों द्वारा कालिदास को सर्वोपरि मानकर चलना भी रही है। तदनुसार, कालिदास अन्य कवियों का अनुकरण भला कैसे कर सकते हैं? इसीलिए अश्वघोष पर कालिदास के प्रभाव को सिद्ध करने के प्रयास में विद्वानों द्वारा काव्यकार कालिदास, जो वास्तव में ईसा की चतुर्थ शती के उत्तरार्द्ध एवं पंचम शती के पूर्वार्द्ध में विद्यमान हैं, को ई. पू. में सिद्ध करने का भरसक प्रयास किया गया है।

कुछ ऐसी ही स्थिति आचार्य वात्स्यायन के प्रभाव को लेकर भी बनी हुई है, अधिकांश विद्वानों ने उन्हें तृतीय शताब्दी के मध्य में

---

[1]. मालविकाग्निमित्रम्, व्याख्याकार–डॉ. रमाशंकर पाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी, भूमिका, पृष्ठ–6, 2003 ।

स्थापित किया है और शाकुन्तलम् के प्रणेता कालिदास को गुप्तकाल में स्थित मानते हुए उन्हें आचार्य वात्स्यायन का अनुकर्ता माना है, किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि नाटककार कालिदास ई.पू. प्रथम शती में विद्यमान थे तो फिर वे भला आचार्य वात्स्यायन के अनुकर्ता कैसे हो सकते हैं?

हाँ, जो विद्वान् आचार्य वात्स्यायन को ई.पू. प्रथम शताब्दी में स्वीकार करने के पक्षधर हैं,[1] उनकी मान्यता से सहमति व्यक्त करते हुए निश्चय ही, नाटककार कालिदास पर आचार्य वात्स्यायन का प्रभाव स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु इसे द्राविड व्यायाम की संज्ञा ही दी जाएगी, क्योंकि आचार्य वात्स्यायन का कामसूत्र एक लक्षण ग्रन्थ है और लक्षण ग्रन्थों का निर्माण आधार–ग्रन्थों को लेकर ही किया जाता है। इस दृष्टि से शाकुन्तलम् एवं कामसूत्र के साम्य के आधार पर यदि हम आचार्य वात्स्यायन को नाटककार का अनुकर्ता मान भी लें तो कोई विप्रतिपत्ति प्रतीत नहीं होती है।

इस प्रसंग में उल्लेखनीय एवं महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि कालिदास की सातों कृतियों के पौर्वापर्य के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है और वह हो भी कैसे सकता है, क्योंकि नाटकों में सम्पूर्ण विद्वत्परम्परा अभिज्ञान शाकुन्तलम् को कालिदास की सर्वोत्कृष्ट रचना स्वीकार करती है और महाकाव्यों में रघुवंश को शीर्ष पर स्थापित करते हुए उनकी अन्तिम कृति मानती है।

किन्तु इन दोनों काव्यों की शैली की उत्त्कृष्टता एवं काव्य–चेतना की गम्भीरता दोनों ही दृष्टियों से इनका पौर्वापर्य सिद्ध ही नहीं होता है, क्योंकि शाकुन्तलम् की भावभूमि एवं रघुवंश की काव्य दृष्टि दोनों में जमीन आसमान का अन्तर रहा है। अतः इस दृष्टि से भी इन दोनों महाकवियों को भिन्न व्यक्तित्व वाला मानकर ही इनके काव्यों में

---

1. कालिदास : एक अनुशीलन, श्री देवदत्त शास्त्री, पृष्ठ– 50 ।

पौर्वापर्य सहज ही निर्धारित किया जा सकता है, जैसा कि हमने प्रस्तुत विवेचन में निर्धारण करने का विनम्र प्रयास किया है।

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर नाटककार कालिदास का स्थितिकाल ई. पू. प्रथम शती में स्थापित करने में हमें लेशमात्र भी संकोच की अनुभूति नहीं होती है, क्योंकि हमने यहाँ केवल विद्वानों द्वारा प्रतिपादित मत को मात्र नाटककार कालिदास के रूप में भिन्न रखने का प्रयासमात्र किया है। सम्भवतः इस मान्यता से अन्य अनेक कवियों, महाकवियों के परस्पर प्रभाव एवं उपजीव्यता आदि ऐतिहासिक दृष्टि को भी सम्बल प्राप्त हो सकेगा और शोध की नई सरणि का द्वार उद्‌घाटित होगा।

विद्वानों की मान्यता है कि विक्रमादित्य उज्जयिनी के सम्राट् थे, उन्होंने शकों को हराकर अपनी विजय के उपलक्ष्य में 57 ई. पू. में विक्रम संवत् का प्रारम्भ किया था, जो वर्तमान में भी विद्यमान है। सोमदेव के कथासरित्सागर में उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य का उल्लेख हुआ है। यह ग्रन्थ गुणाढ्‌यकृत बृहत्कथा पर आधारित है, गुणाढ्‌य का समय 78 ई. के लगभग माना गया है।

कथासरित्सागर के अनुसार– ये विक्रमादित्य परमारवंशी उज्जयिनी नरेश महेन्द्रादित्य के पुत्र थे। इन्होंने शकों एवं मलेच्छों का समूल उच्छेदन करके वैदिकधर्म का उद्धार किया था। कथासरित्सागर में विक्रमादित्य के राज्याभिषेक का विस्तार से वर्णन उपलब्ध होता है।[1] उल्लेखनीय है कि ये विक्रमादित्य स्वयं काव्य मर्मज्ञ थे तथा कवियों एवं कलाकारों के आश्रयदाता रहे। अभिज्ञान शाकुन्तलम् आदि तीनों नाट्‌यकृतियों के मंगलाचरण में नाटककार द्वारा की गई शिवस्तुति इन्हें शैव राजाओं का आश्रित सिद्ध करती है। अतः सिद्ध होता है कि ये विक्रमादित्य वैष्णव न होकर शैव रहे होंगे।

---

1 . कथासरित्सागर– 28 / 59–61 ।

विद्वत्सम्मति के अनुसार– उज्जयिनी के राजा महेन्द्रादित्य के पुत्र परमारवंशी विक्रमादित्य ही मूल विक्रमादित्य हैं, इन्हीं के शासन काल में नाटककार का आविर्भाव हुआ। इसकी पुष्टि कालिदास के अन्तरंग प्रमाणों से भी होती है। विक्रमोर्वशीयम् में नाटककार ने नायक पुरुरवा के स्थान पर 'विक्रम' नाम का प्रयोग इन्हीं विक्रमादित्य के स्मरण के लिए किया है। साथ ही, उनके पिता महेन्द्रादित्य की स्मृति में नाटककार ने 'इन्द्र' शब्द के पर्यायवाची शब्द 'महेन्द्र' का भी बार–बार प्रयोग किया है। इस प्रसंग में उल्लेखनीय यह भी है कि इस नाटक के प्रथम अंक में ही 'महेन्द्र' शब्द का छः बार[1] प्रयोग हुआ है।

कहने का अभिप्राय यही है कि नाटककार ने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति शाकुन्तलम् में जिस 'विक्रमादित्य' का उल्लेख किया है,[2] वे वस्तुतः ई. पू. प्रथम शती में स्थित शकारि विक्रमादित्य ही प्रतीत होते हैं, जिनके आश्रय में रहकर नाटककार ने अपना अन्तिम समय व्यतीत किया और शाकुन्तलम् जैसी उत्कृष्ट नाट्यकृति की संरचना की एवं इसका मंचन भी उनकी ही विद्वत्परिषद् के समक्ष किया गया।

(ज) **नाटककार कालिदास की कृतियाँ**– हमारी मान्यता के अनुसार नाटककार कालिदास ने केवल तीन ही नाट्यकृतियों की संरचना की, जिनका यहाँ संक्षिप्त परिचय इनके पौर्वापर्य क्रम के अनुसार ही प्रस्तुत किया जा रहा है–

---

[1] .i) सुकुमारं प्रहरणं महेन्द्रस्य ....। विक्रमोर्वशीयम्–1/4 के बाद।
ii) उपस्थितसंपराया महेन्द्रोऽपि....। विक्रमोर्वशीयम्– 1/5 के बाद।
iii) किं प्रभावदर्शिना महेन्द्रेणाभ्युपन्नास्मि। विक्रमोर्वशीयम्– 1/9 के बाद।
iv) महेन्द्रसदृशानुभावेन राजर्षिणा पुरुरवसा। विक्रमोर्वशीयम्–1/9 के बाद।
v) दिष्ट्या महेन्द्रोपकारपर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्धते भवान्। विक्रमो–र्वशीयम्– 1/15 के बाद।
vi) अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः। विक्रमोर्वशीयम्– 1/17 के बाद।

[2]. आर्ये! इयं हि रसभावविशेषदीक्षागुरोर्विक्रमादित्यस्याभिरूपभूयिष्ठा परिषत्। शाकु.– 1/2 के पूर्व।

(i) **मालविकाग्निमित्रम्**—पाँच अंकों में निबद्ध इस कृति में मालविका और अग्निमित्र की प्रणय–कथा को निबद्ध किया गया है। शुंगवंशीय अग्निमित्र यहाँ ऐतिहासिक पात्र है और विदर्भ देश के राजा की पुत्री अनिन्द्य सुन्दरी मालविका, अपनी विपरीत परिस्थितियों में राजा अग्निमित्र के अन्तःपुर में दासीरूप में निवास करती है, जिसके चित्र का दर्शन करके राजा उसके सौन्दर्य पर आसक्त हो जाता है और विदूषक के साथ मिलकर नाट्यकला के प्रदर्शन के बहाने उसका दर्शन करता है एवं उसे प्रेम करने लगता है, जिससे परिचित महारानी धारिणी मालविका से ईर्ष्या करती है।

जबकि विदूषक का सहयोग लेकर राजा अनेक बार अपनी प्रेमिका मालविका से मिलने का प्रयास करता है, किन्तु धारिणी अपनी दासी के साथ मिलकर इस कार्य में बार–बार विघ्न उपस्थित करती है। नाटक के अन्त में विदर्भ से आयी दो सेविकाओं द्वारा मालविका का वास्तविक परिचय प्राप्त होने पर, महारानी धारिणी स्वयं ही राजा के साथ उसका विवाह सम्पन्न कराती है।

(ii) **विक्रमोर्वशीयम्**– रचनाक्रम की दृष्टि से यह नाटककार का दूसरा नाटक है। पाँच अंकों में विभक्त 'त्रोटक' नामक उपरूपक भेद वाले इसमें वैदिक आख्यान के आधार पर पुरुरवा एवं उर्वशी के प्रणय–व्यापार को कथारूप में प्रस्तुत किया गया है। आरम्भ में पुरुरवा 'केशी' नामक दैत्य के चंगुल से नायिका उर्वशी को छुड़ाता है और इन दोनों में परस्पर प्रेम हो जाता है।

इसके बाद नाट्य के प्रस्तुतीकरण में प्रमाद के कारण भरत मुनि द्वारा उर्वशी को मृत्युलोक में निवास का शाप दिया जाता है, जो बाद में इन्द्र की कृपा से पुत्र–दर्शन पर्यन्त सीमित हो जाता है। मृत्युलोक में विरही पुरुरवा एवं उर्वशी का मिलन होता है तथा घूमते हुए दोनों कार्तिकेय द्वारा रक्षा किए गए उपवन में प्रवेश करते हैं और कार्तिकेय के नियमानुसार उर्वशी लतारूप में परिणत हो जाती है।

उर्वशी के विरह से व्याकुल पुरुरवा पागलों के समान प्रलाप करता हुआ, उसे सर्वत्र ढूँढ़ता है। ध्यातव्य है कि यहाँ पर चतुर्थ अंक में पुरुरवा द्वारा किया गया कारुणिक विलाप महाकवि के स्वयं के जीवन की घटना प्रतीत होता है, जिससे हमारे विवेच्य मेघदूत का कर्ता भी प्रभावित रहा है। अन्य साम्य के लिए महाभारत के दमयन्ती आख्यान में निबद्ध दमयन्ती विलाप भी इस दृष्टि से देखा जा सकता है।[1] बाद में, संगमनीय मणि के प्रभाव से उर्वशी फिर से स्त्रीरुप को प्राप्त हो जाती है तथा दोनों राजधानी लौट आते हैं।

कुछ दिनों के बाद, एक तापसी उनके पुत्र आयुष् को लेकर पुरुरवा के पास राजसभा में आती है, जिसे देखकर उर्वशी, भरतमुनि के शाप का उल्लेख करते हुए, पुत्र के मुख–दर्शन के कारण स्वयं के स्वर्ग जाने की इच्छा व्यक्त करती है, जिसे सुनकर पुरुरवा भी पुत्र का राज्याभिषेक करके वन जाने के लिए उद्यत हो जाता है। तभी देवर्षि नारद आकर इन्द्र का संदेश सुनाते हैं कि–'प्रसन्न इन्द्र ने उर्वशी को पुरुरवा की सहधर्मिणी होकर आजीवन पृथ्वी पर रहने की अनुमति प्रदान कर दी है।' इसी सूचना के साथ नाटक का सुखान्त हो जाता है।

(iii) **अभिज्ञानशाकुन्तलम्**– यह वस्तुतः नाटककार कालिदास की अन्तिम और सर्वोत्कृष्ट कृति है। सात अंकों में निबद्ध इसमें राजा दुष्यन्त और महर्षि कण्व की पालिता पुत्री शकुन्तला के प्रेम, वियोग तथा पुनर्मिलन के वृत्तान्त को प्रस्तुत किया गया है। इसका मूल कथानक महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान से लिया गया है, किन्तु अपनी नवनवोन्मेषिणी प्रतिभा से नाटककार ने महाभारत की नीरस कथा में अनेक नूतन परिकल्पनाएँ की हैं।

---

1 . द्रष्टव्य लेखक का डी.लिट् का शोधप्रबन्ध महाभारतकार एवं महाकवि कालिदास की काव्यकला, प्रकाशक– हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2012।

नाटक के आरम्भ में दुष्यन्त आखेट करते हुए कण्व आश्रम में प्रवेश करता है, जहाँ पर उसका शकुन्तला के साथ मिलन होता है तथा ऋषियों की प्रार्थना पर वह आश्रम की रक्षा के लिए वहीं पर रुक जाता है। इसी क्रम में विदूषक के माध्यम से उसे,अपने प्रति शकुन्तला के प्रेम की सूचना मिलती है। तत्पश्चात् इन दोनों का समागम के साथ गान्धर्व विवाह हो जाता है। चतुर्थ अंक में तीर्थयात्रा से लौटे हुए कण्व द्वारा आपन्नसत्त्वा शकुन्तला को गौतमी एवं अपने दो शिष्यों के साथ हस्तिनापुर भेज दिया जाता है। शकुन्तला की विदाई का दृश्य यहाँ पर अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है। इसी आधार पर विद्वानों ने 'कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम्' कहकर इसका अभिनन्दन भी किया है।

हस्तिनापुर पहुँचने पर दुर्वासा के शाप के कारण दुष्यन्त, शकुन्तला को पहचानने से मना कर देता है और इसी बीच विलाप करती हुई एक स्त्री–आकृति शकुन्तला को उठाकर आकाश मार्ग से ले जाती है। उसके बाद षष्ठ अंक में मछुआरे के माध्यम से राजा अपने नाम की अँगूठी मिलने पर शकुन्तला विषयक सम्पूर्ण घटना को स्मरण कर लेता है और रात–दिन अपनी प्रियतमा के विरह में व्याकुल रहता है। अन्त में, इन्द्र की सहायता के लिए वह स्वर्गलोक में जाता है तथा वहाँ से लौटते हुए महर्षि मारीच के आश्रम में अपने पुत्र भरत तथा शकुन्तला से मिलता है। महर्षि मारीच के आशीर्वाद के साथ नाटक का सुखान्त हो जाता है।

(झ) **काव्यकार कालिदास का जीवन–परिचय–** काव्यकार कालिदास अथवा नाटककार कालिदास दोनों ने ही अपने जीवन के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं किया है, किन्तु उनके काव्यों के आधार पर विद्वानों ने उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में पर्याप्त सूचनाएँ उद्घाटित करने का प्रयास किया है, जिसका हम यहाँ संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं–

सर्वप्रथम तो उल्लेखनीय है कि किंवदन्ती के आधार पर प्रचलित विद्योत्तमा वृत्तान्त वस्तुतः काव्यकार कालिदास के विषय में सटीक प्रतीत होता है। राजा शारदानन्द की विद्योत्तमा नामक कन्या थी, उसे अपने वैदुष्य का अत्यधिक अहंकार था, जिसके कारण उसने अपने विवाह की एक शर्त रखी। तदनुसार– 'जो भी मुझे शास्त्रार्थ में पराजित कर देगा, वह उसी के साथ विवाह करेगी।'

अपनी इसी शर्त के आधार पर उसने अनेक विद्वानों को अपमानित करके महल से निकलवा दिया। अन्त में, कुछ विद्वानों ने मिलकर उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचते हुए एक महामूर्ख के साथ उसके विवाह की योजना बनायी और ऐसे व्यक्ति को खोज लिया, जो जिस डाल पर बैठा हुआ था, उसी को काट रहा था और उसे राजकुमारी के साथ विवाह कराने का लालच देकर न बोलने के लिए तैयार कर लिया।

इसके बाद राजकुमारी के समक्ष जाकर उसे अपना गुरु बताते हुए कहा कि हमारे गुरु आपसे शास्त्रार्थ करना चाहते हैं, किन्तु ये बोलते नहीं हैं, इसलिए शास्त्रार्थ संकेतों में ही होगा। शर्त निर्धारित होने के बाद शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ और राजकुमारी विद्योत्तमा ने ईश्वर एक है, इस अभिप्राय एक अँगुली ऊपर की, जिसका अभिप्राय उस मूर्ख ने अपनी एक आँख फोड़ने से ग्रहण किया और अपनी दो अँगुलियाँ उसकी ओर कर दीं।

इसप्रकार उन पण्डितों ने कुतर्कों का सहारा लेकर उस मूर्ख को विजयश्री दिला दी और शर्त के अनुसार विद्योत्तमा का विवाह उसके साथ करा दिया। बाद में, जब उसे, उस व्यक्ति की मूर्खता का पता लगा, तो उसे अपमानित करके घर से बाहर निकाल दिया। पत्नी द्वारा किए गए अपमान से दुःखी उस व्यक्ति ने काली के मन्दिर में जाकर अपनी जिह्वा को उनके चरणों में चढ़ा दिया, तब माँ काली ने प्रसन्न होकर उसे काव्यात्मक वैदुष्य का वरदान प्रदान किया।

उसके बाद घर आकर उसने अपनी पत्नी विद्योत्तमा से कहा– 'अनावृत्तं कपाटं द्वारं देहि।' विद्योत्तमा ने आश्चर्य के साथ उससे पूछा– 'अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः?' इसप्रकार पत्नी के वाक्य के प्रत्येक पद से आरम्भ करते हुए उसने क्रमशः तीन काव्यों **कुमारसम्भव** (अस्ति पद से), **मेघदूत** (कश्चित् पद से) एवं **रघुवंश** (वाग् पद से) की संरचना की और कालिदास के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की।

किंवदन्ती के अनुसार– इनकी मृत्यु वेश्या के हाथों हुई, क्योंकि अपनी पत्नी के तिरस्कार के कारण वैदुष्य प्राप्त होने से ये उसे गुरु के समान पूजने लगे, तब उसने दुःखी होकर, इन्हें स्त्री के हाथों मृत्यु होने का शाप प्रदान किया। एक बार कालिदास अपने मित्र राजा कुमारदास (500ई.) से मिलने के लिए श्रीलंका गए और वहाँ पर वेश्या के घर की दीवार पर 'कमले कमलोत्पत्ति श्रूयते, न तु दृश्यते' इत्यादि वाक्य लिखा हुआ देखा, तो उन्होंने इसकी दूसरी पंक्ति 'बाले! तव मुखाम्भोजे कथमिन्दीवरद्वयम्' लिखकर श्लोक की पूर्ति कर दी।

राजा ने इसकी पूर्ति करने के लिए एक लाख स्वर्णमुद्रा प्रदान करने की घोषणा की थी। इसलिए स्वर्ण मुद्राओं के लालच में वेश्या ने कालिदास की हत्या करवा दी। इस घटना की जानकारी जब राजा को हुई तो उसने कालिदास की ही चिता पर अपने भी प्राण त्याग दिए। यद्यपि कुछ विद्वानों ने इस किंवदन्ती को निःसार बताया है, किन्तु हमारे विचार से इसे पूरी तरह निरर्थक नहीं कहा जा सकता है, इसमें सार को ग्रहण करने की आवश्यकता है, जिसके आधार पर हम अपने विवेच्य गुप्तकाल में स्थित काव्यकार कालिदास को ई.पू. प्रथम शती में विद्यमान नाटककार कालिदास से भिन्न तो मान ही सकते हैं।

इसके अतिरिक्त काव्यकार कालिदास नागरक संस्कृति से प्रभावित थे। यही कारण है कि इनकी सभी रचनाओं में शृंगार के प्रति विशेष अभिरुचि अभिलक्षित होती है। इसके अतिरिक्त अपने व्यक्तित्व के विकास हेतु उन्होंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण भी किया, तभी तो

उन्होंने हिमालय के देवदारु, कश्मीर के केसर, सिन्धु के पुलिन, ताम्रपर्णी के मौक्तिक क्षेत्र एवं हमारे विवेच्य मेघदूत में नदी व पर्वतों का सुरम्य तथा स्वाभाविक वर्णन किया है।[1]

कालिदास स्वभाव से अत्यन्त विनम्र थे, जिसे हम उनके काव्यों में पद–पद पर अनुभव कर सकते हैं। यक्ष की मेघ के प्रति विनम्रता दर्शनीय रही है तो रघुवंश में कवि की स्वयं की उक्ति उनके इस गुण को भलीप्रकार प्रदर्शित करती है।[2] इसीप्रकार उनके द्वारा प्रयुक्त सूक्तियों से भी उनकी चारित्रिक विशेषताओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है, जिससे उनकी वाणी में माधुर्य के कारण मित्र बनाने की दक्षता[3] भी परिलक्षित होती है। वे स्त्री, बालक एवं वृद्ध सभी के गुणों का आदर करते थे[4] तथा स्वभाव से अत्यधिक उदार थे, यही कारण है कि वे संग्रह का श्रेष्ठ उपयोग किसी की भलाई और उपकार के कार्यों में मानने के प्रबल पक्षधर थे।[5]

उनके इसी स्वभाव के कारण रघु तथा कौत्स जैसे पात्रों की निर्मिति हुई[6], नीच व्यक्ति से याचना करना उनके स्वभाव के विपरीत था[7], उनका ग्राम्यजीवन के साथ भी सम्पर्क था[8], उनके उपमानों से भी इस कथ्य की पुष्टि होती है। उनका राजनैतिक दृष्टिकोण भी समुन्नत था। वे साम, दाम, दण्ड और भेद के समन्वित उपयोगिता के समर्थक थे। वर्णाश्रम व्यवस्था में उनकी दृढ़ आस्था थी[9], विस्तार भय से हम

---

[1]. कालिदास, मिराशी, पृष्ठ–102 ।

[2]. रघुवशम्– 8/6, 10/71, 80, 83, 11/89 ।

[3]. कुमारसम्भवम्– 2/58 । रघुवंशम्– 2/58 । मेघदूतम्– सम्पूर्ण।

[4]. कुमारसम्भवम्– 5/19, 6/12, रघुवंशम्– 3/62 ।

[5]. रघुवंशम्– 1/7, 18, 53, 4/46 ।

[6]. कुमारसम्भवम्– 5/50 ।

[7]. मेघदूतम्– 1/6 ।

[8]. रघुवंशम्–12/5, मेघदूतम्– 1/24।

[9]. रघुवंशम्– 17 वाँ सर्ग।

इसके विषय में अपनी नूतन कृति काव्यकार कालिदास में उल्लेख करेंगे, किन्तु संक्षेप मे यहाँ केवल इतना ही कहना ही पर्याप्त होगा कि काव्यकार कालिदास एक आदर्श व्यक्तित्व के धनी थे।

(ञ) **काव्यकार कालिदास का जन्मस्थान–** कालिदास के जन्म स्थान के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है, क्योंकि उनकी अद्भुत प्रतिभा के कारण काश्मीरी विद्वान् उन्हें अपने क्षेत्र का, तो बंगाली उन्हें बंगाल का, अन्य विद्वान् उन्हें उज्जयिनी आदि स्थानों का सिद्ध करने का प्रयास करते हैं, जिनके विषय में हम यहाँ अत्यन्त संक्षेप में चिन्तन प्रस्तुत कर रहे हैं–

कालिदास के नाम को आधार बनाकर तथा काली देवी की किंवदन्ती के आधार पर कुछ विद्वानों ने कालिदास को बंगाली सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, जो उचित प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि यदि वे बंगाल के निवासी होते तो निश्चय ही काली के भक्त होते, किन्तु उन्होंने कुमारसम्भव में एक स्थल[1] को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी काली का स्तवन नहीं किया है और न ही हमारे विवेच्य मेघदूत में भी इसके विषय में कहीं चर्चा की है। इसलिए इन महाकवि को बंगाली सिद्ध करने का प्रयास वस्तुतः निःसार प्रतीत होता है।

इसीप्रकार हिमालय के प्रति विशेष आकर्षण[2] के कारण काश्मीरी विद्वानों ने इन्हें काश्मीरी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। उनके विचार में कुमारसम्भव के आरम्भ में हिमालय का विस्तार से वर्णन, हिमालय पर स्थित वसिष्ठ आश्रम तथा रघुवंश द्वितीय सर्ग में गाय पर सिंह का आक्रमण, उत्तरमेघ में हिमालय की शोभा की चर्चा आदि सभी स्थलों के कश्मीर में होने के कारण, इन्हें कश्मीर निवासी मानना उपयुक्त है, किन्तु हमारे विचार में यह मत भी समीचीन प्रतीत नहीं होता है। वस्तुतः यायावरीय वृत्ति के होने के कारण उन्होंने भारत

---

1. कुमार सम्भवम्– 7/39 ।
2. कुमार सम्भवम्– हिमालय वर्णन, सर्ग–1 एवं मेघदूतम्–कनखल के बाद ।

वर्ष के अधिकाँश भागों का अत्यन्त स्वाभाविक एवं विस्तार से वर्णन किया है। इसलिए इस आधार पर उन्हें उन–उन स्थलों का निवासी स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

दूसरी और महत्त्वपूर्ण बात यदि वे कश्मीर प्रदेश के निवासी होते तो काश्मीरी इतिहासकार कल्हण अपनी राजतरंगिणी में इनका वर्णन अवश्य करते, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया है। साथ ही, इनका नाम अन्य काश्मीरी विद्वानों के समान रुद्रट, रुय्यक, कैयट, मम्मट, कल्हण, विल्हण आदि के समान ही होता, जो नहीं है। इसलिए हमारे विवेच्य काव्यकार कालिदास को कश्मीर निवासी मानने का औचित्य भी पूरी तरह संदिग्ध है।

कुछ विद्वान् महाकवि की जन्मभूमि दशार्ण प्रदेश को मानने के पक्षधर हैं, तो इतिहासकार चन्द्रबली पाण्डेय ने इन्हें उज्जयिनी के समीप में स्थित 'आम्रकूट' नामक स्थान को इनका जन्मस्थल मानने के विषय में अपनी मान्यता प्रदर्शित की है। इसीप्रकार हरप्रसाद शास्त्री ने मेघदूत में वर्णित विदिशा के आधार पर उज्जयिनी और विदिशा के बीच में स्थित 'मन्दसौर' को महाकवि कालिदास की जन्मभूमि स्वीकार किया है। इतिहासकार विसेंट स्मिथ भी इस मत से सहमत रहे हैं।

किन्तु हमारे मत में, प्रस्तुत विवेच्य ग्रन्थ में महाकवि का उज्जयिनी के प्रति विशेष आग्रह एवं गहन पक्षपात परिलक्षित होता है, क्योंकि मार्ग में उज्जयिनी न पड़ने तथा उसके तिरछा होने पर[1] भी यक्ष ने, मेघ से उज्जयिनी जाने का अत्यधिक आग्रह किया है तथा उज्जयिनी वर्णन में यहाँ पर कुल बारह श्लोकों का नियोजन भी किया गया है।[2] साथ ही, यहाँ तो उज्जयिनी के ऐश्वर्य का सूक्ष्म एवं विस्तार

---

[1]. वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां।
सौधोत्संगप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः।। मेघदूतम्– 1/29।

[2]. मेघदूतम्– 1/31–42 ।

से वर्णन करते हुए उन्होंने इसे स्वर्ग का एक खण्ड तक कह दिया है–

स्वल्पीभूते सुचिरतफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम्।।[1]

क्योंकि यहाँ के तो वृद्ध लोग भी उदयन की कथाओं का गुणगान करते रहते हैं। यहाँ पर स्थित शिप्रा नदी एवं महाकाल मन्दिर का जिस भावुकता के साथ वर्णन किया गया है, इन सबसे महाकवि का जन्मस्थान उज्जयिनी को स्वीकार करने में किसी प्रकार की कोई विप्रतिपत्ति प्रतीत नहीं होती है, क्योंकि किसी भी स्थान से विशेष लगाव रखने वाला व्यक्ति ही वहाँ पर स्थित उपादानों का वर्णन इतनी गरिमा तथा गहनता से कर सकता है।

(ट) **काव्यकार कालिदास का स्थिति–काल–** इस विषय में हम पूर्व में विस्तार से चर्चा करते हुए, नाटककार कालिदास से इनकी भिन्नता का विस्तार से प्रतिपादन करके उन्हें ई.पू. प्रथम शती में निर्धारित कर चुके हैं, किन्तु फिर भी इन्हें गुप्तकाल में स्थित मानते हुए कुछ तथ्य प्रस्तुत कर रहे हैं–

- कालिदास ने जिस सुख–समृद्धि एवं वैभव का अपने काव्यों में वर्णन किया है, वह सम्पूर्णरूप से गुप्तकाल के राजाओं के समय में विद्यमान था। इसी समय के राजाओं ने संस्कृत के कवियों को राज्याश्रय प्रदान किया, जिससे संस्कृत भाषा का पूर्णरूप से विकास एवं पुनरुत्थान हुआ। विद्वन्मान्यता के अनुसार ई.पू. प्रथम शती तथा गुप्तकाल के मध्य संस्कृत रचनाएँ नहीं हुईं। इस आधार पर काव्यकार का समय गुप्तकाल मानना उचित प्रतीत होता है।

- जैसा कि हम पूर्व में भी संकेत कर चुके हैं कि काव्यकार ने कुमारसम्भव महाकाव्य की रचना चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमार

---

1 . पूर्वमेघ–32 ।

गुप्त के जन्म के उपलक्ष्य में की गयी[1]। इस आधार पर काव्यकार को गुप्तकाल में मानना संगत प्रतीत होता है।

• रघुवंश महाकाव्य में 'गुप्' धातु एवं 'चन्द्र' पद का बार–बार प्रयोग[2] गुप्त राजाओं को लक्षित करके ही किया गया है। इसलिए काव्यकार का गुप्तकाल में विद्यमान होना सिद्ध होता है।

• इसके अलावा समुद्रगुप्त एवं रघु की दिग्विजयों में साम्य भी हमारे विवेच्य काव्यकार को गुप्तकाल में मानने के लिए बाध्य करते हैं, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति के आधार पर महाकवि ने रघु के दिग्विजय का वर्णन किया होगा। वस्तुतः इन दोनों के वर्णनों में पर्याप्त समानता दृष्टिगोचर होती है।

• कालिदास ने रघुवंश में हूणों का उल्लेख किया है और उनका निवास सिन्धु नदी के आसपास स्वीकार किया है।[3] हूणों के भारत आने से पहले रघु ने उन्हें ऑक्सस नदी के किनारे परास्त किया था, यह घटना वस्तुतः कुमारगुप्त के शासनकाल में घटित हुई थी, जिसका उल्लेख गिरिनार के अभिलेख (455–456ई.) में भी किया गया है। इसलिए काव्यकार को कुमारगुप्त एवं समुद्रगुप्त इन दोनों के काल में ही मानना संगत प्रतीत होता है।

• कालिदास एवं अश्वघोष के काव्यों में भाव एवं भाषा का साम्य[4] भी हमारे विवेच्य काव्यकार को अश्वघोष का परवर्ती मानने के

---

1. (क) स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः। रघुवंशम्–3/4 ।
(ख) यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा। वही– 4/12 ।

2. रघुवंश– 1/21, 55, 2/3, 24, 4/20, 26 ।

3. रघुवंशम्– 4/67–68 ।

4. (क) बुद्धचरित– 1/41 । कुमार.– 11/37 । रघुवंशम्– 3/14।
(ख) बुद्धचरित– 3/19 । कुमारसम्भवम्– 7/62 । रघुवंशम्– 7/11 ।
(ग) बुद्धचरित– 13/57 । रघुवंशम्– 2/34 ।
(घ) सौन्दरनन्द– 4/42 । कुमारसम्भवम्– 5/85 ।
(ङ) बुद्धचरित– 10/4 । रघुवंशम्– 2/47 ।
(च) बुद्धचरित– 11/43 । मेघदूत–उत्तरमेघ–49 । आदि

लिए बाध्य करता है, क्योंकि अश्वघोष सम्राट् कनिष्क (78 ई.) के आश्रित कवि थे। ऐसा मानने से ही कालिदास की काल–निर्धारण विषयक गुत्थी सुलझती हुई प्रतीत होती है।

• इसके अलावा काव्यकार ने मेघदूत (1/14) में निचुल तथा दिङ्नाग का उल्लेख किया है, ये दोनों कवि वस्तुतः मेघदूत के प्रणेता कालिदास के ही सहपाठी और विरोधी थे। इसलिए यक्ष ने प्रकारान्तर से इन दोनों के नाम का कथन किया है, मेघदूत के प्रसिद्ध टीकाकार आचार्य मल्लिनाथ ने भी इस विचार से अपनी सहमति व्यक्त की है।[1]

• ज्योतिष के मीन, मेष आदि राशियों के नाम तथा जामित्र[2] आदि शब्दों के प्रयोग की दृष्टि से प्रसिद्ध ज्योतिष शास्त्री वराहमिहिर (505–587 ई.) के ग्रन्थों के साथ काव्यकार के ग्रन्थों की समानता को भी विद्वानों द्वारा संकेतित किया गया है। मान्यता है कि इन शब्दों का प्रयोग सर्वप्रथम आर्यभट्ट (476 ई.) ने किया था। 'जामित्र' लग्न कुण्डली में सातवाँ स्थान वस्तुतः स्त्री के विचार का माना जाता है।[3] इसके अलावा काव्यकार ने अत्यधिक यश प्रदान करने वाले ग्रहों की स्थिति का भी उल्लेख किया है, क्योंकि रघु के जन्म के समय पाँच ग्रह अपनी उच्च स्थिति में विराजमान थे–

ग्रहैस्ततः पंचभिरुच्चसंश्रयैः। रघुवंशम्–3/13 ।

• इस क्रम में महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि वराहमिहिर ने वर्षाऋतु का आरम्भ आषाढ़ मास से स्वीकार किया है, जिसे हमारे विवेच्य मेघदूत में भी काव्यकार ने ज्यों का त्यों माना है।[4]

• वराहमिहिर ने अपनी बृहत्संहिता के राहुचार में चन्द्रग्रहण का कारण, पृथ्वी की छाया का चन्द्र के ऊपर पड़ना बताया है,[1] इसी विषय को हमारे विवेच्य काव्यकार ने भी इसीरूप में स्वीकार किया है–

---

1. द्रष्टव्य, मेघदूत 1/14 श्लोक पर मल्लिनाथ टीका।
2. तिथौ च जामित्रगुणान्विताम्। कुमारसम्भवम्– 7/1 ।
3. जामित्रं लग्नात् सप्तमं स्थानम्। बृहत्संहिता, वराहमिहिर
4. आषाढ़स्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुम्। 1/2 ।

छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः।[2]

इसीप्रकार रघुवंश में ही चन्द्रमा के सूर्य की किरणों से प्रकाशित होने की बात का भी कथन किया गया है,[3] जिसकी पुष्टि वराहमिहिर की बृहत्संहिता में प्रतिपादित चन्द्रचार से होती है–

सलिलमये शशिनि स्वेर्दीधितयो मूर्छितास्ममो नैशम्।

उक्त आधारों पर काव्यकार कालिदास को वराहमिहिर का समकालीन अर्थात् गुप्तकाल में स्थित मानना न्यायसंगत प्रतीत होता है।

(ठ) **काव्यकार कालिदास का कृतित्व–** जैसा कि हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं कि गुप्तकाल में स्थित काव्यकार ने प्रमुखरूप से तीन ही कृतियों का प्रणयन किया, जिनके विषय में हम यहाँ कालक्रम की दृष्टि से संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं–

(i) **कुमारसम्भवम्–** कुल सत्रह सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य को वर्णनशैली की दृष्टि से काव्यकार कालिदास की प्रथम कृति स्वीकार किया जा सकता है। यद्यपि कुछ विद्वान् इनमें आरम्भिक आठ सर्गों को ही कालिदास विरचित स्वीकार करते हैं। इसका मुख्य कारण अलंकारशास्त्रीय ग्रन्थों में इन्हीं सर्गों तक के उद्धरणों को प्रस्तुत करना रहा है। इसके अतिरिक्त आचार्य मल्लिनाथ ने भी इतने सर्गों तक ही संजीवनी टीका का प्रणयन किया है। इतने ही अंश में शिव–पार्वती के पुत्र 'कुमार कार्तिकेय' के जन्म तथा उनके सेनापतित्व में तारकासुर का वध वर्णित हुआ है।

इसी महाकाव्य का अष्टम सर्ग शिव–पार्वती के रति–वर्णन के कारण विद्वानों की आलोचना का विषय रहा है। इसके पंचम सर्ग में शिव को पतिरूप में प्राप्त करने के लिए पार्वती के कठोर तप का

---

1. भूच्छाया स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः।। बृहत्संहिता, राहुचार।
2. रघुवंशम्– 14/40 ।
3. पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः। रघुवंशम्– 3/22 ।

वर्णन अत्यधिक प्रभावी बन पड़ा है। इसीप्रकार तृतीय सर्ग में महादेव की समाधि का वर्णन भी ओजस्विता एवं उदात्तता लिए हुए है।

(ii) **मेघदूतम्–** इस काव्य में कवि ने अत्यन्त संक्षिप्त कथा वस्तु को ग्रहण किया है। तदनुसार यक्षों के राजा कुबेर ने एक सद्य–प्रणीत यक्ष को जिस कार्य में नियोजित किया था, अपनी प्रिया के प्रेम में आकण्ठ डूबने के कारण, उसने उस कार्य की उपेक्षा कर दी। परिणामस्वरूप क्रुद्ध होकर राजा ने उसे एक वर्ष पर्यन्त उसी प्रियतमा से दूर रहने का शाप दे दिया, जिसका पालन करने के लिए वह यक्ष रामगिरि के आश्रमों में निवास करने लगा, जहाँ श्रीराम ने सीता के साथ अपना वनवास व्यतीत किया था।

अपनी प्रियतमा की याद में व्याकुल हुआ वह, इन आश्रमों में एक स्थान पर न ठहरकर किंकर्तव्यविमूढ़ हुआ, इधर–उधर घूमता रहता था, प्रिया के वियोग में उसका शरीर अत्यधिक दुर्बल हो गया था, जिसके कारण हाथ में पहना हुआ उसका सोने क़ा कंगन भी न जाने कब और कहाँ गिर गया? इसका उसे पता ही नहीं लगा। इसप्रकार भटकते हुए लगभग आठ माह व्यतीत होने पर वर्षा ऋतु का आगमन हुआ और आषाढ़ मास के पहले दिन ही उसे एक मेघ दिखायी दिया, रामगिरि का आलिंगन करते हुए, जो ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो वप्रक्रीड़ा करता हुआ कोई युवा एवं मदमस्त हाथी हो।

उस मेघ को देखकर निर्जन वन में वियोगी यक्ष को अकस्मात् ही ध्यान आया कि क्यों न मैं इसके माध्यम से अपनी प्रियतमा को अपने समाचारों से अवगत कराते हुए उसे अपने जीवित होने के प्रति आश्वस्त करूँ, जिससे वह अपने जीवन को धारण कर सके। उसने उस मेघ में श्रेष्ठ मित्र की कल्पना करके, उसे किस मार्ग से प्रियतमा के निवास स्थान 'अलकापुरी' जाना चाहिए? इसका कथन करते हुए अपना संदेश उसे अत्यन्त मार्मिक शैली में दिया है, जो इसके उत्तर मेघ में वर्णित है।

(iii) **रघुवंशम्**– यह काव्यकार कालिदास की अन्तिम एवं श्रेष्ठ कृति है, जिससे नाटककार कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् से भी उत्कृष्ट कहा जा सकता है। उन्नीस सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य का आरम्भ राजा दिलीप की गो–सेवा से लेकर कामुक और विलासी राजा अग्निवर्ण तक के सूर्यवंशी 31 राजाओं के चरित्र का वर्णन किया गया है। इस काव्य में राजा दिलीप, रघु, अज, दशरथ और राम आदि आदर्श राजाओं का वर्णन होते हुए भी कवि ने महाराज रघु के नाम पर इस कृति का नामकरण किया है। महाराज रघु के दिग्विजय का वर्णन भी कवि द्वारा अत्यन्त गहनता से किया गया है। काव्यकार कालिदास ने इस काव्य में अपनी अद्भुत प्रतिभा को प्रदर्शित किया है, जिसकी विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।[1]

(ङ) **ऋतुसंहारीय कालिदास**– इसप्रकार नाटककार एवं काव्य कार की कृतियों के विषय में अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख करने के बाद 470 ई. में वर्तमान ऋतुसंहारीय तृतीय कालिदास की एकमात्र कृति ऋतुसंहार का परिचय देना ही उपयुक्त प्रतीत होता है–

(i) **ऋतुसंहार** (गीतिकाव्य)–इसमें कवि ने ग्रीष्मऋतु से आरम्भ करके वसन्त ऋतु पर्यन्त भारतवर्ष में होने वाली छः ऋतुओं क्रमशः ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त को छः सर्गों के 144 श्लोकों में निबद्ध किया है। यह वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक एवं सरल रहा है। अप्रौढ़ता के कारण विद्वानों ने इसे कालिदास की आद्य कृति माना है, जिससे हमने अपनी विनम्र असहमति व्यक्त की है। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में एकमात्र इस कृति में ही सभी छः ऋतुओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है। कालिदास के अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा इसका स्तर काव्यात्मक दृष्टि से अत्यन्त न्यून है। इसीलिए विद्वानों ने इसे कालिदास की प्रथम कृति मानकर सन्तोष कर लिया है।

---

[1]. शेष तीन नाटकों को नाटककार कालिदास की मानने के कारण हम उनका यहाँ उल्लेख नहीं कर रहे हैं। इसीप्रकार 'ऋतुसंहार' नामक गीतिकाव्य भी काव्यकार कालिदास की रचना के रूप में हमें मान्य नहीं है।

(ढ) **कालिदास का वैदुष्य**– उल्लेखनीय है कि काव्यकार कालिदास के तीनों ग्रन्थों के अध्ययन से उनके अद्भुत वैदुष्य की प्रतीति हमें स्वतः ही हो जाती है। यहाँ हम केवल मेघदूत के आधार पर ही प्रतीत होने वाले उनके वैदुष्य के सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत कर रहे हैं, इस सम्बन्ध में गहनता के साथ विचार हमने अपने काव्यकार कालिदास नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ में किया है।

(i) **कामशास्त्र विशेषज्ञ**– मेघदूत का गहन अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि काव्यकार कालिदास ने कामशास्त्र का गहन अध्ययन किया था, तभी तो यहाँ पद–पद पर उन्होंने कामी यक्ष के माध्यम से उसके मित्र मेघ को भी काम–चेष्टाओं के विशेषज्ञ रूप में प्रतिपादित किया है। वे स्त्रियों के हावभाव एवं कामसम्बन्धी सूक्ष्मातिसूक्ष्म चेष्टाओं से सुपरिचित रहे हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा।
तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मात्
सभ्रूभंगं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मिः।।1/25।।

जहाँ विदिशा में वेत्रवती नदी के जल को पीना काव्यकार ने भ्रभंगयुक्त कामिनी के अधरपान के समान आनन्ददायक कहा है।

(ii) **ऋतुविज्ञान विशेषज्ञ**– यद्यपि मेघदूत वर्षाऋतु को आधार बनाकर लिखा गया गीतिकाव्य है, किन्तु यहाँ पर काव्यकार के सभी छः ऋतुओं के ज्ञान की भी अभिव्यक्ति हो रही है, क्योंकि वे इस बात से भलीभाँति परिचित रहे हैं कि किस ऋतु में कौन सा पुष्प विकसित होता है तथा किस ऋतु का प्राणियों के ऊपर किसप्रकार का प्रभाव पड़ता है? तभी तो उन्होंने मेघ के आने पर राजहंसों की बात का उल्लेख किया है, जो वर्षा के आने पर अपने पाथेय को लेकर कैलास पर्वत पर स्थित मानसरोवर की ओर प्रस्थान कर जाते हैं–

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां

तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः।
आ कैलासाद्बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः
सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः।।1/11।।

इसीप्रकार अलकापुरी में सभी ऋतुओं में खिलने वाले पुष्पों के विषय में किया गया उल्लेख भी उनके ऋतुविज्ञान विषयक ज्ञान की पुष्टि करता प्रतीत होता है।[1]

(iii) **ज्योतिषशास्त्रीय ज्ञान**– इसके अलावा मेघदूत में कवि का ज्योतिषशास्त्र विषयक ज्ञान भी अभिव्यक्त होता है, क्योंकि उन्होंने यहाँ पर प्रारम्भ में ही आषाढ़ मास का उल्लेख किया है, जिसका सम्बन्ध 'आषाढ़ा' नक्षत्र से रहा है, साथ ही उन्होंने यक्ष के शाप के आरम्भ तथा अन्त दोनों के होने का जो ज्ञान है, वह भी वस्तुतः ज्योतिष शास्त्र का ही विषय है–

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ंगपाणौ
शेषान्मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा। 2/50

भगवान् विष्णु से शेषशय्या से उठने का समय ज्योतिष के आधार पर ही देखा जा सकता है। इसी समय यक्ष के एक वर्ष के शाप का अन्त हो जाएगा, क्योंकि इसी अवसर पर इसका आरम्भ हुआ था।

(iv) **मनोविज्ञान विशेषज्ञ**–ध्यातव्य है कि काव्यकार कालिदास यहाँ पर कामसम्पन्न स्त्री एवं पुरुष दोनों के ही मनोविज्ञान से सुपरिचित रहे हैं, इतना ही नहीं, वर्षा ऋतु में पशु–पक्षियों के व्यवहार एवं चिन्तन में किसप्रकार का मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होता है, यह भी वे भलीभाँति जानते हैं, तभी तो मेघदूत के आरम्भ में ही वर्षा ऋतु के

---

[1]. हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः
चूडापाशे नवकुरवकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्।।2।।

आरम्भ में हाथी के मनोविज्ञान को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने मेघ को गज–वप्रक्रीड़ा करते हुए चित्रित किया है–

आषाढ़स्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीड़ापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श।।1/2।।

इतना ही नहीं कामी व्यक्ति की प्रत्येक सूक्ष्म क्रिया को तथा व्यवहार को भी यहाँ पर अंकित किया गया है। तभी तो विरही कामी यक्ष अपनी प्रियतमा से दूर रहकर विभिन्न प्राकृतिक उपादानों में प्रिया के अनेक उपादानों को खोजने का प्रयास करता है–

(v) **आयुर्वेद विषयक ज्ञान**– हम देखते हैं कि महाकवि आयुर्वेद विषयक ज्ञान से भी परिचित रहे हैं, तभी तो उन्होंने यक्ष के माध्यम से मेघ को मार्ग की थकान को मिटाने के लिए और फिर से आगे चलने की ऊर्जा प्राप्त करने हेतु क्रमशः पर्वतों की चोटियों पर ठहरकर थकान मिटाने की तथा उसके बाद ही नदियों का जल पीकर प्यास बुझाने की बात का उल्लेख किया है, क्योंकि वह आयुर्वेद की इस बात से सुपरिचित रहा है कि लम्बे मार्ग में चलकर आने के बाद सर्वप्रथम थोड़ी देर सुस्ताना चाहिए, उसके बाद ही पानी पीकर अपनी प्यास बुझानी चाहिए, चलकर आने के तुरन्त बाद पानी का पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकर होता है –

खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघुपयः स्रोतसां चोपभुज्य।।1/13।।

(vi) **रसायनशास्त्र विशेषज्ञ**– उल्लेखनीय है काव्यकार कालि–दास रसायनशास्त्र विशेषज्ञ भी थे, तभी तो उन्होंने हमारे विवेच्य मेघदूत में बादल को धुएँ, प्रकाश, जल तथा वायु का संघात बताया है, क्योंकि मेघ के सूक्ष्म घटकों से वे सुपरिचित रहे हैं, जो उन्हें रसायन शास्त्र विशेषज्ञ सिद्ध करता है–

धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
संदेशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।1/5 ।।

(vii) **नृत्य एवं संगीत विषयक ज्ञान**– मेघदूत का सूक्ष्मदृष्टि से अध्ययन करने पर हमें काव्यकार कालिदास का नृत्य, संगीत विषयक गहनज्ञान भी अभिव्यक्त होता है, तभी तो वे उज्जयिनी में मेघ के लिए गर्जन के स्वर को उतना ही ऊँचा करने के लिए कहते हैं, जिससे वह महाकाल की आरती के समय किए गए गम्भीर गर्जन, पूजा के नगाड़े का काम कर सके[1]। साथ ही, अलका नगरी में पुष्कर नगाड़े की ध्वनि का उल्लेख[2] तथा उत्तर मेघ में भी प्रियतम के वियोग में मैले वस्त्रों वाली यक्षिणी का, यक्ष के नाम के चिह्न वाले गीत को गाने की इच्छा से, अश्रुओं से भीगे हुए वीणा के तारों पर मूच्छर्ना को जमाने का प्रयास करते हुए स्वरों के उतार–चढ़ाव के क्रम को विस्मरण करना,[3] ये सभी उल्लेख काव्यकार के संगीत एवं नृत्य विषयक ज्ञान की पुष्टि करते हैं। वैसे भी मेघदूत में नायक रूप में प्रतिपादित यक्ष आदि जाति नृत्य, गान विद्या में निपुण मानी जाती है।

(ण) **काव्यकार कालिदास की भाषा–शैली**– कालिदास ने मेघदूत में प्रसाद एवं माधुर्य गुणयुक्त, समासरहित, प्रांजल, परिष्कृत, सरल, मनोरम एवं प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है तथा इस भाषा की अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता इसका भावों के अनुकूल प्रयुक्त होना भी रहा है। मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग होने से संगीतात्मकता भी यहाँ पर सहज ही देखी जा सकती है। मधुर भावों की अभिव्यक्ति के लिए माधर्यगुण व्यंजक पदों के प्रयोग में संगीतात्मकता का उदाहरण भी द्रष्टव्य है–

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।

---

[1]. मेघदूतम्– 1/39 ।
[2]. मेघदूतम्– 2/5 ।
[3]. मेघदूतम्– 2/26 ।

गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः।।1/9।।

महाकवि की भाषा में हमें यथोचित पदयोजना के भी दर्शन होते हैं, क्योंकि वे इस बात से भलीभाँति परिचित रहे हैं कि किस पद का कहाँ पर प्रयोग सहृदय के हृदय पर सटीक प्रभाव डालेगा तथा कहाँ पर किस पद का प्रयोग करना चाहिए? एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः। 1/1 ।

इसके अलावा यहाँ पर महाकवि को पत्नी के लिए भार्या, तरुणी, युवती आदि पदों का प्रयोग न करके उसके आकर्षक, लावण्यमयी छवि की अभिव्यक्ति के लिए 'कान्ता' पद का प्रयोग ही समीचीन प्रतीत हुआ है, जिसे उनके भावानुकूल भाषा के प्रयोग या यथोचित पदयोजना के रूप में देखा जा सकता है। मेघदूत में ऐसे उदाहरण हमें पद–पद पर देखने को मिल जाते हैं।

इसके अतिरिक्त महाकवि की भाषा में हमें चित्रात्मकता के भी दर्शन होते हैं। मेघदूत वस्तुतः एक चित्रात्मक कथानक है। सर्वप्रथम प्रयुक्त श्लोक से कवि वियोगी यक्ष का दयनीय चित्र पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है, जो प्रिया के वियोग में रामगिरि में स्थित आश्रमों में क्षणभर के लिए भी चैन से नहीं बैठ पाता है, इधर–उधर भटकता ही रहता है (आश्रमेषु)।

उसके बाद मार्ग वर्णन में सभी चित्र सहृदय पाठक के समक्ष प्रस्तुत हो जाते हैं, जिससे वह स्वयं को उन्हीं स्थलों पर उपस्थित सा अनुभव करता है। यही स्थिति हमें अलकापुरी नगरी वर्णन तथा यक्षिणी की विरहदशा वर्णनों में भी देखने को मिलती है। यह महाकवि की चित्रात्मक शैली का ही प्रभाव है कि सभी स्थलों पर पाठक को प्रत्येक वर्णनीय वस्तु साक्षात् सी प्रतीत होती है।

प्रस्तुत काव्य में महाकवि ने प्रसाद एवं माधुर्ययुक्त वैदर्भी शैली का प्रयोग किया है। यहाँ पर कहीं भी काव्यकार ने अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन नहीं किया है और न ही कहीं पर लम्बे समासों का प्रयोग करके भावों को बोझिल बनाने का प्रयास ही किया गया है। समास रहित वैदर्भी शैली का उदाहरण द्रष्टव्य है–

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
यांचा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।।1/6।।

आचार्य दण्डी ने तो कालिदास की शैली से प्रभावित होकर वैदर्भी शैली का उद्भावक ही उन्हें बता दिया है।[1]

इसके अलावा काव्यकार कालिदास के मेघदूत में हमें पद पर ध्वनिकाव्य का सा आनन्द प्राप्त होता है, यदि इस काव्य की व्याख्या ध्वनि की दृष्टि से की जाए तो निश्चय ही एक स्वतन्त्र प्रबन्ध की रचना हो जाएगी, क्योंकि यहाँ पर कवि ने पद–पद पर वाच्यार्थ का प्रयोग न करके व्यंजना शक्ति के माध्यम से ध्वनिकाव्य की मनभावन प्रस्तुति की है। कवि तो केवल संकेत भर करता है, शेष सभी कुछ सहृदय पाठक की उर्वरा कल्पना शक्ति के ऊपर छोड़ देता है।

इसीप्रकार हम देखते हैं कि मेघदूत काव्य में प्रयुक्त शैली की महती विशेषता इसकी चित्रात्मकता रही है, क्योंकि यहाँ महाकवि ने पद–पद पर हृदयहारी शब्दचित्रों को प्रस्तुत किया है। यहाँ हम कुछ ही उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं–

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणप्रेक्षणा निम्ननाभिः।

---

[1]. लिप्ता मधुद्रवेणासन् यस्य निर्विवशा गिरः।
तेनेदं वर्त्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम्।।

श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः।।2/22।।

प्रस्तुत श्लोक में यक्ष की प्रियतमा का सजीव चित्र सहृदय सामाजिक को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है, क्योंकि उसे लगता है कि वह यक्षिणी तो साक्षात्रूप से उसके समक्ष ही खड़ी हुई है। एक दुबली–पतली सी, कली के समान नुकीले दाँतों वाली, पके हुए बिम्बाफल के समान अधरोष्ठ वाली, पतली कमर से युक्त, चकित हरिणी के समान चंचल नेत्रों वाली, गहरी नाभि से सम्पन्न, विशाल नितम्बों के कारण मन्दगामिनी, स्तनों के भार से किंचित् झुकी हुई, विधाता की मानो पहली सृष्टि ही हो।

प्रस्तुत गीतिकाव्य में वस्तुतः अनुभूति की मार्मिकता, निरीक्षण की सूक्ष्मता, भाषा की सरसता और सरलता, अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग, विचारों की नवीनता एवं छन्द की सुव्यवस्था को विशेष स्थान प्राप्त हुआ है।

(त) **मेघदूतम् में प्रतिपादित सामाजिक चित्रण**– ध्यातव्य है कि मेघदूत के सूक्ष्म अध्ययन पर हमें तात्कालिक ऐश्वर्य सम्पन्न नागरक समाज तथा ग्रामीण समाज का विहंगम दृश्य भी सहज ही देखने को मिल जाता है। धनाढ्य समाज में महलों में बावड़ियों की स्थिति उनमें मोरों का पालना, उपवनों का रखरखाव करना, चाँदनी रात में महलों की छतों पर कामक्रीड़ाएँ करना, शृंगार की विविध प्रकार की सामग्री धारण करना आदि सभी के विषय में यहाँ पर महाकवि ने विस्तार से चर्चा की है। तात्कालिक सामाजिक मान्यताएँ, वस्त्राभूषणादि को धारण करना, कृषिकार्य, ग्रामीण स्त्रियों का व्यवहार आदि के विषय में भी प्रस्तुत काव्य में कवि द्वारा उल्लेख किया गया है।

(थ) **मेघदूतम् में प्रतिपादित धार्मिक चित्रण**– प्रस्तुत गीति काव्य में महाकवि ने तात्कालिक धार्मिक चित्र भी प्रस्तुत किया है, तभी तो विशेषरूप से उज्जयिनी में महाकाल की आरती का विहंगम दृश्य प्रस्तुत हुआ है, जहाँ ढ़ोल, नगाड़ों की ध्वनि के साथ आरती का पुनीत

कार्य सम्पन्न होता है। शिप्रा एवं कनखल की गंगा का भारतीय धार्मिक जगत् में पवित्र स्थान भी इंगित किया गया है। जहाँ तक देवी देवताओं का प्रश्न है, महाकवि ने यहाँ पर भगवान् विष्णु के अवतारों में वामन अवतार, श्रीकृष्ण आदि तथा देवों के देव महादेव, पार्वती, शिवभक्त कुबेर, इन्द्र, कामदेव आदि देवों का भी उल्लेख किया है, जिससे पाठक के समक्ष तात्कालिक धार्मिक चित्र सहज ही उभर कर प्रकट हो जाता है।

(द) **मेघदूतम् के मूलस्रोत–** संस्कृत वाङ्मय में दूतकार्य का सर्वप्रथम उल्लेख हमें ऋग्वेद में आत्रेय कथा के अन्तर्गत पंचम मण्डल में प्राप्त होता है, जहाँ पर 'श्यावाश्व' ने मरुद्गणों की कृपा से अपने ऋषि बनने की सूचना अपनी भावी प्रियतमा मनोरमा को 'रात्रि देवी' के माध्यम से दी है।

महाकवि कालिदास ने मेघदूत की रचना के सम्बन्ध में कहाँ से प्रेरणा प्राप्त की, इस विषय में विद्वानों ने भिन्न–भिन्न विचार व्यक्त किए हैं, जिनमें दो विचारों को प्रमुखरूप से देखा जा सकता है।

प्रथम, यक्ष–यक्षिणी के वियोग के बहाने से कवि ने स्वयं अपने जीवन से जुड़ी घटना का ही उल्लेख किया है, जिससे हम भी अपनी विनम्र सहमति व्यक्त करते हैं।

द्वितीय, इस गीतिकाव्य को लिखने की प्रेरणा उन्हें वाल्मीकि रामायण में सीता के प्रति श्रीराम के सन्देश को हनुमान् द्वारा ले जाने की घटना से प्राप्त की। इस विषय में कुछ हेतु भी प्रस्तुत किए गए हैं। **जैसे–** रामायण महाकाव्य में राम–सीता का वियोग, हनुमान् का वायु मार्ग से जाते हुए दूतकार्य को सम्पादित करना, हनुमान् सीता संवाद, सीता को अँगूठी प्रदान करना आदि सभी घटनाएँ मेघदूत के घटनाक्रम से पर्याप्त मेल खाती प्रतीत होती हैं।

इसके अतिरिक्त रामगिरि[1] में जनकतनया सीता के स्नान करने के कारण पवित्र आश्रमों का उल्लेख[2], श्रीराम के चरण–चिह्नों से अंकित स्थलों का कथन[3] तथा इसी क्रम में उत्तरमेघ में यक्षिणी का मैथिली के समान मेघ को देखना,[4] राम के समान ही यक्ष का भी कुछ गोपनीय बातों को विश्वास के लिए पहचानरूप में कहना[5] आदि अनेक स्थलों के आधार पर विद्वानों ने इस काव्य के प्रणयन का स्रोत वाल्मीकि रामायण को स्वीकार किया है। इस विषय में प्रसिद्ध टीकाकार आचार्य मल्लिनाथ के विचार भी उल्लेखनीय हैं। तदनुसार–

सीतां प्रति रामस्य हनुमत्संदेशं मनसि निधाय मेघसंदेशं कवि कृतवानित्याहुः।

जिन्हें मेघदूत के प्राचीन टीकाकार आचार्य दक्षिणावर्त ने भी अपनी स्वीकृति प्रदान की है।[6]

किन्तु हमारे विचार से गुप्तकाल में स्थित होने के कारण काव्यकार कालिदास ने ईसा की तृतीय शती से पूर्व की रचना ब्रह्मवैवर्त पुराण[7] में प्रयुक्त कथानक को आधार बनाकर ही वस्तुतः इस काव्य का सृजन किया है, जिसमें उनके स्वयं के जीवन की दुःखद घटना भी बड़ा कारण रही है। रामायण की कथा के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा रही, तभी तो उन्होंने रामगिरि में स्थित आश्रमों को सीता

---

[1]. रामगिर्याश्रमेषु.....। मेघदूत–1/1 ।

[2]. जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु....। मेघदूत–1/1 ।

[3]. दशमुखोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः....। मेघदूत–1/61 ।

[4]. इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा....। मेघदूत–2/40 ।

[5]. एतस्मान्तां कुशलिनमभिज्ञानदानाद् विदित्वा..। मेघदूत–2/52 ।

[6]. इह खलु कविः सीतां प्रति हनुमता हारितं संदेशं हृदयेन समुद्वहन् तत्स्था–नीयनायकाद्युत्पादनेन संदेशं करोति।

[7]. पुराण विमर्श, पं. बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1965 । पृष्ठ– 152।

के स्नान से पवित्र बताया है या फिर उत्तर मेघ में विरहिणी यक्षिणी को 'मैथिलीवोन्मुखी' कहा है।

इसका महत्त्वपूर्ण कारण ब्रह्मवैवर्त पुराण[1] इसी कथा का लगभग ज्यों का त्यों रूप में प्रयुक्त होना है। तदनुसार--

'शिवभक्त राजा कुबेर के सेवक हेममाली नामक यक्ष की नियुक्ति पूजा के लिए ताजे पुष्प लाने के लिए की गयी थी, जो अपनी

---

1. अलकाऽधिपतिर्नाम्ना कुबेरः शिवपूजकः।
तस्यासीत् पुष्पबटुको हेममालीति नामतः।।6।।
तस्य पत्नी सुरूपासीद्विशालाक्षीति नामतः।
स तस्यां स्नेहसंयुक्तः कामपाशवशंगतः।।7।।
मानसात्पुष्पनिचयमानीय स्वगृहे स्थितः।
पत्नी प्रेमसमायुक्तो न कुबेरालयं गत।।8।।
कुबेरो देवसदने करोति शिवपूजनम्।
मध्याह्नसमये राजन्पुष्पाणि प्रसमीक्षते।।9।।
हेममाली स्वभवने रमते कान्तया सह।
यक्षराट् प्रत्युवाचाऽथ कालातिक्रमकोपितः।।10।।
'कस्मान्नायाति भो यक्षाः! हेममाली दुरात्मवान्।
निश्चयः क्रियतामस्य' प्रत्युवाच पुनः पुनः।।11।।
यक्षा ऊचुः--
वनिताकामुको गेहे रमते स्वेच्छया नृपः।
तेषां वाक्यं समाकर्ण्य कुबेरः कोपपूरितः।।12।।
आह्वयामास तं तूर्णं बटुकं हेममालिनम्।
ज्ञात्वा कालात्ययं सोऽपि भयव्याकुललोचनः।।13।।
आजगाम नमस्कृत्य कुबेरायाऽग्रतः स्थितः।
तं दृष्ट्वा धनदः क्रुद्धः कोपसंरक्तलोचनः।।14।।
प्रत्युवाच रुषाविष्टः कोपाद्विस्फुरिताऽधरः।
धनद उवाच--
हे पाप! दुष्ट, दुर्वत्तः, कृतवान्देवहेलनम्।।15।।
अतो भवं श्वित्रयुक्तो वियुक्तः कान्तया सह।
अस्मात्स्थानादपध्वस्तो गच्छ स्थानमथाऽधमम्।।16।।
इत्युक्ते वचने तेन तस्मात् स्थानात् पपात सः।। ब्रह्मवैवर्त पुराण।

नवोढ़ा रूपवती कान्ता के लावण्यमय आकर्षण के कारण कामलिप्त होने से पुष्पों को घर पर तो ले आया, किन्तु प्रमादवश उन्हें राजा के पास ले जाना भूल गया। उधर मध्याह्न काल में कुबेर, फूलों के आने की प्रतीक्षा करते रहे और हेममाली अपनी प्रिया के साथ रमण करता रहा।

पूजा का समय व्यतीत होने पर कुबेर ने सेवकों से वस्तुस्थिति को जानकर, कुपित होकर उसे अपने पास बुलाया और क्रोध से लाल नेत्रों व काँपते होठों से कहा कि– 'हे नीच! दुष्ट, दुराचारी, तूने जिस प्रिया के प्रेम में लिप्त होकर देवता का निरादर किया है, उसी से तू एक वर्ष पर्यन्त अलग हो जा और इस स्थान से गिरकर नीचे मृत्यु लोक में चला जा।' कुबेर के ऐसा कहते ही वह यक्ष मृत्युलोक में गिर पड़ा।'

स्पष्ट है कि मेघदूत के कथानक के लिए काव्यकार के पूर्ववर्ती ब्रह्मवैवर्त पुराण के कथानक को ही उपजीव्य मानना संगत प्रतीत होता है, क्योंकि यहाँ पर अन्तर केवल इतना ही है कि ब्रह्मवैवर्त पुराण की कथा में इसे मृत्युलोक में जाना पड़ा है तथा उसका नाम यहाँ हेममाली कहा गया है। अपने स्वयं के जीवन से सम्बन्धित घटना का साम्य होने से कवि ने यहाँ यक्ष के नाम का उल्लेख न करके 'कश्चित्' कहकर काम चला लिया है, जिसे ध्वनिरूप से समझा जा सकता है, क्योंकि सम्पूर्ण मेघदूत वस्तुतः ध्वनिकाव्य की श्रेणी में ही आता है।

(ध) **मेघदूतम् में प्रतिपादित मेघमार्ग–** उल्लेखनीय है कि विरही यक्ष ने चाटुकारिता पूर्ण वचनों का प्रयोग करते हुए अत्यन्त कुशलता–पूर्वक मेघ को अपना संदेश प्रिया तक ले जाने के लिए तैयार कर लिया, उसके बाद उसे किस मार्ग से यक्षों की नगरी अलकापुरी जाना चाहिए? यह बताना भी आवश्यक था, इसीलिए उसने रामगिरि से लेकर अलकापुरी के मार्ग का अत्यन्त मनोरम वर्णन भी किया है,

जिसके व्याज से महाकवि की प्रकृति के मनोरम चित्रण विषयक कामना भी पूर्ण हो गयी है। तदनुसार–

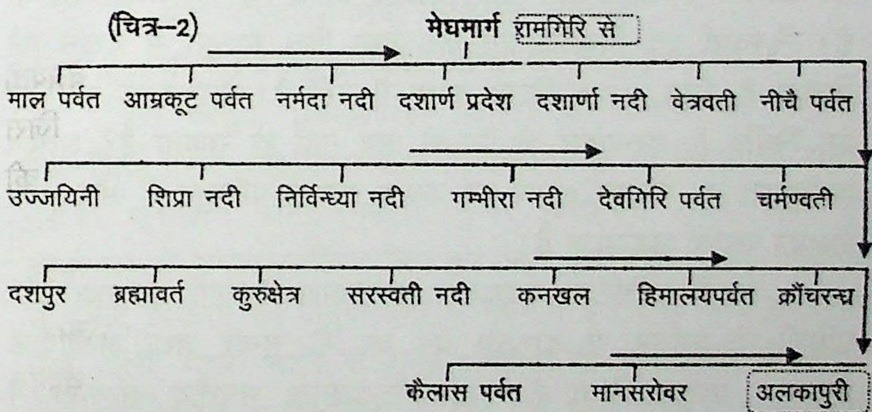
यह रामगिरि वस्तुतः चित्रकूट है, इसलिए मानसून की गति आदि को दृष्टिगत रखते हुए वह विरही यक्ष, मेघ को उत्तर दिशा की ओर जाते हुए सर्वप्रथम **'माल'** नामक स्थान पर जाने के लिए कहता है, जो वस्तुतः आधुनिक रतनपुर के उत्तर में स्थित मालदा स्थान है। उसके बाद पश्चिम की ओर जाकर **आम्रकूट** पर्वत (आधुनिक अमरकण्टक पर्वत) पर पहुँचने का कथन करके, विन्ध्याचल एवं सत पुड़ा पर्वतों के मध्य में बहने वाली **नर्मदा नदी** (आधुनिक रेवा नदी) पर विश्राम करते हुए, **दशार्ण प्रदेश** (वर्तमान छत्तीसगढ़) जाने के लिए कहता है।

इसके बाद वह **दशार्णा नदी**, विदिशा में बहने वाली **वेत्रवती नदी** के बाद **नीचै नामक पर्वत** पर पहुँचने का उल्लेख करता है, जिसे पार करने के बाद वह थोड़ा पश्चिम की ओर मुड़ते हुए **उज्जयिनी** की ओर जाने का आग्रह भी करता है क्योंकि **शिप्रा नदी** के तट पर स्थित महाकाल मन्दिर में सन्ध्या वन्दन करना अत्यन्त आवश्यक है, उसके बाद **निर्विन्ध्या नदी** के तट पर जाने के लिए भी कहता है। इसप्रकार इन सभी नदियों पर विश्राम करते हुए, पद–पद पर अपनी थकान मिटाने हेतु जल पीकर ही उसे आगे बढ़ना है।

इसके पश्चात् यक्ष उस मेघ को **गम्भीरा नदी** से मिलते हुए **देवगिरि पर्वत** पर पहुँचकर कार्तिकेय की पूजा में सम्मिलित होने का परामर्श देता है। उसके बाद **चर्मण्वती** (वर्तमान चम्बल नदी) नदी आएगी, जिसे पार करके वह **दशपुर** नगर में जाने के लिए कहता है। उसके बाद **ब्रह्मावर्त** (सरस्वती तथा दृशद्वती नदी के बीच का भाग) आएगा, जहाँ पर महाभारत का युद्ध हुआ था, पुनः **कुरुक्षेत्र** में पहुँच कर वहाँ पर सरस्वती नदी के जलपान की बात को कहना भी वह नहीं भूलता है।

वहाँ से चलकर थोड़ा तिरछा पड़ने पर भी **कनखल** (हरिद्वार के निकट) जाने का परामर्श अत्यन्त आग्रहपूर्वक देता है, क्योंकि वहाँ पर बहने वाली **गंगा** के पवित्र जल का पान करना भी अत्यावश्यक है उसके बाद **हिमालय पर्वत** से होते हुए **क्रौंचरन्ध्र** (कैलास मार्ग में स्थित पर्वत विशेष) तत्पश्चात् **कैलास पर्वत** पुनः **मानसरोवर** में जल पीने के बाद यक्ष–राजधानी **अलकापुरी** पहुँचने का परामर्श देते हुए, अपनी प्रियतमा को संदेश देने की बात का कथन करता है।

मेघदूत में प्रतिपादित मेघमार्ग को संक्षेप में इसप्रकार भी समझ सकते हैं–



ध्यातव्य है कि महाकवि ने इस सम्पूर्ण मार्ग में थकान को दूर करने एवं आगे चलने की शक्ति को फिर से प्राप्त करने के लिए पद–पद पर मेघ के जल पीने की व्यवस्था को दृष्टि में रखा है, जो वस्तुतः उनके भौगोलिक ज्ञान के साथ–साथ मानसून की तात्कालिक गति से सम्बद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण का ही परिचायक कहा जा सकता है।

(न) **मेघदूतम् में प्रतिपादित सौन्दर्य एवं प्रेम**– प्रस्तुत गीति काव्य में महाकवि ने अद्भुत सौन्दर्य तथा प्रेम की दिव्यता को स्वीकार करते हुए मनोहारी चित्रण किए हैं। इस विषय में उनकी मान्यता है कि– 'नर एवं नारी में वासनाजन्य तथा कर्तव्य विरुद्ध प्रेम उचित नहीं

है।' यही कारण है कि इस काव्य के मूल कथानक में वासनाजन्य प्रेम से प्रताड़ित होकर विलग होना पड़ा, क्योंकि इसप्रकार के प्रेम के वशीभूत होकर यक्ष ने अपने कर्तव्य को विस्मृत कर दिया था।[1]

अन्त में, इन दोनों का यही प्रेम विरह की अग्नि में तपकर स्वर्ण के समान अत्यधिक उदात्त हो जाता है। मेघदूत में प्रतिपादित प्रेम की दिव्यता के विषय में प्रसिद्ध विद्वान् महावीर प्रसाद द्विवेदी के विचार उल्लेखनीय हैं–

'मेघदूत में कालिदास ने आदर्श प्रेम का चित्र खींचा है, उसे सविशेष हृदयहारी एवं यथार्थ व्यंजक बनाने के लिए यक्ष को नायक की कल्पना करके, उन्होंने अपने कवित्त्व कौशल की पराकाष्ठा कर दी है। निःस्वार्थ एवं निर्व्याज प्रेम का जैसा चित्र मेघदूत में देखने को मिलता है, वैसा अन्यत्र किसी काव्य में नहीं है। मेघदूत के यक्ष का प्रेम निर्दोष है, इसप्रकार के प्रेम से क्या नहीं हो सकता है?...अतएव कालिदास का मेघदूत श्रृंगार एवं करुण रस से परिप्लुत है और उच्च प्रेम का सजीव उदाहरण है।'

इसके अतिरिक्त काव्यकार कालिदास ने यहाँ पर यक्ष और यक्षिणी के माध्यम से दाम्पत्य प्रेम का भी सुन्दर तथा अलौकिक उदाहरण प्रस्तुत किया है। यह प्रेम वस्तुतः भारतीय संस्कृति में प्रशंसनीय 'एक पत्नीव्रत' का ज्वलन्त उदाहरण है, एक दूसरे पर प्राण न्यौछावर करने वाले पति और पत्नी एक दूसरे के वियोग में अपना एक–एक पल वर्षों के समान किसप्रकार व्यतीत करते हैं, इसका मनमोहक चित्रण मेघदूत के यक्ष–यक्षिणी के प्रेम के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

तभी तो यहाँ इतनी दूर पर स्थित यक्ष उत्तर दिशा से आने वाली वायुओं का केवल इस दृष्टि से आलिंगन करता है, सम्भवतः वे उसकी प्रिया के शरीर का स्पर्श करके वहाँ आयी हों और उधर

---

[1] . स्वाधिकारात्प्रमत्तः। पूर्वमेघ–1 ।

कृशकाय यक्षिणी अपने प्रियतम के वियोग में एक–एक दिन देहरी पर पुष्प रखकर गिन–गिन कर बिता रही है, प्रेम का कितना पवित्र एवं हृदयद्रावक चित्रण है?

जहाँ तक सौन्दर्य का विषय है। प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन हम प्रकृति–चित्रण बिन्दु के अन्तर्गत आगे करेंगे, यहाँ मानव सौन्दर्य के विषय में उल्लेख करना उचित होगा, क्योंकि इस विषय में भी काव्य– कार सदा ही अग्रणी रहे हैं। विरहिणी यक्षिणी के सौन्दर्य का चित्र इस दृष्टि से अवलोकनीय है–

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणंप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः।।2/22।।

इसे वस्तुतः विरहकालिक कान्ता के सौन्दर्य का मर्यादित नख–शिख वर्णन कहा जा सकता है, जिसमें पति के वियोग के कारण उसका कृशकाय होना, नुकीले सुन्दर दाँतों से युक्त, पके हुए बिम्बाफल के समान लालिमा लिए हुए अधर एवं ओष्ठ वाली, कटिभाग से दुर्बल, प्रियतम की अनुपस्थिति में भयभीत हरिण के नेत्रों के समान नेत्रों वाली, गहरी नाभि से युक्त, नितम्बों के भारी होने के कारण धीमे–धीमे चलने वाली, स्तनों के पुष्ट एवं भारी होने से थोड़ा झुकी हुई वह प्रिया तो वस्तुतः युवतियों के सम्बन्ध में विधाता की आदि सृष्टि ही है।

नारी सौन्दर्य का इसप्रकार का पवित्र एवं उदात्त चित्रण शायद ही संस्कृत साहित्य में अन्यत्र उपलब्ध हो सके, निश्चय ही इसे सौन्दर्य के सम्बन्ध में काव्यकार के मौलिक चिन्तन के रूप में देखा जा सकता है।

(प) **मेघदूतम् में प्रतिपादित अलंकार योजना**– उल्लेखनीय है कि काव्यकार कालिदास ने मेघदूत में उपमा[1], उत्प्रेक्षा[2], रूपक[3], अनुप्रास[4], काव्यलिंग[5], परिकर[6], विषम[7], समासोक्ति[8], सन्देह[9], परिवृत्ति[10], परिवृत्ति[10], अनुमान[11], परिणाम[12], पर्याय[13], श्लेष[14], उदात्त[15] आदि अलंकारों के अतिरिक्त अर्थान्तरन्यास[16] अलंकार का भी मनभावन प्रयोग किया है, जिनके विषय में हम यहाँ अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं–

सर्वप्रथम उपमाओं की बात करते हैं। हमारे विवेच्य गीति काव्य में कवि ने मनोहारिणी उपमाओं का चयन करके भावाभिव्यक्ति को अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी बना दिया है। **जैसे**– विरह के कारण कृश शरीर वाली, व्याकुलता से युक्त एक ही करवट से शय्या पर लेटी रहने वाली, यक्ष की प्रियतमा को यहाँ पर कृष्णपक्ष में पूर्व दिशा के क्षितिज पर क्षीण चन्द्रकला के समान बताया है, जो भावों की मनभावन अभिव्यक्ति में सहायक कही जा सकती है–

आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वां
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः ।2/29।

---

1. मेघदूतम्– 1/2, 10, 15, 18, 19, 32, 55, 57, 60, 67, 2/5, 30 ।
2. मेघदूतम्– 1/18, 25, 52, 55, 58 ।
3. मेघदूतम्– 2/5 ।
4. मेघदूतम्– 1/2 ।
5. मेघदूतम्– 1/1 ।
6. मेघदूतम्– 1/1 ।
7. मेघदूतम्– 1/5 ।
8. मेघदूतम्– 1/13, 19, 25 ।
9. मेघदूतम्– 1/14 ।
10. मेघदूतम्– 1/16 ।
11. मेघदूतम्– 1/21 ।
12. मेघदूतम्– 1/23 ।
13. मेघदूतम्– 1/61 ।
14. मेघदूतम्– 1/67 ।
15. मेघदूतम्– 2/5 ।
16. मेघदूतम्– 1/3, 8, 20 ।

इसी क्रम में विरहपीड़िता यक्षिणी की उपमा के लिए मेघाच्छन्न दिन में स्थल कमलिनी का उपमान रूप में प्रयोग,[1] कैलाश पर्वत के हिम की शिव के राशिभूत अट्टहास के रूप में परिकल्पना[2], इसी प्रकार स्त्रियों के कोमल हृदयों की उपमा के लिए आशारूपी वृन्त का सूक्ष्म प्रयोग[3], वस्तुतः काव्यकार के सुन्दरतम उपमा प्रयोगों में परिगणित किए जा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त रघुवंशम् में इन्दुमती स्वयंवर के अवसर पर प्रयुक्त उपमा के वैशिष्ट्य के कारण तो हमारे विवेच्य काव्यकार कालिदास 'दीपशिखा कालिदास' के रूप में विख्यात ही हो गए।[4] इसी इसी प्रकार उत्प्रेक्षालंकार का मनमोहक एवं तलस्पर्शी प्रयोग करते हुए आम्रकूट पर्वत पर स्थित मेघ में पृथ्वी के स्तन की कल्पना[5] वस्तुतः काव्यकार की आलंकारिक सूक्ष्मदृष्टि का परिचायक कहा जा सकता है।

जहाँ तक अर्थान्तरन्यास अलंकार के सौन्दर्य का प्रश्न है, यहाँ प्रयुक्त सभी सूक्तिस्थल वस्तुतः अर्थान्तरन्यास के सुन्दर प्रयोग के रूप में देखे जा सकते हैं। इसप्रकार के सभी स्थलों को हमने परिशिष्ट में सूचीबद्ध किया है, किन्तु फिर भी एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
संदेशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।।5।।

---

1. मेघदूतम्– 2/31 ।
2. मेघदूतम्– 1/61 ।
3. मेघदूतम्– 1/9 ।
4. संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः।। रघुवंश–6/67।
5. मेघदूतम्– 1/18 ।

प्रस्तुत उदाहरण में यद्यपि यक्ष मूलरूप से मेघ के स्वरूप से सुपरिचित है, किन्तु फिर भी कामार्त होने के कारण, वह यह भूल ही जाता है कि जिसे मैं दौत्यकर्म के लिए चुन रहा हूँ, क्या वह इस कार्य को कर भी पाएगा कि नहीं, उलटे वह तो उसके उच्चकुल की बात करके, उसकी चाटुकारिता करते हुए सन्देश ले जाने के लिए तैयार करने का भरसक प्रयास कर रहा है। यहाँ आरम्भिक तीन चरणों में प्रयुक्त विशेष बात की अन्तिम चरण में प्रयोग हुई सामान्य बात से पुष्टि होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

अन्यत्र भी प्रिय से भावी मिलन की आशा, कष्टों के समय में भी प्रेमियों के हृदयों को सम्भाले रखती है।[1] इसीप्रकार जो लोग अपने मित्र का कार्य करने के लिए स्वीकृति प्रदान कर देते हैं, वे कभी भी अपने प्रयास में शिथिल नहीं होते हैं।[2] ये सभी स्थल वस्तुतः कवि के अपने जीवन के अनुभवों एवं सिद्धान्तों के सार ही कहे जा सकते हैं। वस्तुस्थिति तो यह है कि काव्यकार ने अपने अर्थान्तरन्यासों के प्रयोगों में जीवन के शाश्वत सत्य एवं अनुभूतियों को निबद्ध किया है। इसलिए यहाँ प्रयुक्त प्रत्येक अर्थान्तरन्यास जीवन में पूर्णरूप से आत्मसात् करने योग्य हैं।

इसीप्रकार हम देखते हैं कि महाकवि ने प्रस्तुत काव्य में पद-पद पर उत्प्रेक्षा अलंकार के भी तलस्पर्शी प्रयोग किए हैं। **जैसे**– पके हुए आम के फलों के प्रान्त भाग वाले आम्रकूट पर्वत की चोटी पर विद्यमान मेघ की उत्प्रेक्षा यहाँ पृथ्वी के स्तन के आगे के काले भाग के रूप में की गयी है, जो न केवल सहृदयों को आह्लादित करने वाली है, अपितु देवयुगल भी इसे देखकर भावविभोर हो उठते हैं–

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै–

---

[1]. आशाबन्धः कुसुमसदृशां प्रायशो ह्यंगनानां।
सद्यः पाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि।। मेघदूतम्– 1/10 ।

[2]. मन्दायते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः।। मेघदूतम्– 1/42 ।

स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ।।1/18।।

इसीप्रकार कैलाश पर्वत की हिमाच्छादित चोटियों में शिव के अट्टहास की उत्प्रेक्षा भी अत्यन्त मनभावन बन पड़ी है[1] तथा हिमालय के श्वेत शिखर पर विराजमान मेघ की उत्प्रेक्षा के लिए कवि ने शिव के श्वेत नन्दी बैल के सींग से उछाले गए कीचड़ को उपमान रूप में प्रस्तुत किया है।[2]

इसके अलावा हम यह भी देखते हैं कि प्रस्तुत गीति काव्य में काव्यकार ने अपने रचनाकौशल का प्रयोग करते हुए पौराणिक कथाओं तथा देवताओं के आख्यानों द्वारा भी उपमा एवं उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के मनोरम प्रयोग किए हैं। क्रौंचरन्ध्र में मेघ के प्रवेश करने के अवसर पर इसप्रकार की उपमा के सौन्दर्य को देखा जा सकता है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि काव्यकार कालिदास ने मेघदूत में अलंकारों का प्रयोग अत्यधिक निपुणता के साथ किया है, जो वस्तुतः अर्थाभिव्यक्ति तथा रसाभिव्यंजकता में सहयोगी रहे हैं। विस्तार भय से हम अन्य अलंकारों का विवेचन प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं। श्लोकों की व्याख्या के प्रसंग में इस सम्बन्ध में विस्तार से उल्लेख किया गया है। अतः जिज्ञासु पाठकों को उन–उन स्थलों पर इनके सौन्दर्य का अवलोकन उपयुक्त होगा।

(फ) **मेघदूतम् में प्रयुक्त रस–निरूपण**– प्रस्तुत विवेच्य मेघदूत वस्तुतः विप्रलम्भ श्रृंगार से ओतप्रोत गीतिकाव्य है। धनपति कुबेर के शाप के कारण महिमा से विहीन, कृशकाय यक्ष एवं प्रियतम के वियोग में यक्षिणी का जो चित्र यहाँ प्रस्तुत किया गया है, वह अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। पूर्णतया यौवन सम्पन्न यक्ष अपनी प्राणप्रिया के विरह में

---

1. मेघदूतम्– 1/59 ।
2. मेघदूतम्– 1/53 ।

संतप्त होकर स्वामी के शाप के कारण रामगिरि पर आश्रम बनाकर रहता है और आठ माह व्यतीत होने पर आषाढ़ के प्रथम दिन जब वह रामगिरि के शिखर पर विद्यमान एक मेघ को देखता है, तो उसकी विकलता बढ़ जाती है, आँखों में आँसू आ जाते हैं, किन्तु वह उन्हें किसी प्रकार रोक लेता है, जिसे महाकवि ने इसप्रकार अभिव्यक्ति प्रदान की है–

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधनहेतो–
रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।।1/3।।

अपनी प्रिया के वियोग में वह इतना अधिक कामपीड़ित है कि इस समय उसे मेघ के जड़ होने का भी भान नहीं रहता है और वह अचेतन मेघ से ही अपना संदेश प्रियतमा के पास ले जाने की याचना करता है, जिसके औचित्य को महाकवि 'कामार्ता हि प्रकृतिकृपणा–श्चेतनाचेतनेषु' कहकर सिद्ध करते हैं। मेघदूत वस्तुतः विप्रलम्भ श्रृंगार प्रधान काव्य है, किन्तु फिर भी मेघ के सजीव दूतरूप में चित्रण के माध्यम से यहाँ सम्भोग श्रृंगार के अवसरों को भी कवि ने खोज लिया है, क्योंकि मानवीय भावों से ओतप्रोत प्रकृति उनकी इन भावनाओं की अभिव्यक्ति में सहायिका रही है, तभी तो निर्विन्ध्या नदी मेघ की प्रेयसी बन जाती है, जिसके हावभावों के चित्रण में कवि ने सम्भोग श्रृंगार का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है–

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकांचीगुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः।
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य,
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु।।1/29।।

इसीप्रकार विदिशा की वेत्रवती नदी में जलपान के व्याज से मेघ के लिए भ्रूभंगयुक्त कामिनी की कल्पना करके, अधरपान का

सुखद आनन्द प्रदान कराया है, जिसे सम्भोग शृंगार का सुन्दर चित्र कहा जा सकता है।[1] सम्भोग शृंगार के चित्रण में एक स्थल पर कवि ने अपने दार्शनिक विचारों को भी सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान की है, जहाँ पर मेघ की छाया को स्वच्छ चित्त में 'चित्' पुरुष की छाया के समान बताया है–

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्माऽपि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम्।[2]

विप्रलम्भ शृंगार प्रधान काव्य में भी सम्भोग शृंगार के चित्रण रूप इस कार्य में कवि की सफलता का एक मात्र कारण यही है कि उनका दूत 'मेघ' यहाँ धूम, ज्योति, जल एवं वायु का संघातमात्र न होकर कामरूपधारी इन्द्र का प्रधान पुरुष, सहृदय तथा सरितारूप अपनी प्रियतमाओं के अधरों का पान करने वाला 'रसिक' नायक जो है।

इसीलिए वह तो पुष्पों का चयन करने वाली स्त्रियों के मुखों को छाया प्रदान करके, उनके सन्ताप को दूर भी करता है[3] तथा उज्जयिनी की पौरांगनाओं की बिजली की रेखा के चमकने से चंचल चितवनों में रमण करते हुए सुखद अनुभूति भी प्राप्त करता है–

विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौरांगनानां
लोलापांगैर्यदि न रमसे लोचनैर्वंचितोऽसि।।1/28।।

इसप्रकार हम देखते हैं कि मेघदूत में विप्रलम्भ शृंगार की मुख्यता होते हुए भी रसिक मेघ के कारण सम्भोग शृंगार के चित्रों की उपस्थिति भी पर्याप्तरूप में रही है। इसके अलावा अपनी प्रियतमा के

---

[1]. तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मात्
सभ्रूभंगं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मिः।।1/25।।

[2]. मेघदूतम्– 1/44 ।

[3]. मेघदूतम्– 1/28 ।

साथ रमण करने की कल्पनादि में कवि ने कुछ सम्भोग श्रृंगार विषयक सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किए हैं।

साथ ही, वियोग से सन्तप्त प्रेयसी यक्षिणी के अत्यन्त दयनीय चित्रों की प्रस्तुति के कारण यहाँ पर करुण रस भी विप्रलम्भ श्रृंगार के अंगरूप में प्रस्तुत हुआ है, क्योंकि यक्ष की विरहदग्ध प्रियतमा की दयनीय दशा को देखकर तो मेघ के भी अश्रु आ जाने की बात[1] का यहाँ हृदयद्रावक चित्रण जो किया गया है, जिसके कारण कुछ विवेचक विद्वानों ने इसे शोक काव्य की संज्ञा भी प्रदान की है,[2] जो समीचीन प्रतीत नहीं होती है। हाँ, करुणरस को यहाँ अंगरूप में अवश्य स्वीकार किया जा सकता है।

क्योंकि प्रस्तुत काव्य में ऐसे अनेक हृदयद्रावक चित्रों को उकेरा गया है, जिनका चिन्तन करके सहृदय सामाजिक भी द्रवित होकर यक्ष और यक्षिणी दोनों के प्रति ही सहानुभूति रखने लगता है, जिनमें मानवती प्रियतमा का चित्र धातु के रंगों से शिलातल पर बनाकर स्वयं को उसके चरणों में गिराने के प्रयास में बार–बार अश्रुओं के उमड़ने से, चित्र में भी प्रिया के साथ संयोग न हो पाने का तलस्पर्शी चित्रण,[3] विरह–व्यथा के कारण शय्या पर पड़ी हुई कृशकाय यक्षिणी को कृष्णपक्ष की पूर्वदिशा में क्षीण चन्द्रकला कहना[4] तथा निरन्तर दुःखी रहने से होने वाले जागरण के कारण आँखों में आँसू भरे हुए अधमरी सी पड़े रहने से मेघाच्छन्न दिन में कमलिनी के समान

---

[1]. सा संन्यस्ताभरणमबला पेशलं धारयन्ती
शय्योत्संगे निहितमसकृद् दुःखदुःखेन गात्रम्।
त्वामप्यस्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं,
प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा।।2/33।।

[2]. संस्कृत साहित्य का इतिहास, ए. बी. कीथ, पृष्ठ–107 ।

[3]. मेघदूतम्– 2/46 ।

[4]. मेघदूतम्– 2/30 ।

कारुणिक चित्रण, ये सभी स्थल अंगरूप में वर्णित करुणरस के स्थलों के रूप में स्वीकार किए जा सकते हैं।

इसी प्रसंग में एक बात विशेषरूप से यह भी उल्लेख्य है कि मेघदूत में रस के अनुरूप ही छन्द का चयन भी किया गया है, जिसके कारण यहाँ पर अभिव्यक्ति अत्यन्त सरस एवं प्रभावी हो गयी· है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने महाकवि के मन्दाक्रान्ता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।[1] इसलिए प्रस्तुत मेघदूत में हमें प्रमुख रस विप्रलम्भ शृंगार तथा अंगरूप में सम्भोग शृंगार तथा करुण रसों को स्वीकार करने में किसी प्रकार की विप्रतिपत्ति प्रतीत नहीं होती है।

(ब). **मेघदूतम् में प्रयुक्त प्रकृति–चित्रण–** मेघदूत की महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि महाकवि ने यहाँ पर व्यक्ति और प्रकृति के बीच में एक अद्भुत घनिष्ठता का आधान किया है, जिसे यहाँ पद–पद पर देखा जा सकता है। **जैसे,** यक्षिणी के वर्णन में हम नारी एवं प्रकृति की एका–त्मकता के सहज ही दर्शन कर सकते हैं–

श्यामास्वंगं चकितहरिणी प्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्,
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि! सादृश्यमस्ति।।[2]

यहाँ पर कवि ने प्रियंगुलता में अपनी प्रियतमा के अंगों को, भयभीत हरिणों के नेत्रों में उसकी चितवन को, चन्द्रमा में मुख की कान्ति को, मोरों के पंखों में केश–कलापों को, नदियों की छोटी–छोटी लहरों में उसके भ्रू–विलासों को देखा है।

इस प्रसंग में विशेषरूप से ध्यातव्य है कि यद्यपि गीतिकाव्यों का वर्ण्यविषय प्रायः प्रणय की मधुरता ही रही है, किन्तु इसके

---

[1]. सुवसा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता विराजते।
तदश्वदमकस्येव काम्बोजतुरगांगना।।

[2]. मेघदूतम्– 2/44 ।

अतिरिक्त भी यहाँ पर हमें सांसारिक, धार्मिक, आध्यात्मिक तथा नीतिपरक सभी विषयों का वर्णन मिलता है। फिर भी यह तो कहा ही जा सकता है कि प्रणयपरक काव्यों को भाव–प्रवण तथा हृदयस्पर्शी बनाने में प्रकृति का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, क्योंकि यहाँ तो हमें कमल और कुमुदिनी, चकोर, चक्रवाक, चातक आदि सभी तो मानव–जीवन तथा प्रेम के अनेक पक्षों के अत्यन्त निकटता से सम्बद्ध दिखायी देते हैं।

इसके अतिरिक्त उल्लेखनीय एवं महत्त्वपूर्ण बिन्दु यह भी है कि मेघदूत में हमें वस्तुतः बाह्य तथा अन्तःप्रकृति दोनों का ही अभिराम चित्रण देखने को मिलता है, यहाँ पर बाह्य प्रकृति का जितना सुन्दर एवं मनोरम चित्रण किया गया है, वैसा ही मनभावन एवं मार्मिक चित्रण अन्तःप्रकृति का भी हुआ है, जिसका हम यहाँ अत्यन्त संक्षेप में वर्णन कर रहे हैं–

(i) **बाह्य प्रकृति–** काव्यकार कालिदास का बाह्य प्रकृति के सभी उपादानों से गहनता से परिचय रहा है, जिसे उनकी सूक्ष्मदृष्टि के परिचायक के रूप में मानने के साथ–साथ उनके प्रकृति विषयक गहन प्रेम के रूप में भी देखा जा सकता है। इसीलिए यहाँ पर उन्होंने पर्वत, वन, नदी, उपवन, लता, निर्झर, पशु, पक्षी आदि सभी का मन भावन चित्रण किया है। ग्रन्थ के आरम्भ में ही देखिए सीता के स्नान से पवित्र जलों वाले रामगिरि को वे घने नमेरु वृक्षों से हरा भरा चित्रित करके अपने प्रकृति विषयक प्रेम को ही अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं,[1] जिसकी शोभा में वृद्धि मेघरूपी मदमस्त हाथियों की वप्रक्रीड़ा से स्वतः ही हो जाती है–

आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीड़ापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श।। 1/2

[1]. मेघदूतम्– 1/1 ।

यह काव्यकार का प्रकृति प्रेम ही है कि उन्होंने यहाँ पर राजहंस,[1] हाथी[2], पके हुए आम्र के वन[3], कमल[4], दावाग्नि[5], हल से जोती हुई भूमि[6], भारतीय आदर्श ग्रामों का रमणीय वातावरण[7], नदी तट, उसकी भँवर एवं वहाँ स्थित पक्षी[8] आदि सभी प्राकृतिक उपादानों का मनभावन चित्रण किया है, जो सहृदय को अनायास ही आकर्षित कर लेते हैं।

यहाँ कुछ ही उदाहरण प्रस्तुत हैं, जहाँ पर मेघ के कर्णप्रिय गर्जन को सुनकर मानसरोवर जाने के लिए उत्कण्ठित राजहंस आकाशमार्ग से रास्ते का भोजन (पाथेय) साथ में लिए हुए कैलाश पर्वत की ओर जाते हुए चित्रित किए गए हैं–

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः।
आ कैलासाद्‌बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः।
सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः।।1/11।।

इसीप्रकार पके हुए आम्र फलों वाला आम्रकूट पर्वत, चोटी पर विराजमान कृष्णवर्ण मेघ के साथ मध्यभाग से काला तथा शेष भाग गौर वर्ण सा पृथ्वी के स्तन के समान प्रतीत हो रहा है, जिसे देखकर देव–मिथुन भी असीम आनन्द का अनुभव करते हैं–

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै–
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे।

---

[1]. मेघदूतम्– 1/11 ।
[2]. मेघदूतम्– 1/2 ।
[3]. मेघदूतम्– 1/18 ।
[4]. मेघदूतम्– 1/11 ।
[5]. मेघदूतम्– 1/17 ।
[6]. मेघदूतम्– 1/16 ।
[7]. मेघदूतम्– 1/24 ।
[8]. मेघदूतम्– 1/29 ।

नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ।।1/18।।

इसके अतिरिक्त दशार्ण देश की प्रकृति का वर्णन भी सहृदय को बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है, जहाँ पर खिले हुए केतकी के पुष्पों से पीतवर्ण उपवन, घरेलू कौओं द्वारा बनाए गए घौंसलों से युक्त गलियों में विद्यमान पीपल वृक्ष, पके हुए काले जामुनों का मनोरम चित्रण किया गया है–

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नैः–
नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः।
त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः
संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः ।।1/24।।

बाह्य प्रकृति के इसीप्रकार के अनेक चित्र हमें उत्तर मेघ में भी सहज ही देखने को मिल जाते हैं, जहाँ सभी ऋतुओं में खिलने वाले पुष्पों, कल्पवृक्ष द्वारा यक्षों को सभी प्रकार की प्रसाधन सामग्री को प्रदान करना, जैसी बातों का उल्लेख किया गया है, जिनका हम यहाँ विस्तार भय से उल्लेख नहीं कर रहे हैं।

(ii) **अन्तःप्रकृति–** उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत काव्य में प्रकृति मात्र दृश्य न होकर मानवीय भावनाओं, विचारों तथा अनुभूतियों से ओतप्रोत रही है, यही कारण है कि वह अपने हावभावों एवं हासविलास से यहाँ पर सहृदय रसिक को अत्यधिक प्रभावित करती है। **जैसे–** मेघ की ही बात ले लें, यहाँ पर वह धूम, ज्योति, सलिल और वायु का संघातमात्र न होकर कर्मठ, स्नेही, सक्रिय, दयालु, उत्कृष्ट मित्र, आज्ञाकारी, प्रत्युत्पन्नमति, कुशल दूत भी है, जो अपने कर्तव्यों का पूर्णतया निर्वहण करते हुए थक जाने पर पर्वत के शिखरों पर विश्राम करता है एवं प्यासी धरती और नदियों को पूर्णतया तृप्त करता है।

इसीप्रकार जब यक्ष स्वप्न में अपनी प्रियतमा से मिलन के लिए हाथ उठाता है, तो उसकी इस दयनीय दशा को देखकर वनदेवियाँ भी

बड़े–बडे मोतियों के समान अश्रु बहाती हैं,[1] जिसे वस्तुतः प्रकृति का मानवीय भावनाओं के साथ तादात्म्य ही कहा जाएगा। वस्तुतः इस काव्य में कालिदास का प्रकृति के साथ रागात्मक सम्बन्ध रहा है, तभी तो यहाँ पर प्रकृति के सभी उपादान मानवीय हर्ष तथा शोक में प्रफुल्लित तथा दुःखित होते हैं। इसके अतिरिक्त समागम एवं वियोग के रहस्य से मेघदूत की प्रकृति पूर्णतया परिचित रही है। तभी तो लम्बे समय के बाद मेघ से मिलन होने पर अचेतन रामगिरि भी अपने उष्ण अश्रुओं का विमोचन करता है–

काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य।
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुंचतो बाष्पमुष्णम्।।[2]

इसप्रकार के अन्तःप्रकृति विषयक चित्रण मेघदूत में पद–पद पर देखे जा सकते हैं, विस्तार भय से हम उनका वर्णन यहाँ नहीं कर रहे हैं।

(भ) **मेघदूतम् में प्रतिपादित चरित्र चित्रण–** उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत काव्य में महाकवि कालिदास ने आरम्भ से अन्त तक प्रत्यक्षरूप से केवल यक्ष को ही वर्णित किया है, किन्तु अप्रत्यक्षरूप से यहाँ उसकी पत्नी यक्षिणी तथा सन्देश ले जाने वाला 'मेघ' भी पात्ररूप में ही चित्रित किए गए हैं, क्योंकि इन तीनों की उपस्थिति हमें इस काव्य में आरम्भ से लेकर अन्त तक प्रतीत हो रही है। उत्तरमेघ में तो यक्षिणी का कारुणिक चरित्र ही सहृदय पाठक को अत्यधिक प्रभावित करता है। इन तीनों ही पात्रों का हम यहाँ अत्यन्त संक्षेप में चरित्र–चित्रण कर रहे हैं–

(i) **यक्ष–** कुबेर के सेवकरूप में इसका चरित्र यद्यपि आरम्भ में पाठक को लेशमात्र भी प्रभावित नहीं करता है, क्योंकि अपनी नवोढ़ा प्रियतमा के अन्धे प्रेम में वह अपने कर्तव्य से पूर्णतया विमुख हो गया

---

[1]. मेघदूतम्– 2/44 ।
[2]. मेघदूतम्– 1/12 ।

है, जिसके परिणामस्वरूप इसे शापग्रस्त होकर एक वर्ष पर्यन्त अपनी प्रियतमा से दूर रामगिरि पर्वत पर रहना पड़ता है, किन्तु बाद में उसकी दयनीय स्थिति के कारण सहृदय की सहानुभूति प्राप्त करने में यह सफल हो जाता है। इस पात्र के माध्यम से कवि पाठक को यह सन्देश प्रदान करने में पूर्णतया सफल रहा है कि दाम्पत्य–प्रेम में पवित्रता, उदात्तता, मर्यादा तथा कर्तव्यभावना का होना अनिवार्य है। अन्यथा उसे पीड़ित होना पड़ता है। इस पात्र में हमें काव्यकार स्वयं भी दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ पर यह एक भावुक एवं श्रेष्ठ मित्र के रूप में चित्रित किया गया है तथा मेघ से भी यह अपनी मित्रता का निर्वाह करने की अपेक्षा करता है।

(ii) **यक्षिणी–** प्रस्तुत मेघदूत गीतिकाव्य के नायक यक्ष की प्रेयसी के रूप में इसका चित्रण किया गया है, जिसने यक्ष की अपेक्षा सहृदय को अधिक प्रभावित किया है, क्योंकि यहाँ पर यह एक पति-व्रता, सती, साध्वी भारतीय नारी के रूप में चित्रित की गयी है। साथ ही, वह आज्ञाकारिणी भी प्रतीत होती है, क्योंकि कुबेर के शाप से केवल यक्ष की शक्तियों का ही तो अपहरण किया गया था, यदि वह चाहती तो स्वयं भी आकाशमार्ग से अपने प्रियतम के पास जा सकती थी, किन्तु वह ऐसा नहीं करती है, क्योंकि ऐसा करने से उसके प्रियतम को अपेक्षाकृत अधिक हानि की सम्भावना भी हो सकती थी।

इस दृष्टि से उसने अपने राजा कुबेर के आदेश का अक्षरशः पालन करते हुए प्रियतम के वियोग में ही दीर्घकालिक समय को व्यतीत किया है। कुल मिलाकर यहाँ उसका आदर्श चरित्र ही वर्णित हुआ है, क्योंकि वह तो प्रतिक्षण अपने प्रियतम के वियोग में उसी के चिन्तन में डूबी हुई दिन–रात रोती रहती है, उसे तो अपने शरीर की भी सुधबुध नहीं है। विरह की श्वासों ने उसके अधर को शुष्क कर दिया है। तेल आदि के अभाव में उसके बाल भी रूखे हो गए हैं।

स्वप्न में पति के मिलन की इच्छा को उसकी अश्रुधारा ही विफल कर देती है।[1]

वह वीणावादन में निपुण है[2], विरह के कारण उसकी कारुणिक दशा की उपमा के लिए कवि ने यहाँ विरह से व्याकुल चकवी, पाले से मुरझाई हुई कमलिनी, मेघ से आच्छादित चन्द्रकला जैसे मार्मिक उपमानों का प्रयोग किया है। यहाँ तक कि उसकी दयनीय दशा को देखकर तो मेघ भी अपनी अश्रुधारा छोड़ने के लिए मजबूर हो जाता है, क्योंकि कोमल हृदय वाले सभी व्यक्ति दयालु स्वभाव के होते हैं।[3] वह गणितशास्त्र में भी कुशल है, तभी तो अपने प्रियतम के वियोगी दिवसों की गणना देहलीज पर पुष्पों को रखकर करती रहती है।[4]

(ii) **मेघ**– एक सच्चे मित्र के रूप में चित्रित यह, प्रस्तुत काव्य में पूर्णतया जीवन्त एवं महत्त्वपूर्ण पात्र के रूप में वर्णित हुआ है, यही कारण है कि इस काव्य का नामकरण भी इसी के नाम से किया गया है। यह रसिक प्रवृत्ति का है, तभी तो मार्ग में नदीरूप अपनी अनेक प्रियतमाओं के अधरों का आस्वादन करते हुए जाता है।[5] ग्रामीण स्त्रियों की चितवनों से अठखेलियाँ करते हुए प्रस्थान करता है।[6] विरह से दुबले अंगों वाली नदियों को अपने जल से पुष्ट करता है।[7] अपने मित्र पर्वतों के शिखरों पर विराजमान होकर अपनी मार्ग की थकान को मिटाता है तथा उनके ग्रीष्म के सन्ताप को वृष्टि द्वारा दूर करता है।

वह कोमल हृदय भी है, तभी तो विरहिणी यक्षिणी की दयनीय दशा को देखकर अश्रुमोचन करता है। धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत

---

1. मेघदूतम्– 2/31 ।
2. मेघदूतम्– 2/27 ।
3. मेघदूतम्– 2/34 ।
4. मेघदूतम्– 2/24 ।
5. मेघदूतम्– 1/25 ।
6. मेघदूतम्– 1/30 ।
7. मेघदूतम्– 1/31 ।

होने के कारण उज्जयिनी में महाकाल की आरती के समय पर गम्भीर गर्जन करता है।[1] सघन होकर वह शिव–पार्वती के लिए सीढ़ियों का पवित्र कार्य करता है।[2] सूखे वृक्षों एवं लताओं को जीवनदान देता है, प्यासी पृथ्वी की प्यास बुझाकर उसे सौंधी गन्ध से युक्त करता है, पक्षियों के गर्भाधान में सहयोगी होकर,[3] विरह के कारण अधमरी यक्षिणी को मेघ का सन्देश प्रदान करके नया जीवन देकर, अपने उपकारक भाव को भी अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

(म) **मेघदूतम् का नामकरण**– मेघदूत पद की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की जा सकती है– **प्रथम,** मेघः एव दूतः यस्मिन् काव्ये तत्, मेघदूतम् अर्थात् जिस काव्य में मेघ को दूत रूप में वर्णित किया गया है, यहाँ बहुब्रीहि समास करते हुए 'तमधिकृत्य कृतं काव्यम्' से 'मेघदूतम्' पद की निष्पत्ति हुई है। तथा **द्वितीय,** मेघः एव दूतः मेघदूतः। मेघदूतमधिकृत्य कृतं काव्यं मेघदूतम्, अर्थात् मेघरूपी दूत को आधार बनाकर, कथावस्तु के रूप में नियोजित करके, जिस काव्य की रचना की गयी। इसप्रकार का काव्य ग्रन्थ ही मेघदूत है।

(य) **मेघदूत में प्रयुक्त स्थलों व नदियों का परिचय**– यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो मेघमार्ग को निर्देशित करने के अवसर पर जिन–जिन स्थानों तथा नदियों का उल्लेख हुआ है, वे सभी काव्यकार कालिदास के जीवन में विशेष महत्त्व रखती हैं। यहाँ हम विभिन्न विद्वानों द्वारा बतायी गयी उनकी वर्तमान सम्भावित स्थिति के विषय में अत्यन्त संक्षेप में कथन कर रहे हैं–

(1) **अलका नगरी**– कैलाश पर्वत पर विद्यमान यक्षों की नगरी का नाम (पूर्वमेघ–7)।

---

[1]. मेघदूतम्– 1/39 ।
[2]. मेघदूतम्– 1/64।
[3]. मेघदूतम्– 1/9 ।

(2) **अवन्ती नगरी**-- रामगिरि के उत्तर में मालवा प्रदेश का पश्चिमी भाग (पूर्वमेघ–32)।

(3) **उज्जैन नगरी**– मालवा प्रदेश की राजधानी, आधुनिक मध्य प्रदेश में स्थित उज्जैन, इसी को 'विशाला' भी कहा जाता है (1/29)।

(4) **विदिशा नगरी**– यह प्राचीन भारत में दशार्ण प्रदेश की राजधानी के रूप में विख्यात रही है, जो आधुनिक भारत के मध्य प्रदेश में भीलसा नगर रूप में प्रसिद्ध है (पूर्वमेघ–25)।

(5) **दशपुर नगर**– पुराणों में वर्णित प्रसिद्ध राजा रन्तिदेव का नगर। मेघदूत में वर्णित चर्मण्वती नदी इसी नगर के उत्तर भाग में विद्यमान है। कुछ विद्वान् इसी को मन्दसौर तथा अन्य कुछ धौलपुर मानने के पक्षधर रहे हैं (पूर्वमेघ–53)।

(6) **दशार्ण प्रदेश**– मालवा का पूर्वी भाग, इसी की राजधानी विदिशा थी, इसी प्रदेश में वेत्रवती नदी भी प्रवाहित होती है। कुछ विद्वान् छत्तीसगढ़ के ही एक भाग को 'दशार्ण' प्रदेश मानने के पक्षधर हैं (पूर्वमेघ–24)।

(7) **ब्रह्मावर्त प्रदेश**– सरस्वती तथा दृषद्वती इन दोनों नदियों के बीच के भाग को ब्रह्मावर्त प्रदेश की संज्ञा प्रदान की गयी है, जो वस्तुतः वर्तमान में दिल्ली का पूर्वोत्तर प्रदेश माना गया है (पूर्वमेघ–53।

(8) **माल प्रदेश**– मल्लिनाथ के मत में यह वस्तुतः पर्वत के समान उन्नत प्रदेश था, जबकि कुछ विद्वान् मध्यप्रदेश के उत्तर भाग में विद्यमान 'माल्दा' को ही माल' मानने के पक्षधर हैं (पूर्वमेघ–16)।

(9) **कनखल तीर्थस्थल**– हरिद्वार के पास में स्थित पवित्र तीर्थ स्थल (पूर्वमेघ–56)।

(10) **कुरुक्षेत्र तीर्थस्थल**– महाभारत युद्धस्थली हरियाणा के थानेसर के पास में स्थित विशाल मैदान, जिसे तीर्थ के रूप में मान्यता प्राप्त है (पूर्वमेघ–53)।

(11) **रामगिरि पर्वत**– मल्लिनाथ ने इसे 'चित्रकूट' कहा है, जो वस्तुतः बुन्देलखण्ड में स्थित है, जबकि कुछ विद्वान् इसे मध्यप्रदेश में विद्यमान रामगढ़ तथा अन्य रामटेक पर्वत को ही रामगिरि मानने के पक्ष में हैं (पूर्वमेघ–1)।

(12) **नीचैः पर्वत**– यह वस्तुतः विदिशा अथवा भीलसा के पास में स्थित पर्वत माना गया है (पूर्वमेघ–32)।

(13) **आम्रकूट पर्वत**– अमरकण्टक पर्वत, नर्मदा नदी का उद्गम स्थल (पूर्वमेघ–26)।

(14) **कैलास पर्वत**– हिमालय की उत्तर दिशा में स्थित रमणीय पर्वत, इसी के दक्षिण में मानसरोवर विद्यमान है(पूर्वमेघ–11)।

(15) **क्रौंच पर्वत**– पुराणों में प्रसिद्ध पर्वत, जिसे कार्तिकेय ने विदीर्ण किया था (पूर्वमेघ–63)।

(16) **देवगिरि पर्वत**– विद्वानों ने इसे झाँसी के पास आधुनिक देवगढ़ के रूप में स्वीकृति प्रदान की है (पूर्वमेघ–47)।

(17) **विन्ध्य पर्वत**– संस्कृत साहित्य में इसका अत्यधिक वर्णन हुआ है। आर्यावर्त एवं दक्षिणात्य के बीच में स्थित आधुनिक विन्ध्याचल ही वस्तुतः विन्ध्य पर्वत है (पूर्वमेघ–19)।

(18) **हिमालय पर्वत**– उत्तर में 2500 कि.मी के विशाल क्षेत्र में फैला हुआ पर्वत, इसका काव्यकार ने कुमारसम्भव में विस्तार से वर्णन किया है। (मेघदूत–1/58)

(19) **गन्धवती नदी**– मालवा प्रदेश में बहने वाली शिप्रा की सहयोगी नदी (पूर्वमेघ–39)।

(20) **गम्भीरा नदी**– यह भी मालवा में बहने वाली शिप्रा की सहायक नदी के रूप में प्रसिद्ध है (पूर्वमेघ–46)।

(21) **चर्मण्वती नदी**– विन्ध्य पर्वत के वायव्य कोण से निकलने वाली नदी, जो मालवा में बहने वाली तथा यमुना की सहायक नदी के रूप में जानी जाती है। वर्तमान में इसी का नाम चम्बल है(पूर्वमेघ–51)

(22) **जाह्नवी नदी**– यह हिमालय की गंगोत्री से प्रवाहित होती है, सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में इसका अत्यधिक वर्णन हुआ है, इसी का अन्य नाम भागीरथी या गंगा भी है (पूर्वमेघ–56)।

(23) **निर्विन्ध्या नदी**– यह भी विन्ध्यपर्वत से निकली है। कालिदास ने इसका अत्यन्त मनोरम वर्णन किया है (पूर्वमेघ–30)।

(24) **यमुना नदी**– उत्तरभारत की प्रसिद्ध नदी, जिसका प्रयाग राज में गंगा के साथ मिलन होता है। इसी को 'कालिन्दी' भी कहते हैं (मेघदूत– 1/57)।

(25) **रेवा नदी**– यह विन्ध्य पर्वत के पूर्व में अमरकण्टक पर्वत से निकलती है, इसी का अन्य नाम नर्मदा भी है (मेघदूत– 1/19)

(26) **वेत्रवती नदी**– दशार्ण प्रदेश में प्रवाहित होने वाली नदी, जो विन्ध्य के उत्तर से निकलकर मालव प्रदेश से होकर बहती हुई यमुना में मिल जाती है, इसी को बेतवा भी कहते हैं (मेघदूत– 1/26)

(27) **सरस्वती नदी**– हिमालय से निकली हुई नदी, जो महाभारत काल में कुरुक्षेत्र के पास बहती थी, वर्तमान में लुप्त हो गयी है (मेघदूत–1/55)।

(28) **शिप्रा नदी**–उज्जयिनी में बहने वाली पवित्र नदी, जो आज भी इसी नाम से प्रसिद्ध है। (मेघदूत–1/34)

(29) **सिन्धु नदी**– यह चम्बल की सहयोगी छोटी नदी है, इसी का अन्य नाम काली सिन्धु भी है। (मेघदूत–1/31)

(30) **मानसरोवर**– कैलाश पर्वत पर स्थित विशाल झील, इसके विषय में प्रसिद्ध है कि इसका निर्माण ब्रह्मा ने स्वयं अपने मन से

किया था। इसलिए इसे मानसरोवर भी कहा जाता है। वर्तमान समय में यह तिब्बत में विद्यमान है। (मेघदूत– 1/11, 67)

इन स्थलों के स्वाभाविक एवं सजीव वर्णन से प्रतीत होता है कि काव्यकार कालिदास ने इन स्थानों पर स्वयं भी भ्रमण किया था, जिससे उनकी यायावरीय प्रवृत्ति का भी आभास होता है।

(र) **कालिदास की राष्ट्रीय भावना**– इसी प्रसंग में यह बिन्दु भी विशेषरूप से ध्यातव्य है कि हमारे विवेच्य काव्यकार कालिदास यद्यपि कुमार सम्भव तथा रघवंश दोनों ही महाकाव्यों में राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत रहे हैं, किन्तु फिर भी उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि विप्रलम्भ शृंगार से ओतप्रोत प्रस्तुत लघुकृति मेघदूत में भी उनकी यह भावना पूर्णरूप से अभिव्यक्त हुई है, क्योंकि यहाँ उन्होंने भारत वर्ष की गंगा, यमुना, गन्धवती, शिप्रा, गम्भीरा, चर्मणवती, जाह्नवी, रेवा, वेत्रवती सरस्वती, सिन्धु आदि ग्यारह प्रमुख नदियों के मनोरम चित्र प्रस्तुत किए हैं।

साथ ही, आम्रकूट, कैलाश, क्रौंच, नीचै, माल, रामगिरि, विन्ध्य और हिमालय आठ महत्त्वपूर्ण पर्वतों, अलका, अवन्ती, उज्जयिनी और विदिशा चार बड़ी एवं प्रसिद्ध नगरियों, दशार्ण, ब्रह्मावर्त और माल आदि तीन प्रदेशों, कुरुक्षेत्र एवं कनखल इन दो बड़े तीर्थों आदि का विस्तार से वर्णन करने के साथ–साथ प्राचीन भारतीय समाज की सांस्कृतिक परम्पराओं, धार्मिक आस्थाओं तथा सामाजिक व्यवस्थाओं का मनोहारी चित्रण करते हुए सम्पूर्ण भारत का ही मानो मनभावन चित्र अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत किया है, जिससे उनकी राष्ट्रीय भावना की प्रबल अभिव्यक्ति हुई है।

(व) **मेघदूतम् के विभिन्न संस्करण**– मेघदूत काव्य की लोक–प्रियता का ही परिणाम है कि अनेकानेक विद्वानों ने अपनी मेधा के अनुसार इसकी व्याख्या का प्रशंसनीय प्रयास किया है। वर्तमान में इसकी 50 से अधिक तो संस्कृत टीकाएँ ही उपलब्ध हैं, जिनमें आचार्य

मल्लिनाथ की **संजीवनी टीका** अत्यधिक लोकप्रिय तथा प्रामाणिक टीका रही है, जिसका हमने प्रस्तुत संस्करण में नियोजन भी किया है।

इसी प्रसंग में विशेषरूप से ध्यातव्य यह भी है कि मेघदूत के विभिन्न संस्करणों में श्लोकों की संख्या भिन्न–भिन्न रही है, जो 108 से लेकर 127 तक प्राप्त होती है, प्रस्तुत संस्करण में हमने 121 श्लोकों को मूलरूप से प्रस्तुत किया है, यहाँ हम अत्यन्त संक्षेप में मेघदूत की टीकाओं के नामों एवं व्याख्याओं में प्रयुक्त श्लोक संख्या के विषय में उल्लेख कर रहे हैं–

प्राचीन विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किए गए मेघदूत के संस्करण–

1. आचार्य मल्लिनाथ — संजीवनी — 121 श्लोक (66+55)
2. आचार्य बल्लभदेव — चारित्रवर्धनी — 115 श्लोक (63+52)
   (सर्वाधिक प्राचीन टीका)
3. दक्षिणावर्त, पूर्णसरस्वती एवं परमेश्वर कृत टीका — 110 श्लोक
4. जैन विद्वानों द्वारा की गयी टीका — (सर्वाधिक) 127 श्लोक
5. आचार्य जिनसेन — पार्श्वाभ्युदय में समस्यापूर्तिरूप में — 120 श्लोक
6. जनार्दन, लक्ष्मी निवास, महिमसिंहगणि एवं मेघलता — 126 श्लोक
7. नेमिदूत, शीलदूत, सारोद्धारिणी — 125 श्लोक
8. सरस्वती तीर्थ — 123 श्लोक
9. चरित्रवर्धन — 122 श्लोक
10. सिंहली अनुवाद — 118 श्लोक
11. तिब्बती अनुवाद — 117 श्लोक
12. मकरन्द मिश्र टीका — 118 श्लोक
13. रामनाथ तर्कालंकार टीका — 116 श्लोक
14. शाश्वत, सनातन गोस्वामी एवं हरगोविन्द वाचस्पति टीका — 115 श्लोक
15. आचार्य भगीरथ मिश्र टीका — 114 श्लोक

आधुनिक विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किए गए मेघदूत के संस्करण–

16. मैक्डॉनल द्वारा सम्पादित — 111 श्लोक

17. प्रो. विल्सन द्वारा सम्पादित — 115 श्लोक
18. गिल्डमिस्टर द्वारा सम्पादित — 113 श्लोक
19. एस.के. दे द्वारा सम्पादित — 111 श्लोक
20. स्टेंत्सलर द्वारा सम्पादित — 112 श्लोक
21. हर्टेल द्वारा सम्पादित — 108 श्लोक

मेघदूत के अन्य उल्लेखनीय संस्करण–

22. प्रो. एच.एच. विल्सन(कलकत्ता) — 1813 ई
23. गिल्डमिस्टर (बॉन, जर्मनी) — 1841 ई.
24. मदनमोहन तर्कालंकार (कलकत्ता) — 1850 ई.
25. गोपाल रघुनाथ नान्दर्जिकर (पूना) — 1864 ई.
26. श्री कृष्णशास्त्री भटवाडेकर (पूना) — 1866 ई.
27. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (कलकत्ता) — 1866 ई.
28. फेडरिक स्टेत्सलर (ब्रेसलो) — 1874 ई.
29. पं. काशीनाथ पाण्डुरंग (मुम्बई) — 1877 ई.
30. पं. काशीनाथ बाबू पाठक (पूना) — 1894 ई.

उल्लेखनीय है कि हमने यहाँ पर प्रमुख संस्करणों का ही उल्लेख किया है, इसके अतिरिक्त भी 150 से अधिक टीका और व्याख्याएँ मेघदूत काव्य पर विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखी गयीं, जिनका हम विस्तार भय से यहाँ कथन नहीं कर रहे हैं।

❀❀❀

।। श्रीः ।।

मेघदूतम्

पूर्वमेघः

मेघदूत की पृष्ठभूमि– प्रस्तुत काव्य वस्तुतः काव्यकार कालिदास ने कुमारसम्भव महाकाव्य की रचना के बाद लिखा, कुमार सम्भव में महादेव और पार्वती की केलिक्रीड़ाओं का अनावृत वर्णन करने के कारण नाराज़ राजा ने उन्हें दण्ड स्वरूप सभी अधिकारों से वंचित करके नवोढ़ा प्रियतमा से अलग कही दूर निर्जन प्रदेश में भेज दिया, जिस पीड़ा को यक्ष के माध्यम से यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

इसप्रकार इस काव्य में यक्ष वस्तुतः स्वयं कालिदास का ही प्रतिनिधित्व करता है, यक्ष की पीड़ा कवि की अपनी पीड़ा है, क्योंकि यह शाश्वत तथ्य है कि कवि प्रायः स्वयं की पीड़ा को ही व्यंजना का अवलम्ब लेकर काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। मेघदूत वस्तुतः व्यंजना प्रधान विप्रलम्भ श्रृंगाररस से ओतप्रोत काव्य है, संभोग–श्रृंगार, करुण आदि दूसरे रस यहाँ अंग रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

अवतरणिका– 'मेघदूत' नामक अपने गीतिकाव्य की मूलकथा का आरम्भ करते हुए, काव्यकार कालिदास' वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण प्रस्तुत करते हैं कि–

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ।।1।।

अन्वय–स्वाधिकारात् प्रमत्तः, कान्ता–विरह–गुरुणा, वर्ष–भोग्येण भर्तुः शापेन, अस्तम् गमित–महिमा, कश्चित् यक्षः जनक–तनया–स्नान–पुण्य–उदकेषु, स्निग्ध–छाया–तरुषु, रामगिरि–आश्रमेषु, वसतिम् चक्रे।।1।।

अनुवाद– अपने कर्तव्यपालन के प्रति उपेक्षावृत्ति वाले, प्रिया के असह्य वियोग से पीड़ित, वर्ष–पर्यन्त भोगने योग्य स्वामी के शाप से, नष्ट हुई महिमा वाले, किसी यक्ष ने जनक की पुत्री सीता के स्नान से पवित्र जलों से युक्त, घनी छाया वाले वृक्षों से सम्पन्न, रामगिरि के आश्रमों में निवास किया।

'चन्द्रिका'–प्रस्तुत काव्य में वस्तुतः एक ऐसे यक्ष की कथा को निबद्ध किया गया है, अपनी नवोढ़ा प्रियतमा के प्रेमपाश के कारण, जिसने अपने स्वामी द्वारा बताए गए कर्तव्य का पालन ठीक से नहीं किया, जिससे उसके स्वामी के आदेशानुसार अपनी सभी प्रकार की महिमा को खो देने वाले, उसे एक वर्ष का दण्ड (शाप) अपनी प्रिया से दूर रहकर रामगिरि आश्रमों में भोगना पड़ा।

उस रामगिरि पर श्रीराम द्वारा अपने वनवास के समय में इसप्रकार की कुटियों का निर्माण किया गया था तथा वह जनकराज की पुत्री सीता के स्नान करने से पवित्र जलों वाला था। साथ ही, इस पर्वत पर घनी छाया वाले **नमेरु** वृक्षों का आधिक्य था। इसप्रकार के पर्वत पर रहकर ही उस शापित यक्ष ने अपनी प्रिया की याद में उन्मत्त के समान इधर–उधर भटकते हुए निवास किया।

विशेष–(i) 'यक्ष' देवयोनि विशेष, जो आकाशादि में गमन करने की सामर्थ्य से युक्त होते हैं, किन्तु स्वामी कुबेर के शापवश इस यक्ष की इन सभी विशेषताओं का हरण कर लिया गया था।

(ii) ब्रह्मपुराण में शाप का कारण, स्वामी कुबेर द्वारा की जाने वाली शिव की पूजा के लिए पुष्पों का विलम्ब से लाना बताया गया है, किन्तु अन्य विद्वानों ने इसे उद्यान की ठीक से रक्षा न करना कहा है।

तदनुसार– उद्यान की रक्षा के लिए नियुक्त इस यक्ष ने नव विवाहिता कान्ता के प्रेम के कारण इस ओर ध्यान नहीं दिया और इन्द्र के ऐरावत हाथी ने उस उद्यान को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। परिणामस्वरूप कुबेर ने यक्ष को यह दण्ड देने का निश्चय किया।

(iii) मेघदूत की चारित्रवर्द्धिनी टीका के अनुसार कुबेर ने इस यक्ष को सरोवर की रक्षा के लिए नियुक्त किया था। अपने कार्य में असावधानी के कारण ही उसे इस शाप को भोगना पड़ा।

(iv) 'कान्ता' पद का प्रयोग यहाँ सप्रयोजन किया गया है, क्योंकि इसका अभिप्राय यहाँ **'लावण्यमयी[1] सुन्दर स्त्री'** है, नवोढ़ा जिसके प्रेम में वह यक्ष आकण्ठ डूब गया था, इसलिए उसे अपने कर्तव्य का भान ही नहीं रहा।

(v) यक्ष के शाप की अवधि वस्तुतः एक वर्ष निर्धारित की गयी थी, जो देवोत्थान एकादशी पर्यन्त[2] होने के कारण ठीक एक वर्ष पूर्व इसी दिन से आरम्भ हुई थी।

(vi) उल्लेखनीय है कि यहाँ पर महाकवि ने यक्ष के नाम का उल्लेख नहीं किया है, क्योंकि भारतीय परम्परा के अनुसार अपराधी के नाम का काव्य (शास्त्र) के आरम्भ में कथन नहीं किया जाता है।[3]

(vii) ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक और वस्तुनिर्देशात्मक, इन तीन प्रकार के मंगलाचरणों में से किसी एक की शास्त्रीय परम्परा रही है।[4] इसलिए कवि ने यहाँ पर वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण का प्रयोग किया है, किन्तु कुछ विद्वानों ने

---

1. मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा।
प्रतिभाति यदंगेषु तल्लावण्यमिहोच्यते।।

2. शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्गपाणौ। उत्तरमेघ, श्लोक–50

3. भर्तुराज्ञां न कुर्वन्ति ये च विश्वासघातकाः।
तेषां नामापि न ग्राह्यं शास्त्रादौ तु विशेषतः।।

4. आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वाऽपि तन्मुखम्।

यहाँ 'कश्चित्' पद के आरम्भ में प्रयुक्त 'क' पद को ब्रह्म का वाचक मानकर इसे मंगलाचरणवाची भी स्वीकार किया है।

(viii) यहाँ प्रयुक्त 'जनकतनया' से अभिप्राय यज्ञभूमि से उत्पन्न जनक की पुत्री सीता से ही ग्रहण करना उचित है, क्योंकि किसी अन्य साधारण स्त्री के स्नान से रामगिरि आश्रम के जलों का पवित्र होना सम्भव नहीं था। इसप्रकार कवि यहाँ रामायण की कथा से प्रभावित प्रतीत हो रहा है।

(ix) यद्यपि यहाँ पर कवि ने 'स्निग्धच्छायातरुषु' पद का उल्लेख किया है, किन्तु टीकाकारों ने इसका अभिप्राय घनी छाया वाले 'नमेरु' वृक्षों के बाहुल्य से लिया है।[1] यद्यपि ऐसे वृक्ष जिनके पत्ते स्निग्ध एवं घने हों तो उनकी छाया भी शीतल तथा घनी होगी, कोई भी हो सकते हैं, इन वृक्षों की छाया प्रातःकाल से लेकर सायं पर्यन्त एक समान ही होती है, उसके स्थान में विशेष परिवर्तन नहीं होता है।

(x) यहाँ प्रयुक्त 'रामगिरि' की स्थिति के विषय में भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है, क्योंकि मल्लिनाथ तथा बल्लभदेव के मत में यह पर्वत बुन्देलखण्ड में स्थित चित्रकूट पर्वत है, किन्तु पाश्चात्य विद्वान् विल्सन इसे नागपुर की उत्तर दिशा में स्थित 'रामटेक' पर्वत स्वीकार करते हैं, जबकि नवीन शोध इसे मध्यप्रदेश में विद्यमान 'रामगढ़' को मानने का पक्षधर रहा है, किन्तु हमारे विचार में रामायण से सम्बन्धित होने से इसे 'चित्रकूट' मानना अधिक संगत प्रतीत होता है, क्योंकि अपने वनवास काल में श्रीराम ने यहाँ पर भी निवास किया था।

(xi) सम्पूर्ण मेघदूत में वैदर्भी रीति, माधुर्य एवं प्रसाद गुण तथा 'मन्दाक्रान्ता' छन्द का ही प्रयोग किया गया है। इस छन्द में मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और अन्त में दो गुरु के क्रम से कुल सत्रह वर्ण होते हैं एवं चतुर्थ, षष्ठ और सप्तम वर्ण पर 'यति' का विधान है।[2]

---

1. छायावृक्षो नमेरुः स्यात्। शब्दार्णवः

2. मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद गुरू चेत्। वृत्तरत्नाकर–3/97।

उदाहरण–

मगण भगण नगण तगण तगण गु गु
S S S S I I I I I S S I S S I S S

कश्चित्का न्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात् प्रमत्तः

(xii) सम्पूर्ण काव्य में **विप्रलम्भ श्रृंगार** के पूर्वराग, मान, प्रवास एवं करुण भेदों में से '**प्रवास**' नामक भेद का प्रयोग हुआ है

(xiii) 'कान्ता' पद का प्रयोग साभिप्राय होने से परिकर अलंकार[1] का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(xiv) इसीप्रकार शाप के कारण का उल्लेख किए जाने से काव्यलिंग अलंकार[2] का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(xv) इसके अलावा उक्त दोनों अलंकारों की स्थिति तिल–तण्डुल न्याय से स्वतन्त्र होने के कारण 'संसृष्टि' अलंकार[3] का सौन्दर्य भी द्रष्टव्य है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **प्रमत्तः**– प्र+√मद्+क्त, लापरवाह

(ii) **स्वाधिकारात्**– स्वस्य स्वो वा अधिकारः, इति तस्मात् षष्ठी तत्पुरुष, कर्मधारय समास। 'प्रमाद' पद के योग में अपादान संज्ञा[4] होकर पंचमी विभक्ति का प्रयोग, अपने कर्तव्य पालन (अधिकार) से ।

(iii) **कान्ताविरहगुरुणा**– कान्तायाः विरहः, षष्ठी तत्पुरुष, तेन गुरुः, तृतीया तत्पुरुष, लावण्यमयी प्रियतमा के विरह के कारण असह्य।

(iv) **वर्षभोग्येण**–भोक्तुं योग्यः, वर्षभोग्यः, तेन, काल के अत्यन्त संयोग से द्वितीया विभक्ति का प्रयोग 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' सूत्र से तथा 'कुमति च' सूत्र से 'नत्व' को 'णत्व' आदेश हुआ।

(v) **शापेन**– शापनं इति शापः, तेन, √शप्+घञ्, 'हेतौ' सूत्र से तृतीया विभक्ति का प्रयोग। शाप द्वारा।

---

1 . विशेषणैर्यत्साकूतैरुक्तिः परिकरस्तु सः। काव्यप्रकाश–10/183 ।

2 . काव्यलिंगं हेतोर्वाक्यपदार्थता। काव्यप्रकाश–10/174।

3 . सेष्टा संसृष्टिरेतेषां भेदेन यदिह स्थितिः। काव्यप्रकाश–10/139।

4 . जुगुप्साविरामप्रमादाऽर्थानामुपसंख्यानम् वार्तिक सूत्र से।

(vi) **भर्तुः**– बिभर्तीति भर्ता, 'ण्वुल्तृचौ' सूत्र एवं 'डुभृञ् भरणे' धातु से 'तृच्' प्रत्यय का प्रयोग होकर 'भर्तृ' शब्द की निर्मिति, भर्तृ+ ङस्, षष्ठी, एक वचन, स्वामी के।

(vii) **वसतिम्**– √वस्+अति, 'वहिवस्यर्तिभ्यश्च' उणादि सूत्र से 'अति' प्रत्यय का प्रयोग, निवास को।

(viii) **रामगिर्याश्रमेषु**– रामगिरेः आश्रमाः, तेषु, षष्ठी तत्पुरुष रामगिरि के आश्रमों में।

(ix) **जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु**– जनकस्य तनया, तस्याः स्नानानि, तैः पुण्यानि उदकानि येषां तेषु, (बहुव्रीहि) जनक पुत्री के स्नान के कारण पवित्र जलों वाले (आश्रमों में), आश्रम का विशेषण।

(x) **स्निग्धच्छायातरुषु**– छायाप्रधानाः तरवः, शाकपार्थिवादीनां इत्यादि वार्तिक सूत्र से मध्यम पदलोपी समास 'प्रधाना' पद के लोप से, छाया–तरवः पद निष्पन्न होता है, स्निग्धाः छायातरवो येषु, तेषु।

(xi)**चक्रे**– √कृ+लिट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, आत्मनेपद, किया।

संजीवनी टीका–

मातापितृभ्यां जगतो नमो वामार्धजानये।
सद्यो दक्षिणदृक्पातसंकुचद्वामदृष्टये।।1।।
अन्तरायतिमिरोपशान्तये शान्तपावनचिन्त्यवैभवम्।
तन्नरं वपुषि कुंजरं मुखे मन्महे किमपि तुन्दिलं महः।।2।।
शरणं करवाणि कामदं ते चरणं वाणि चराचरोपजीव्यम्।
इहान्वयमुखेनैव सर्वं व्याख्यायते मया।
नामूलं लिख्यते किंचिन्नानपेक्षितमुच्यते।।4।।

'आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्' इति शास्त्रात् काव्यादौ वस्तुनिर्देशात्कथां प्रस्तौति–कश्चिदित।। स्वाधिकारात्स्वनियो–गात्प्रमत्तोऽनवहितः। 'प्रमादोऽनवधानता' इत्यमरः। 'जुगुप्साविराम–प्रमादार्थानामुपसंख्यानम्' इत्यपादानत्वम्। तस्मात् पंचमी। अत एवापराधाद्धेतोः कान्ताविरहेण गुरुणा दुर्भरेण। दुस्तरेणेत्यर्थः। 'गुरुस्त

गीष्पतौ श्रेष्ठे गुरौ पितरि दुर्भरे' इति शब्दार्णवे। वर्षभोग्येण संवत्सर–भोग्येण। 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया। 'अत्यन्तसंयोगे च' इति समासः। 'कुमति च' इति णत्वम्। भर्तुः स्वामिन शापेन अस्तङ्गमितो महिमा सामर्थ्यं यस्य सोऽस्तङ्गमिति महिमा। अस्तमिति मकारान्तम–व्ययम्। तस्य 'द्वितीया–' इति योगविभागात्समासः।

कश्चिदनिर्दिष्टनामा यक्षो देवयोनिः विशेषः। 'विद्याधराऽप्सरो यक्षरक्षो गन्धर्वकिन्नराः। पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः, इत्यमरः। जनकतनयायाः सीतायाः स्नानैरवगाहनैः पुण्यानि पवित्राण्यु–दकानि येषु तेषु। पावनेष्वित्यर्थः छायाप्रधानास्तरवश्छायातरवः। शाक–पार्थिवादित्वात्समासः। स्निग्धाः सान्द्राश्छायातरवो नमेरुवृक्षा येषु तेषु। वसतियोग्येष्वित्यर्थः। 'स्निग्धं तु मसृणे सान्द्रे' इति। छायावृक्षो नमेरुः स्यात्' इति च शब्दार्णवे।

रामगिरेश्चित्रकूटस्याश्रमेषु वसतिम्। 'वहिवस्यर्तिभ्यश्च' इत्यौ–णादिकोऽतिप्रत्ययः। चक्रे कृतवान्। अत्र रसो विप्रलम्भाख्यः शृंगारः, तत्राप्युन्मादावस्था। अत्र एकत्रानवस्थानं सूचितमाश्रमेष्विति बहुवचनेन। सीतां प्रति रामस्य हनुमत्संदेशं मनसि निधाय मेघसंदेशं कविः कृतवानित्याहुः। अत्र काव्ये सर्वत्र मन्दाक्रान्ता वृत्तम्। यदुक्तम्–मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैम्भौ नतो ताद् गुरु' इति।।1।।

अवतरणिका– वर्षा ऋतु का आरम्भ होने पर आषाढ़ के प्रथम दिन ही अपनी प्रिया से वियुक्त यक्ष ने आकाश में पर्वत की चोटी के साथ, वप्रक्रीड़ा करने वाले हाथी के समान मेघ को देखा–

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान्कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः।
आषाढ़स्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीड़ापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श।।2।।

अन्वय– तस्मिन् अद्रौ, अबला–विप्रयुक्तः, कनक–वलय–भ्रंश–रिक्त–प्रकोष्ठः, सः कामी, कतिचित् मासान् नीत्वा, आषाढ़स्य प्रथम–

दिवसे आश्लिष्ट–सानुम् मेघम्, वप्र–क्रीड़ा–परिणत–गज–प्रेक्षणीयम्, ददर्श।।2।।

अनुवाद– उस रामगिरि पर्वत पर, प्रिया के वियोग से युक्त, स्वर्ण के कंगन के गिर जाने से रिक्त कलाई वाले, उस कामी यक्ष ने, कुछ महिनों को व्यतीत करके, आषाढ़ के प्रथम दिन पर्वत की चोटी का आलिंगन करने वाले मेघ को, वप्र–क्रीड़ा में तिरछा दन्त–प्रहार करने वाले, दर्शनीय हाथी के समान देखा।

'चन्द्रिका'– स्वामी के शाप के परिणामस्वरूप यक्ष को राम गिरि पर निवास करते हुए आठ महीने व्यतीत हो गए थे, जिसके कारण उसका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था तथा अपनी प्रिया की स्मृति में इधर–उधर भटकते हुए, उसे पता भी नहीं चल पाया कि उसकी कलाई के स्वर्ण–कंगन न जाने कहाँ गिर गए। इसप्रकार की विशेषता वाले, उस यक्ष ने आषाढ़ के पहले दिन ही आकाश में एक बादल को देखा, जो रामगिरि का आलिंगन करते हुए, ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो वप्र–क्रीड़ा करता हुआ कोई हाथी हो, जो अपने तिरछे दाँत से रामगिरि पर प्रहार कर रहा हो, इसप्रकार की आकृति वाला वह मेघ अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रहा था।

विशेष–(i) महाकवि की अप्रतिम कल्पना शक्ति की अभिव्यक्ति हुई है, क्योंकि यदि हम आकाश में बादलों को ध्यानपूर्वक देखते हैं, तो उनमें हमें अनेक प्रकार के पशु–पक्षियों की आकृति प्रतीत होती है। उनकी यह आकृति थोड़ी–थोड़ी देर में बदलती रहती है।

(ii) अपनी 'कान्ता' से अलग रहने के कारण यक्ष का दुर्बलता अतिशय तथा उससे अनुरागातिशय अभिव्यंजित हो रहा है,

(iii) यक्ष के दुर्बल होने से उसके हाथ का स्वर्णकंगन न जाने कब और कहाँ पर गिर गया, उसे पता ही नहीं चल पाया, इससे यक्ष की अनुराग की 'उन्मत्त' अवस्था की भी अभिव्यक्ति हुई है।

(iv) कुछ प्रतियों में 'प्रशमदिवसे' पाठ भी उपलब्ध होता है, जिसका अभिप्राय 'आषाढ़ मास के अन्तिम दिन' से ग्रहण करना होगा, जो सूक्ष्मदृष्टि से चिन्तन करने पर सटीक प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि ऋतुसंहार आदि अन्य ग्रन्थों में भी आषाढ़ के प्रथम दिन से ही वर्षा का आरम्भ माना गया है।[1] मल्लिनाथ ने 'प्रथम' पाठ को ही स्वीकार किया है। इस आधार पर कुछ विद्वानों ने कालिदास का समय पंचम शती का पूर्वार्द्ध माना है, जो वस्तुतः हमारा काव्यकार ही है।

(v) **'वप्रक्रीड़ा'** पद यहाँ विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि हाथी अपने दाँतों से, साँड़, बैल या भैंसे आदि अपने सींगों से मदमस्त होकर, जब किसी ऊँचे टीले को खोदते हैं, इसी को साहित्य की भाषा में 'उत्खातकेलि' संज्ञा प्रदान की गयी है।

(vi) कवि के यक्ष ने रामगिरि का आलिंगन करते हुए मेघ में इसप्रकार के मदमस्त हाथी की आकृति की कल्पना की है, जो मानो पर्वत के साथ 'उत्खात केलि' करने में संलग्न था, जो मन को अत्यन्त आकर्षक प्रतीत हो रहा था। मेघ के जीवन्त होने की भी सुन्दर कल्पना की गयी है। प्रकृति का मानवीकरण कालिदास की महती विशेषता रही है।

(vii) वर्षाऋतु में पशु, पक्षी, वृक्ष, वनस्पतियाँ आदि सभी प्रफुल्लित हो जाते हैं, 'वप्रक्रीड़ा' पद से कवि ने इसी ओर संकेत किया है, क्योंकि इसी ऋतु में सभी प्राणियों को गर्मी से राहत मिलती है, जिससे प्रसन्नता की अभिव्यक्ति वे अपने-अपने प्रकार से करते हैं।

(viii) प्रस्तुत श्लोक में औपम्यवाचक 'इव' पद का प्रयोग न होने के कारण लुप्तोपमालंकार[2] का सौन्दर्य दर्शनीय है।

---

[1]. षष्ठ शती में विद्यमान ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर ने भी वर्षा ऋतु का आरम्भ आषाढ़ मास से ही माना है।

[2]. साधर्म्यमुपमा भेदे। काव्यप्रकाश-10/125 ।

(ix) 'अबला' पद यहाँ यक्ष की प्रिया द्वारा अपने प्रियतम के वियोग को सहन न करने के कारण, दुर्बल हृदय वाली होने को अभिव्यंजित करने के लिए साभिप्राय प्रयुक्त हुआ है।

(x) इसीप्रकार 'कामी' पद से भी यक्ष के प्रिया से अलग न होने की सामर्थ्य का अभाव अभिव्यक्त हो रहा है, क्योंकि कामातिरेक के कारण वह क्षणभर के लिए भी अपनी प्रियतमा से अलग नहीं हो सकता था, फिर यह विरह तो वर्षपर्यन्त होना था, जिससे यक्ष के पीड़ातिरेक की भी अभिव्यक्ति हुई है।

(xi) ई.पू. प्रथम शती में स्थित नाटककार कालिदास ने भी शाकुन्तलम् में नायिका के वियोग में पीड़ित नायक दुष्यन्त के मणिबन्ध के दुर्बल होने की बात का उल्लेख किया है।[1]

(xii) **आषाढ़–** ज्येष्ठ माह के बाद आने वाले माह को आषाढ़ कहते हैं, क्योंकि इस माह की पूर्णिमा तिथि को चन्द्रमा आषाढ़ा नक्षत्र से युक्त होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **अबलाविप्रयुक्तः–** अविद्यमानं बलं यस्याः, सा अबला, अबलायाः विप्रयुक्तः,नञ् बहुव्रीहि वि+प्र+ √युज्+क्त

(ii) **कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः–** कनकस्य वलयः, षष्ठी तत्पुरुष, कनकवलयस्य भ्रंशः, षष्ठी तत्पुरुष, तस्मात् रिक्तः प्रकोष्ठः, यस्य सः, बहुव्रीहि। स्वर्ण के कंगन के गिरने से रिक्त हुए प्रकोष्ठ (मणिबन्ध) वाला।

(iii) **कामी–** कामयते तच्छीलः, √कमु इच्छार्थे+विनि। अथवा √कम्+णिनि (ताच्छील्यार्थे) कामिन्, प्रथमा विभक्ति, एक वचन। या √कम्+घञ् (भावे) कामः, कामः अस्य अस्तीति, काम+इनि (अत इनि ठनौ सूत्र से)

(iv) **नीत्वा–** √नी+क्त्वा, व्यतीत करके।

---

[1]. मणिबन्धात् कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते। शाकु. –3/11।

(v) **आश्लिष्टसानुम्**– आश्लिष्टः सानुः येन, तम्, बहुव्रीहि। आङ्+श्लिष्+क्त, चोटी का आलिंगन किया हुआ।

(vi) **प्रेक्षणीयम्**– प्र+ √ईक्ष्+अनीयर्, देखने योग्य, सुन्दर।

(vii) **ददर्श**– √दृश्+लिट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, परस्मै. देखा।

संजीवनी टीका– तस्मिन्निति। तस्मिन्नद्रौ चित्रकूटाद्रौ अबला–विप्रयुक्तः कान्ताविरही। कनकस्य वलयः कटकम् 'कटकं वलयो–ऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। तस्य भ्रंशेन पातेन रिक्तः शून्यप्रकोष्ठः कूर्परादधः प्रदेशो यस्य सः तथोक्तः। 'कक्षान्तरे प्रकोष्ठः स्यात्प्रकोष्ठः कूर्परादधः' इति शाश्वतः। विरहदुःखात्कृश इत्यर्थः। कामी कामुकः य यक्षः। कतिचिन्मासान्। अष्टौ मासानित्यर्थः। 'शेषान्मासान्गमय चतुरः' इति वक्ष्यमाणत्वात्। नीत्वा यापयित्वा। आषाढानक्षत्रेण युक्ता पौर्णमास्या–षाढी। 'नक्षत्रेण युक्तः कालः' इत्यण्। 'टिड्ढाणञ्.. इत्यादिना ङीप्। साषाढ्यास्मिन् पौर्णमासीत्याषाढो मासः। 'सास्मिन्पौर्णमासीति संज्ञायाम्' इत्यण्। तस्य प्रथमदिवसे आश्लिष्टसानुमाक्रान्तकूटम्। वप्रक्रीड़ा उत्खातकेलयः। 'उत्खातकेलिः शृंगाद्यैर्वप्रक्रीड़ा निगद्यते' इति शब्दार्णवे। तासु परिणतस्तिर्यग्दन्तप्रहारः। 'तिर्यग्दन्तप्रहारस्तु गजा परिणतो मतः' इति हलायुधः।

स चासौ गजश्च तमिव प्रेक्षणीयं दर्शनीयं मेघं ददर्श। गज–प्रेक्षणीयमित्यत्रेव लोपाल्लुप्तोपमा। केचित् 'आषाढ़स्य प्रथमदिवसे' इत्यत्र 'प्रत्यासन्ने नभसि' इति वक्ष्यमाणनभोमासप्रत्यासत्यर्थं 'प्रशमदिवसे' इति पाठं कल्पयन्ति। तदसंगतम्। प्रथमातिरेके कारणभावात्। नभोमासस्य प्रत्यासत्त्यर्थमित्युक्तमिति चेन्न। प्रत्यासत्तिमात्रस्य मासप्रत्यासत्त्येव प्रथमदिवसस्याप्युपपत्तेः। अत्यन्तप्रत्यासत्तेरूपयोगाभावेनाविवक्षितत्वात्। विवक्षितत्वे वा स्वपक्षेऽपि प्रथमदिवसातिक्रमेण मेघदर्शनकल्पनायां प्रमाणाभावेन तदसम्भवात्।

प्रत्युतास्मत्पक्ष एव कुशलसन्देशस्य भाव्यनर्थप्रतीकारार्थस्य पुरत एवानुमानं युक्तं भवतीत्युपयोगसिद्धिः। ननून्मत्तस्य नायं विवेक इति

चेत्। उन्मत्तस्य नानर्थस्य प्रतीकारार्थं प्रवृत्तिरपीति सन्देश एव नाभूत्। तथा च काव्यारम्भ एवाऽप्रसिद्धिः स्यादित्यहो मूलच्छेदी पाण्डित्यप्रकर्षः। कथं तर्हि 'शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ' इत्यादिना भगवत्प्रबोधावधिकस्य शापस्य मासचतुष्टयावशिष्टस्योक्तिः। दशदिवसाधिक्यादिति चेत्स्वपक्षेऽपि कथं सा विंशतिदिवसैर्न्यूनत्वादिति सन्तोष्टव्यम्। तस्मादीषद्वैषम्यमविवक्षितमिति सुष्ठूक्तम् 'प्रथमदिवसे' इति।।2।

अवतरणिका– मेघ का अवलोकन करने के बाद यक्ष की मनःस्थिति एवं प्रतिक्रिया के विषय में महाकवि कहते हैं कि–

> तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो–
> रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ।
> मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः
> कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।।3।।

अन्वय– राजराजस्य अनुचरः अन्तः–बाष्पः, कौतुक–आधान–हेतोः, तस्य पुरः कथम् अपि स्थित्वा चिरम् दध्यौ, मेघ–आलोके सुखिनः अपि चेतः अन्यथा–वृत्तिः भवति, कण्ठ–आश्लेष–प्रणयिनि जने दूर–संस्थे, किम् पुनः ?।।3।।

अनुवाद– यक्षराज कुबेर का सेवक नेत्रों में ही आँसुओं को रोककर, उत्कण्ठा को उत्पन्न करने वाले, उस मेघ के समक्ष, किसी प्रकार स्थित होकर, देर तक विचार करता रहा, क्योंकि मेघ को देखने पर तो सुखी व्यक्ति का चित्त भी अन्यप्रकार की वृत्ति वाला हो जाता है, प्रिया के कण्ठ का आलिंगन करने के इच्छुक दूर स्थित व्यक्ति का तो कहना ही क्या?

'चन्द्रिका'– उस मेघ को देखकर यक्षों के राजा कुबेर की सेवा करने वाला वह यक्ष, अपनी प्रिया के वियोग से होने वाली वेदनारूपी आँसुओं को अपनी आँखों में ही किसीप्रकार रोककर, मन में प्रिया से मिलने की इच्छा को उत्पन्न करने वाले, उस मेघ के सामने, येन केन प्रकारेण थोड़ी देर रुककर चिन्तन करता रहा, क्योंकि वर्षाऋतु में मेघ

को देखकर तो प्रिया के पास स्थित सुखी व्यक्ति भी दूसरे प्रकार की अर्थात् चंचल वृत्ति वाला हो जाता है, फिर अपनी प्राणप्रिया से इतनी लम्बी अवधि तक दूर रहने वाले, कण्ठ के प्रगाढ़ आलिंगन की अभिलाषा रखने वाले, उस यक्ष की तो बात ही क्या है? अर्थात् मेघ को देखकर उसका तो उद्विग्न होना अत्यन्त स्वाभाविक ही है।

विशेष–(i) उपर्युक्त अंश में कालिदास का कामी मनोविज्ञान विशेषज्ञ होना पुष्ट होता है तथा यक्ष के संवेदनात्मक भावों की प्रबलता के मार्मिक स्वरूप के दर्शन भी हो रहे हैं।

(ii) यहाँ प्रयुक्त 'राजराज' का अभिप्राय यक्षों के राजा कुबेर से ही ग्रहण करना चाहिए अर्थात् राजाओं का भी राजा है, जो वह।

(iii) इसके अलावा विश्वकोष के अनुसार 'राजन्' पद का एक अर्थ 'यक्ष' भी होता है।

(iv) इससे पूर्व वियोग की एक वर्ष की अवधि में आठ माह व्यतीत हो चुके हैं, इतनी लम्बी अवधि में यक्ष अपने अन्दर की वेदना को, पीड़ा को, किसी प्रकार रोके रहा, किन्तु इस क्षण मेघ को देखकर यह पीड़ा बढ़ गयी, जिसके कारण उसकी आँखों में आँसू आ गए, किन्तु पुरुष होने के कारण स्वयं को अधीर होने से बचाने के लिए वह इन्हें किसी प्रकार अन्दर ही रोके रहा।

(v) यक्ष की चारित्रिक विशेषता धैर्यसम्पन्न होने की भी यहाँ पर पुष्टि हो रही है ।

(vi) कुछ प्रतियों में 'केतकाधानहेतोः' पाठ भी मिलता है, अर्थात् केतकी के पुष्पों को उत्पन्न करने वाला, किन्तु यहाँ पर 'कौतुकाधान' पाठ ही आकर्षक होने से संगत प्रतीत होता है, क्योंकि मेघ को देखकर तो वियोगी का, अपनी प्रिया से मिलन की उत्कण्ठा वाला होना स्वाभाविक ही है।

(vii) काव्यजगत् में प्रिया के सान्निध्य में ही व्यक्ति सुखी होता है, उससे दूर रहकर धन एवं ऐश्वर्य से युक्त होते हुए भी वह

किसी भी प्रकार सुखी नहीं रह सकता है, जो दैनिक जीवन में भी संगत प्रतीत होता है।

(viii) दो प्रेमीजन परस्पर प्रगाढ़ आलिंगन करके चरम सुख की अनुभूति करते हैं, यहाँ इसी ओर संकेत किया गया है। कुछ स्थलों पर 'तस्याश्लेषप्रणयिनि' पाठ भी मिलता है, तब 'उस यक्ष के आलिंगन की इच्छुक' अर्थ करना होगा।

(ix) प्रस्तुत श्लोक के पूर्वार्द्ध में विद्यमान उत्कण्ठारूप विशेष पदार्थ का उत्तरार्द्ध में स्थित सामान्य वाक्य से समर्थन के कारण अर्थान्तरन्यास[1] अलंकार का प्रयोग दर्शनीय है।

(x) इसीप्रकार उत्तरार्द्ध में प्रयुक्त 'किं पुनर्दूरसंस्थे' पद के प्रयोग के कारण 'कैमुतिक' न्याय से 'अर्थापत्ति' अलंकार का भी प्रयोग हुआ है।

(xi) इन दोनों अलंकारों की आपस में तिलतण्डुल न्याय से निरपेक्ष स्थिति होने के कारण संसृष्टि[2] अलंकार भी विद्यमान है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **राजराजस्य**— राज्ञां राजा इति, षष्ठी तत्पुरुष, राजन्+टच् प्रत्यय, राजाऽहसखिभ्यष्टच् सूत्र से ।

(ii) **स्थित्वा**— √स्था+क्त्वा, स्थित होकर।

(iii) **दध्यौ**— √ध्यै+ लिट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, सोचता रहा।

(iv) **अनुचरः**— अनु, पश्चात् चरति गच्छति, इति सेवक ।

(v) **अन्तर्बाष्पः**— अन्तः स्थिम्भितः बाष्पः यस्य सः, बहुव्रीहि।

(vi) **कौतुकाधानहेतोः**— कुतुकम् एव कौतुकम्, कौतुकस्य आधानं तस्य हेतोः, षष्ठी तत्पुरुष, **आधान**— आ+ √धा+ल्युट् ।

(vii) **मेघालोके**— मेघस्य आलोके, षष्ठी तत्पुरुष। आ+ √लुक्+ घञ् भावे, आलोके, मेघ को देखने पर ।

---

1. सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।। काव्यप्रकाश–10/165 ।

2. मिथोऽनपेक्षयैतेषां स्थितिः संसृष्टिरुच्यते। साहित्यदर्पण–10/98 ।

(viii) **अन्यथावृत्तिः**– अन्यथा भिन्ना वृत्तिः यस्य सः, बहुव्रीहि।

(ix) **सुखिनः**– सुखम् अस्याऽस्तीति, सुखी तस्य। षष्ठी विभ.

(x) **दूरसंस्थे**– सम् स्थानमिति संस्था, दूरे संस्था यस्य सः, दूरसंस्थः, तस्मिन्, बहुव्रीहि समास। दूर स्थित होने पर ।

(xi) **कण्ठाश्लेषप्रणयिनि**– कण्ठस्य आश्लेषः, तस्य प्रणयिनि।

संजीवनी टीका– तस्येति। राजानो यक्षाः। 'राजा प्रभौ नृपे चन्द्रे यक्षे क्षत्रियशक्रयोः' इति विश्वः। राज्ञां राजा राजराजः कुबेरः। 'राजराजो धनाधिपः' इत्यमरः। 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इति टच् प्रत्ययः। तस्यानुचरो यक्षः। अन्तर्बाष्पो धीरोदात्तत्वादन्तः स्तम्भिताश्रुः सन्। कौतुकाधानहेतोरभिलाषोत्पादकारणस्य 'कौतुकं चाभिलाषे स्यादुत्सवे नर्महर्षयोः' इति विश्वः। तस्य मेघस्य पुराऽग्रे कथमपि गरीयसा प्रयत्ने–नेत्यर्थः। 'ज्ञानहेतुविवक्षायामप्यादिकथमव्ययम्। कथमादि तथाप्यन्तं यत्नगौरवबाढयोः।।' इत्युज्ज्वलः। स्थित्वा चिरं दध्यौ चिन्तयामास। 'ध्यै चिन्तायाम्' इति धातोर्लिट् मनोविकारोपशमनपर्यन्तमिति शेषः।

विकारहेतुमाह– मेघालोक इति। मेघालोके मेघदर्शने सति सुखिनोऽपि प्रियादिजनसंगतस्यापि चेतश्चित्तमन्यथाभूता वृत्तिर्व्यापारो यस्य तथावृत्ति भवति। विकृतिमापद्यत इत्यर्थः। कण्ठाश्लेषप्रणयिनि कण्ठालिंगनार्थिनि जने। दूरे संस्था स्थितिर्यस्य तस्मिन्दूरसंस्थे सति किं पुनः। विरहिणः किमुत वक्तव्यमित्यर्थः। विरहिणां मेघसन्दर्शनमुद्दीपनं भवतीति भावः। अर्थान्तरन्यासोऽलंकारः। तदुक्तं दण्डिना– 'ज्ञेयः सो–ऽर्थान्तरन्यासो वस्तु प्रस्तुत्य किंचन। तत्साधनसमर्थस्य न्यासो योऽन्यस्य वस्तुनः' इति।।3।।

अवतरणिका– मेघ के समक्ष क्षणभर स्थित होकर यक्ष ने चिन्तनपूर्वक मेघ से मन ही मन अपनी प्रियतमा के पास अपने कुशल समाचार उसके माध्यम से भेजने का निर्णय कर लिया और मेघ को अर्घ्य प्रदान करते हुए उसका स्वागत किया, इसी विषय में महाकवि कहते हैं कि–

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन्प्रवृत्तिम्।
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार।।4।।

अन्वय– नभसि प्रत्यासन्ने दयिता–जीवित–आलम्बनार्थी सः जीमूतेन स्व–कुशलमयीम् प्रवृत्तिम् हारयिष्यन्, प्रत्यग्रैः कुटज–कुसुमैः कल्पित–अर्घाय तस्मै प्रीतः, प्रीति–प्रमुख–वचनम् स्वागतम् व्याजहार।।4

अनुवाद– श्रावण मास (नभसि) के पास आने पर प्रियतमा के जीवन को अवलम्ब देने के अभिलाषी, उस यक्ष ने अपने कुशल समाचार भेजने की अभिलाषा से शीघ्र ही तोड़े गए, कुटज पुष्पों की अर्घ्य सामग्री तैयार करके, उस मेघ के प्रति प्रसन्नभाव से प्रेमपूर्वक वचनों से 'स्वागत' शब्द कहा।

'चन्द्रिका'– मेघ को देखकर यक्ष को श्रावण मास के आने का भान हुआ तो उसने दूर स्थित अपनी प्रियतमा के प्राणों की रक्षा करने के लिए, उसे धैर्य बँधाने हेतु, मेघ के माध्यम से अपने कुशल समाचार उसके पास भेजने की इच्छा से, अभी–अभी तोड़े गए ताजे कुटज के पुष्पों द्वारा 'अर्घ्य' सामग्री तैयार करके, उस मेघ की पूजा करने के लिए, प्रसन्न चित्त होकर अत्यधिक प्रेमपूर्ण वचनों का प्रयोग करते हुए, 'स्वागत' पद का प्रयोग किया अर्थात् उसका स्वागत किया।

इसका मुख्य कारण यही है कि श्रावण मास में वियोगी जनों को विरह की पीड़ा अत्यधिक होती है, जिसके कारण उसके प्राणों की हानि भी सम्भव है। अतः अपनी 'कान्ता' के प्राणों की रक्षा को दृष्टि में रखते हुए यक्ष ने अपने कुशलक्षेम को मेघ के माध्यम से उसके पास भेजने का क्षणभर के लिए मेघ के समक्ष स्थित होकर निर्णय किया और इसके लिए सर्वप्रथम मेघ को प्रसन्न करना आवश्यक था, उसी कारण कुटज के ताजे पुष्पों की अर्घ्य सामग्री द्वारा उसका भावभीना स्वागत किया।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में यक्ष की दूरदर्शिता एवं सूक्ष्मदृष्टि प्रदर्शित हुई है, जिसके माध्यम से महाकवि काव्यकार कालिदास का व्यक्तित्व भी अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) 'नभसि' अर्थात् श्रावणमास[1] । कुछ स्थलों पर 'मनसि' पाठ भी मिलता है अर्थात् मन के ठीक होने पर, चित्त के स्थिर होने पर। दोनों ही अर्थ उपयुक्त प्रतीत होते हैं, क्योंकि अपना सन्देश कहने से पूर्व सर्वप्रथम यक्ष का स्थिरचित्त होना आवश्यक था, तभी वह प्रियतमा के लिए उपयुक्त सन्देश देने में समर्थ हो सकता था।

(iii) **अर्घ्य**– देवता, अतिथि या किसी व्यक्ति विशेष के स्वागत में उसे प्रसन्न करने की दृष्टि से जो सामग्री उसे भेंट दी जाती है, उसे 'अर्घ्य' कहते हैं। भारतीय परम्परा में अतिथि के लिए भी 'अर्घ्य' की व्यवस्था की गयी है।

(iv) यद्यपि 'अर्घ्य' में आठ वस्तुओं[2] का विधान किया गया है, किन्तु स्थान एवं परिस्थिति के अनुसार, श्रद्धाभाव से कुछ भी उपयुक्त वस्तु ली जा सकती है। यहाँ यक्ष ने अवसर के अनुकूल 'कुटज' के ताजे पुष्पों को ही पूजन सामग्री के रूप में ग्रहण किया है।

(v) यक्ष को अपनी प्रेयसी के जीवन के 'क्षय' की आशंका है, क्योंकि वह उसकी मनःस्थिति से सुपरिचित है, तभी वह अपनी कुशल क्षेम उस तक मेघ के माध्यम से प्रेषित करने का प्रयास कर रहा है।

(vi) यद्यपि यक्ष अपनी प्रिया से दूर होने के कारण मन ही मन अत्यन्त दुःखी है, किन्तु मेघ को प्रसन्न करने के लिए स्वयं भी प्रसन्न होना तथा प्रसन्न प्रतीत होना, दोनों ही आवश्यक हैं, इसीलिए वह प्रसन्नवदन होकर ही मेघ का स्वागत करता है, रोनी सूरत से नहीं।

---

1. नभः खं श्रावणो नभाः। इत्यमरः।

2. रक्तबिल्वाक्षतैः पुष्पैः दधिदूर्वाकुशैस्तिग्मैः।
सामान्यः सर्वदेवानामर्घोऽयं परिकीर्तितः।। देवीपुराण

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **प्रत्यासन्ने**– प्रति+आ+ √सद्+क्त,

(ii) **जीमूतेन**– जीवनस्य जलस्य मूतः इति, तेन, षष्ठी तत्पुरुष

(iii) **स्वकुशलमयीम्**– स्वस्य कुशलम्, ताम्, यहाँ पर स्वकुशल पद से 'मयट्' प्रत्यय होकर स्त्रीत्व विवक्षा में 'ङीप्' हुआ है।

(iv) **दयिताजीवितालम्बनार्थी**– दयितायाः प्रियायाः जीवितं तस्य आलम्बनम् तस्य अर्थी, आ+ √लम्बि+ल्युट्, आलम्बन ।

(v) **प्रवृत्तिम्**– प्र + √वृत्+क्तिन् समाचार को।

(vi) **हारयिष्यन्**– √हृञ् हरणे+ णिच्, इट् आगम +शतृ, भेजने की इच्छा या अभिलाषा से।

(vii) **कल्पितार्घाय**– कल्पितः अर्घः यस्य सः, तस्मै।

(viii) **व्याजहार**– वि+आ+ √हृ+ लिट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ix) **स्वागतम्**– सु+आ+ √गम्+भावे क्त, स्वागत करना।

(x) **प्रीतिप्रमुखवचनम्**– प्रीतिः प्रमुखं प्रधानं येषां तानि एता–दृशानि वचनानि तानि, प्रेम से आप्यायित वचन।

संजीवनी टीका– **प्रत्यासन्न इति। स यक्षः। यश्चिरं दध्यौ स इत्यर्थः। नभसि श्रावणे। 'नभः खं श्रावणो नभाः' इत्यमरः। प्रत्यासन्न आषाढ़स्यानन्तरं सन्निकृष्टे। प्राप्ते सतीत्यर्थः। दयिताजीवितालम्बनार्थी सन्। वर्षाकालस्य विरहदुःखजनकत्वात् 'उत्पन्नार्थप्रतीकारादनर्थोत्पत्ति–प्रतिबन्ध एव वरम्' इति न्यायेन प्रागेव प्रियाप्राणधारणोपायं चिकीर्षु–रित्यर्थः। जीवनस्योदकस्य मूतः पटबन्धो जीमूतः। पृषोदरादित्वात् साधुः। 'मूतः स्यात्पटबन्धोऽपि' इति रुद्रः। तेन जीमूतेन जलधरेण। प्रयोज्येन स्वकुशलमयीं स्वक्षेमप्रधानां प्रवृत्तिं वार्ताम्। 'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः' इत्यमरः। हारयिष्यन्प्रापयिष्यन्। 'लट् शेषे च' इति चकारात् क्रियोप–पदाल्लृटप्रत्ययः। जीवनार्थं कर्म जीवनप्रदानेनैव कर्तव्यमिति भावः।**

'हृक्रीरन्यतरस्याम्' इति कर्मसंज्ञायां विकल्पात् पक्षे कर्तरि तृतीया। प्रत्यग्रैरभिनवैः कुटजकुसुमैर्गिरिमल्लिकाभिः। 'कुटजो गिरि–मल्लिका' इति हलायुधः। कल्पितार्घाय कल्पितोऽनुष्ठितोऽर्घः पूजाविधि–

र्यस्मै तस्मै। 'मूल्ये पूजाविधावर्घः' इत्यमरः। तस्मै जीमूताय। 'क्रिया–ग्रहणमपि कर्तव्यम्' इति सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी। प्रीतिप्रमुखानि प्रीतिपूर्व–कानि वचनानि यस्मिन् कर्मणि तत्प्रीतिप्रमुखवचनं यया तथा। शोभन–मागतं स्वागतं स्वागतवचनं प्रीतः सन् व्याजहार। कुशलागमनं पप्रच्छे–त्यर्थः। नाथेन त्वत्र 'प्रत्यासन्ने मनसि; इति साधीयान्पाठः कल्पितः। प्रत्यासन्ने प्रकृतिमापन्ने सतीत्यर्थः। यस्तु तेनैव पूर्वपाठविरोधः प्रदर्शितः सोऽस्माभिः 'आषाढस्य प्रथमदिवसे' इत्येतत् पाठविकल्पसमाधानेनैव समाधाय परिहृतः।।4।।

अवतरणिका– तत्पश्चात् महाकवि मेघ के माध्यम से सन्देश भेजने का कारण बताते हुए कहते हैं कि–

धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
संदेशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।।5।।

अन्वय– धूम–ज्योतिः सलिल–मरुताम् सन्निपातः मेघः क्व? पटु–करणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः संदेशार्थाः क्व? इति औत्सुक्यात् अपरि–गणयन् गुह्यकः, तम् ययाचे, हि कामार्ताः चेतन–अचेतनेषु प्रकृति–कृपणाः (भवन्ति)।।5।।

अनुवाद– धूम, ज्योति, जल एवं वायु का समूहरूप कहाँ तो मेघ? तथा निपुण इन्द्रियों वाले प्राणियों द्वारा भेजे जाने योग्य कहाँ सन्देश? किन्तु फिर भी उत्कण्ठा के कारण विचार न करते हुए यक्ष ने उस मेघ से याचना की, क्योंकि काम से पीड़ित व्यक्ति, चेतन और अचेतन के सम्बन्ध में स्वभाव से ही दीन होते हैं।

'चन्द्रिका'– कवि का अभिप्राय है कि मेघ तो धुएँ, प्रकाश, जल तथा वायु, इन चार जड़ पदार्थों का समूह मात्र है, उसमें तो चेतनत्व ही नहीं है, फिर दूसरी बातों की तो आशा ही कैसे की जा सकती है। वस्तुतः सन्देश भेजने के लिए दूत में अनेक गुणों का होना अनिवार्य है,

सामान्य व्यक्ति इस कार्य को करने में सर्वथा असमर्थ रहता है, क्योंकि सन्देश के शब्दों के प्रयोग में लेशमात्र भी भिन्नता होने पर अनर्थ की सम्भावना है, किन्तु फिर भी यक्ष ने मेघ का चयन अपना सन्देश भेजने के लिए किया, इसका तो मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि–

जो काम से अत्यधिक पीड़ित होते हैं, उनका विवेक एवं बुद्धि काम करना बन्द कर देते हैं, इसलिए वे जड़ और चेतन में भी अन्तर नहीं कर पाते हैं। इसीलिए उन्हें अपने प्रिय के चित्रादि से भी बातें करते हुए देखा जा सकता है। यही कारण है कि कुबेर की निधि की रक्षा करने वाला यह यक्ष, अत्यधिक आतुरता या उत्कण्ठा होने से इन सब बातों की उपेक्षा करके, या भूलकर या देखते हुए भी न समझते हुए, उस मेघ के समक्ष अपना सन्देश प्रेयसी तक भेजने लिए याचना कर रहा है, जो सामान्य दृष्टि से भले ही विचित्र प्रतीत हो, किन्तु कामी यक्ष की दृष्टि से सर्वथा उचित ही है।

विशेष–(i) उपर्युक्त श्लोक में महाकवि के कामी–मनोविज्ञान को सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है। साथ ही, उनका रसायन विज्ञान से सुपरिचित होना भी अभिव्यक्त हो रहा है, क्योंकि यहाँ पर मेघ के रासायनिक घटकों का कथन किया गया है।

(ii) यद्यपि काव्यकार ने यहाँ यक्ष और गुह्यक पदों को पर्यायवाची माना है, किन्तु अमरकोशकार ने इनका भिन्न देवयोनियों के रूप में उल्लेख किया है।[1]

(iii) 'गुह्यक' पद का प्रयोग यहाँ पर वस्तुतः 'कुबेर की निधि की रक्षा करने' अर्थ में किया गया है, क्योंकि इसे उसकी उद्यानरूपी निधि की रक्षा के लिए नियुक्त किया गया था।

(iv) कामपीड़ित व्यक्ति अपनी सुधबुध खोकर उन्मत्त हो जाता है, अतः उसका विवेक समाप्त होने से जड़ और चेतन में भी वह भेद

---

1. विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वाकिन्नराः।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः।। अमरकोश

नहीं कर पाता है, यहाँ कवि ने इसी ओर संकेत किया है। संस्कृत काव्यों में इसप्रकार के अनेक वर्णन उपलब्ध होते हैं।

(v) काम की दस अवस्थाओं में, अंगों का असौष्ठव, सन्ताप, पाण्डुता, कृशता, अरुचि, अनालम्बन, अधृति तथा उन्मादावस्था भी कही गयी हैं, यक्ष में उनमें से अधिकांश अवस्थाओं की स्थिति बनी हुई है।

(vi) प्रस्तुत श्लोक के चतुर्थ चरण में प्रयुक्त सामान्य अर्थ के माध्यम से पूर्व में प्रयोग किए गए विशेष अर्थ का समर्थन करने के कारण अर्थान्तरन्यास का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(vii) इसीप्रकार एक ही श्लोक में दो विरूप पदार्थों का संगठन किए जाने से विषम अलंकार[1] भी द्रष्टव्य है।

(viii) इसके अलावा उक्त दोनों अलंकारों का अंगाभिभाव होने से संकर[2] अलंकार का भी प्रयोग हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **प्राणिभिः**— प्राणाः सन्ति येषां तैः, बहुव्रीहि समास, प्राण+इनि, तृतीया, बहुवचन, प्राणों द्वारा।

(ii) **धूमज्योतिःसलिलमरुताम्**— धूमश्च ज्योतिश्च सलिलं च मरुत् च इति, तेषाम्, द्वन्द्व समास। धुएँ, ज्योति, जल तथा वायु का।

(iii) **प्रापणीयाः**— प्रापयितुं योग्याः इति, प्र+ √आप् प्रापणे+ अनीयर् प्रत्यय, प्राप्त कराने योग्य।

(iv) **अपरिगणयन्**— न परिगणयन्, इति नञ् समास।

(v) **गुह्यकः**— गूहति निधिं रक्षति, इति कुबेर की निधि की रक्षा करने वाला, यक्ष।

(vi) **ययाचे**— √याच्+लिट्, प्रथमपुरुष, एक वचन, याचना की।

(vii) **कामार्ताः**—कामेन आर्ताः,तृतीया तत्पुरुष, काम से पीड़ित।

(viii) **चेतनाचेतनेषु**— चेतनाश्च अचेतनाश्च तेषु द्वन्द्व समास।

---

1. विरूपयोः संघटना या च तद्विषमं मतम्। साहित्यदर्पण

2. अंगांगित्वेऽलंकृतीनां तद्वदेकाश्रयस्थितौ।
संदिग्धत्वे च भवति संकरस्त्रिविधः पुनः।। साहित्यदर्पण–10/99 ।

संजीवनी टीका– धूमेति। धूमश्च ज्योतिश्च सलिलं च मरुद्वायुश्च तेषां सन्निपातः संघातो मेघः क्व? अचेतनत्वात् संदेशानर्ह इत्यर्थः। पटुकरणैः समर्थेन्द्रियैः 'करणं साधकतमं क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपि' इत्यमरः। प्राणिभिश्चेतनैः। 'प्राणी तु चेतनो जन्मी' इत्यमरः। प्रापणीयाः प्रापयितव्याः। संदिश्यन्त इति सन्देशास्त एवार्थाः। क्व इत्येवभौत्सुक्या दिष्टार्थोद्युक्तत्वात्। 'इष्टार्थोद्युक्त उत्सुकः' इत्यमरः। संप्रदानत्वात् कुशलप्रश्नेनाभिमुखीचकारेत्यर्थः। अपरिगणयन्नविचारयन्गुह्यको यक्षस्तं मेघं याचितवान्। 'टुयाचृ याच्ञायाम्'। तथाहि। कामार्ता मदनातुरा– श्चेतनाचेतनाश्च तेषु विषये प्रकृतिकृपणाः स्वभावदीनाः। कामान्धानां युक्तायुक्तविवेकशून्यत्वादचेतनयाच्ञा न विरुध्यत इत्यर्थः। अत्र मेघ–सन्देशयोर्विरूपयोर्घटनाद्विषमालंकारः। तदुक्तम्– 'विरुद्धकार्यस्योत्पत्ति–र्यत्रानर्थस्य या भवेत्। विरूपघटना चासौ विषमालंकारस्त्रिधा।' इति सा चार्थान्तरन्यासानुप्राणिता तत्समर्थकत्वेनैव चतुर्थ पादे तस्योपन्यासात्।।5

अवतरणिका– मेघ के समक्ष यक्ष अपनी प्रिया को प्रेषित किया ज़ाने वाला सन्देश कहने से पूर्व उसकी चाटुकारिता करते हुए सर्व प्रथम उसके उच्चकुल का होने का कथन करते हुए, अपनी मजबूरी के विषय में कहता है कि–

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।।6।।

अन्वय– त्वाम् भुवन–विदिते पुष्कर–आवर्तकानाम् वंशे जातम्, मघोनः काम–रूपम्, प्रकृति–पुरुषम् जानामि, तेन विधिवशात् दूर–बन्धुः अहम् त्वयि अर्थित्वम् गतः, अधिगुणे याच्ञा मोघा वरम्, अधमे लब्ध–कामा न।।6।।

अनुवाद– हे मेघ! मैं आपको संसार में प्रसिद्ध पुष्कर तथा आवर्तक नाम वाले मेघों के वंश में उत्पन्न, अपनी इच्छा के अनुसार

रूप धारण करने वाला, इन्द्र के प्रधान व्यक्ति के रूप में जानता हूँ। इसीलिए दुर्भाग्यवश प्रिया से दूर मैं आपके विषय में याचकत्व को प्राप्त हो रहा हूँ, क्योंकि अधिक गुण वाले व्यक्ति से की गयी याचना निष्फल होने पर भी श्रेष्ठ होती है, जबकि निर्गुण व्यक्ति में कामना के सफल होने पर भी वह उत्तम नहीं है।

'चन्द्रिका'–सर्वप्रथम मेघ की प्रशंसा में यक्ष उसके तीन गुणों के विषय में उल्लेख करता है। **प्रथम,** वह वस्तुतः पुष्कर एवं आवर्तक जैसे श्रेष्ठ मेघों के कुल में उत्पन्न हुआ है अर्थात् कुलीन है। इसलिए इस दूतकार्य के लिए सर्वथा उपयुक्त है। **द्वितीय,** वह अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने में भी समर्थ है, जो कहीं पर भी प्रवेश करने के लिए दूसरा आवश्यक गुण होता है। **तृतीय,** वह देवताओं के राजा इन्द्र का प्रधान सेवक है। इसप्रकार के अनेकानेक गुणों को देखकर ही मैं तुम्हारे प्रति इस दूतकर्म को कराने की याचना वाला हुआ हूँ।

इसके अलावा मैं यो ही तुम्हें इस कार्य के लिए नहीं कह रहा हूँ, अपितु यह मेरी मजबूरी है, क्योंकि दुर्भाग्यवश मैं अपनी प्रियतमा से बहुत दूर यहाँ वन में भटक रहा हूँ, अपनी कुशलता के समाचार भेजने का मेरे पास अन्य कोई दूसरा उपाय भी नहीं है।

इसीप्रकार तुम्हारे प्रति इस याचना का अन्य महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि तुम्हारे समान श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न व्यक्ति के प्रति की गयी यह याचना यदि निष्फल भी हो जाती है, तो भी कोई दोष नहीं है, क्योंकि निर्गुण व्यक्ति के प्रति की गयी सफल याचना भी उत्तम नहीं होती है, क्योंकि नीच व्यक्ति तो उसके बदले अनेक प्रकार की दूसरी उचित–अनुचित अपेक्षाएँ ही करेगा, जो व्यक्ति को बाद में आपद्ग्रस्त करने वाला होगा।

विशेष–(i) महाकवि इस बात से भलीप्रकार परिचित रहे हैं, कि यदि किसी से कोई कार्य कराना हो तो सर्वप्रथम उसके वंश आदि की

प्रशंसा करके उसे प्रसन्न किया जाए। इसीलिए मेघ को पुष्कर एवं आवर्तक जैसे उत्कृष्ट मेघों के कुल में उत्पन्न बताया गया है।

(ii) सम्पूर्ण मेघदूत वस्तुतः कामी मनोविज्ञान को आधार बनाकर लिखा गया है। इसलिए इसकी प्रत्येक पंक्ति इसी मनोविज्ञान पर आधारित रही है।

(iii) महाकवि की अद्भुत तार्किक शक्ति एवं जीवनोपयोगी गम्भीर व्यावहारिक ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है तथा उनके भाग्यवादी दृष्टिकोण की भी पुष्टि हुई है।

(iv) पौराणिक मान्यता के अनुसार– प्रलयकाल में जलवृष्टि के माध्यम से संसार का विनाश करने वाले, मेघों को 'पुष्कर' एवं 'आवर्तक' कहा जाता है। विद्वानों के मत में, इस मेघ का वंश पुष्पकर था तथा उसके नाना 'आवर्तक' वंश के थे, अतः मातृ–पितृ दोनों ही दृष्टियों से इसके कुलीन होने की पुष्टि होती है।

(v) अर्थान्तरन्यास का प्रयोग दर्शनीय है।

(vi) तात्कालिक सामाजिक स्थिति की ओर भी संकेत किया गया है, क्योंकि कुलीन व्यक्ति का समाज में अपेक्षाकृत अधिक सम्मान था, उससे की गयी याचना व्यर्थ होने पर भी दोषयुक्त नहीं मानी जाती थी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **भुवनविदिते**– भुवनेषु विदिते, सप्तमी तत्पुरुष, संसार में जाने गए अर्थात् प्रसिद्ध। √विद्+क्त–विदित

(ii) **पुष्करावर्तकानाम्**– पुष्कराश्च आवर्तकाश्च इति, तेषाम्।

(iii) **जातम्**– √जनी प्रादुर्भावे +क्त, उत्पन्न हुआ।

(iv) **प्रकृतिपुरुषम्**– प्रकृतौ पुरुषः, तम्, प्रधान व्यक्ति को।

(v) **जानामि**– √ज्ञा+लट्, उत्तम पुरुष, एकवचन, जानता हूँ।

(vi) **विधिवशात्**– विधेः वशः, इति तस्मात्, भाग्यवश। ष.तत्पु.।

(vii) **दूरबन्धुः**– दूरे बन्धुः यस्य सः, बहुव्रीहि समास।

(viii) **अर्थित्वम्**– अर्थिनः भावः, अर्थिन्+त्व, याचकत्व को।

(ix) **लब्धकामः**— लब्धः कामः येन सः, बहुव्रीहि समास।

संजीवनी टीका— जातमिति। हे मेघ! त्वां भुवनेषु विदिते। 'निष्ठा' इति भूतार्थे क्तः। 'मतिबुद्धि..' इत्यादिना वर्तमानार्थत्वे तु 'क्तस्य च वर्तमाने' इति भुवनशब्दस्य षष्ठ्यन्तत्तानियमात् समासो नंस्यात्। 'क्तेनेन च पूजायाम्' इति निषेधात्। पुष्कराश्चावर्तकाश्च केचिन्मेघानां श्रेष्ठाः तेषां वंशे जातम्। महाकुलप्रसूतमित्यर्थः। कामरूपमिच्छाधीन–विग्रहम्। दुर्गादिसंचारक्षममित्यर्थः। मघोन इन्द्रस्य प्रकृतिपुरुषं जानामि।

तेन महाकुलप्रसूतत्वादिगुणगणत्वेन हेतुना विधिवशाद् दैवाय–त्तत्वात्। 'विधिर्विधाने दैवे च' इत्यमरः। वशमायत्ते 'वशमिच्छा–प्रभुत्वयो' इति विश्वः। दूरे बन्धुर्यस्य स दूरबन्धुर्वियुक्तभार्योऽहं त्वय्य–र्थित्वं गतः। ननु याचकस्य याच्ञायां याच्ञागुणोत्कर्षः कुत्रोपयुज्यत इत्याशंक्य दैवाद्याच्ञाभंगेऽपि लाघवदोषाभाव एवोपयोग इत्याह याच्ञेति। तथाहि— अधिगुणे पुंसि विषये याच्ञा मोघा निष्फलापि वरमीषत्प्रियम्।

दातुर्गुणाढ्यत्वात् प्रियत्वं याच्ञावैफल्यादीषत् प्रियत्वमिति भावः। अधमे निर्गुणे याच्ञा लब्धकामापि सफलापि न वरम्। ईषत् प्रियमपि न भवतीत्यर्थः। देवादवृते वरः श्रेष्ठे त्रिषु क्लीबं मनाक्प्रिये' इत्यमरः। अर्थान्तरन्यासानुप्राणितः प्रेयोऽलंकारः। तदुक्तं दण्डिना— प्रेयः प्रिय–तराख्यानाम्' इति। एतदाद्ये पादत्रये चतुर्थ पादस्थेनार्थान्तरन्यासेनो–पजीवितमिति सुव्यक्तमेतत्।।6।।

अवतरणिका— मेघ के कुल की प्रशंसा तथा अपनी मजबूरी के विषय में उल्लेख करने के बाद, यक्ष उसके परोपकारी स्वभाव की ओर संकेत करते हुए दौत्य कर्म के विषय में कहता है कि—

संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद! प्रियायाः
सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या।।7।।

अन्वय– पयोद! त्वम् संतप्तानाम् शरणम् असि, तत् धनपति–क्रोध–विश्लेषितस्य मे ,सन्देशम् प्रियायाः हर, ते बाह्य–उद्यान–स्थित–हर–शिरः चन्द्रिका–धौत–हर्म्या, अलका नाम यक्षेश्वराणाम् वसतिः गन्तव्या।।7।।

अनुवाद– हे मेघ! तुम तो पीड़ित लोगों के रक्षक हो, इसीलिए कुबेर के क्रोध के कारण अलग हुए मेरे सन्देश को प्रिया तक ले जाओ, जिसे लेकर तुम्हें बाह्य उद्यान में स्थित महादेव के सिर पर विराजमान चाँदनी से उज्ज्वल महलों से युक्त, 'अलका' नामक यक्षों के स्वामी कुबेर की नगरी में जाना है।

'चन्द्रिका'– विरही एवं शापित यक्ष, इन्द्र के प्रधान पुरुष मेघ से कहता है कि– तुम्हारे सम्बन्ध में संसार में यह प्रसिद्ध है कि तुम गर्मी से संतप्त अर्थात् दुःखी सभी लोगों की एकमात्र शरण हो, उनकी जल वृष्टि द्वारा रक्षा करते हो और मैं भी यहाँ पर कुपित कुबेर के शाप के कारण अपनी प्रिया से अलग होकर रह रहा हूँ। इसलिए तुमसे यही प्रार्थना है कि तुम यक्षों के स्वामी कुबेर की नगरी 'अलका' में जाकर, मेरी प्रियतमा यक्षिणी तक मेरे सन्देश को पहुँचा दो, जो नगरी वस्तुतः बाह्य उद्यान में विद्यमान महादेव के मस्तक पर स्थित चन्द्रमा की चाँदनी से प्रकाशित महलों से समृद्ध है, इसलिए तुम्हें वहाँ तक आकाश मार्ग से जाने और उसे पहचानने में भी कोई परेशानी नहीं होगी।

विशेष–(i) यक्ष का अभिप्राय है कि मेरा सन्देश ले जाने में तुम्हें अधिक कष्ट नहीं होगा, क्योंकि तुम तो आकाश मार्ग से ही प्रस्थान करोगे। साथ ही, वहाँ जाकर तुम्हें महादेव के दर्शनों का भी सौभाग्य प्राप्त होगा।

(ii) मेघ को पीड़ितों का रक्षक बताकर, जहाँ एक ओर कवि ने उसकी प्रशंसा की है, वहीं दूसरी ओर स्वयं के स्वभाव की ओर भी संकेत किया है। कवि की तार्किक शैली भी अभिव्यक्त हुई है।

(iii) 'धनपति' के स्थान पर यहाँ 'धनपतेः' पाठ भी मिलता है, इससे अर्थ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(iv) पुराणों में अलका नगरी को कुबेर की राजधानी माना गया है। उत्तरमेघ में इससे प्रचुर ऐश्वर्य का विस्तार से वर्णन हुआ है।

(v) पुराणों के अनुसार– अलका नगरी के बाहर एक उद्यान था, जिसका निर्माण गन्धर्वों के राजा 'चित्ररथ' द्वारा किया गया था। भगवान् शिव इसी उद्यान में रहते थे, जिससे उनके मस्तक पर स्थित चन्द्रमा की चाँदनी से अलका नगरी के प्रासाद प्रकाशित होते थे।

(vi) 'नाम' निपात का प्रयोग यहाँ 'प्रसिद्धि' अर्थ में हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **गन्तव्या**– √गम्+तव्यत्+टाप् ।

(ii) **सन्तप्तानाम्**– सम्+ √तप्+क्त, षष्ठी बहुवचन।

(iii) **पयोद**– पयः ददाति, इति, पयस्+ √दा+क प्रत्यय।

(iv) **असि**– √अस्+सिप्, लट्, मध्यमपुरुष, एकवचन, हो।

(v) **प्रियायाः**– प्रीणाति इति प्रिया, तस्याः, √प्रिञ्+क+टाप् ।

(vi) **हर**–√हृञ् +लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन, ले जाइए। 'प्रार्थना' अर्थ में लोट् लकार का प्रयोग किया गया है।

(vii) **अलका**– अलति भूषयति इति, √अल्+क्वुन्+टाप् ।

(viii) **यक्षेश्वराणाम्**– यक्षाणां यक्षेषु वा ईश्वराः, तेषाम्। आदर अर्थ में यहाँ पर बहुवचन का प्रयोग हुआ है (आदरार्थे बहुवचनम्)।

(ix) **वसति**– √वस्+ अति प्रत्यय, नगरी या स्थान।

संजीवनी टीका– **सन्तप्तानामिति। ते पयोद! त्वं सन्तप्तानामातपेन वा प्रवास–विरहेण वा संज्वरितानाम्। 'संतापः संज्वरः समौ' इत्यमरः। शरणं पयोदानेनातपखिन्नानां स्वस्थानप्रेरणया च रक्षकोऽसि। 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः। तत्तस्मात्कारणाद्धनपतेः कुबेरस्य क्रोधेन विश्लेषितस्य प्रियया वियोजितस्य मे मम सन्देशं वार्तां प्रियाया हर। प्रियां प्रति नयेत्यर्थः। सम्बन्धसामान्ये षष्ठी। सन्देशहरणेनावयोः सन्तापं नुदेत्यर्थः। कुत्र स्थाने सा स्थिता तत्स्थानस्य वा किं नाम तत्राह–**

गन्तव्येति। बहिर्भवं बाह्यम्। 'बहिर्देवपंचजनेभ्यश्च' इति यञ्। बाह्य उद्याने स्थितस्य हरस्य शिरसि या चन्द्रिका तया धौतानि निर्मलानि हर्म्याणि धनिकभवनानि यस्यां सा तथोक्ता। 'हर्म्याणि धनिनां वासः' इत्यमरः। अनेन व्यावर्तकत्वमुक्तम्। अलका नामालकेति प्रसिद्धा यक्षेश्वराणां वसतिः स्थानं ते तव गन्तव्या। त्वया गन्तव्येत्यर्थः। 'कृत्यानां कर्तरि वा' इति षष्ठी।।7।।

अवतरणिका– मेघ के वंश एवं स्वभावादि की प्रशंसा करते हुए अपना प्रयोजन बताने के बाद, यक्ष दौत्यकर्म से होने वाले मेघ के व्यक्तिगत लाभों के विषय में कहता है कि–

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसत्यः।
कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः।।8।।

अन्वय–पवन–पदवीम् आरूढम् त्वाम्, पथिक–वनिताः प्रत्ययात् आश्वसत्यः, उद्गृहीत–अलकान्ताः प्रेक्षिष्यन्ते, त्वयि सन्नद्धे विरह–विधुराम् जायाम्, कः उपेक्षेत? अन्यः अपि जनः यः अहम् इव पराधीन–वृत्तिः न स्यात् ।।8।।

अनुवाद– वायु–मार्ग पर आरूढ़ हुए तुम्हें, विदेश में गए हुए लोगों की स्त्रियाँ आश्वस्त होकर, बालों के आगे के भाग को ऊपर उठाकर देखेंगी, क्योंकि तुम्हारे उमड़ने पर भला कौन व्यक्ति विरह से व्याकुल पत्नी की उपेक्षा करेगा? यदि वह व्यक्ति मेरे समान दूसरे के अधीन आजीविका वाला न हो।

'चन्द्रिका'– मेघ को सम्बोधित करते हुए यक्ष कहता है कि– हे मेघ! जब तुम मेरा सन्देश लेकर अलका नगरी, वायुमार्ग से जाओगे तो मार्ग में तुम्हें विरह के कारण खुले बालों वाली, विदेश में गए हुए लोगों कीं कामसन्तप्त पत्नियाँ, अत्यधिक आशायुक्त होकर, अपने मुँह पर आगे की ओर आए हुए, बालों के आगे के भाग को हाथ से

उठाकर विलासपूर्वक देखेंगी, क्योंकि तुम्हें देखकर उन्हें विश्वास हो जाएगा, कि अब तो विदेश गए उनके प्रियतम अवश्य ही लौटकर उनके पास आ जाएँगे।

तत्पश्चात् कवि अपने कथ्य की पुष्टि में एक मनोवैज्ञानिक शाश्वत सत्य का कथन भी करता है कि वर्षाकाल में कोई भी व्यक्ति अपनी प्रियतमा से दूर रहने में समर्थ नहीं हो पाता है, यदि वह मेरे समान पराधीन वृत्ति वाला न हो तो।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में मेघ के समक्ष यक्ष ने अपनी दयनीय दशा का उल्लेख करते हुए, प्रिया से न मिल पाने की विवशता का भी उल्लेख किया है।

(ii) सन्देश ले जाने हेतु रसिक मेघ के लिए एक लालच भी दिया गया है, जो कामी मनोविज्ञान पर आधारित महत्त्वपूर्ण तथ्य को प्रदर्शित करता है। वर्षाकाल कामभावना को उद्दीप्त करने वाला माना गया है।

(iii) विदेश में गए हुए लोगों की स्त्रियाँ श्रृंगार के अभाव में अपने बालों को खुला ही रखती थीं, जिससे तात्कालिक स्त्रियों की सामाजिक स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है।

(iv) बिखरे हुए बालों के मुँह पर आने के कारण, आकाश में मेघ को देखने के लिए, अपने दोनों हाथों से बालों को ऊपर करने की स्वाभाविक एवं मनमोहक क्रिया का वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार[1] का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(v) यहाँ पर 'प्रत्ययात्' पद में हेतु अर्थ में पंचमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है। प्रति+ √इण् गतौ+ भावे क्त, तस्मात्, प्रत्ययात्।

(vi) आनन्दवर्धनाचार्य ने प्रस्तुत श्लोक को अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि के उदाहरणरूप में प्रस्तुत किया है।

(vii) अर्थान्तरन्यास अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

---

[1]. स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्। काव्यप्रकाश–10/168 ।

(viii) 'पथिकवनिताः' से अभिप्राय यहाँ विदेश में गए हुए लोगों की पत्नियों से ग्रहण करना चाहिए, जिनके पति मेघ के दर्शन मात्र से अपने–अपने घरों पर लौटने के लिए उत्सुक हो जाते हैं।

(ix) प्राचीनकाल में लोग प्रायः विदेशों में धनार्जन करने के लिए जाते थे, उन्हीं की ओर यहाँ संकेत किया गया है। वर्तमान में भी नौकरी, व्यापार आदि के लिए सभी विदेशों में जाते ही हैं।

(x) आकाश में मेघ को देखकर पथिकों की स्त्रियों को अकस्मात् वर्षाऋतु के आने का भान होता है, जिससे उन्हें विश्वास होता है कि अब तो उनके पति विदेश से अवश्य लौट आएँगे और हमारा वियोगकाल समाप्त हो जाएगा।

(xi) केवल ऐसे लोग जो पराधीन है, उनका स्वामी उसे घर जाने की आज्ञा नहीं देता है, ऐसे ही व्यक्ति वर्षा ऋतु के आने पर घर लौटने में असमर्थ रहते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **आरूढ़म्**– आ+ √रुह्+क्त ।

(ii) **पवनपदवीम्**– पवनस्य पदवी, ताम्, षष्ठी तत्पुरुष।

(iii) **पथिकवनिताः**– पथिकानां वनिता, षष्ठी तत्पुरुष।

(iv) **प्रेक्षिष्यन्ते**– प्र+ √ईक्ष्+लट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन, देखेंगी।

(v) **सन्नद्धे**– सम्+ √नह्+क्त भावे, सप्तमी, एकवचन।

(vi) **स्यात्**– √अस्+विधिलिंग, प्रथमपुरुष, एक वचन, होवे।

(vii) **जायाम्**– जायते अस्यामिति, ताम्, पत्नी को।

(viii) **पराधीनवृत्ति**–परस्मिन् अधीना वृत्तिः, यस्य सः, बहुव्रीहि।

(ix) **उदगृहीतालकान्ताः**– अलकानां अन्ताः, उदगृहीताः अलकान्ताः, याभिः ताः, बहुव्रीहि समास। केशों के अन्तिम भाग को ऊपर उठायी हुई।

(x) **विरहविधुराम्**– विगता धूः भारः, यस्याः सा इति विधुरा ताम्, बहुव्रीहि समास विरह+वि+ √धुर्+अ, विरहेण विधुरा, ताम्, ष.त.।

संजीवनी टीका— त्वामिति। पवनपदवीमाकाशमारूढं त्वाम् पन्थानं गच्छन्ति ते पथिकाः। 'पथः ष्कन्' इति ष्कन् प्रत्ययः तेषां वनिताः प्रोषितभर्तृकाः। प्रत्ययात्प्रियागमनविश्वासात् 'प्रत्ययोऽधीनशपथ–ज्ञानविश्वासहेतुषु' इत्यमरः। आश्वसत्यो विश्वसिताः श्वसधातोः शत्रन्तात् 'उगितश्च' इति ङीप्। तथोद्गृहीतालकान्ता दृष्टिप्रसारार्थमुन्नमय्य धृतालकाग्राः सत्यः प्रेक्षिष्यन्ते। अत्युत्कण्ठया द्रक्ष्यन्तीत्यर्थः। मदागमनेन पथिकाः कथमागमिष्यन्तीत्यत्राह— तद्यथा त्वयि सन्नद्धे व्यापृते सति विरहेण विधुरां जायां क उपेक्षेत। न कोऽपीत्यर्थः अन्योऽपि मद्व्यति–रिक्तोऽपि यो जनः, अहमिव पराधीनवृत्तिः परायत्तजीवको न स्यात्। स्वतन्त्रस्तु न कोऽप्युपेक्षेतेति भावः। अत्रार्थान्तरन्यासोऽलंकारः तदुक्तम्— 'कार्यकारणसामान्यविशेषाणां परस्परम्। समर्थनं यत्र सोऽर्थान्तरन्यास उदाहृतः।' इति लक्षणात्।।8।।

अवतरणिका— इसके पश्चात् यक्ष, अपने मित्र मेघ के अलका की ओर प्रस्थान करते समय होने वाले शुभ–शकुनों की ओर संकेत करता हुआ कहता है कि–

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः।।9।।

अन्वय— यथा च अनुकूलः पवनः, त्वाम् मन्दम् मन्दम् नुदति, अयम् ते सगन्धः चातकः, वामः मधुरम् च नदति, नूनम् ते गर्भाधान–क्षण–परिचयात् आबद्ध–मालाः बलाकाः, नयन–सुभगम् भवन्तम् खे सेविष्यन्ते।।9।।

अनुवाद— और जैसा कि अनुकूल वायु तुम्हें धीरे–धीरे प्रेरित कर रहा है एवं यह पपीहा तुम्हारे बायीं ओर स्थित होकर मधुर शब्द कर रहा है, इसलिए निश्चय ही, गर्भाधान के क्षणिक परिचय के कारण

पंक्ति बद्ध बगुलियाँ, नेत्रों को सुन्दर प्रतीत होने वाले तुम्हारी आकाश में सेवा करेंगी।

'चन्द्रिका'— अपने दौत्यकर्म के लिए तैयार करने हेतु यक्ष, मेघ से कहता है कि— अलकापुरी प्रस्थान के लिए वस्तुतः यह समय उपयुक्त है, क्योंकि सम्प्रति अनुकूल दिशा में चलने वाला वायु, तुम्हें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित कर रहा है तथा यह पपीहा भी तुम्हारे बायीं ओर स्थित होकर अपना 'मधुर' शब्द पीहू–पीहू बोल रहा है। इसके अलाव गर्भाधान के क्षणिक परिचय से होने वाले नैकट्य के कारण पंक्तिबद्ध ये बगुलियाँ भी मार्ग में तुम्हारा साथ देने के लिए तत्पर हो रही हैं।

विशेष—(i) प्रस्तुत श्लोक में वायु का अनुकूल चलना, चातक के मधुर शब्द का होना और बलाकाओं का दर्शन, इन तीनों कारणों का उल्लेख करने से कार्य की सफलता रूप एवं प्रिया का सकुशल होना रूप दोनों कार्यों के शकुन की ओर कवि ने संकेत किया है, जिससे कवि की शकुन शास्त्र में गहन आस्था भी अभिव्यक्त हुई है।

(ii) वर्षाकालिक प्रकृति का सुन्दर एवं मनमोहक चित्रण किया गया है। साथ ही, महाकवि का मानसून तथा पक्षीविज्ञान विषयक ज्ञान भी प्रदर्शित हुआ है, क्योंकि बगुलियों का गर्भ धारण करने का समय वस्तुतः वर्षा का आरम्भिक काल ही होता है।

(iii) कुछ स्थलों पर 'मन्दमन्दं' पाठ भी मिलता है, किन्तु प्रस्तुत प्रकरण में 'मन्दं मन्दं' पाठ ही उपयुक्त प्रतीत होता है, मल्लिनाथ ने इसी पाठ को स्वीकार करके व्याख्या प्रस्तुत की है।

(iv) चातक पक्षी विशेष, जिसके विषय में कवि प्रसिद्धि है कि वह पृथ्वी पर गिरे हुए जल को नहीं पीता है। शकुन शास्त्र में यात्रा के समय इसका बायीं ओर से निकलना शुभ माना जाता है।

(v) कुछ टीकाकारों ने प्रस्तुत श्लोक से पूर्व अग्रिम श्लोक 'तां चावश्यं' को स्वीकार करते हुए व्याख्या प्रस्तुत की है, जो उचित प्रतीत

नहीं होता है, क्योंकि शकुनों में गहन विश्वास रखने वाले काव्यकार कालिदास निश्चय ही, पहले शुभशकुनों का ही उल्लेख करना उपयुक्त मानेंगे, जो उन्होंने यहाँ किया है।

(vi) नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाले मेघ के लिए बगुलियों का लालायित होना अत्यन्त स्वाभाविक है, मेघ के रसिक वृत्ति का होने से यह उसके लिए आनन्द प्रदान करने वाला होगा।

(vii) शकुनरूप अतिशय सम्पत्ति के एक साथ वर्णन से उदात्त अलंकार का सौन्दर्य भी अवलोकनीय है।

(viii) प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, मन्दाक्रान्ता छन्द का उत्प्रेरण, भावों के अनुरूप लालित्यपूर्ण पदों का प्रयोग महाकवि की मनोरम शैली को सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान कर रहे हैं, जो प्रायः सम्पूर्ण मेघदूत काव्य में विद्यमान हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **बलाकाः**– बल+ √अक्+अच्+टाप्

(ii) **नुदति**– √नुद् प्रेरणे+ लट्, प्र.पु, ए.व., प्रेरित कर रहा है।

(iii) **नदति**– √नद् शब्दे+ लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन, अव्यक्त शब्द कर रहा है।

(iv) **मधुरम्**– माधुर्यं राति, इति, मधु+ √रा+क, कर्णेन्द्रिय को अच्छा लगने वाला ।

(v) **आबद्धमालाः**– आबद्धा माला याभिः, ताः बहुव्रीहि ।

(vi) **सेविष्यन्ते**– √सेव्+लट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन, सेवा करेंगी।

(vii) **गर्भाधानक्षणपरिचयात्**– गर्भस्य आधानम्, तदेव क्षणः, तस्मिन् परिचयः, तस्मात्, गर्भाधान के क्षणिक परिचय से।

(viii) **चातकः**–चतति इति, √चत्+ण्वुल्, पक्षी विशेष, चातक।

(ix) **सगन्धः**– गन्धेन सहितः, तृतीया तत्पुरुष, गन्ध से युक्त ।

(x) **नयनसुभगम्**– नयनयोः सुभगः, तम्, सप्तमी तत्पुरुष

संजीवनी टीका– **मन्दं मन्दमिति। अनुकूलः पवनो वायुस्त्वां मन्दं मन्दम्। अतिमन्दमित्यर्थः। अत्र कथंचिद्वीप्सायामेव द्विरुक्तिर्निर्वाह्या।**

'प्रकारे गुणवचनस्य' इत्येतदाश्रयणे तु कर्मधारयवद्भावे सुब्लुकि मन्द–मन्दमिति स्यात् तदेवाह वामनः– 'मन्दं मन्दमित्यत्र प्रकरार्थे द्विर्भाव' इति। यथा सदृशम्। भाविफलानुरूपमित्यर्थः। 'यथा सादृश्ययोग्यत्व–वीप्सास्वार्थानतिक्रमे' इति यादवः। नुदति प्रेरयति। अयं सगन्धः सगर्वं। सम्बन्धीति केचित्। 'गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयोः' इत्युभयत्रापि विश्वः। ते तव वामो वामभागस्थः। 'वामस्तु वक्रे रम्ये स्यात् सव्ये वामगतेऽपि च' इति शब्दार्णवे। चातकः पक्षिविशेषश्च मधुरं श्रव्यं नदति व्याहरति। इदं निमित्तिद्वयं वर्तते। वर्तिष्यते चापरं निमित्तमित्याह गर्भेति। गर्भः कुक्षिस्थो जन्तुः 'गर्भोपकारके ह्यग्नौ मुखे पनसकण्टके। कुक्षौ कुक्षिस्थजन्तौ च' इति यादवः। तस्याधानमुत्पादनं तदेव क्षण उत्सवः सुखहेतुत्वादिति भावः।

'निर्व्यापारस्थितौ कालविशेषोत्सवयोः क्षण' इत्यमरः। तस्मिन् परिचयादभ्यासाद्धेतो खे व्योम्नि। आबद्धमालाः। गर्भाधानसुखार्थं त्वत् समीपे बद्धपंक्तय इत्यर्थः। उक्तं च कर्णोदये– गर्भं बलाका दधते ऽभ्रयोगान्नाके निबद्धावलयः समन्ताद्' इति। बलाका बलाकाङ्गनाः नयनसुभगं दृष्टिप्रियं भवन्तं नूनं सत्यं सेविष्यन्ते। अनुकूलमारुतचातक–शब्दिबलाकादर्शनानां शुभसूचकत्वं शकुनशास्त्रदृष्टं तद्विस्तरभयान्ना–लेखि।।9।।

अवतरणिका– यक्ष अपने मित्र मेघ से कहता है कि यहाँ से अलकापुरी जाना तुम्हारे लिए निरर्थक नहीं होगा, क्योंकि मेरी प्रिया वहाँ पर निश्चय ही मेरे साथ पुनर्मिलन की आशा में प्राणों को धारण कर रही होगी–

तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी–
मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम्।
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यंगनानां
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि।।10।।

अन्वय– अविहत–गतिः दिवस–गणना–तत्पराम्, एक–पत्नीम् ताम् भ्रातृ–जायाम् च अव्यापन्नाम् अवश्यम् द्रक्ष्यसि, हि आशा–बन्धः अंगनानाम् कुसुम–सदृशम् सद्यः पाति प्रणयि हृदयम् विप्रयोगे प्रायशः रुणद्धि ।।10।।

अनुवाद– हे मेघ! अप्रतिहत गति वाले तुम, दिनों की गणना में लगी हुई पतिव्रता अपनी भाभी को जीवित अवश्य देखोगे, क्योंकि आशारूपी बन्धन, युवतियों के पुष्प के समान कोमल एवं शीघ्र विनष्ट होने वाले, प्रेमपूर्ण हृदय को वियोग में प्रायः अवरुद्ध कर देता है।

'चन्द्रिका'– यक्ष का अभिप्राय है कि यहाँ से चलकर तुम निरन्तर चलते रहोगे, तो पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली, मेरी प्रिया और अपनी भाभी को वहाँ पर जीवित अवश्य ही देखोगे, जो शाप के कारण उपस्थित हुए वियोग सम्बन्धी शेष दिनों की गणना में व्यस्त होगी, क्योंकि फिर से मिलने की आशा का एकमात्र बन्धन ही है, जो पुष्प के समान कोमल तथा शीघ्र ही विनष्ट होने वाले हृदय वाली, स्त्रियों के प्राणों को वियोग की कठोर अवस्था में भी रोके रखता है, उन्हें बाहर नहीं निकलने देता है, अन्यथा तो उनके प्राण ही निकल जाएँ।

विशेष–(i) प्रियतम से मिलने की आशा के सहारे व्यक्ति लम्बे वियोग को भी सहन करने में समर्थ होता है। इसी शाश्वत सत्य का प्रतिपादन किया गया है। यक्ष के साथ–साथ, महाकवि का भी आशा–वादी दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) प्रियमिलन का आशारूपी बन्धन ही वियोग की अवस्था में पुष्प के समान कोमल हृदय वाली, कामिनियों के प्राणों को शरीर से निकलने से रोकता है, यही अभिप्राय है।

(iii) स्त्रियों की वियोगावस्था पुरुषों की अपेक्षा अधिक असह्य होती है। इस बात का प्रतिपादन किया गया है, इसलिए भावुक हृदया

प्रिया यक्षिणी को अपनी कुशलता का सन्देश देना अत्यन्त आवश्यक है।

(iv) प्रियतम से वियोग की अवस्था में स्त्रियाँ एक–एक दिन को गिन–गिनकर व्यतीत करती हैं, इसी अभिप्राय को अभिव्यक्त किया गया है, क्योंकि खाने–पीने के प्रति बेसुध उनका यही सबसे बड़ा काम होता है, इसलिए मेरी प्रिया भी वियोग के बाकी बचे हुए दिवसों को ही गिनने में तत्पर होगी।

(v) यहाँ प्रयुक्त 'एकपत्नीम्' पद से यक्ष का भी अपनी प्रियतमा के प्रति एक पत्नीव्रत भाव अभिव्यक्त हुआ है, जो सहृदय को आह्लादित करने वाला है।

(vi) 'भ्रातृजाया' शब्द बड़े भाई की पत्नी के लिए भारतीय समाज में प्राचीनकाल से प्रयुक्त होता आया है, जो अत्यन्त पवित्र है। इसीलिए भाभी को 'माँ' के समान उच्च स्थान प्रदान किया जाता है।

(vii) 'अव्यापन्नाम्' पद का प्रयोग यहाँ पर सप्रयोजन किया गया है, क्योंकि इसके माध्यम से कवि कहना चाहता है कि मेरा सन्देश लेकर तुम्हारा वहाँ जाना निरर्थक नहीं होगा, क्योंकि फिर से मिलने की आशा में उसने निश्चय ही, अपने प्राणों को आज तक भी धारण किया होगा अर्थात् उसका प्राणान्त नहीं हुआ होगा।

(viii) एकमात्र 'आशा' ही है, जिसके कारण व्यक्ति कठोरतम यातनाओं को भी यही सोचकर सहन कर लेता है, कि कभी न कभी हमारे इन दुःखों का अन्त अवश्य होगा।

(ix) आशा की, बन्धनरूप में कवि की कल्पना अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है, क्योंकि किसी वस्तु को निकलने से रोकने हेतु उसके निकासी स्थान पर बन्धन का ही प्रयोग करते हैं। संस्कृत साहित्य में इसकी अनेक कवियों ने चर्चा की है।

(x) आशाबन्धः में रूपक[1], कुसुमसदृशम् में लुप्तोपमा तथा सामान्य से विशेष का समर्थन करने से अर्थान्तरन्यास अलंकारों का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **एकपत्नीम्**— एकः पतिः यस्याः सा, एकपत्नी, ताम्, बहुव्रीहि, या एका चासौ पत्नी, ताम्, कर्मधारय।

(ii) **दिवसगणनातत्पराम्**— दिवसानां गणना, तस्यां तत्परा, ताम्, सप्तमी तत्पुरुष, **गणना**— √गण्+णिच्+युच(अन्)+टाप्, गिनती।

(iii) **अव्यपन्नाम्**— न व्यापन्ना, ताम् नञ् तत्पुरुष, वि+आङ् +√वद्+ क्त+टाप्, प्राणों को धारण करने वाली, जीवित को।

(iv) **अविहतगतिः**— न विहता इति, नञ् तत्पुरुष, अविहता गति यस्य सः, बहुव्रीहि। **विहत**— वि+√हन्+क्त, **गतिः**—√गम्+क्तिन्,

(v) **भ्रातृजायाम्**— भ्रातुः जाया इति, ताम्, भाभी को। (ष.तत्पु.)

(vi) **द्रक्ष्यसि**— √दृश्+लृट्, मध्यम पुरुष, एकवचन, देखोगे।

(vii) **विप्रयोगे**— वि+प्र+√युज्+घञ्, तस्मिन्, वियोग में ।

(viii) **रुणद्धि**—√रुध्+लट् प्रथम पुरुष, एकवचन, रोकता है।

(ix) **अंगनानाम्**— प्रशस्तानि अंगानि आसाम् इति, तासाम्

(x) **आशाबन्धः**— आशा एव बन्धः, कर्मधारय, अथवा आशायाः बन्धः, षष्ठी तत्पुरुष, √बन्ध्+घञ्, आशा का बन्धन।

(xi) **कुसुमसदृशम्**— कुसुमेन सदृशम्, तृतीया तत्पुरुष।

संजीवनी टीका— तां चेति। हे मेघ! दिवसानामवशिष्टदिनानां गणनायां संख्याने तत्परामासक्ताम्। 'तत्परे प्रसितासक्तौ' इत्यमरः। अत एवाव्यापन्नाममृताम्। शापावसाने मदागमनप्रत्याशया जीवन्तीमित्यर्थः। एकः पतिर्यस्याः सेकपत्नी ताम्। पतिव्रतामित्यर्थः। 'नित्यं सपत्न्यादिषु' इति ङीप् नकारश्च। भ्रातुर्मे जायां भ्रातृवन्निःशंकं दर्शनीयमित्याशयः। तां मत्प्रियामविहतगतिरविच्छिन्नगतिः सन्नवश्यं द्रक्ष्यसि चालोकयिष्यस्येव। तथा हि आशाऽतितृष्णा 'आशादिगतितृष्णयोः' इति यादवः। बन्धते

---

[1]. तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः। काव्यप्रकाश— 10/139 ।

ऽनेनेति बन्धो बन्धनम्। वृन्तमिति यावत्। आशैव बन्ध आशाबन्धः कर्ता। प्रणयि प्रेमयुक्तम्। अतएव कुसुमसदृशम्। सुकुमारमित्यर्थः। अतएव विप्रयोगे विरहे सद्यः पाति सद्योभ्रंशनशीलमंगनानां हृदयं जीवितम्। 'हृदयं जीविते चित्ते वक्षस्याकूतहृद्ययोः' इति शब्दार्णवे। प्रायशः प्रायेण रुणद्धि प्रतिबध्नाति। अर्थान्तरन्यासः।।10।।

अवतरणिका– इसी क्रम में यक्ष कहता है कि अलकापुरी तक के तुम्हारे लम्बे मार्ग में ये राजहंस सहयोगी रहेंगे, जो तुम्हारे गर्जन को सुनकर मानसरोवर की ओर जाने के उत्सुक हो गए हैं–

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः।
आ कैलासाद्बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः।
सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः।।11।।

अन्वय–यत् च महीम् उच्छिलीन्ध्राम् अवन्ध्याम् कर्तुम् प्रभवति, तत् ते श्रवण–सुभगम् गर्जितम् श्रुत्वा, मानसोत्काः बिस–किसलय–छेद–पाथेयवन्तः राजहंसाः आकैलासात् नभसि भवतः सहायाः सम्प–त्स्यन्ते।।11।।

अनुवाद– उगे हुए कुकुरमुत्तों से युक्त पृथ्वी को उपजाऊ बनाने वाले, कानों को सुख प्रदान करने वाले, तुम्हारे गर्जन को सुनकर, मानसरोवर की ओर जाने के लिए उत्कण्ठित कमलनाल के टुकड़ों को मार्ग का पाथेय बनाने वाले, राजहंस कैलास पर्वत पर्यन्त आकाश में तुम्हारे सहयोगी होंगे।

'चन्द्रिका'– मेघ की दो विशेषताओं का उल्लेख करते हुए यक्ष कहता है कि– ये राजहंस कैलाशपर्वत तक के लम्बे मार्ग में आकाश में जाते हुए तुम्हारे सहयोगी बनेंगे, इसलिए तुम्हारा मार्ग नीरस नहीं होगा। मेघ की दो विशेषताओं में **प्रथम**, के अनुसार उसका गर्जन कानों को सुख प्रदान करने वाला है, **द्वितीय**, इस गर्जन के बाद ही पृथ्वी से कुकुरमुत्तों (शिलीन्ध्रों) की उत्पत्ति होती है, जिसके द्वारा पृथ्वी

उपजाऊ होती है। इसप्रकार शेष अंश में प्राणीमात्र के उपकारी मेघ के राजहंसों के सहयोगी होने की बात का कथन किया गया है।

क्योंकि श्लोक के तीसरे चरण में कवि ने राजहंसों की विशेषता का उल्लेख किया है, जो मेघ के श्रुतिमधुर गर्जन को सुनकर, वर्षाकाल को आया हुआ जानकर, कैलास पर्वत पर स्थित मानसरोवर पर जाने के लिए उत्सुक हो गए हैं। साथ ही, इतने लम्बे मार्ग को पार करने के लिए, जिन्होंने कमलनाल के कोमल टुकड़ों को कलेवे (मार्ग का अल्पाहार) के रूप में ग्रहण कर लिया है।

विशेष–(i) मान्यता है कि बादलों की गर्जन से पृथ्वी उपजाऊ बनती है, इसी ओर यहाँ कवि द्वारा संकेत किया गया है, जिससे कवि का कृषि–विज्ञान विषयक ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) राजहंस पक्षी विशेष, जिसकी चोंच एवं पैर लाल होते हैं तथा रंग श्वेत होता है,[1] कवियों ने इसे नीर–क्षीर विवेकी माना है। वर्षाऋतु में ये मानसरोवर चले जाते हैं, क्योंकि वर्षा इन्हें प्रिय नहीं है।

(iii) वर्षाऋतु में उत्पन्न होने वाले कुकुरमुत्तों को पृथ्वी को उपजाऊ बनाने वाला माना गया है, इनकी उत्पत्ति बादलों के गर्जन से होती है।

(iv) मानसरोवर के लिए द्रष्टव्य भूमिका पृष्ठ– 87।

(v) **पाथेय**– वस्तुतः लम्बे मार्ग पर जाने के लिए, भूख लगने पर खाने की अल्प सामग्री को कहा जाता है। राजहंसों ने इसे कोमल कमलनाल खण्ड के रूप में ग्रहण किया है।

(vi) 'आकैलासाद्' में 'आङ्मर्यादावचने' सूत्र से आ' पद का प्रयोग 'मर्यादा' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए किया गया है तथा 'पंचम्याङ्परिभिः' सूत्र से पंचमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

(vii) कैलास पर्वत को शिव–पार्वती का निवास स्थान माना गया है। यक्षों के राजा कुबेर भी यहीं पर रहते हैं।

---

[1]. राजहंसास्तु ते चंचु चरणैर्लोहितैः सिताः, इत्यमरः।

(viii) 'अवन्ध्य' से अभिप्राय यहाँ पृथ्वी को उपजाऊ बनाने से ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि वन्ध्या अनुपजाऊ या बाँझ को कहते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **श्रुत्वा**– √श्रु+क्त्वा, सुनकर।

(ii) **राजहंसाः**– हंसानां राजानः, षष्ठी तत्पुरुष।

(iii) **कर्तुम्**– √कृ+तुमुन्, करने के लिए

(iv) **उच्छिलीन्ध्राम्**–उद्गतानि शिलीन्ध्राणि यस्यां सा, ताम्।

(v) **श्रवणसुभगाम्**– श्रवणयोः सुभगम्, सप्तमी तत्पुरुष। श्रवण– श्रूयते आभ्यां इति, ते श्रवणे, √श्रु+ल्युट्, सुनने में अच्छा लगने वाला।

(vi) **अवन्ध्याम्**– न वन्ध्याम्, इति ताम्, नञ् समास।

(vii) **मानसोत्काः**– मानसे उत्काः, इति, सप्तमी तत्पुरुष।

(viii) **सम्पत्स्यन्ते**– सम्+ √पद्+लृट्, प्र.पु., बहुवचन, होंगे।

(ix) **गर्जितम्**– √गर्ज्+क्त, (नपुंसके भावे क्तः) गर्जन को।

(x) **बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः**– बिसानां किसलयानि, तेषां छेदाः, पथि साधुः, इति पाथेयम्, तदस्ति येषामिति। पाथेय+मतुप् (म–व)

संजीवनी टीका– **कर्तुमिति**। यद् गर्जितं कर्तृ महीमुच्छिलीन्ध्रा–मुद्भूतकन्दलिकाम्। 'कन्दल्यां च शिलीन्ध्रः स्यात्' इति शब्दार्णवः। अत एवाबन्ध्यां सफलां कर्तुं प्रभवति शक्नोति शिलीन्ध्राणां भाविसस्यसम्पत्ति–सूचकत्वादिति भावः। तदुक्तं निमित्तनिदाने– 'कालाभ्रयोगादुदिताः शिलीन्ध्राः सम्पन्नसस्यां कथयन्ति धात्रीम्' इति। तच्छ्रवणसुभगं श्रोत्र–सुखम्। लोकस्येति शेषः। ते तव गर्जितं श्रुत्वा मानसोत्का मानसे सरस्युन्मनसः। उत्सुका इति यावद्। 'उत्क उत्सुक उन्मनाः' इति निपातात् साधुः। कालान्तरे मानसस्य हिमदुष्टत्वाद्धिमस्य च हंसानां रोगहेतुत्वादन्यत्र गता हंसाः पुनर्वर्षासु मानसमेव गच्छन्तीति प्रसिद्धिः।

बिसकिसलयानां मृणालाग्राणां छेदैः शकलैः पाथेयवन्तः। पथि साधु पाथेयं पथि भोज्यम्। 'पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्'। तद्वन्तः। मृणालकन्दशकलसम्बन्धवन्त इत्यर्थः। राजहंसा हंसविशेषाः। 'राजहंसास्तु ते चंचुचरणैर्लोहितैः सिताः' इत्यमरः। नभसि व्योम्नि भवतस्तव आ

कैलासात्कैलासपर्यन्तम्। पदद्वयं चैतत् सहायाः सयात्राः। 'सहायास्तु सयात्रः स्यात्' इति शब्दार्णवः। सम्पत्स्यन्ते भविष्यन्ति।।11।।

अवतरणिका— इसके पश्चात् यक्ष, प्रस्थान से पूर्व मेघ से रामगिरि पर्वत से विदाई लेने की बात करते हुए कहता है कि—

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुंगमालिंगय्य शैलं
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरंकितं मेखलासु।
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुंचतो बाष्पमुष्णम्।।12।।

अन्वय— पुंसाम् वन्द्यैः रघुपति—पदैः मेखलासु अंकितम् प्रियसखम् अमुम् तुंगम् शैलम् आलिंगय्य आपृच्छस्व, काले काले भवतः संयोगम् एत्य, चिर—विरहजम् उष्णम् बाष्पम् मुंचतः, यस्य स्नेह—व्यक्तिः भवति।।12।।

अनुवाद— इसलिए हे मित्र! लोगों के वन्दनीय श्रीराम के चरणों द्वारा पर्वतश्रृंखलाओं पर चिह्नित, इस ऊँचे पर्वत का आलिंगन करके विदा ले लो, क्योंकि समय—समय पर आपका सान्निध्य प्राप्त करके, चिरकाल के वियोग से उत्पन्न उष्ण अश्रुओं को छोड़ते हुए, जिस रामगिरि के स्नेह की सदा ही अभिव्यक्ति होती है।

'चन्द्रिका'— इसप्रकार मेघ से अन्य सभी बातों का कथन करने के बाद, य़क्ष अपने मित्र पर्वत से विदाई लेने की बात करते हुए कहता है कि— प्रत्येक व्यक्ति द्वारा वन्दना करने योग्य रघुकुल शिरोमणि श्री राम के श्रीचरणों के चिह्न, जिस रामगिरि की श्रेणियों पर पड़े हुए हैं, ऐसे उत्तुंग शिखर वाले इस पर्वत का प्रगाढ़ आलिंगन करके, तुम सर्वप्रथम विदाई ले लो, (आपृच्छस्व) क्योंकि तुम्हारे साथ इस पर्वत का संयोग तो लम्बे समय के बाद हुआ है, इसलिए चिरकाल के वियोग से उत्पन्न होने वाले अश्रुओं को छोड़कर ही यह बाष्परूप में अपने स्नेहिल भावों की अभिव्यक्ति कर रहा है।

विशेष–(i) ध्यातव्य है कि प्रस्तुत मेघदूत काव्य में कवि ने प्रकृति के प्रत्येक उपादान में चेतना का ही चिन्तन किया है, दूसरे शब्दों में, यहाँ मानव के समान प्रकृति अर्थात् उसका प्रत्येक उपादान भी सचेतन रहा है। इसीलिए निर्जीव मेघ में दौत्यकर्म की सामर्थ्य के साथ रामगिरि में मित्र से अलग होने के कारण, दुःख के गर्म अश्रुओं को छोड़ने की बात का यहाँ उल्लेख किया गया है।

(ii) पर्वत पर श्रीराम के चरण–चिह्नों का प्रयोग करके, उनके प्रति कालिदास का आदरभाव अभिव्यक्त हुआ है। साथ ही, इससे रामगिरि पर्वत की गरिमा तथा महत्ता में भी अभिवृद्धि हुई है।

(iii) महाकवि का रसायन शास्त्रीय ज्ञान अभिव्यंजित हुआ है, क्योंकि वे इस बात से सुपरिचित हैं कि ग्रीष्मऋतु में सूर्य की तीक्ष्ण किरणों के तपने के बाद वर्षाऋतु में प्रथम जल बिन्दुओं का पर्वत पर गिरकर बाष्प बनना स्वाभाविक है, जिसमें पर्वत के अश्रुओं की कल्पना अत्यधिक मनभावन एवं हृदयद्रावक बन पड़ी है। इससे काव्यकार कालिदास का भावुक हृदय वाला होना भी अभिव्यक्त हुआ है।

(iv) भाषा की चित्रात्मकता दर्शनीय है, जिसके माध्यम से दीर्घकाल के बाद परस्पर मिले हुए दो मित्रों की भावुकता का विहंगम दृश्य प्रस्तुत किया गया है, जिनमें एक आलिंगन बद्ध होकर यात्रा पर आगे जाने की अनुमति ले रहा है, तो दूसरा मित्र भावविभोर होकर उसे अश्रुओं के साथ भारी मन से विदाई दे रहा है।

(v) काले–काले पदों में 'वीप्सा' अर्थ में द्विरुक्ति का प्रयोग हुआ है। प्रत्येक वर्षाकाल में, समय–समय पर ।

(vi) 'मेखला' पद को विद्वानों ने 'पर्वत का ढलान' अर्थ में प्रयुक्त माना है, जबकि इसका अर्थ 'पर्वत की श्रेणियाँ' अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

(vii) श्रीराम अपने वनवास काल में इसी रामगिरि पर रुके थे, इसलिए इसकी प्रत्येक श्रृंखला पर उनके चरणों के चिह्नों का बने रहना अत्यन्त स्वाभाविक है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **अंकितम्**– √अकि+इट्+क्त।

(ii) **आपृच्छस्व**– आ+√पृच्छ्+लोट्, मध्यमपुरुष, एक वचन।

(iii) **प्रियसखम्**– प्रियश्चासौ सखा इति, तम् कर्मधारय।

(iv) **आलिंग्यः**– आ+√लिंग्+क्त्वा(ल्यप्) आलिंगन करके।

(v) **वन्द्यैः**– √वन्द्+ण्यत्, तृतीया विभक्ति, बहुवचन।

(vi) **रघुपतिपदैः**– रघूणां पति, तस्य पदानि, तै, षष्ठी तत्पुरुष।

(vii) **एत्य**– आङ्+√इण् (गतौ)+ क्त्वा (ल्यप्), प्राप्त करके।

(viii) **संयोगम्**– सम्+√युज्+घञ्, मिलन को।

(ix) **स्नेहव्यक्तिः**– स्नेहस्य व्यक्तिः,षष्ठी तत्पुरुष, √स्निह्+घञ्, व्यक्तिः– वि+√अंज्+क्तिन्, प्रेम की अभिव्यक्ति।

(x) **मुंचतः**– मुंचति, इति मुंचन्, तस्य, √मुंच्+शतृ, षष्ठी विभ.

(xi) **चिरविरहजम्**– चिरं विरहः इति, चिरविरहात् जातः, तम्, चिरविरह+√जनी प्रादुर्भावे+ड (अ) धातु की टि का लोप,

संजीवनी टीका– आपृच्छस्वेति। प्रिय सखायं प्रियसखम्। 'राजाहः सखिभ्यष्टच्' इति टच् समासान्तः। तुंगमुन्नतं पुंसां वन्द्यैराराधनीयै रघुपतिपदैः रामपदन्यासैर्मेखलासु कटीषु 'अथ मेखला श्रोणिस्थानेऽद्रिकटके कटिबन्धने' इति यादवः। अंकितं चिह्नितम्। इत्थं सखित्वान्महत्त्वात्पवित्रत्वाच्च सम्भावनार्हम् अमुं शैलं चित्रकूटाद्रिमालिंग्यापृच्छस्व साधो यामीत्यामन्त्रणेन सभाजय, इत्यात्मनेपदम्। सखित्वं निर्वाहयति काल इति। काले काले प्रतिप्रावृट्कालम्। सुहृत्समागमकालश्च कालशब्देनोच्यते। वीप्सायां द्विरुक्तिः। भवतः संयोगं सम्पर्कमेत्य चिरविरहजमुष्णं बाष्पमूष्माणं नेत्रजलं च।'बाष्पो नेत्रजलोष्मणोः' इति विश्वः। मुंचतो यस्य शैलेषु स्नेहव्यक्तिः प्रेमाविर्भावो भवति। स्निग्धानां हि चिरविरहसंगतानां वाष्पपातो भवतीति भावः।।12।।

अवतरणिका– पर्वत से विदाई लेने की बात का कथन करने के बाद, यक्ष अलकापुरी जाने के छोटे मार्ग को सुनाने का उल्लेख करते हुए कहता है कि–

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं
संदेशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम्।
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघुपयः स्रोतसां चोपभुज्य।।13।।

अन्वय– जलद! तावत् कथयतः, त्वत् प्रयाण–अनुरूपम् मार्गम् शृणु, यत्र खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदम् न्यस्य, क्षीणः क्षीणः च स्रोतसाम् परिलघु–पयः उपभुज्य, गन्ता असि, तद अनु श्रोत्र–पेयम् मे संदेशम् श्रोष्यसि।।13।।

अनुवाद– इसलिए हे मेघ! सर्वप्रथम तो तुम कहते हुए मुझसे अपनी यात्रा के अनुकूल मार्ग को सुनो, क्योंकि इस मार्ग में बार–बार थक जाने पर पर्वतों पर पैर रखकर एवं बार–बार क्षीण होने पर नदियों के हलके जल को पीकर, यदि तुम जाते हो, तो ही उसके बाद तुम मार्ग सुनकर, कानों द्वारा पिए जाने योग्य मेरे सन्देश को सुन सकोगे।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में यक्ष ने अपने मित्र मेघ से तीन बातें प्रमुखरूप से कही हैं। **सर्वप्रथम**, तो अपने मित्र पर्वत से भावभीनी विदाई लेकर तुम मुझसे अपनी यात्रा के अनुकूल मार्ग को ध्यानपूर्वक सुनो, क्योंकि तुम्हारे लिए मैंने इसप्रकार के मार्ग का चिन्तन किया है, जिसमें तुम्हें मार्ग के चलने की थकान को दूर करने के लिए ऊँचे पर्वतों की प्राप्ति हो सके तथा पद–पद पर वृष्टि करने के कारण हलके हुए तुम, मार्ग में नदियों के जल का पान करके, अपनी प्यास को भी बुझा सको, इसलिए तुम पहले उस मार्ग के बारे में जानने के बाद ही, अपने कानों द्वारा पिए जाने योग्य मेरे सन्देश को सुनना।

विशेष–(i) निरन्तर प्रवाहित होती हुई नदियों का जल सुपाच्य एवं हलका होता है, इसका उल्लेख करने से कवि का आयुर्वेद विषयक ज्ञान भी अभिव्यंजित हुआ है।

(ii) महाकवि की दूरदृष्टि, भारत की भौगालिक स्थिति एवं मानसून विषयक गहन ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है, क्योंकि मेघ के लिए मानसून को ध्यान में रखकर ही मार्ग का निर्धारण किया जाना है, उसमें भी उसके लिए पर्वतों तथा नदियों की उपस्थिति भी अनिवार्य है, जिससे मेघ अपनी मार्ग में चलने की थकान तथा उससे उत्पन्न होने वाली प्यास को दूर कर सके।

(iii) प्रस्तुत श्लोक के उत्तरार्द्ध में कहे गए कार्य से मेघ में सामान्य यात्री के व्यवहार का आरोप होने से समासोक्ति अलंकार[1] का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iv) यहाँ प्रयुक्त क्षीणः–क्षीणः, खिन्नः–खिन्नः में नाद–सौन्दर्य विद्यमान है, जो महाकवि की शैली की महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है।

(v) 'कथयतः' पद में 'आख्यातोपयोगे' सूत्र से पंचमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

(vii) 'तदनु' पद में 'अनुर्लक्षणे' सूत्र से 'अनु' की 'कर्मप्रवच–नीय' संज्ञा होकर 'कर्मवचनीययुक्ते द्वितीया'से द्वितीया विभक्ति हुई है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **शृणु**– √श्रु+लोट्, म.पु, ए.वचन।

(ii) **कथयतः**– कथ्+णिच्+शतृ, पंचमी, एकवचन। कहते हुए

(iii) **सन्देशम्**– सम्+ √दिश्+घञ्, सन्देश को ।

(iv) **श्रोष्यसि**– √श्रु+लट्, मध्यमपुरुष, एकवचन, सुनोगे।

(v) **श्रोत्रपेयम्**– श्रूयते अनेन इति, श्रोत्रम्, श्रोत्राभ्याम् पेयं इति श्रोत्रपेयम्, **श्रोत्रम्**–√श्रु+ष्ट्रन्, **पेयम्**–√पा+यत् ।

(vi) **गन्तासि**– √गम्+लुट्, मध्यमपुरुष, एकवचन, जाओगे।

(vii) **जलद**– जलं ददाति, इति, जल+ √दा+क, बादल ।

---

[1]. परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः। काव्यप्रकाश–10 / 148 ।

(viii) **त्वत्प्रयाणानुरूपम्**– तव प्रयाणाम्, रूपम् अनुगतः, इति अनुरूपम्, त्वत् प्रयाणस्य अनुरूपः तम्, तुम्हारे प्रयाण के अनुरूप।

(ix) **खिन्नः खिन्नः** में वीप्सा में द्वित्व हुआ है।

(x) **न्यस्यः**– नि+ √अस्+क्त्वा (ल्यप) रखकर।

(xi) **शिखरिषु**– शिखराणि सन्ति येषु शिखरिणः, तेषु ।

संजीवनी टीका– मार्गमिति। हे जलद! तावदिदानीं कथयतः मत्त इति शेषः। त्वत्प्रयाणस्थानुरूपमनुकूलं मार्गमध्वानम्। 'मार्गो मृगपदे मासि सौम्यर्क्षेऽन्वेषणेऽध्वनि' इति यादवः। शृणु। तदनु मार्गश्रवणानन्तरं श्रोत्रभ्यां प्रेयं पानार्हम्। अतितृष्णया श्रोतव्यमित्यर्थः। पेयग्रहणात् सन्देशस्यामृतसाम्यं गम्यते। मे सन्देशं वाचिकम्। 'सन्देशवाग्वाचिकं स्यात्' इत्यमरः। श्रोष्यसि। यत्र मार्गे खिन्नः खिन्नोऽभक्षणं क्षीणबलः सन्। 'नित्यवीप्सयोः' इति नित्यर्थे द्विर्भावः। शिखरिषु पर्वतेषु पादं न्यस्य निक्षिप्य। पुनर्बललाभार्थं क्वचिद्विश्रम्येत्यर्थः। क्षीणः क्षीणोऽभीक्ष्णं कृशांगः सन्। अत्रापि कृदन्तत्वात्पूर्ववद् द्विरुक्तिः। स्रोतसां परिलघु गुरुत्वदोष–रहितम्। उपलास्फालनखेदितत्वात्पथ्यमित्यर्थः। तथा च वाग्भटः 'उपलास्फानक्षेपविच्छेदैः खेदितोदकाः। हिमवन्मलयोद्भूताः पथ्या नद्यो भवन्त्यमूः' इति। पयः पानीयमुपभुज्य शरीरपोषणार्थमभ्यवहृत्य च गन्तासि गमिष्यसि गमेर्लुट्।।13।।

अवतरणिका– पुनः यक्ष अलकापुरी तक जाने के उपयुक्त मार्ग के विषय में मेघ से कहता है कि–

अद्रेः श्रृंगं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि–
र्दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धांगनाभिः।
स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं
दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ।।14।

अन्वय– पवनः अद्रेः श्रृंगम् हरति किंस्वित्? इति उन्मुखीभिः मुग्ध–सिद्धांगनाभिः चकित–चकितम् दृष्ट–उत्साहः पथि, दिङ्नागानाम्

स्थूल–हस्त–अवलेपान् परिहरन्, अस्मात् सरस–निचुलात् स्थानात् उदङ्मुखः खम् उत्पत।।14।।

अनुवाद– अरे! क्या वायु पर्वत की चोटी को उड़ाकर ले जा रहा है? इसप्रकार विचार करके ऊपर की ओर मुख किए हुए, भोली सिद्धों की अंगनाओं द्वारा अत्यन्त आश्चर्य के साथ देखे गए उत्साह वाले तुम, रास्ते में दिग्गजों की मोटी सूँडों के प्रहारों से बचते हुए, इन सरस निचुलों के स्थान के उत्तर की ओर मुख करके आकाश में उड़ना।

'चन्द्रिका'– जब तुम यहाँ से अलकापुरी की ओर प्रस्थान करोगे, तो तुम्हारे विशाल आकार के कारण मार्ग में सिद्धों की भोली–भाली सुन्दरियाँ तुम्हें ऊपर की ओर मुख करके आश्चर्यपूर्वक देखेंगी तथा तुम्हें देखकर इसप्रकार अत्यन्त उत्साह के साथ विचार करेंगी कि कहीं यह वायु किसी विशाल पर्वत की चोटी को तो आकाश में उड़ाकर नहीं ले जा रहा है?

इसके अतिरिक्त जब तुम अलकापुरी जाओगे तो मार्ग में दिशाओं के हाथी (दिग्गज) भी तुम्हें अन्य हाथी समझकर प्रताड़ित करने का प्रयास करेंगे, तब तुम उनकी मोटी–मोटी सूँड़ों के प्रहारों से स्वयं को बचाते हुए, इस सरस बेंतों वाले हरे भरे स्थान से उत्तर की ओर मुख करके, आकाश में उड़ जाना अर्थात् यहाँ से तुम्हें उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करना है।

विशेष–(i) रामगिरि में सरल निचुलों की सघनता के उल्लेख से कवि का वनस्पति विज्ञान विषयक ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) पुराणों में आठों दिशाओं की रक्षा करने वाले आठ हाथियों[1] की कल्पना की गयी है, यहाँ उसी की ओर संकेत किया गया है, जिससे महाकवि का पौराणिक ज्ञान अभिव्यंजित हुआ है।

---

[1]. ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमदोऽजनः।

(iii) टीकाकार मल्लिनाथ ने यहाँ प्रयुक्त दिङ्नाग का अभिप्राय 'आचार्य विशेष' से ग्रहण किया है, जो कालिदास का घोर विरोधी तथा सहपाठी भी था, दिङ्नाग का समय भी पंचम शतक ही रहा है, इसलिए यह काव्यकार की दृष्टि से औचित्यपूर्ण भी प्रतीत होता है।

(iv) इसीप्रकार यहाँ प्रयुक्त 'निचुल' पद का अर्थ भी उन्होंने 'निचुल' नामक 'रसिक कवि विशेष' किया है, जो उनका सहपाठी तथा प्रशंसक था। किसी के द्वारा कालिदास के काव्य में दोष निकाले जाने पर यह उसका अँगुली रखते हुए एक–एक बिन्दु पर परिहार करता था। उन्होंने श्लेष की योजनापूर्वक प्रस्तुत श्लोक का अर्थ भिन्न प्रकार किया है।[1]

(v) ऐसा प्रतीत होता है कि ये दोनों कवि रामगिरि के आसपास ही रहते थे, किन्तु शारदारंजन राय ने 'निचुल' पद को महाकवि की उपाधिरूप में स्वीकार किया है, जो उन्हें विद्वानों द्वारा श्लोक विशेष[2] के कारण प्रदान की गयी थी।

(vi) यहाँ प्रयुक्त 'चकितचकितं' पद से भोलीभाली सरल सिद्धांगनाओं को मेघ के विशाल आकार को देखकर भ्रम के कारण पर्वत के विशाल शिखर की प्रतीति हो रही है, जिसे वे अत्यन्त आश्चर्यपूर्वक देख रही हैं।

पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः।।

1. हे मेरे काव्य! सहृदय निचुल जिस स्थान पर रहता है, उससे उन्नत मस्तक होकर, सरस्वती के मार्ग में दिङ्नाग द्वारा हाथ रखकर प्रदर्शित किए गए दोषों को बचाते हुए एवं क्या कालिदास की कीर्ति, पर्वत के समान दिङ्नाग की प्रधानता का अपहरण कर रही है, इसकारण निपुण कवियों एवं स्त्रियों द्वारा अत्यन्त चकित होकर देखने के उत्साह वाले तुम, आकाश से भी उत्कृष्ट बन जाना।

2. संसर्गतो दोषगुणा भवन्तीत्येतन्मृषा येन जलाशयेऽपि।
स्थित्वाऽनुकूलं निचुलश्चलन्तमात्मानमारक्षति सिन्धुवेगात्।।

(vii) इसके अतिरिक्त प्रस्तुत श्लोक में मेघ में पर्वत के शिखर का सन्देह होने से सन्देह अलंकार[1] का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(viii) यहाँ प्रयुक्त सिद्धांगनाओं से अभिप्राय देवताओं की योनि विशेष से ग्रहण करना चाहिए, जो आकाश में भ्रमण करते रहते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **स्थानात्**– √स्था+ल्युट्, पं.ए.व।

(ii) **हरति**–√हृ+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, हरण कर रहा है।

(iii) **किंस्वित्** पद किम् तथा स्वित् दो अव्यय शब्दों से मिलकर बना है, इसका प्रयोग प्रायः वितर्क अर्थ में किया जाता है।

(iv) **परिहरन्**– पर+हृ+शतृ प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

(v) **उत्पत**–उत्+ √पत्+लोट्, मध्यम पुरुष, एक वचन, उड़ना।

(vi) **उन्मुखीभिः**–उन्नतानि मुखानि यासां ताः, ताभिः, बहुव्रीहि।

(vii) **दृष्टोत्साहः**– दृष्टः उत्साहः यस्य सः, बहुव्रीहि समास।

(viii) **चकितचकितम्**– चकितं यथा स्यात् तथा, अव्यय पद प्रकारार्थ में द्वित्व का प्रयोग हुआ है, अत्यधिक आश्चर्यचकित।

(ix) **सरसनिचुलात्**– सरसाः निचुलाः यस्मिन् तस्मात्, बहुव्रीहि

(x) **उदङ्मुखः**– उदक् मुखं यस्य सः, बहुव्रीहि समास।

(xi) **स्थूलहस्तावलेपान्**– स्थूलाश्च ये हस्ताः तेषाम् अवलेपान्

संजीवनी टीका– अद्रेरिति। पवनो वायुरद्रेश्चित्रकूटस्य शृंगं हरति किंस्वित्। किंस्विच्छब्दो विकल्पवितर्कादिषु पठति। इति शंकयो–न्मुखीभिरुन्नतमुखीभिः। 'स्वांगाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् इति ङीप् मुग्धाभिर्मूढाभिः। 'मुग्धाः सुन्दरमूढयोः' इत्यमरः। सिद्धानां देवयोनि–विशेषाणामंगनाभिश्चकितं चकितप्रकारं यथा तथा। 'प्रकारे गुणवचनस्य' इति द्विर्भावः। दृष्टोत्साहो दृष्टोद्योगः सन्। सरसा आर्द्रा निचुलाः स्थलवेतसा यस्मिंस्तस्मात्। 'वानीरे कविभेदे स्यान्निचुलः स्थलवेतसे' इति शब्दार्णवे। अस्मात्स्थानादाश्रमपथात्पथि नभोमार्गे दिङ्नागानां

---

[1] . संदेहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः। साहित्यदर्पण–10/35 ।

दिग्गजानां स्थूला ये हस्ताः करास्तेषामवलेपानाक्षेपान्परिहरन्। 'हस्तो नक्षत्रभेदे स्यात्करेभकरयोरपि' इति। 'अवलेपस्तु गर्वे स्यात् क्षेपणे दूषणेऽपि च' इति विश्वः।

उदङ्मुखः सन्। अलकाया उदीच्यत्वादित्याशयः। खमाकाशमुत्पतोद्गच्छ। अत्रेदमप्यर्थान्तरं ध्वनयति रसिको निचुलो नाम महाकविः कालिदासस्य सहाध्यायी परापादितानां कालिदासप्रबन्धदूषणानां परिहर्ता यस्मिन् स्थाने तस्मात्स्थानादुदङ्मुखो निर्दोषत्वादुन्नतमुखैः सन् पथि सारस्वतमार्गे। दिङ्नागानाम् । पूजायां बहुवचनम्। दिङ्नागाचार्यस्य कालिदासप्रतिपक्षस्य हस्तावलेपान् हस्तविन्यासपूर्वकाणि दूषणानि परिहरन्। 'अवलेपस्तु गर्वे स्याल्लेपने दूषणेऽपि च' इति विश्वः।

अद्रेरद्रिकल्पस्य दिङ्नागाचार्यस्य श्रृंगं प्राधान्यसान्वोश्च' इत्यमरः। हरति किंस्विदिति हेतुना सिद्धैः सारस्वतसिद्धैर्महाकविभिरंगनाभिश्च दृष्टोत्साहः सन् खमुत्पतोच्चैर्भवेति स्वप्रबन्धमात्मानं वा प्रति कवेरुक्तिरिति। संसर्गतो दोषगुणा भवन्तीत्येतन्मृषा येन जलाशयेऽपि। स्थित्वाऽनुकूलं निचुलश्चलन्तमात्मानमारक्षति सिन्धुवेगात्।' इत्येतच्छ्लोकनिर्माणात्तस्य कवेर्निचुलसंज्ञेत्याहुः।।14।।

अवतरणिका— तत्पश्चात् यक्ष इन्द्रधनुष की उपस्थिति में मेघ की शोभा को, मोरपंख धारण किए हुए, भगवान् विष्णु के गोपावतार अर्थात् श्रीकृष्ण के श्यामल शरीर की भाँति बताते हुए कहता है कि—

रत्नच्छायाऽऽव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ताद्
वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुष्खण्डमाखण्डलस्य।
येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः।।15।।

अन्वय— रत्न—छाया—आव्यतिकरः इव प्रेक्ष्यम्, एतत् आखण्डलस्य धनुःखण्डम्, पुरस्ताद् वल्मीकाग्रात् प्रभवति, येन ते श्यामम् वपुः स्फुरित—रुचिना, बर्हेण गोप—वेषस्य, विष्णोः इव अति—तराम् कान्तिम् आपत्स्यते।।15।।

अनुवाद– **विभिन्न प्रकार के रत्नों की कान्तियों के पूर्ण मिश्रण के समान दर्शनीय, इन्द्रधनुष का यह खण्ड, सामने वल्मीक के आगे के भाग से प्रकट हो रहा है, जिसके कारण तुम्हारा श्याम शरीर उज्ज्वल कान्ति सम्पन्न, मोरपंख द्वारा ग्वाले के वेश को धारण करने वाले, भगवान् विष्णु के श्यामल शरीर जैसा अत्यधिक शोभा को प्राप्त कर रहा है।**

'चन्द्रिका'– अनेक प्रकार के रत्नों की कान्तियों के परस्पर मिश्रण के रूप में देखने योग्य, इन्द्रधनुष का यह टुकड़ा, जो सर्पों की बाँबी के आगे के भाग से निकल रहा है, इसके समीप में स्थित तुम्हारा श्यामल शरीर इसकी उज्ज्वल कान्ति के कारण, भगवान् विष्णु के ग्वाले के अवतार श्रीकृष्ण के मोरपंख को धारण करने वाले वेश के समान अत्यधिक मनोरम दिखायी दे रहा है।

विशेष–(i) काव्यकार को भगवान् विष्णु का ग्वाले वाला अर्थात श्रीकृष्ण का पौराणिक रूप अत्यधिक प्रिय रहा है, प्रस्तुत श्लोक से इस तथ्य की पुष्टि होती है, जो उन्हें नाटककार कालिदास से भिन्न भी सिद्ध करता है, क्योंकि उन्होंने नाट्यकृतियों में ऐसा वर्णन कहीं पर भी नहीं किया है। इससे काव्यकार पर पौराणिक प्रभाव की प्रतीति भी हो रही है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में मेघ को श्रीकृष्ण का श्यामल गात्र तथा इन्द्रधनुष को उनके द्वारा मस्तक पर धारण किया हुआ मोरपंख वर्णित होने से कवि की सुन्दर, मनभावन कल्पना शक्ति अभिव्यक्त हुई है।

(iii) कुछ प्रतियों में 'रत्नच्छायव्यतिकरः' एवं 'रत्नच्छाया–व्यतिकरः' पाठ भी मिलता है।

(iv) **वल्मीकाग्रात्**– सामान्यरूप से वल्मीक का अभिप्राय सर्प का निवास स्थान 'बाँबी' होता है। इसलिए कुछ विद्वानों ने इसका अर्थ 'बाँबी में रहने वाले सर्पों की मणियों के कान्तिमण्डल के समान दिखायी देने वाला, यह इन्द्रधनुष बाँबी के आगे के भाग से प्रकट हो

रहा है', इसप्रकार किया है, जो अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली प्रतीत होता है।

(v) यहाँ पर 'धनुःखण्डम्' तथा 'धनुष्खण्डम्' दोनों पाठ उपलब्ध होते हैं, व्याकरण की दृष्टि से दोनों ही शुद्ध हैं।

(vi) भौतिक विज्ञान के अनुसार सूर्य के प्रकाश में सात रंग होते हैं– बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी तथा लाल वर्षाऋतु में जल की सूक्ष्म बूँदों के 'प्रिज्म' (भौतिक विज्ञान का पारदर्शी तिकोना यन्त्र विशेष) का कार्य करने से, ये सभी हमें अलग–अलग दिखायी देते हैं, जिससे आकाश में इन्द्रधनुष की सृष्टि होती है। प्राचीन समय में वराहमिहिर[1] ने इसके विषय में उल्लेख किया था।

(vii) 'आखण्डल' पद यहाँ इन्द्र के लिए प्रयुक्त हुआ है, जो उनके द्वारा पर्वतों के पंखों को काटने की वैदिक कथा[2] की ओर संकेत करता है, जिससे काव्यकार कालिदास के ऊपर वैदिक प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है।

(viii) प्रस्तुत श्लोक में उपमालंकार[3] का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **धनुःखण्डम्**–धनुषः खण्डम् |ष.त.

(ii) **आपत्स्यते**– आ+ √पद(आत्मने) लृट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iii) **वल्मीकाग्रात्**– वल्मीकस्य अग्रं तस्मात्, षष्ठी तत्पुरुष।

(iv) **स्फुरितरुचिना**– स्फुरिता रुचिः यस्य तत्, तेन, बहुव्रीहि।

(v) **गोपवेषस्य**–गां पातीति गोपः, गो+ √पा+क, उपपद समास, गोपस्य इव वेषः यस्य तस्य, बहुव्रीहि समास।

---

[1]. सूर्यस्य विविधवर्णाः पवनेन विघट्टिताः कराः साभ्रे।
वियति धनुः संस्थाना ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनुः।।

[2]. यः पृथिवीं व्यथमानामदृहद्यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः।। ऋग्वेद–2/12

[3]. साधर्म्यमुपमा भेदे। काव्यप्रकाश–10/125 ।

संजीवनी टीका– रत्नेति। रत्नच्छायानां पद्मरागादिमणिप्रभाणां व्यतिकरो मिश्रणमिव प्रेक्ष्यं दर्शनीयमाखण्डलस्येन्द्रस्यैतद्धनुःखण्डम्। एतदिति हस्तेन निर्देशो विवक्षितः। पुरस्तादग्रे वल्मीकाग्राद्वामूलरविवरात्। 'वामलूरश्च नाकुश्च वल्मीकं पुंनपुंसकम्' इत्यमरः। प्रभवत्याविर्भवति। येन धनुःखण्डेन ते तव श्यामं वपुः। स्फुरितरुचिनोज्ज्वलकान्तिना बर्हेण पिच्छेन। 'पिच्छबर्हे नपुंसके' इत्यमरः। गोपवेषस्य विष्णोर्गोपालस्य कृष्णस्य श्यामं वपुरिव। अतितरां कान्तिं शोभामापत्स्यते प्राप्स्यते।।15।।

अवतरणिका– इसी क्रम में यक्ष अपने मित्र मेघ के महत्त्व को कृषि की दृष्टि से प्रदर्शित करते हुए, मालव देश की ग्रामीण वधुओं के प्रेमपूर्ण नेत्रों से अत्यन्त स्पृहापूर्वक देखे जाने की बात करता है–

त्वय्यायतं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।
सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं
किंचित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण।।16।।

अन्वय– कृषि–फलम् त्वयि आयतम्, इति प्रीति–स्निग्धैः भ्रू–विलास–अनभिज्ञैः जनपद–वधू–लोचनैः पीयमानः, सद्यः सीरोत्कषण–सुरभिः मालम् क्षेत्रम् आरुह्य, किंचित् पश्चात् व्रज, भूयः लघु–गतिः उत्तरेण एव (व्रज)।।16।।

अनुवाद– कृषि का फल तुम्हारे ही अधीन है, इसलिए स्नेह से आर्द्र, भ्रूविलास से अनभिज्ञ गाँवों की स्त्रियों के नेत्रों द्वारा पिए जाते हुए तुम, शीघ्र ही जोते जाने से सुगन्धित 'मालव' प्रदेश में जाकर कुछ देर के बाद, तीव्र गति वाला होकर उत्तर की ओर जाना।

'चन्द्रिका'–हे मेघ! कृषि से प्राप्त होने वाला फल वस्तुतः तुम्हारे ही अधीन है, क्योंकि वृष्टि के अभाव में तो कृषि का फल प्राप्त होना असम्भव है, इसलिए प्रेम से स्निग्ध तथा भौहों के अनेक प्रकार के विलासों से पूर्णतया अनभिज्ञ, ये गाँवों की भोलीभाली स्त्रियाँ तुम्हें अत्यन्त ललचायी दृष्टि से देखेंगी। अतः इनके नेत्रों से मानो पिए जाते

हुए तुम, अभी–अभी जोते जाने से सुगन्धित 'मालव' प्रदेशों में जाने पर वृष्टि करने के कुछ देर बाद ही, उत्तर दिशा की ओर तीव्र गति से फिर प्रस्थान करना।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में महाकवि का कृषि–विज्ञान एवं मानसून की स्थिति विषयक ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है, क्योंकि वे इस बात से भलीभाँति परिचित हैं कि खेतों को जोतने के बाद उसमें से सौंधी सुगन्ध निकलती है तथा मालवप्रदेश के बाद मानसून की गति किस दिशा में? और कैसी रहती है? यद्यपि मेघ की तो गति एवं दिशा दोनों ही वायु पर निर्भर होती हैं।

(ii) ऐसा प्रतीत होता है कि काव्यकार के समय में 'माल' प्रदेश में वायु की गति अपेक्षाकृत तीव्र एवं उत्तर की दिशा की ओर प्रवाहित होती थी, जिस ओर यहाँ संकेत किया गया है।

(iii)जनपद से अभिप्राय यहाँ 'ग्रामीण' से ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि उन्हीं के लिए यहाँ पर 'भ्रूविलासानभिज्ञैः' विशेषण का प्रयोग किया गया है। नगरीय स्त्रियाँ तो भ्रूविलास–अभिज्ञ होती हैं।

(iv) कुछ प्रतियों में 'भ्रूविकारानभिज्ञैः' पाठ भी मिलता है, जिसका भौहों के विकार से अपरिचित अर्थ करना होगा।

(v) कृषि के लिए भूमि जोतने को 'सीरोत्कषण' कहते हैं, जो वर्षा के बाद ही जोती जाती है, इस अवसर पर भूमि से सौंधी सी सुगन्ध निकलती है, कवि को इसने अत्यधिक प्रभावित किया है, इससे कवि के ग्रामीण परिवेश से परिचित होने की भी पुष्टि होती है।

(vi) खेती पूर्णतया वर्षा पर ही निर्भर होती है, इसीलिए आकाश में मेघ को देखकर कृषक वधुएँ उन्हें स्नेहभरी दृष्टि से देखती हैं, यहाँ कवि ने उसी ओर संकेत किया है।

(vii) प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखने को यहाँ 'दृष्टि से पीना' कहा जाता है, जिसे ललचायी दृष्टि से देखना भी कह सकते हैं।

(viii) मल्लिनाथ ने 'माल' का अर्थ 'पठार' किया है, जबकि प्रो. विल्सन ने इसका सम्बन्ध छत्तीसगढ़ में रत्नपुर के पास स्थित 'मालदा' से जोड़ा है, हमारे विचार से इसे 'मालव प्रदेश' अर्थ में मानना अधिक संगत है।

(ix) यहाँ प्रयुक्त लघुगति से अभिप्राय तीव्रगति से है, क्योंकि वृष्टि के बाद मेघ का हलका होने के कारण तेज गति से चलना स्वाभाविक है अथवा उस स्थान की मानसून के कारण, वायु के तेज चलने से 'मेघ का शीघ्र चलना' अर्थ भी ग्रहण कर सकते हैं।

(x) प्रस्तुत श्लोक में परिवृत्ति[1]अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **आयत्तम्**–आ+यत्+क्त, अधीन।

(ii) **भ्रूविलासानभिज्ञैः**– भ्रूविलासेषु अनभिज्ञानि, तैः, स.तत्पुरुष।

(iii) **जनपदवधूलोचनैः**– जनः पदम्, यस्मिन् सः जनपदः। बहुव्रीहि, जनपदस्य वधूनां लोचनानि, तैः षष्ठी तत्पुरुष।

(iv) **आरुह्य**– आ+√रुह्+क्त्वा (ल्यप्), चढ़कर।

(v) **लघुगतिः**– लघ्वी गतिः यस्य सः, बहुव्रीहि समास।

(vi) **व्रज**–√व्रज् +लोट्, मध्यम पुरुष, एकवचन, जाना।

(vii) **पीयमानः**– √पा +कर्मणि शानच्, पिया जाता हुआ।

(viii) **प्रीतिस्निग्धैः**– प्रीत्या स्निग्धानि तैः, तृतीया तत्पुरुष।

(ix) **'उत्तरेण'** पद में 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' वार्तिक सूत्र से तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

संजीवनी टीका– **त्वयीति। कृषेर्हलकर्मणः फलं सस्यं त्वयि। अधिकरणविवक्षायां सप्तमी। आयत्तमधीनम्। 'अधीनो निम्न आयत्तः' इत्यमरः। इति हेतोः प्रीत्या स्निग्धैः। अकृत्रिमप्रेमार्द्रैरित्यर्थः। भ्रूविलासानां भ्रूविकाराणामनभिज्ञैः। पामरत्वादिति शेषः। जनपदवधूनां पल्लीयोषितां लोचनैः पीयमानः सादरं वीक्ष्यमाणः सन्। मालं मालाख्यं क्षेत्रं शैलप्राय–**

---

[1]. परिवृत्तिर्विनिमयः समन्यूनाधिकैर्भवेत्। साहित्यदर्पण

मुन्नतस्थलम्। 'मालमुन्नतभूतलम्' इत्युत्पलमालायाम्। सद्यस्तत्कालमेव सीरैर्हलैरुत्कर्षणेन सुरभि घ्राणतर्पणं यथा तथाऽऽरुह्य। तत्राभिवृष्येत्यर्थः।

'सुरभिघ्राणतर्पणः' इत्यमरः। किंचित्पश्चाल्लघुगतिस्तत्र निर्वृष्ट-त्वात्क्षिप्रगमनः सन्। 'लघु क्षिप्रपरं द्रुतम्' इत्यमरः। भूयः पुनरप्युत्तरेणै-वोत्तरमार्गेणैव व्रज गच्छ। 'तृतीयविधाने प्रकृत्यादिभ्यः उपसंख्यानम्' इति तृतीया। यथा कथंचिद् बहुवल्लभः पतिः कुत्रचित्क्षेत्रे गूढं विहृत्य। 'क्षेत्रं शरीरे केदारे सिद्धस्थानकलत्रयोः इति विश्वः। दाक्षिण्यभंगभयान्नीच-मार्गेण निर्गत्य पुनः सर्वाध्यक्ष इव संचरति तद्वदिति ध्वनिः।।16।।

अवतरणिका–इसप्रकार उत्तर दिशा की ओर जाने पर आम्रकूट पर्वत मिलने की बात का उल्लेख करते हुए कवि कहते हैं कि–

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः।
न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः।।17।।

अन्वय– आम्रकूटः सानुमान् आसार–प्रशमित–वन–उपप्लवम् अध्व–श्रम–परिगतम् त्वाम् साधु मूर्ध्ना वक्ष्यति, क्षुद्रः अपि मित्रे संश्रयाय प्राप्ते, प्रथम–सुकृत–अपेक्षया विमुखः न भवति, यः तथा उच्चैः, (तस्य) पुनः किम्?।।17।।

अनुवाद– (इसके बाद) आम्रकूट पर्वत, दावानल को मूसलाधार वर्षा से बुझाने वाले, मार्ग की थकान से युक्त, तुम्हें भलीप्रकार अपने मस्तक पर धारण करेगा, क्योंकि तुच्छ प्राणी भी आश्रय हेतु मित्र के आने पर, उसके द्वारा पूर्व में किए गए उपकारों के कारण, विमुख नहीं होता है, फिर जो इतना ऊँचा है, उसकी तो बात ही क्या है?

'चन्द्रिका'– यक्ष का कहना है कि हे मेघ, जब तुम मालव प्रदेश से उत्तर दिशा की ओर जाओगे, तो तुम्हारी भेंट आम्रकूट पर्वत से होगी, जिसकी दावाग्नि को तुम हमेशा ही मूसलाधार वृष्टि करके बुझाते रहे हो, निश्चय ही वह मार्ग की यात्रा की थकान वाले, तुम्हें

अपने मस्तक पर धारण करेगा, क्योंकि छोटे से छोटा प्राणी भी पूर्व में किए गए उपकारों के कारण, आश्रय के लिए मित्र के आने पर उसका हृदय से स्वागत ही करता है, विमुख नहीं होता है, फिर वह आम्रकूट तो इतना ऊँचा अर्थात् महान् है, इसलिए तुम्हारे द्वारा पूर्व में किए गए अनेकानेक उपकारों को वह भला कैसे भूल सकता है?

विशेष–(i) आम्रकूट पर्वत वस्तुतः विन्ध्याचल का ही पूर्वी भाग है, नर्मदा नदी यहीं से निकलती है। प्रो. विल्सन ने इसे आधुनिक 'अमरकण्टक' की संज्ञा प्रदान की है।

(ii) उपर्युक्त श्लोक में आम्रकूट में चेतन की कल्पना की गयी है तथा पूर्वार्ध में प्रयुक्त विशेष कथन का उत्तरार्द्ध में प्रयोग किए गए सामान्य कथन से पुष्टि करने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।

(iii) आम्रकूट पर्वत पर आम के वृक्षों की संख्या अत्यधिक होने के कारण इसका यह नाम पड़ा है, इस सम्बन्ध में आगे भी उल्लेख किया गया है।

(iv) उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत काव्य में महाकवि ने मेघ के लिए निर्धारित मार्ग में पद–पद पर पर्वतों के शिखरों पर विश्राम करने की योजना बनायी है, जिसके अन्तर्गत आम्रकूट प्रथम पर्वत है, जिसके शिखर पर वह विश्राम करेगा।

(v) प्रकृति का मानवीकरण कालिदास की महती विशेषता रही है, जिसके कारण यहाँ आम्रकूट पर्वत का कृतज्ञ एवं परोपकारी मित्र के रूप में सजीव वर्णन किया गया है।

(vi) यहाँ पर कवि ने मेघ को, मार्ग की यात्रा से थका हुआ एवं दावानल आदि को बुझाने के कारण, आम्रकूट को पूर्व में किए गए उपकारों से उपकृत हुआ चित्रित किया है, जो उन्हें स्मरण करके मेघ को अपने मस्तक पर धारण करेगा अर्थात् उसका आदरसत्कार करेगा।

(vii) महाकवि का अभिप्राय है कि तुच्छ व्यक्ति भी इस संसार में पूर्व में किए गए उपकारों को भुलाता नहीं है, फिर आम्रकूट तो इतना अधिक विशाल अर्थात् महान् है, इसलिए वह भला उन्हें कैसे भूल सकता है? अतः वह निश्चय ही तुम्हें अपने सर–माथे रखेगा।

(viii) अर्थान्तरन्यास एवं अर्थापत्ति[1] अलंकारों का मनभावन प्रयोग के साथ दोनों का अंगांगिभावसंकर अलंकार भी प्रयुक्त हुआ है।

(ix) **संश्रयाय** पद में 'तुमर्थाच्च भाववचनात्' सूत्र से चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **प्राप्ते**– प्र+ √आप्+क्त, स.ए.व।

(ii) **विमुखः**– विरुद्धं मुखं यस्य सः, बहुव्रीहि समास ।

(iii) **सानुमान्**– सानवः सन्ति यस्मिन् सः, सानु+मतुप् ।

(iv) **अध्वश्रमपरिगतम्**– अध्वनः श्रमः, तेन परिगतः, तम् ।

(v) **संश्रयाय**– संश्रयणम् इति, संश्रयः तस्मै, सम्+ √श्रिम्+अच्।

(vi) **प्रथमसुकृतापेक्षया**– शोभनं कृतं सुकृतं, प्रथमानि सुकृतानि, तेषाम् अपेक्षा तया। पूर्व में किए गए उपकारों की अपेक्षा से।

(vii) **आसारप्रशमितवनोपप्लवम्**– आसारेण प्रशमितः, वनस्य उपप्लवः इति वनोपप्लवः, आसारशमितो वनोपप्लवो येन सः तम् बहुव्रीहि

संजीवनी टीका– त्वामिति। आम्राश्चूताः कुटेषु शिखरेषु यस्य स आम्रकूटो नाम सानुमान्पर्वतः। 'आम्रश्चूतो रसालोऽसौ', 'कूटोऽस्त्री शिखरं श्रृंगम्' इति चामरः। आसारो धारावृष्टिः। 'धारासम्पातः आसारः' इत्यमरः। तेन प्रशमितो वनोपप्लवा दावाग्निर्येन तम्। कृतोपकारमित्यर्थः। अध्वश्रमेण परिगतं व्याप्तं त्वां साधु सम्यङ् मूर्ध्ना वक्ष्यति वोढ़ा। वहेर्लृट्। तथाहि। क्षुद्रः कृपणोऽपि। 'क्षुद्रो दरिद्रः कृपणे नृशंसे' इति यादवः। संश्रयणाय मित्रे सुहृदि। 'अथ मित्रं सखा सुहृत्' इत्यमरः। आगते सति। प्रथमसुकृतापेक्षया पूर्वोपकारपर्यालोचनया विमुखो न भवति यस्तथा तेन प्रकरणोच्चैरुन्नतः स आम्रकूटः किं पुनर्विमुखो न भवतीति

---

[1]. दण्डापूपिकान्यायार्थागमोऽर्थापत्तिरिष्यते।

किमु वक्तव्यमित्यर्थः। एतेन प्रथमावसथे सौख्यलाभात्ते कार्यसिद्धिरस्तीति सूचितम्। तदुक्तं निमित्तदाने– 'प्रथमावसथे यस्य सौख्यं तस्याखिले ऽध्वनि। शिवं भवति यात्रायामन्यथा त्वशुभं ध्रुवम्' इति।। 17।।

अवतरणिका– इसके बाद महाकवि पके हुए फलों के कारण पीले दिखायी देने वाले आम्रकूट पर्वत की चोटी पर कृष्ण मेघ के आरूढ़ होने पर, पृथ्वी के स्तन के मध्यभाग की सुन्दर कल्पना करते हुए कहते हैं कि–

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै–
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः।।18।।

अन्वय– परिणत–फल–द्योतिभिः कानन–आम्रैः छन्न–उपान्तः (आम्रकूटः) अचलः स्निग्ध–वेणी–सवर्णे त्वयि शिखरम् आरूढे, मध्ये श्यामः शेष–विस्तार–पाण्डुः भुवः, स्तन इव नूनम् अमर–मिथुन–प्रेक्षणीयाम् अवस्थाम् यास्यति।।18।।

अनुवाद– पके हुए फलों से दीपित होते हुए, वन के आम के वृक्षों से आच्छादित हुआ आम्रकूट पर्वत, स्निग्ध चोटी (वेणी) के समान वर्ण वाले तुम्हारे शिखर पर आरूढ़ होने के बाद, मध्य में काला तथा शेष विस्तार भाग पीला होने से निश्चय ही पृथिवी के स्तन के समान प्रतीत होता हुआ, देवयुगलों द्वारा दर्शनीय अवस्था को प्राप्त करेगा।

'चन्द्रिका'– कवि कल्पना करता है कि वर्षाऋतु में आम्रकूट पर्वत पर विद्यमान आम्र के सभी फल पक जाते हैं, जिसके कारण वह चारों ओर से पीतवर्ण हो जाता है, जब चिकनी चोटी (वेणी) के समान श्यामवर्ण वाला मेघ, उसके शिखर पर आरूढ़ होगा, तो उस समय इसकी शोभा देवताओं के युगलों को ऐसी प्रतीत होगी। **जैसे–**

वह पृथ्वी का चारों ओर से पीले स्तन का मध्य में स्थित कृष्णवर्ण वाला मध्य भाग हो, क्योंकि स्तन के चूचक के चारों ओर का

थोड़ा सा भाग काला तथा शेषभाग गौर या पीत वर्ण होता है। इसलिए यह पर्वत गौर वर्ण वाली पृथ्वीरूपी कामिनी के स्तन के समान प्रतीत होगा।

विशेष–(i) यक्ष देवयोनि होने से आकाश गमन में समर्थ है, यह दूसरी बात है कि इस समय शापवश उसकी यह सामर्थ्य समाप्त हो गयी है। इसलिए उसके लिए कवि की इस कल्पनाशीलता का औचित्य असंदिग्ध है, सम्भव है उसने कभी ऐसा दृश्य भी देखा हो।

(ii) मल्लिनाथ ने यहाँ प्रयुक्त 'अमरमिथुनप्रेक्षणीयाम्' का अर्थ 'कामकेलिरत अमरमिथुन' किया है।

(iii) उपमालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iv) कुछ विद्वानों ने इसके बाद प्रस्तुत श्लोक को प्रयुक्त माना है, जबकि अन्य इसे प्रक्षिप्त मानते हैं–

अध्वक्लान्तं प्रतिमुखगतं सानुमानाम्रकूटः
तुंगेन त्वां जलद! शिरसा वक्ष्यति श्लाघ्यमानः।
आसारेण त्वमपि शामयेस्तस्य नैदाघमग्निः
सद्भावार्द्रः फलति न चिरेणोपकारो महत्सु।।[1]

व्याकरणात्मक टिप्पणी– (i) **काननाम्रैः**– काननस्य कानने वा आम्रैः, वन के या वन में आम्रों द्वारा।

(ii) **परिणतफलद्योतिभिः**– परिणतानि फलानि, तैः द्योतन्ते इति परिणतफलद्योतिनः तैः। पके हुए फलों से दीपित। परि+ √नम्+क्त।

(iii) **स्निग्धवेणीसवर्णे**– स्निग्धा चासौ वेणी, कर्मधारय, तस्याः सवर्णः षष्ठी तत्पुरुष, तस्मिन्, समानवर्णः यस्य सवर्णः बहुव्रीहि।

(iv) **शेषविस्तारपाण्डुः**– शेषश्चासौ विस्तारः, तस्मिन् पाण्डुः।

---

[1] . **अनुवाद** – हे मेघ! प्रशंसनीय आम्रकूट पर्वत मार्ग की थकान से युक्त, सामने आए हुए तुम्हें, अपने मस्तक पर धारण करेगा और तुम भी अपनी अत्यधिक वर्षा द्वारा उसकी गर्मी की अग्नि को शान्त कर देना, क्योंकि महापुरुषों के प्रति सद्भावपूर्वक किया गया उपकार शीघ्र ही फल प्रदान करने वाला होता है।।

(v) **अमरमिथुनप्रेक्षणीयाम्**– अमराणां मिथुनानि, अमरमिथुनानां प्रेक्षणीया ताम्। प्रेक्षितुं योग्या प्रेक्षणीया, प्र+ √ईक्ष्+अनीयर्+टाप् ।

संजीवनी टीका– छत्रेति। हे मेघ! परिणतैः परिपक्वैः फलैर्द्यो–तन्त इति तथोक्तैः। आषाढे वनचूताः फलन्ति पच्यन्ते च मेघवातेने–त्याशयः, काननाम्रैर्वनचूतैश्छन्नोपान्त आवृतपार्श्वोऽचल आम्रकूटाद्रिः स्निग्धवेणीसवर्णे मसृणकेशबन्धच्छाये। श्यामवर्ण इत्यर्थः। 'वेणी तु केशबन्धे जलस्रुतौ' इति यादवः। मध्ये श्यामः शेषे मध्यादन्यत्र विस्तारे परितः पाण्डुर्हरिणः। 'हरिणः पाण्डुरः' इत्यमरः। भुवः स्तन इव। अमर–मिथुनानाम्। खेचराणामिति भावः। प्रेक्षणीयां दर्शनीयामवस्थां नूनं यास्यति। मिथुनग्रहणं कामिनामेव स्तनत्वेनोत्प्रेक्षा सम्भवतीति कृतम्। यथा परिश्रान्तः कश्चित्कामी कामिनीनां कुचकलशे विश्रान्तः सन् स्वपिति तद्वद्भवानपीति भुवो नायिकायाः स्तन इति ध्वनिः।।18।।

अवतरणिका– इसप्रकार आम्रकूट पर्वत की शोभा का अद्भुत दृश्य प्रस्तुत करने के बाद, महाकवि आगे चलकर रेवा नदी की शोभा के सम्बन्ध में कहते हैं कि–

स्थित्वा तस्मिन्वनचरवधूभुक्तकुंजे मुहूर्तं
तोयोत्सर्गद्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः।
रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमंगे गजस्य।।19।।

अन्वय– वनचर–वधू–भुक्त–कुंजे तस्मिन् मुहूर्तम् स्थित्वा, तोय–उत्सर्ग–द्रुततर–गतिः तत्परम्, वर्त्म–तीर्णः उपल–विषमे विन्ध्य–पादे विशीर्णाम् रेवाम्, गजस्य अंगे भक्ति–छेदैः विरचिताम् भूतिम् इव द्रक्ष्यसि।।19।।

अनुवाद– वनचर वधुओं द्वारा भोग किए गए कुँजों वाले, उस पर्वत पर क्षणभर के लिए ठहरकर, जल की वर्षा कर देने से अत्यधिक तीव्र गति वाला होकर, उसके बाद के मार्ग को शीघ्रता से पार करके, तुम पत्थरों के कारण ऊँचे–नीचे विन्ध्याचल की तलहटी में फैली हुई,

नर्मदा नदी को, मानो हाथी के शरीर पर चित्रकारी की रचना को उसके ऐश्वर्यरूप में देखोगे।

'चन्द्रिका'– इसप्रकार वन में विचरण करने वाली भील जातियों की वधूओं द्वारा केलिक्रीड़ाओं के करने से भोगे गए कुँजों वाले, उस आम्रकूट पर्वत पर क्षणभर के लिए विश्राम करके, वहाँ जल की वर्षा कर देने के कारण हलके हुए तुम, तीव्र गति से उसके बाद के मार्ग को पार करना, जिसके पश्चात् तुम पत्थरों के कारण ऊँचे–नीचे विन्ध्यपर्वत की तलहटी में पहुँच जाओगे, जहाँ पर फैली हुई नर्मदा नदी तुम्हें वस्तुतः हाथी के शरीर की चित्रकारी की रचना के ऐश्वर्य के समान रूप वाली देखने को मिलेगी अर्थात् पर्वत में ऊँचे–नीचे पत्थरों के मध्य बहने वाली नर्मदा नदी का प्रवाह तुम्हें हाथी के शरीर पर की गयी चित्रकारी के समान मनोरम प्रतीत होगा।

विशेष–(i) विन्ध्याचल की तलहटी में फैली हुई नर्मदा नदी में, हाथी के विशाल शरीर पर की गयी विविध प्रकार की चित्रकारी की कवि द्वारा मनोरम उत्प्रेक्षा वस्तुतः स्पृहणीय है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक के पूर्वार्द्ध में कवि ने मेघ की आम्रकूट पर्वत पर गतिविधि का उल्लेख करके उत्तरार्द्ध में विन्ध्य की तलहटी में उबड़खाबड़ पत्थरों के बीच फैली हुई नर्मदा नदी की शोभा को हाथी के शरीर पर की गई चित्रकारी के समान बताया है। यह कल्पना भी अत्यन्त रमणीय बन पड़ी है। महाकवि की कल्पनाशीलता दर्शनीय है।

(iii) महाकवि का हस्ति विषयक ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है, क्योंकि प्राचीनकाल से ही युद्ध अथवा विवाह आदि के अवसरों पर हाथियों को सजाने की दीर्घकालीन परम्परा रही है, जिसमें उसके शरीर पर अनेक प्रकार की मनोहारिणी चित्रकारी की जाती थी।

(iv) यहाँ प्रयुक्त 'वनचर' से अभिप्राय कोल, किरात आदि वन में रहने वाली जातियों से ग्रहण करना चाहिए। इनकी वधूएँ अपने प्रेमी के साथ आम्रकूट के कुँजों में रमण करती थीं।

(v) प्रस्तुत श्लोक में महाकवि का युवा मनोविज्ञान भी अभिव्यंजित हुआ है, क्योंकि तरुण मेघ को इन सबका अवलोकन करने से असीम आनन्द की अनुभूति होगी।

(vi) रेवा वस्तुतः नर्मदा का ही अन्य नाम है, जो भारतवर्ष की सात पवित्र नदियों में एक है।[1] कवि ने इनमें से अधिकांश का उल्लेख किया है, जो उनकी राष्ट्रीय भावना को भी अभिव्यक्त करता है।

(vii) यह शाश्वत सत्य है कि मेघ जल से भरे होते हैं, तो भारी होने के कारण उनकी गति मन्द होती है, किन्तु बरसने के बाद वे हलके हो जाते हैं, जिससे उनकी गति तीव्र हो जाती है, यहाँ कवि ने इसी ओर संकेत किया है, इससे महाकवि का भौतिक विज्ञान विषयक ज्ञान अभिव्यक्ति को प्राप्त हुआ है।

(viii) विन्ध्य भी सात कुल पर्वतों में से एक है, इस विषय में कहा भी गया है कि–

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्च परियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः।।

(ix) प्रस्तुत श्लोक में अनेक धाराओं में विभाजित रेखाओं की उपमा हाथी के शरीर पर बनायी गयी चित्ररचना से दी गयी है। अतः उपमालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(x) इसीप्रकार रेवा नदी तथा विन्ध्य में लिंग एवं कार्यों के साम्य के कारण नायक, नायिका के व्यवहार की अभिव्यक्ति होने से समासोक्ति अलंकार का भी प्रयोग हुआ है।[2]

(xi) 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' सूत्र से 'मुहूर्तम्' पद में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

---

[1]. गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

[2]. समासोक्ति समैर्यत्र कार्यलिंगविशेषणैः।
व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः।। साहित्यदर्पण

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **स्थित्वा**– √स्था+क्त्वा, ठहरकर।

(ii) **वनचरवधूनिकुंजे**– वने चरन्ति, इति, वनचराः, वनचराणाम् वध्वः, ताभिः भुक्ताः कुंजाः यस्य सः, बहुव्रीहि। √भुज्+क्त ।

(iii) **तोयोत्सर्गद्रुततरगतिः**– उत्सर्जनम् इति, उत्सर्गः, उत्+ सृज्+घञ्, तोयस्य उत्सर्गः, तेन द्रुततरा गति यस्य सः, बहुव्रीहि।

(iv) **विन्ध्यपादे**– विन्ध्यस्य पादः, तस्मिन्, षष्ठी तत्पुरुष।

(v) **विशीर्णाम्**– वि+ √शृ+क्त+टाप्, फैली हुई को।

(vi) **उपलविषमे**– उपलैः विषमः तस्मिन् तृतीया तत्पुरुष।

(vii) **भक्तिच्छेदैः**– भक्तीनां छेदाः, तैः, षष्ठी तत्पुरुष।

(viii) **विरचिताम्**– वि+ √रच्+णिच्+क्त+टाप्, बनायी गयी।

(ix) **द्रक्ष्यसि**– √दृश्+लृट्, मध्यमपुरुष, एकवचन, देखोगे।

संजीवनी टीका– स्थित्वेति। हे मेघ! वने चरन्ति ते वनचराः। 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' इति बहुलग्रहणाल्लुग्भवति। तेषां वधूभिर्भुक्ताः कुंजलतागृहा यत्र तस्मिन्। 'निकुंजकुंजौ वा क्लीबे लतादिपिहितोदरे' इत्यमरः। तत्र ते नयनविनोदोऽस्तीत्यर्थः। तस्मिन्नाम्रकूटे मुहूर्तमल्प–कालम्। न तु चिरं, स्वकार्यविरोधादिति भावः। मुहूर्तमल्पकाले स्याद्–घटिकाद्वितीयेऽपि च' इति शब्दार्णवे। स्थित्वा विश्रम्य। तोयोत्सर्गेण 'त्वामासार' इत्युक्तवर्णने द्रुततरगतिर्लाघवाद्धेतोरतिक्षिप्रगमनः सन्। तस्मादाम्रकूटात्परमनन्तरं वर्त्म मार्गं तीर्णोऽतिक्रान्तः। उपलैः पाषाणै–र्विषमे विन्ध्यस्याद्रेः पादे प्रत्यन्तपर्वते। 'पादा प्रत्यन्तपर्वताः' इत्यमरः।

विशीर्णां समन्ततो विसृततराम्। एतेन कस्याश्चित्कामुक्याः प्रियतमचरणपातोऽपि ध्वन्यते। रेवां नर्मदाम्। 'रेवा तु नर्मदा सोमोद्भवा–मेकलकन्याका' इत्यमरः। गजस्यांगे शरीरे भक्तयो रचनाः भंगिभिर्भा–र्विरचितां भूतिं श्रृंगारमिव वा। 'भूतिर्मातंगश्रृंगारे जातौ भस्मनि सम्पदि' इति विश्वः। द्रक्ष्यसि। अयमपि महांस्ते नयनकौतुकलाभ इति भावः।।19।।

अवतरणिका– इसी क्रम में यक्ष, अपने मित्र मेघ को यहाँ से जंगली हाथियों के मद से सुगन्धित तथा जामुन के फलों के रस से तिक्त नर्मदा के जलों को ले जाने की बात करते हुए कहता है कि–

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि–
र्जम्बूकुंजप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः।
अन्तःसारं घन! तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वां
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय।।20।।

अन्वय– वान्त–वृष्टिः तिक्तैः वन–गज–मदैः वासितम् जम्बू–कुंज–प्रतिहत–रयम् तस्याः तोयम् आदाय गच्छेः, घन! अनिलः अन्तःसारम् त्वाम् तुलयितुम् न शक्ष्यति, हि रिक्तः सर्वः लघुः भवति, पूर्णता गौरवाय (भवति)।।20।।

अनुवाद– वर्षा कर लेने वाले हे मेघ! यहाँ से तुम्हें तीव्र गन्ध वाले, जँगली हाथियों के मद से सुगन्धित, जामुन के कुँजों द्वारा अवरुद्ध वेग वाले, नर्मदा के उस जल को लेकर जाना चाहिए, हे बादल! तब जल से भरे हुए तुम्हें वायु उड़ाने में समर्थ नहीं हो सकेगा, क्योंकि भीतर से खाली हुए सभी लोग हलके होते हैं तथा भरा हुआ होना भारीपन का कारण होता है।

'चन्द्रिका'– यक्ष अपने मित्र मेघ को परामर्श देते हुए कहता है कि हे मेघ! यहाँ से तुम नर्मदा का, मदमस्त हाथियों के गण्डस्थलों से बहने वाले मद की सुगन्धि से युक्त थोड़ा तीखा एवं पके हुए जामुन के फलों के जलों में गिरने से थोड़ा कसैला, जल अवश्य लेकर आगे बढ़ना, क्योंकि यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो वायु तुम्हें अपनी अभिलषित दिशा में अन्यत्र ले जाने में समर्थ हो जाएगा और तुम मार्ग से भटक जाओगे, क्योंकि जो लोग भीतर से खाली होते है अर्थात् गम्भीर नहीं होते हैं, ऐसे हलके लोगों को कोई भी अपनी ओर आकर्षित कर लेता है, इसके विपरीत भारी अर्थात् गम्भीर प्रकृति के लोगों को कोई भी उनके अपने निर्णय से ड़िगा नहीं सकता है।

विशेष–(i) कवि ने यहाँ 'तुलयितुम्' पद का सुन्दर प्रयोग किया है, जिससे उनका भौतिक–विज्ञान विषयक ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है, क्योंकि भौतिक विज्ञान का सिद्धान्त है कि भारी वस्तु को सरलता से हिलाया नहीं जा सकता है, किन्तु रुई जैसी हलकी वस्तु को आसानी से इधर–उधर ले जा सकते हैं, यहाँ जलरहित होने पर बादल हलका होगा, जिससे वायु इसे आसानी से हिला देगा।

(ii) यहाँ पूर्वार्ध में प्रयुक्त विशेष कथन का उत्तरार्द्ध में प्रयुक्त सामान्य कथन से पुष्टि करने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार का अद्भुत सौन्दर्य विद्यमान है।

(iii) युवा एवं श्रेष्ठ श्रेणी के हाथियों के गण्डस्थलों से विशेष प्रकार का तरल पदार्थ बहता है, जो थोड़ा तिक्त तथा तीव्र गन्ध वाला होता है, नदी के जलों में स्नान करने के कारण वह जल तिक्त और सुगन्धित हो गया है, यहाँ मेघ से इसी जल को पीने की बात की गयी है। कवि का हस्तिविज्ञान विषयक ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(iv) इसीप्रकार आषाढ़ मास में जामुन के फल पकते हैं, जिनके नर्मदा के जल में गिरने से वह जल थोड़ा कसैला हो जाता है, जिसकी ओर यहाँ संकेत किया गया है। कवि के वनस्पति विज्ञान विषयक ज्ञान की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(v) जामुन का रस उदारविकार में लाभकारी रहता है, इसके उल्लेख से महाकवि का आयुर्वेदशास्त्रीय ज्ञान भी अभिव्यंजित हुआ है।

(vi) इसीप्रकार वान्तवृष्टि[1] में भी मल्लिनाथ की व्याख्या के अनुसार आयुर्वेद शास्त्र का ज्ञान व्यक्त हुआ है। तदनुसार वमन करने के बाद कफ को दूर करने के लिए हलका, कसैला और थोड़ा सा तीखा जल पीना चाहिए, जो स्वास्थ्य के लिए लाभकारी रहता है।

---

[1]. मेघ वस्तुतः समुद्र एवं नदियों से जल ग्रहण करके उसका 'वमन' ही करता है।

(vii) 'गौरवाय' पद में 'क्लृपि सम्पद्यमाने च' वार्तिक सूत्र से चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

(viii) कवि का अभिप्राय है कि जो व्यक्ति धन एवं बल इन दोनों से ही रहित होते हैं, या व्यवहार में हलके (गरिमारहित) होते हैं, तो उनका कोई भी उनका सम्मान नहीं करता है, किन्तु इसके विपरीत धनी, मानी व्यक्ति का सभी आदर करते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **वासितम्**– √वस्+णिच्+क्त।

(ii) **वान्तवृष्टिः**– वान्ता वृष्टिः येन सः, बहुव्रीहि। **वृष्टि**–√वृष् +क्तिन्, **वान्ता**–√वम्+क्त+टाप्, वमन की गयी।

(iii) **वनगजमदैः**– वनस्य वने वा गजाः, तेषाम्, मदैः।

(iv) **जम्बूकुंजप्रतिहतरयम्**– जम्बूनां कुँजाः, प्रतिहतोः रयंः यस्य तत् बहुव्रीहि। जम्बूकुँजैः प्रतिहतरयम्, **प्रतिहतः**– प्रति+ √हन्+क्त।

(v) **आदाय**– आ+ √दा+क्त्वा (ल्यप्) लेकर ।

(vi) **गच्छेः**– √गम्+ विधिलिङ्, मध्यमपुरुष, एकवचन, जाना।

(vii) **अन्तःसारम्**– अन्तःसारः, यस्य सः तम्, बहुव्रीहि।

(viii) **शक्ष्यति**– √शक्+लृट्, प्रथम पुरुष, एकवचन, सकेगा।

(ix) **तुलयितुम्**– √तुल्+णिच्+तुमुन्, तोलने (हिलाने) के लिए

संजीवनी टीका– तस्या इति। हे मेघ! वान्तवृष्टिरुद्गीर्णवर्षः सन्। कृतवमनश्च व्यज्यते। तिक्तैः सुगन्धिभिस्तिक्तरसवद्भिश्च। 'तिक्तो रसे सुगन्धौ च' इति विश्वः। वनगजमदैर्वासितं सुरभितं भावितं च। 'हिमवद्विन्ध्यमलया गजानां प्रभवाः' इति विन्ध्यस्य गजप्रभवत्वादिति भावः। जम्बूकुंजैः प्रतिहतरयं प्रतिबद्धवेगम्। सुखपेयमित्यर्थः। अनेन लघुत्वं कषायभावना च व्यज्यते। तस्या रेवायास्तोयमादाय गच्छेर्व्रज।

हे घन मेघ! अन्तः सारो बलं यस्य तं भविष्यति। तथा हि। रिक्तोऽन्तः सारशून्यः सर्वोऽपि लघुर्भवति। प्रकम्प्यो भवतीत्यर्थः। पूर्णता सारवत्ता गौरवायाप्रकम्प्यत्वाय भवतीत्यर्थः। अयमत्र ध्वनिः आदौ वमन–शोधितस्य पुंसः पश्चाच्छेष्मशोषणाय लघुतिक्तकषायाम्बुपानाल्लब्धबलस्य

वातप्रकम्पो न स्यादिति। यथाह वाग्भटः– कषायाश्चाहिमास्तस्य विशुद्धौ श्लेष्मणो हिताः। किमु तिक्तकषाया वा ये निसर्गात्कफापहाः। कृत–शुद्धेः क्रमात्पीतपेयादेः पथ्यभोजिनः। वातादिभिर्न बाधा स्यादिन्द्रियैरिव योगिनः, इति।। 20।।

अवतरणिका– इसप्रकार नर्मदा से कसैला, तीखा एवं मदजल से सुगन्धित जल ग्रहण करने के बाद, आगे बढ़ने पर सारंगों द्वारा मार्गदर्शन की बात का उल्लेख करते हुए महाकवि कहते हैं कि–

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्धरूढै–
राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्।
'जग्ध्वाऽरण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः।
सारंगास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम्।।21।।

अन्वय– अर्ध–रूढैः केसरैः, हरित–कपिशम् नीपम् दृष्ट्वा, अनुकच्छम् आविर्भूत–प्रथम–मुकुलाः, कन्दलीः च जग्ध्वा, अरण्येषु उर्व्याः अधिक–सुरभिम् गन्धम् च आघ्राय, सारंगाः जल–लव–मुचः ते मार्गम् सूचयिष्यन्ति ।।21।।

अनुवाद– आधे खिले हुए केसरों से युक्त, हरे एवं पीले रंग वाले कदम्ब के पुष्पों को देखकर, दलदल प्रदेशों में प्रथम बार प्रकट होने वाली, कन्दली की कलियों को खाकर तथा वनों में अत्यधिक सुगन्धित, पृथ्वी की गन्ध को सूँघकर हाथी, हरिण तथा भ्रमर ये सभी तुम्हारे मार्ग को सूचित करेंगे।

'चन्द्रिका'– नर्मदा के जल को ग्रहण करने के बाद, जब तुम आगे बढ़ोगे तो तुम्हें ऐसे वन प्रदेश मिलेंगे, जिनमें आधे खिले हुए केसर के पुष्प होंगे तथा हरे एवं पीले रंगों वाले कदम्ब के पुष्प तुम्हारा स्वागत करेंगे, इतना ही नहीं, दलदल के प्रदेशों में पहली बार खिलने वाली कन्दली की कलियों को खाकर, तुम्हारे द्वारा की जाने वाली वृष्टि के कारण, उत्पन्न होने वाली अत्यधिक सुगन्धित गन्ध को

सूँघकर, वन के हाथी, हरिण और भ्रमर सभी तुम्हारे आगे जाने वाले मार्ग की सूचना प्रदान करेंगे।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में प्रयुक्त 'सारंग' पद का प्रयोग विशेष प्रयोजनवश किया गया है, क्योंकि इसके हाथी, मृग तथा भ्रमर तीनों ही अर्थ होते हैं, कवि यहाँ तीनों का ही एक शब्द से कथन् करना चाहता है।

(ii) महाकवि का प्रकृति विषयक गहन प्रेम अभिव्यक्त हुआ है।

(iii) कुछ टीकाकरों ने सारंग का अर्थ 'चातक' भी किया है, किन्तु कोशों में इसके तीन ही अर्थ मिलते हैं, जो यहाँ पर युक्तिसंगत भी प्रतीत हो रहे हैं, यों भी कदम्ब वर्षाऋतु में ही विकसित होता है, जिसपर भ्रमर आनन्दपूर्वक गुँजार करते हैं।

(iv) इसीप्रकार वन में किंचित् दलदल प्रदेशों में कन्दलियाँ मुकुलित होने लगती हैं, जिनके कोमल पत्तों को खाकर हरिण आनन्दित होते हैं।

(v) इसके अतिरिक्त प्रथम वर्षा की बूँदों से पृथ्वी महक उठती है, जिसकी गन्ध को सूँघकर जंगली हाथी झूम उठते हैं। इसलिए सारंग के हाथी, भ्रमर तथा हरिण ये तीनों अर्थ करना ही उचित है।

(vi) 'नीप' आदि कार्यों को देखकर वृष्टिरूप कारण का अवधारण करने से यहाँ अनुमान[1] अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **आघ्राय**– आ+√घ्रा+ल्यप् सूँघकर

(ii) **जललवमुचः**– जलस्य लवाः, जललवान् मुंचन्ति, इति जललवमुक्, तस्य, उपपद समास, जल+लव+√मुच्+क्विप् ।

(iii) **सूचयिष्यन्ति**– √सूच्+णिच्, लट् प्रथमपुरुष, बहुवचन ।

(iv) **जग्ध्वा**– √अद् भक्षणे + क्त्वा, खाकर ।

(v) **अधिकसुरभिम्**– अधिकं यथा स्यात् तथा सुरभिः, तम् ।

(vi) **अनुकच्छम्**– कच्छेषु समीपम्, अव्ययीभाव समास।

---

[1]. अनुमानं तदुक्तं यत् साध्यसाधनयोर्वचः। काव्यप्रकाश– 10 / 182 ।

(vii) **हरितकपिशम्**– हरितं च तत् कपिशं कर्मधारय समास।

(viii) **अर्धरुढ़ैः**– अर्धं यथा स्यात् तथा रुढ़ैः केवल समास ।

(ix) **आविर्भूतप्रथममुकुलाः**– आविर्भूताः प्रथमाः मुकुलाः यासां ताः बहुव्रीहि समास, जिसमें प्रथमबार कलियाँ विकसित हुई हैं वे।

संजीवनी टीका– नीपमिति। सारंगाः मतंगजाः कुरंगा वा। सारंगश्चातके भृंगे कुरंगे च मतंगजे' इति विश्वः। अर्धरूढैरेकदेशोद्गतैः केसरैः किंजल्कैर्हरितं पालाशवर्णं 'कपिशं कृष्णपीतं च'। 'पालाशो हरितो हरित्' इति। श्यावः स्यात्कपिशो धूम्रधूमलौ कृष्णलोहिते' इति चामरः। श्यामवर्णमिति यावत्। 'वर्णो वर्णेन' इति समासः। नीपं स्थलकदम्ब– कुसुमम्। 'अथ स्थलकदम्बके। नीपः स्यात्पुलके' इति शब्दार्णवे। दृष्ट्वा सम्प्रेक्ष्य। विदित्वेति यावत्। तथा कच्छेष्वनूपेष्वनुकच्छम्। 'अव्ययं विभक्ति–' इत्यादिना विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः। 'जलप्रायमनूपं स्यात् पुंसि कच्छस्तथाविधः' इत्यमरः।

आविर्भूताः प्रथमाः प्रथमोत्पन्ना मुकुला यस्यां ताः कन्दलीर्भूमि– कदलीः। 'द्रोणपर्णी स्निग्धा कन्दा कन्दली भूकदल्यपि' इति शब्दार्णवे। जग्ध्वा भक्षयित्वा। 'दग्धारण्येषु' इति पाठे 'दग्धम्' इत्यधिकविशेषणम्। अर्थवशात्कन्दलीश्च दृष्ट्वैयेत्यन्वयो द्रष्टव्यः। उर्व्यां भूमेर्गन्धिमाघ्राय जललवमुचो मेघस्य ते तव मार्गं सूचयिष्यन्त्यनुमापयिष्यन्ति। यत्र यत्र वृष्टिकार्यं कन्दलीमुकुलनीपकुसुमादिकं दृश्यते तत्र तत्र त्वया वृष्टमि– त्यनुमीयत इति भावः।।21।।

अवतरणिका– इसके पश्चात् महाकवि जल बिन्दुओं को ग्रहण करते हुए, चातकों का तथा पंक्तिबद्ध बगुलियों का मनभावन वर्णन– पूर्वक मेघ के गर्जन से भयभीत हुई सिद्ध पुरुषों की प्रेमिकाओं की चेष्टाओं का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान् वीक्षमाणाः
श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाकाः।
त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः

सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिंगितानि ।।22।।

अन्वय– अम्भः–बिन्दु–ग्रहण–चतुरान् चातकान् वीक्षमाणाः श्रेणी–भूताः बलाकाः परिगणनया निर्दिशन्तः सिद्धाः स्तनित–समये सोत्कम्पानि, प्रिय–सहचरी–संभ्रम् आलिंगितानि आसाद्य, त्वाम् मानयिष्यन्ति ।।22।।

अनुवाद– (इसके बाद) **जल की बूँदों को ग्रहण करने में निपुण चातकों को देखते हुए एवं पंक्तिबद्ध बगुलियों को अँगुली से दिखाते हुए, सिद्ध लोग तुम्हारे गर्जन के समय भय के कारण काँपती हुई, प्रियतमाओं द्वारा घबराहटपूर्वक किए गए आलिंगनों को प्राप्त करके, तुम्हारे प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करेंगे।**

'चन्द्रिका'– इसी क्रम में काव्यकार आकाश के प्राकृतिक दृश्यों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि आकाश में उड़ते हुए ही वर्षा के जल की बूँदों को ग्रहण करने में कुशल चातक पक्षियों का अवलोकन करके तथा मेघ के साथ–साथ उड़ने वाली बगुलियों को अपनी अंगुली से गिनते हुए आकाशचारी सिद्ध लोग तुम्हारे गर्जन के कारण घबराहट से डरी हुई अपनी पत्नियों का आलिंगन करते हुए तुम्हारे प्रति अपने कृतज्ञभाव को प्रदर्शित करेंगे, क्योंकि वर्षाऋतु में अकस्मात् ही प्राप्त होने वाला प्रिया के आलिंगन का यह सुख तो उन्हें केवल तुम्हारे कारण ही प्राप्त हुआ है।

विशेष–(i) पौराणिक मान्यता के अनुसार आकाश में सिद्ध लोग अपनी प्रियतमाओं के साथ विचरण करते रहते हैं।

(ii) चातक के विषय में ऐसी कवि प्रसिद्धि है कि यह वर्षा ऋतु में मेघ की बूँदों को पृथ्वी पर गिरने से पूर्व ही अपनी चोंच में ग्रहण कर लेते हैं, क्योंकि ये भूमि पर गिरे हुए जल को ग्रहण नहीं करते हैं, भले ही उनकी मृत्यु ही क्यों न हो जाए, क्योंकि इससे उन्हें रोग होने की सम्भावना रहती है।

(iii) वर्षाऋतु के आने पर बगुले आकाश में पंक्तिबद्ध होकर एक साथ उड़ते हैं, जिसकी ओर महाकवि ने यहाँ संकेत किया है, जिन्हें उत्सुकतावश गिनने की प्रवृत्ति भी प्रायः लोगों में देखी जाती है। अपनी प्रियाओं के साथ विचरण करने वाले आकाशचारी सिद्धों का यही मनभावन मनोरंजन है, जिसका यहाँ उल्लेख हुआ है।

(iv) वर्षाऋतु में सिद्धपुरुष भी अपनी प्रियतमाओं का आलिंगन प्राप्त करने के लिए प्रतिक्षण लालायित रहते हैं, जिसकी ओर कवि ने संकेत किया है, यह कल्पना सहृदय को भी आह्लादित करने वाली है। सम्भोग श्रृंगार की सुन्दर सृष्टि दर्शनीय है।

(v) महाकवि का कृतज्ञ स्वभाव भी अभिव्यंजित हुआ है, क्योंकि उनकी मान्यता है कि यदि किसी व्यक्ति विशेष के कारण हमारा अभिलषित कार्य सम्पन्न हो जाए तो उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना हमारा प्रथम कर्तव्य है, जिसे यहाँ सिद्ध पुरुषों द्वारा कराया गया है।

(vi) आचार्य मल्लिनाथ ने इसे प्रक्षिप्त मानकर टीका की है, तथा जैन कवि जिनसेन ने भी प्रस्तुत श्लोक को प्रक्षिप्त माना है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **भूताः**— √भू+क्त+टाप्, हुई।

(ii) **परिगणनया**— परि+ √गण्+युच्+टाप्, गिनती द्वारा।

(iii) **वीक्षमाणः**— वीक्षन्तः इति, वि+ √ईक्ष्+शानच्, देखते हुए।

(iv) **श्रेणीभूताः**— श्रेणि+च्वि, 'च्वौ च' सूत्र से दीर्घ आदेश।

(v) **निर्दिशन्तः**— निर्+ √दिश्+शतृ+लट्, निर्देश करते हुए।

(vi) **आसाद्य**— आ+ √साद्+क्त्वा (ल्यप्), प्राप्त करके।

(vii) **स्तनिसमये**— स्तनितस्य समये, ष.तत्पु. गर्जन के समय।

(viii) **सोत्कम्पानि**— उत्कम्पेन सह सहितानि वा बहुव्रीहि,

(ix) **मानयिष्यन्ति**— √मन्+णिच्+लट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

(x) **प्रियसहचरीसम्भ्रमालिंगितानि**– प्रियाश्च ताः सहचर्यः, तासां सम्भ्रमः, तेन आलिंगितानि, तानि, कर्मधारय, षष्ठी तत्पुरुष, तृतीया तत्पुरुष, प्रिय पत्नियों द्वारा सम्भ्रम से किए गए आलिंगनों को।

संजीवनी टीका– अम्भ इति। अम्भोबिन्दूनां वर्षोदबिन्दूनां ग्रहणे। 'सर्वं सहापतितमम्बु न चातकस्य हितम्' इति शास्त्राद् भू–स्पृष्टोदकस्य तेषां रोगहेतुत्वादन्तराल एव स्वीकारे चतुरांश्चातकान् वीक्षमाणाः कौतुकात्पश्यन्तः श्रेणीभूताबद्धपंक्तीः। अभूततद्भावे च्विः। बलाका बकपंक्तीः परिगणनयैका द्वे तिस्र इति संख्यानेन निर्दिशान्तो हस्तेन दर्शयन्तः सिद्धाः स्तनितसमये त्वद्गर्जितकाले सोत्कम्पा–न्युत्कम्पपूर्वकाणि प्रियसहचरीणां सम्भ्रमेणालिंगितान्यासाद्य। स्वयं ग्रहणाश्लेषसुखमनुभूयेत्यर्थः। त्वां मानयिष्यन्ति। त्वन्निमित्तत्वात् सुखलाभस्येति भावः।।22।।

अवतरणिका– इसके बाद यक्ष, अपने मित्र मेघ से कुटज के पुष्पों से युक्त पर्वत पर मोरों द्वारा केका ध्वनि से स्वागत करने की बात का उल्लेख करते हुए उसे शीघ्रता से जाने की बात करता है–

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे! मत्प्रियार्थं यियासोः
कालक्षेपं ककुभसुरभो पर्वते पर्वते ते।
शुक्लापांगैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत्।।23।।

अन्वय– सखे! मत् प्रियार्थम् द्रुतम् यियासोः अपि, ते ककुभ–सुरभः पर्वते–पर्वते काल–क्षेपम् उत्पश्यामि, ते सजल–नयनैः शुक्ल–अपांगैः केकाः स्वागती–कृत्य, प्रत्युद्यातः भवान् कथम् अपि आशु गन्तुम् व्यवस्येत्।।23।।

अनुवाद– हे मित्र! मेरे प्रिय कार्य को करने के लिए, शीघ्र जाने के इच्छुक होते हुए भी, कुटज के पुष्पों से सुगन्धित प्रत्येक पर्वत पर, मैं तुम्हारे देर होने की सम्भावना करता हूँ, किन्तु आनन्द के अश्रुओं से युक्त नेत्रों वाले, मोरों द्वारा केकारव को 'स्वागत' शब्द के

रूप में प्रयुक्त किए गए तुम, किसी भी प्रकार शीघ्र जाने के लिए प्रयास करना।

'चन्द्रिका'– महाकवि का अभिप्राय है अलका नगरी की ओर प्रस्थान करते हुए मार्ग में तुम्हें प्रत्येक पर्वत पर कुटज के विकसित सुगन्धित पुष्पों की प्राप्ति होगी, जिनमें तुम्हारा मन अत्यधिक रमेगा। इसके अलावा तुम्हें देखकर आनन्द के आँसुओं से युक्त नेत्रों वाले मोर भी मार्ग में निश्चय ही पद–पद पर अपनी 'केका' ध्वनि से तुम्हारा हृदय से स्वागत करेंगे। अतः इन दोनों कारणों से पूरी सम्भावना है कि तुम्हें मेरा कार्य शीघ्र करने की प्रबल इच्छा होते हुए भी देर हो, किन्तु फिर भी तुम शीघ्र ही आगे बढ़ने का पूरा–पूरा प्रयास करना।

विशेष–(i) वर्षा ऋतु में यों तो सभी प्राणी आनन्द का अनुभव करते हैं, किन्तु मोर तो मानो आनन्द विभोर होकर नाचने ही लगता है, उसकी आँखों में आनन्दाश्रुओं की महनीय कल्पना द्वारा कवि ने प्रकृति में जीवन्तता का संचार कर दिया है, जो उसकी महती विशेषता है।

(ii) कुटज के पुष्पों के वर्षात्रृतु में विकसित होने तथा शुक्ल नेत्र प्रान्तभाग (अपांग) भाग वाले मोरों के केकारव[1] करने के उल्लेखों से महाकवि का वनस्पति विज्ञान तथा प्राणी विज्ञान विषयक गहन ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(iii) ऐसी कवि प्रसिद्धि है कि वर्षात्रृतु में मोर जब आनन्द विभोर होकर नृत्य करते हैं, तो उनकी आँखों से अश्रु गिरते हैं, कवि ने यहाँ उसी मान्यता की ओर संकेत किया है।

(iv) मोरों के लिए 'शुक्लापांग' पद का प्रयोग योगरूढ़ हो गया है, क्योंकि उनके नेत्रों के प्रान्तभाग श्वेत होते हैं।

(v) वर्षात्रृतु में स्वाभाविक रूप से की जाने वाली मोरों की 'केका' ध्वनि में कवि ने 'स्वागत' करने की मनोरम कल्पना की है, जो वस्तुतः सहृदयों को आह्लादित करने वाली है।

---

[1] . केका वाणी मयूरस्य इत्यमरः।

(vi) प्रस्तुत श्लोक में केकारव में स्वागत वचनों की परिकल्पना के कारण परिणाम[1] अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **गन्तुम्**– √गम्+तुमुन्, जाने हेतु।

(ii) **स्वागतीकृत्य**– शोभनम् आगतमिति स्वागतम्, न स्वागतम् अस्वागतम्, अस्वागतं स्वागतं सम्पद्यमानं कृत्वा इति, स्वागत+च्वि+ √कृ+ क्त्वा (ल्यप्), स्वागत के रूप में करके।

(iii) **प्रत्युद्यातः**– प्रति+उद्+ √या+क्त, अगवानी किए गए।

(iv) **व्यवस्येत्**– वि+अव+ √सो+विधिलिङ्, प्र. पुरुष, एकवचन।

(v) **मत्प्रियार्थम्**– मम प्रियम् इति मत्प्रियम्, मत्प्रियाय इदं यथा तथा, षष्ठी एवं चतुर्थी तत्पुरुष, मेरे प्रिय कार्य के सम्पादन के लिए

(vi) **यियासोः**– यातुमिच्छुः यियासुः तस्य, √या+सन्+उ ।

(vii) **ककुभसुरभौ**– ककुभैः सुरभिः तस्मिन्, तृतीया तत्पुरुष।

(viii) **उत्पश्यामि**– उत्+ √दृश्+लट्, उत्तमपुरुष, एकवचन।

(ix) **कालक्षेपम्**– कालस्य क्षेपम्, तम्, षष्ठी तत्पुरुष।

(x) **शुक्लापांगैः**– शुक्लौ अपांगौ येषां तैः बहुव्रीहि।

(xi) **सजलनयनैः**– जलेन सहितः सजलः, सजलानि नयनानि येषां तैः बहुव्रीहि।

संजीवनी टीका– उत्पश्यामीति। हे सखे! मेघ! मत्प्रियार्थं यथा तथा द्रुतं क्षिप्रम्। 'लघुक्षिप्रसरं द्रुतम्' इत्यमरः। यियासोर्यातुमिच्छोरपि। वातेः सन्नन्तादुप्रत्ययः। ते तव ककुभैः कुटजकुसुमैः सुरभौ सुगन्धिनि। 'ककुभः कुटजेऽर्जुने' इति शब्दार्णवे। पर्वते पर्वते प्रतिपर्वतम्। वीप्सायां द्विरुक्तिः। कालक्षेपं कालविलम्बम्। 'क्षेपो विलम्बे निन्दायाम्' इति विश्वः। उत्पश्याम्युत्प्रेक्षे। विलम्बहेतुं दर्शयन्नाशुगमनं प्रार्थयते– शुक्लेति। सजलानि सानन्दबाष्पाणि नयनानि येषां तैः, शुक्लापांगैर्मयूरैः।

---

[1] . विषयात्मतयारोप्ये प्रकृतार्थोपयोगिनि।
परिणामो भवेत् तुल्यातुल्याधिकरणो द्विधा।। साहित्यदर्पण

'मयूरो बर्हिणो बर्ही शुक्लापांगः शिखावलः' इति यादवः। 'केका वाणी मयूरस्य' इत्यमरः।

स्वागतीकृत्य स्वागतवचनीकृत्य प्रत्युद्यातः प्रत्युद्गतः। मयूर–वाणीकृतातिथ्य इत्यर्थः। भवान् कथमपि यथाकथंचिदाशु गन्तुं व्यवस्येद उद्युंजीत। प्रार्थने लिंग। 'शेषे प्रथमः' इति प्रथमपुरुषः। शेषश्चायं भवच्छन्दो युष्मदस्मच्छब्दव्यतिरेकात्। 'स्वगतीकृत्य केकाः' इत्यत्र केकास्वारोप्यमाणस्य स्वागतवचनस्य प्रकृतप्रत्युद्गमनोपयोगात् परिणा–मालंकारः। तदुक्तमलंकारसर्वस्वे– आरोप्यमाणस्य प्रकृतोपयोगित्वे परिणामः' इति।।23।।

अवतरणिका– इसके पश्चात् यक्ष अपने मित्र मेघ को मार्ग बताने के क्रम में दशार्ण देश में जाने की बात का उल्लेख करते हुए, मेघ के वहाँ पहुँचने पर प्रकृति के उपादानों में होने वाले उत्कृष्ट परिवर्तनों के विषय में कहता है कि–

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नैः–
नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः।
त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः
संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः।।24।।

अन्वय– त्वयि आसन्ने दशार्णाः सूचि–भिन्नैः केतकैः पाण्डु–छाया–उपवन–वृतयः गृह–बलि–भुजाम् नीड–आरम्भैः आकुल–ग्राम–चैत्याः परिणत–फल–श्याम–जम्बू–वनान्ताः कतिपय–दिन–स्थायि–हंसाः संपत्स्यन्ते।।24।।

अनुवाद– हे मेघ! तुम्हारे पास आने पर दशार्ण देश, कलियों के आगे के भाग में विकसित केतकी के फूलों से पीली हुई कान्ति वाले उपवनों से युक्त तथा घर की बलियों को खाने वाले कौए आदि पक्षियों के घोसलों की रचना से व्याप्त, गाँवों की गलियों के पवित्र वृक्षों से युक्त एवं पके हुए जामुन के फलों के कारण भरे हुए वन प्रदेशों वाला और कुछ दिन ठहरने वाले हंसों से युक्त हो जाएगा।

'चन्द्रिका'– हे मेघ! इसके बाद तुम्हें दशार्ण देश में जाना होगा, तुम्हारे वहाँ पर पहुँचते ही वह प्रदेश कलियों के अग्रभाग के भाग में खिली हुई केतकी के पुष्पों से पीली कान्ति से युक्त उपवनों वाला हो जाएगा। इसके अलावा घरों में दी जाने वाली बलियों को खाने वाले कौओं आदि पक्षियों के घौंसलों से युक्त भी हो जाएगा तथां गाँवों की गलियों में उगाए गए, पीपल, वटादि पवित्र वृक्ष भी प्रफुल्लित हो उठेंगे तथा इसका वन–प्रदेश भी पके हुए जामुन के फलों के कारण भरा–पूरा हो जाएगा, इसप्रकार के सुरम्य वातावरण में न चाहते हुए भी निश्चय ही हंस यहाँ कुछ दिन अवश्य रुक जाएँगे।

विशेष–(i) गृहबलियों का उल्लेख करके कवि ने तात्कालिक सामाजिक स्थिति का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है, क्योंकि उस समय भी वर्तमान के समान ही पितरों के लिए बलि प्रदान करने का विधान था, जिसे प्रायः कौए आदि पक्षी ग्रहण करते हैं।

(ii) महाकवि का ऋतुविज्ञान भी प्रदर्शित हुआ है, क्योंकि वे इस बात से भलीभाँति परिचित हैं, कि वर्षाऋतु में कौन से पुष्प तथा फल विकसित होते हैं।

(iii) इसीप्रकार कौओं द्वारा घोंसले बनाने तथा हंसों के उल्लेख से उनका पक्षिविज्ञान भी अभिव्यंजित हुआ है।

(iv) यहाँ प्रयुक्त 'चैत्य' पद के अर्थ के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। मल्लिनाथ इसका गली का वृक्ष, वल्लभदेव बुद्धालय अर्थ करते है, जबकि दूसरे विद्वान् इसे चौराहे के वृक्ष, पवित्र वृक्ष और पवित्र मन्दिर अर्थ में प्रयुक्त मानते हैं।

(v) इसीप्रकार यहाँ प्रयुक्त 'परिणतफलश्याम' को मल्लिनाथ ने रम्य अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए माना है, जबकि इसे 'पके हुए जामुन फलों' के अर्थ में मानना अधिक समीचीन प्रतीत हो जाता है, क्योंकि पकने पर जामुन का फल श्याम वर्ण (गहरा नीला) का हो जाता है।

(vi) 'दशार्ण' प्रदेश का नामकरण वस्तुतः इसके दस दुर्गों को ध्यान में रखकर किया गया है, क्योंकि इस शब्द में प्रयुक्त 'ऋण' पद जल तथा दुर्गभूमि दोनों का ही वाचक है। यद्यपि दश ऋणानि जलप्रवाहः यस्याः सा दशार्णः, इस व्युत्पत्ति से इसे नदीवाचक भी कहा जा सकता है।

(vii) कुछ विद्वानों की सम्मति में छत्तीसगढ़ से होकर दशार्ण नाम की नदी प्रवाहित होती है, जिसका उद्गमस्थल विन्ध्याचल है।

(viii) जबकि विदेशी विद्वान् प्रो. विल्सन ने इसे 'दोसारेने' से मिलता जुलता माना है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी---(i) **आसन्ने**– आ+ √सद्+क्त, स.वि.

(ii) **दशार्णाः**– दश ऋणानि, दुर्गभूमयः, येषां ते, बहुव्रीहि।

(iii) **सूचिभिन्नैः**– सूचिषु भिन्नानि तैः, भिन्नः– √भिद्+क्त।

(iv) **पाण्डुच्छायोपवनवृत्तयः**– पाण्डुः छाया यस्य तत् बहुव्रीहि, तादृशम् उपवनम्, कर्मधारय, तस्य वृत्तिः येषु ते बहुव्रीहि।

(v) **नीडारम्भैः**– नीडानाम् आरम्भाः तैः षष्ठी तत्पुरुष।

(vi) **गृहबलिभुजाम्**– गृहेषु बलिः भुंजते ते इति गृहबलिभुजः। उपपद समास, गृह+बलि+ √भुज्+क्विप्, घरों में बलि को खाने वाले।

(vii) **नीड़ारम्भैः**– नीडानाम् आरम्भाः तैः, षष्ठी तत्पुरुष ।

(viii) कतिपयदिनस्थायिहंसाः– कतिपयानि च तानि दिनानि तेषु तिष्ठन्ति, इति उपपद तत्पु., कतिपयदिनस्थायिनः हंसा येषु ते।बहु.

(ix) **सम्पत्स्यन्ते**– सम्+ √पद्+लृट् प्रथमपुरुष, बहुवचन।

संजीवनी टीका– पाण्ड्विति। हे मेघ! त्वय्यासन्ने सन्निकृष्टे सति दशार्णा नाम जनपदाः सूचिभिन्नैः सूचिषु मुकुलाग्रेषु भिन्नै– र्विकसितैः। 'केतकीमुकुलाग्रेषु सूचिः स्यात्' इति शब्दार्णवे। केतकैः केतकीकुसुमैः पाण्डुच्छाया हरितवर्णा उपवनानां वृत्तयः कण्टकशाखा– वरणा येषु ते तथोक्ताः। 'प्रकारो वरणः सालः प्राचीरं प्रान्ततो वृत्तिः'

इत्यमरः। तथा गृहबलिभुजां काकादिग्रामपक्षिणां नीड़ारम्भैः कुलाय–निर्माणैः। 'कुलायो नीडमस्त्रियाम्' इत्यमरः।

चित्याया इमानि चैत्यानि रथ्यावृक्षाः। चैत्यमायतने बुद्धवन्द्ये चोद्देशपादपे' इति विश्वः। आकुलानि संकीर्णानि ग्रामेषु चैत्यानि येषु ते तथोक्ताः। तथा परिणतैः पक्वैः फलैः श्यामानि यानि जम्बूवनानि तैरन्ता रम्याः। मृतावववसिते रम्ये समाप्तावन्त इष्यते' इति शब्दार्णवे। तथा कतिपयेष्वेव दिनेषु स्थायिनो हंसा येषु ते तथोक्ता एवंविधा संपत्स्यन्ते भविष्यन्ति। 'पोटायुतिस्तोककतिपय' इत्यादिना कतिपयशब्दस्योत्तरपद–त्वेऽपि न तच्छब्दस्योत्तरत्वमस्त्यस्य शास्त्रस्य प्राथमिकत्वात्।।24।।

अवतरणिका– इसी क्रम में दशार्ण प्रदेश की राजधानी विदिशा में जाकर वेत्रवती नदी को प्राप्त करने पर कामुकत्व के फल की प्राप्ति की बात करते हुए यक्ष अपने मित्र मेघ से कहता है कि–

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा।
तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मात्
सभ्रूभंगं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मिः।।25।।

अन्वय– दिक्षु प्रथित–विदिशा–लक्षणाम् तेषाम् राजधानीम् गत्वा, सद्यः कामुकत्वस्य अविकलम् फलम् लब्धा, यस्मात् स्वादुः चल–ऊर्मिः वेत्रवत्याः पयः सभ्रू–भंगम् मुखम् इव, तीर–उपान्त–स्तनित–सुभगम् पास्यसि।।25।।

अनुवाद– विभिन्न दिशाओं में प्रसिद्ध, विदिशा नामक उस दशार्ण प्रदेश की राजधानी में पहुँचकर तुम, शीघ्र ही कामुकता के फल को प्राप्त कर लोगे, क्योंकि वहाँ पर तुम मधुर एवं चंचल तरंगों वाली, वेत्रवती नदी के जल को, कुटिल भौंहों से युक्त मुख के समान, तट प्रान्त में गर्जन (स्तनित) के कारण सुन्दर प्रतीत होते हुए पान करोगे।

'चन्द्रिका'– दशार्ण प्रदेशों में पहुँचकर तुम सभी दिशाओं में प्रसिद्धि को प्राप्त विदिशा नामक राजधानी में भी अवश्य जाना, वहाँ पहुँचकर तुम्हें अपने रसिक होने के फल की प्राप्ति ही सहज ही हो

जाएगी, क्योंकि मधुर एवं चंचल तरंगों वाली वेत्रवती नदी के जल को तुम कुटिल भौहों से युक्त मुख के समान, उसके तट प्रान्त में गर्जन से सुन्दर लगते हुए पान करोगे।

विशेष–(i) वेत्रवती नदी में काम–कुशल विदग्धा नायिका की तथा मेघ में कामुक नायक की मनोहारिणी कल्पना की गयी है, जो जलपान के व्याज से प्रियतमा के अधरपान का आनन्द प्राप्त करेगा।

(ii) महाकवि की कामशास्त्र विषयक सूक्ष्मदृष्टि अभिव्यक्त हुई है, क्योंकि यहाँ मेघ को कामुक नायक तथा वेत्रवती नदी को चंचल स्वभाव वाली नायिका के रूप में चित्रित किया गया है।

(iii) प्राचीन समय में विदिशा दशार्ण देश की राजधानी थी तथा वेत्रवती नदी विदिशा के पास ही बहती थी, जिसकी ओर कवि ने यहाँ संकेत किया है, विद्वानों के अनुसार वर्तमान समय में छत्तीसगढ़ राज्य का 'भिलसा' ही वस्तुतः पुराना विदिशा है।

(iv) उल्लेखनीय है कि महाकवि बाण ने कादम्बरी में विदिशा को 'मालव' जनपद की राजधानी कहा है।[1]

(v) इसीप्रकार वर्तमान समय में 'वेतवा' नदी ही पुरातनकालीन वेत्रवती नदी है, जो विन्ध्य के उत्तर से प्रवाहित होती है तथा विदिशा से होकर बहती हुई 'कालपी' के पास यमुना में मिल जाती है।

(vi) कामशास्त्र में प्रियतमा के अधर का पान करना ही कामुक रसिक के लिए अखण्ड फल माना गया है।

(vii) प्रस्तुत श्लोक में मेघ एवं वेत्रवती नदी के क्रमशः नायक एवं नायिका का आरोप करने के कारण समासोक्ति अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

---

[1]. मज्जन्मालवविलासिनी कुचतटास्फालनवेत्रवत्या परिगता विदिशाभिधाना नगरी राजधान्यासीत्। कादम्बरी।

(viii) इसके अतिरिक्त सभ्रूभंगमुखमिव में उत्प्रेक्षालंकार[1] का सुन्दर एवं मनोरम प्रयोग हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **दिक्षु**– दिक्+सुप्, स.वि.ए.वचन।

(ii) **कामुकत्वस्य**– कामुकस्य भावः कामुकत्वं, तस्य।

(iii) **प्रथितविदिशालक्षणाम्**– प्रथितं विदिशा, इति, लक्षणं यस्याः सा, ताम् बहुव्रीहि, प्रथ+क्त–प्रथित, **लक्षण**– लक्ष्+ल्युट् (अन)।

(iv) **अविकलम्**– विगता कला यस्मात्, यस्य वा तत् बहुव्रीहि।

(v) **तीरोपान्तस्तनितसुभगम्**– तीरस्य उपान्तः, इति तस्मिन् स्तनितं तेन सुभगं यथा तथा, तट के प्रान्तभाग में गर्जन से सुन्दर।

(vi) **चलोर्मि**–चलतीति चला, √चल्+अच्+टाप्, ऊर्मिःयस्य, तत्

(vii)**वेत्रवत्याः**–वेत्रम् अस्ति यस्याः सा, तस्याः वेत्र+मतुप्+ङीप्

(viii) **पास्यसि**– √पा+लृट्, मध्यमपुरुष, एकवचन पिओगे।

(ix) **सभ्रूभंगम्**– भ्रुवोः भंगः तेन सहितम्, इति तत् बहुव्रीहि।

संजीवनी टीका– **तेषामिति। दिक्षु प्रथितं प्रसिद्धं विदिशेति लक्षणं नामधेयं यस्यास्ताम्। लक्षणं नाम्नि चिह्ने च' इति विश्वः। तेषां दशार्णानां सम्बन्धिनीम्। धीयन्तेऽस्यामिति धानी। 'करणाधिकरणयोश्च' इति ल्युट्। राज्ञां धानी राजधानी। कृद्योगलक्षणा षष्ठी समस्यते' इति वक्तव्यात्समासः। तां प्रधाननगरीम्। 'प्रधाननगरी राज्ञां राजधानीति कथ्यते' इति शब्दार्णवे। गत्वा प्राप्य सद्यः कामुकत्वस्य विलासितायाः। 'विलासी कामुकः कामी स्त्रीपरो रतिलम्पटः' इति शब्दार्णवे।**

अविकलं समग्रं फलं प्रयोजनं लब्धा लप्स्यते। त्वयेति शेषः। कर्मणि लुट्। कुतः। यस्मात्कारणात्स्वादु मधुरं चला ऊर्मयो यस्य तच्चलोर्मि तरंगितं वेत्रवत्या नाम नद्याः पयः सभ्रूभंगं भ्रकुटियुक्तम्। दशनपीडयेति भावः। मुखमिवाधरमिवेत्यर्थः। तीरोपान्ते तटप्रान्ते यत् स्तनितं गर्जितं तेन सुभगं यथा तथा। स्तनितशब्देन भणितमपि व्यपदिश्यते। 'ऊर्ध्वमुच्चलितकण्ठनासिकं हुङ्कृतं स्तनितमल्पघोषवत्'

---

1. सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्। काव्यप्रकाश– 10/137

इति लक्षणात्। पास्यसि। पिबतेर्लृट्। कामिनामधरास्वादः सुरतादति–रिच्यते' इति भावः।।25।।

अवतरणिका– इसके बाद यक्ष उससे विदिशा के पास में ही स्थित 'नीच' नामक पर्वत पर थोड़ी देर विश्राम करने का परामर्श प्रदान करते हुए कहता है कि–

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो–
स्त्वत्संपर्कात्पुलकितमिव प्रौढ़पुष्पैः कदम्बैः।
यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा–
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि।।26।।

अन्वय– तत्र विश्राम–हेतोः, प्रौढ़–पुष्पैः कदम्बैः त्वत् संपर्कात् पुलकितम् इव नीचैः आख्यम् गिरिम् अधिवसेः, यः पण्य–स्त्री–रति–परिमल–उद्गारिभिः, शिला–वेश्मभिः नागराणाम् उद्दामानि यौवनानि प्रथयति ।।26।।

अनुवाद– उसी विदिशा में विश्राम हेतु, खिले हुए पुष्पों वाले कदम्ब वृक्षों से युक्त, मानो तुम्हारे सम्पर्क के कारण रोमांचित 'नीच पर्वत' पर थोड़ा ठहरना, जो वेश्याओं की रति–क्रीड़ा विषयक सुगन्ध को फैलाने वाले, शिलागृहों द्वारा नागरिकों के उद्दाम यौवन को प्रकट करते हैं।

'चन्द्रिका'– यक्ष कहता है कि यहाँ तक आते–आते मार्ग की थकान से युक्त तुम विदिशा के पास में ही स्थित 'नीच' नामक पर्वत पर थोड़ी देर अवश्य ठहरना, वह पर्वत वस्तुतः पूर्णतया विकसित कदम्ब के पुष्पों से युक्त होने से ऐसा प्रतीत होगा, मानो तुम्हारे सम्पर्क के कारण प्रसन्नता से वह रोमांचित हो गया हो। इसके अतिरिक्त उस पर्वत की दूसरी विशेषता का उल्लेख करते हुए कवि कहते हैं कि– 'यह पर्वत वेश्याओं की रति–क्रीड़ा विषयक सुगन्ध को प्रसारित करने वाले, शिलागृहों के माध्यम से नागरिकों के उत्कट यौवन को भी अभिव्यक्ति प्रदान करने वाला है।'

विशेष–(i) काव्यकार के समय में समाज में वेश्याओं का अत्यधिक प्रभाव रहा है, ये 'नीच' पर्वत पर बने हुए लताकुँजों तथा शिलागृहों में अपने प्रेमियों के साथ उन्मुक्तरूप से रमण करती थीं, जिसकी ओर यहाँ विशेषरूप से संकेत किया गया है। सम्भवतः इसीलिए इस पर्वत की 'नीच' संज्ञा की गयी है।

(ii) एक मित्र के आने पर दूसरे मित्र का प्रसन्नतातिरेक से रोमांचित होना अत्यन्त स्वाभाविक है, जिसका मेघ तथा 'नीच' पर्वत के माध्यम से कवि ने यहाँ उत्प्रेक्षापूर्वक कथन किया है। इसलिए उत्प्रेक्षालंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(iii) शिलागृहों से यहाँ कृत्रिम रमण स्थल या फिर स्वाभाविक रूप से निर्मित गुफा, ये दोनों ही अर्थ ग्रहण किए जा सकते हैं। महाकवि ने तात्कालिक 'नागर संस्कृति' का चित्र भी प्रस्तुत किया है।

(iv) अपने शरीर पर कामुकों तथा वेश्याओं द्वारा अत्यधिक सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग करने से पर्वत की कन्दराएँ सुगन्धित हो जाती थीं, जिसे यहाँ 'परिमलोद्गारिभिः' पद के द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **प्रथयति**–√प्रथ् प्रथने+णिच्+लट्, प्रथम पुरुष, एक वचन, प्रकट कर रहा है।

(ii) **विश्रामहेतोः**– विश्रामस्य हेतुः, तस्य षष्ठी तत्पुरुष।

(iii) **प्रौढ़पुष्पैः**– प्रौढानि पुष्पाणि येषां तैः बहुव्रीहि समास।

(iv) **त्वत्सम्पर्कात्**– तव सम्पर्कः, तस्मात् षष्ठी तत्पुरुष।

(v) **पुलकितम्**– पुलकाः जाताः अस्य इति, पुलक+इतच् ।

(vi) **नीचैराख्यम्**– नीचैः आख्या यस्य सः, तम् बहुव्रीहि।

(vii) **अधिवसेः**–अधि+√वस्+विधिलिङ्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(viii) **शिलावेश्मभिः**– शिलानां वेश्मनि, तैः षष्ठी तत्पुरुष।

(ix) **नागराणाम्**– नगरे भवाः नागराः, तेषाम्, नागरिकों का।

(x) **उद्दामानि**– दाम्नः मर्यादायाः उदगतानि प्रादि समास।

(xi) **पण्यस्त्री**– पणितुं व्यवहर्तुम् योग्या इति पण्या, सा स्त्री।

संजीवनी टीका– नीचैरिति। हे मेघ! तत्र विदिशासमीपे विश्रामः विश्रमः खेदापनयः। भावार्थे घञ् प्रत्ययः तस्य हेतोः विश्रामार्थमित्यर्थः। 'षष्ठी हेतुप्रयोगे' इति षष्ठी। विश्रामेत्यत्र 'नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः' इति पाणिनीये वृद्धिप्रतिषेधेऽपि 'विश्रामो वा' इति चान्द्रव्याकरणे विकल्पेन वृद्धिविधानाद्रूपसिद्धिः। प्रौढ़पुष्पैः प्रबुद्धकुसुमैः कदम्बैर्नीपवृक्षैस्त्वत्सम्पर्कात्तव संगात्। पुलका अस्य जाताः पुलकितमिव संजातपुलकमिव स्थितम्। तारकादित्वादितच् प्रत्ययः। नीचैरित्याख्या यस्य तं नीचैराख्यं गिरिमधिवसेः। गिरौ वसेरित्यर्थः। 'उपान्वध्याङ्वसः' इति कर्मत्वम्। यो नीचैर्गिरिः। पण्याः क्रेयाः स्त्रियः पण्यस्त्रियो वेश्याः। 'वारस्त्री गणिका वेश्या पण्यस्त्री रूपजीवनी' इति शब्दार्णवे।

तासां रतिषु सः परिमलो गन्धविशेषः। 'विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे' इत्यमरः। तमुद्गिरन्त्याविष्कुर्वन्तीति तथोक्तानि तैः। शिलावेश्मभिः कन्दरैर्नागराणां पौराणामुद्दामान्युत्कटानि यौवनानि प्रथयति प्रकटयति। उत्कटयौवनाः क्वचिदनुरक्ता वारांगना विश्रम्भविहारा–कांक्षिण्यो मात्रादिभयान्निशीथे समये कंचन विविक्तं देशमाश्रित्य रमन्ते। तच्चात्र बहुलमस्तीति प्रसिद्धिः। अत्रोद्गारशब्दो गौणार्थत्वान्न जुगुप्सा–वहः। प्रत्युत काव्यस्यातिशोभाकर एवं। यदुक्तं दण्डिना– निष्ठ्यूतो–द्गीर्णवान्तादि गौणवृत्तिव्यपाश्रम्। अतिसुन्दरमन्यत्र ग्राम्यकक्षां विगाहते, इति।।26।।

अवतरणिका– नीच पर्वत पर विश्राम करने के बाद, महाकवि मेघ के लिए इसके वन तथा नदी के तटों पर स्थित जूही की कलियों को नए जल की बूँदों से सींचने एवं पुष्पों को एकत्र करने वाली मालिनों के मुखों को छाया प्रदान करके, परिचय करने की बात का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

विश्रान्तः सन्व्रज वननदीतीरजातानि सिंच–
न्नुद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि।

गण्डस्वेदानपनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानां
छायादानात्क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम्।।27।।

अन्वय– विश्रान्तः सन् वन–नदी–तीर–जातानि उद्यानानाम् यूथिका–जालकानि नव–जल–कणैः सिंचन् गण्ड–स्वेद–अन्–अपनयन –रुजा–क्लान्त–कर्ण–उत्पलानाम् पुष्पलावी–मुखानाम् छाया–दानात् क्षण–परिचितः व्रज।।27।।

अनुवाद– हे मेघ! इस नीच पर्वत पर विश्राम करके, वन की नदी के किनारों पर उत्पन्न उपवनों की जूही की कलियों को अपने नए जल की बूँदों से सींचते हुए, कपोलों के पसीने को पौंछने से उत्पन्न होने वाली पीड़ा से मुरझाए हुए कर्ण–कमलों से युक्त, पुष्प तोड़ने वाली मालिनों के मुखों को छाया प्रदान करने से क्षणभर के लिए परिचित होकर ही तुम आगे जाना।

'चन्द्रिका'– इस नीच नामक पर्वत पर थोड़ी देर विश्राम करने के बाद, हे मेघ! तुम वन एवं नदी के किनारों पर स्थित उपवनों में उत्पन्न जूही की कलियों को अपने नए जल की बूँदों से अवश्य सींचना। साथ ही, उन उपवनों में पुष्पों का चयन करने के लिए आयी हुई मालिनों के मुखों को छाया प्रदान करके, उनसे क्षणभर के लिए परिचय भी निश्चय ही प्राप्त करना, जिन मालिनों के मुख गर्मी के कारण कपालों पर आए हुए पसीने को बार–बार पोंछने से होने वाली पीड़ा से युक्त हैं तथा इसीकारण उनके कानों में धारण किए हुए कमल भी मुरझा गए हैं।

विशेष–(i) नीच पर्वत के उपवनों में जूही के फूलों के उल्लेख के कारण महाकवि का वनस्पति–विज्ञान विषयक गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है, साथ ही उनके यायावरीय जीवन की पुष्टि भी होती है।

(ii) इसके अतिरिक्त तात्कालिक समय में स्त्रियों द्वारा आभूषण के रूप में धारण किए गए कमलों तथा पुष्प चयन से उनकी सामाजिक स्थिति पर भी प्रकाश पड़ता है।

(iii) यह शाश्वत सत्य है कि यदि भयंकर गर्मी में छोटा सा बादल का टुकड़ा क्षणभर के लिए थोड़ी सी छाया प्रदान करता है, तो इससे व्यक्ति को अत्यन्त सुखद अनुभूति होती है, महाकवि ने यहाँ उसी ओर संकेत किया है, इससे उनकी सूक्ष्मदृष्टि भी प्रदर्शित हुई है।

(iv) धूप से सन्तप्त मुख को क्षणभर के लिए छाया प्रदान करने पर उनके द्वारा स्वाभाविक रूप से नेत्रों को ऊपर उठाकर मेघ की ओर प्रेमपूर्वक देखना ही वस्तुतः उनसे क्षणिक परिचय प्राप्त करना है, इससे महाकवि का व्यावहारिक एवं गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(v) कुछ प्रतियों में 'नदनदीतीरजातानि' एवं 'नगनदी' आदि पाठ भी उपलब्ध होता है। तब नद से अभिप्राय विशाल जलप्रवाह तथा नगनदी से अभिप्राय पर्वतीय नदी से ग्रहण करना होगा।

(vi) अपनी आजीविका के लिए फूल तोड़ने वाली स्त्रियों को आज भी 'मालिन' कहा जाता है, यहाँ उसी ओर संकेत किया गया है। आज के समान ही प्राचीन समय में भी यह कार्य स्त्रियाँ ही करती थीं, क्योंकि उनकी अंगुलियाँ कोमल तथा पतली होती हैं।

(vii) मालिनों से परिचय प्राप्त करने के कारण मेघ में कामुक नायक के व्यवहार का आरोप किए जाने से समासोक्ति अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **विश्रान्तः**–वि+ √श्रम्+क्त, आराम।

(ii) **नवजलकणैः**–नवानि जलानि तेषां कणाः, तैः, कर्मधारय।

(iii) **वननदीतीरजातानि**– वने नद्यः तासां तीराणि तेषु जातानि तानि, वन में नदियों के किनारे उत्पन्न हुए।

(iv) **यूथिकाजालकानि**– यूथिकानां जालकानि, तानि, जूही की कलियों के, उद्यानों में जूही के पुष्पों की उपस्थिति बतायी गयी है।

(v) **छायादानात्**– छायायाः दानं, तस्मात्, छाया देने से ।

(vi) **परिचितः**– परि+ √चि चयने+ क्त ।

(vii) **पुष्पलावीमुखानाम्**– पुष्पाणि लुनन्ति, इति पुष्पलाव्याः, तासाम् मुखानि तेषाम्, पुष्प+√लू+अण्+ङीप्, पुष्पलावी, मालिन।

संजीवनी टीका– विश्रान्त इति। विश्रान्तः संस्तत्र नीचगिरौ विनीताध्वश्रमः सन्। अथ विश्रान्तेरनन्तरम्। वनेऽरण्ये या नद्यस्तासां तीरेषु जातानि स्वयंरूढ़ानि, अकृत्रिमाणीत्यर्थः 'नदनदी–' इति पाठे 'पुमांस्त्रिया' इत्येकशेषो दुर्वारः। तेषामुद्यानानामारामाणां संबन्धीनि यूथिका जालकानि मागधीकुसुममुकुलानि। 'अथ मागधी। गणिका यूथिका' इत्यमरः। 'कोरकजालकलिकाकुड्मलमुकुलानि तुल्यानि' इति हलायुधः। नवजलकणैः सिंचन्नार्द्रीकुर्वन्। अत्र सिंजतेरार्द्रीकरणत्वाद् द्रवद्रव्यस्य करणत्वम्। यत्र तु क्षरणमर्थस्तत्र द्रवद्रव्यस्य कर्मत्वम्। यथा 'रेतः सिक्त्वा कुमारीषु' । 'सुखैनिषिंचन्तमिवामृतं त्वचि' इत्येवमादि। एवं किरतीस्यादीनामपि रजः किरति मारुतः।'

'अवाकिरन्वयोवृद्धास्तं लाजैः पौरयोषितः' इत्यादिष्वर्थभेदाश्र–यणेन रजोलाजादीनां कर्मत्वकरणत्वे गमयितव्ये। तथा गण्डयोः कपोलयोः स्वेदस्यापनयने या रुजा पीड़ा। भिदादित्वादङ्प्रत्ययः। तया क्लान्तानि कर्णोत्पलानि येषां तेषां तथोक्तानाम्। पुष्पाणि लुनन्तीति पुष्पलाव्यः पुष्पावचायिकाः स्त्रियः। 'कर्मण्यण्'। 'टिड्ढाणञ्–' इत्यादिनी ङीप्। तासां मुखानि। छायाया अनातपस्य दानात्। कान्तिदानं च ध्वन्यते। 'छाया सूर्य्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः' इत्यमरः। कामुक–दर्शनात् कामिनीनां मुखविकासो भवतीति भावः। क्षणपरिचितः क्षणं संसृष्टः सन्। न तु चिरम्। गच्छ।।।27।।

अवतरणिका– इसके बाद महाकवि, मेघ के लिए मार्ग के टेढ़ा होने पर भी उज्जयिनी की ओर प्रस्थान करने की प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि–

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्संगप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः।
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौरांगनानां

लोलापांगैर्यदि न रमसे लोचनैर्वंचितोऽसि।।28।।

अन्वय– उत्तराशाम् प्रस्थितस्य भवतः पन्थाः यत् अपि वक्रः (भविष्यति), उज्जयिन्याः सौधोत्संग–प्रणय–विमुखः मा स्म भूः, तत्र पौरांगनानाम् विद्युत्–दाम–स्फुरित–चकितैः लोल–अपांगैः लोचनैः यदि न रमसे, वंचितः असि।।28।।

अनुवाद– यहाँ से उत्तर दिशा की ओर जाते हुए यद्यपि तुम्हारा मार्ग थोड़ा टेढ़ा होगा, किन्तु फिर भी तुम उज्जयिनी के प्रासादों के ऊर्ध्व भागों के परिचय से विमुख मत होना, क्योंकि नगर की अंगनाओं की बिजली की रेखा के चमकने से चकित चंचल कटाक्षों वाले नेत्रों का यदि तुमने आनन्द नहीं लिया तो निश्चय ही तुम ठगे गए।

'चन्द्रिका'– उस नीच पर्वत से उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करते हुए, यद्यपि तुम्हारा मार्ग थोड़ा सा टेढ़ा अवश्य होगा, किन्तु फिर भी तुम्हें यहाँ से उत्तर दिशा में स्थित उज्जयिनी नगरी में अवश्य जाना चाहिए और वहाँ जाकर ऊँचे–ऊँचे प्रासादों के ऊर्ध्व भागों का अवलोकन भी करना चाहिए, क्योंकि यदि तुम वहाँ पर नहीं गए तो निश्यय ही बिजली की रेखा के चमकने से भयभीत नेत्रों वाली कामिनियों के चंचल कटाक्षों के आनन्द से तुम वंचित रह जाओगे, जो तुम्हारे जैसे रसिक के लिए अत्यधिक दुःख एवं कष्ट का विषय होगा।

विशेष–(i) रसिक एवं कामुक व्यक्ति को सुन्दरियों के कटाक्षों से असीम आनन्द की प्राप्ति होती है, कामशास्त्रीय इस कटु सत्य की ओर संकेत किया गया है, कवि का व्यक्तित्व भी अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) चूने से पोते गए राजभवन की 'सौध' संज्ञा होती है, प्राचीन समय में महलों को न केवल चूने से ही पोता जाता था, अपितु उससे बनाया भी जाता था।

(iii) उज्जयिनी नगरी वस्तुतः विन्ध्याचल से निकलकर उत्तर की ओर प्रवाहित होने वाली निर्विन्ध्या नदी के पूर्व में कुछ ही दूर पर

विद्यमान है, जबकि अलकापुरी निर्विन्ध्या के पश्चिम में है, इसप्रकार यदि मेघ उज्जयिनी से होकर अलकानगरी में जाता है, तो उसका मार्ग थोड़ा टेढ़ा अवश्य होगा, जिसकी ओर यहाँ संकेत किया गया है।

(iv) किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उज्जयिनी निवासी होने के कारण काव्यकार कालिदास का इस नगरी से विशेष लगाव रहा है, इसीलिए इसके बाद लगभग बारह श्लोकों में इसी उज्जयिनी की विशेषताओं का कथन किया है।

(v) मेघ जैसे रसिक एवं कामुक नायक के लिए ललनाओं के लुभावने कटाक्षों में रमण करना ही जीवन का वास्तविक आनन्द है, उसके अभाव में उनका जीवन निरर्थक है, कवि का यही मन्तव्य है।

(vi)उज्जयिनी, शिप्रा नदी के तट पर बसी हुई वस्तुतः प्राचीन नगरी है, जो अवन्ती देश की राजधानी भी थी, यहाँ पर महाकाल का मन्दिर आज भी स्थित है। विक्रमादित्य यहीं के राजा थे, इसी को विशाला एवं अवन्ती भी कहा जाता था। वर्तमान समय में यह मध्य प्रदेश में स्थित उज्जैन है।

(vii) 'अवन्ती' की गणना सात मोक्षदायिनी नगरियों में की जाती रही है।[1]

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **सौधोत्संगप्रणयविमुखः**— सुधया निर्मिताः इति सौधाः, सौधानाम् उत्संगाः, तेषु प्रणयः, तस्मात् विमुखः, इति। महलों की गोद (ऊर्ध्वभाग) के प्रेम से पराङ्मुख।

(ii) **उत्तराशाम्**— उत्तरा आशा ताम्, कर्मधारय समास।

(iii) **प्रस्थितस्य**— प्र+ √स्था+क्त, प्रस्थान किए हुए का।

(iv) **उज्जयिन्याः**— उत्कृष्टो जयः, इति, उज्जयः, उज्जयः अस्ति यस्यां सा, तस्याः, उज्जयः+ इनि+ङीप्, उज्जयिनी।

(v) **लोलापांगैः**— लोलाः अपांगाः यासां तानि, तैः, बहुव्रीहि।

---

[1]. अयोध्या मथुरा मायाकाशी कांची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः।।

(vi) **पौरांगनानां–** पुरि भवाः इति, पौराः, पौराणाम् अंगनाः तासाम्, **अंगना–** अंग+नङ्+टाप्, नगर की सुन्दरियों का ।

(vii) **असि–** √अस्+लट्, मध्यम पुरुष, एकवचन, हो।

संजीवनी टीका– वक्र इति। उत्तराशामुदीचीं दिशं प्रति प्रस्थितस्य भवतः पन्था उज्जयिनीमार्गो वक्रो यदपि। दूरो यद्यपीत्यर्थः। विन्ध्यादुत्तवाहिन्या निर्विन्ध्याः प्राग्भागे कियत्यपि दूरे स्थितोज्जयिनी। उत्तरापथस्तु निर्विन्ध्यायाः पश्चिम इति वक्रत्वम्। तथाप्युज्जयिन्या विशालानगरस्य। 'विशालोज्जयिनी समा' इत्युत्पलः। सौधनामुत्संगेषू– परिभागेषु प्रणयः परिचयः। 'प्रणयः स्यात् परिचये याच्ञायां सौहृदेऽपि च' इति यादवः। तस्य विमुखः पराङ्मुखो मास्म भूः। न भवेत्यर्थः स्मिनोन्तरे लङ् च' चकारादाशीरर्थे लुङ्। 'न माङ्योगे' इत्यडागमप्रतिषेधः। तत्रो–ज्जयिन्यां विद्युद्दाम्नो स्फुरितेभ्यः स्फुरणेभ्यश्चकितैर्लोलापांगैश्चंचल–कटाक्षैः। पौराङ्गनानां लोचनैर्न रमसे यदि तर्हि त्वं वंचितः प्रतारितो–ऽसि। जन्मवैफल्यं भवेदित्यर्थः।।28।।

अवतरणिका– इसके बाद यक्ष अपने मित्र मेघ से निर्विन्ध्या नदी पर जाने का परामर्श देते हुए कहता है कि–

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकांचीगुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः।
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य,
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु।।29।।

अन्वय– वीचि–क्षोभ–स्तनित–विहग–श्रेणि–कांची–गुणायाः स्खलित–सुभगम् संसर्पन्त्याः दर्शित–आवर्तनाभेः निर्विन्ध्यायाः पथि सन्निपत्य रसाभ्यन्तरः भव, हि स्त्रीणाम् प्रियेषु विभ्रमः आद्यम् प्रणय–वचनम् (भवति)।।29।।

अनुवाद– जल की तरंगों के चलने से शब्द करते हुए पक्षियों की पंक्तिरूपी करधनियों को धारण करने वाली, फिसलने के कारण सुन्दर रूप में इठलाती हुई आकर्षक रूप में बहने वाली, भँवररूपी

नाभि का प्रदर्शन करती हुई, निर्विन्ध्या नदी के मार्ग में पहुँचकर तुम, जल से परिपूर्ण मध्यभाग वाले हो जाना, क्योंकि अपने प्रेमियों के प्रति स्त्रियों की श्रृंगार चेष्टाएँ ही प्रथम प्रणय–वाक्य होती हैं।

'चन्द्रिका'– जिसप्रकार श्रृंगाररस से सराबोर नायिका कटि भाग में करधनी की झंकार के साथ मदमस्त चाल से चलती हुई, बार बार अपनी नाभि का प्रदर्शन करके, अपने प्रेमी को रमण का आमन्त्रण देती है, ठीक उसीप्रकार निर्विन्ध्या नदी तरंगों के चलने से शब्द करते हुए पक्षियों की पंक्ति के माध्यम से, पत्थरों पर चलने से लड़खडाने के कारण मदमस्त चाल से, बार–बार भँवररूपी अपनी नाभि का प्रदर्शन करती हुई मेघरूपी प्रेमी को रमण करने के लिए आमन्त्रित करेगी। इसलिए निर्विन्ध्या नदी के मार्ग में पहुँचकर तुम जल से पूर्ण मध्य भाग वाले हो जाना अर्थात् उसके साथ रमण करके तृप्त हो जाना, क्योंकि सभी स्त्रियाँ वस्तुतः प्रेमियों को अपनी श्रृंगार चेष्टाओं से ही सम्भोग के लिए आमन्त्रित करती हैं। वस्तुतः वही उनका प्रणयवचन होता है।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक वस्तुतः ध्वनिकाव्य होने के साथ–साथ संभोग श्रृंगार का भी उत्कृष्ट उदाहरण कहा जा सकता है, क्योंकि यहाँ पर नदी के माध्यम से विभ्रम–विलासपूर्ण चेष्टा करने वाली सम्भोग के लिए आमन्त्रण देने वाली सुन्दरी का चित्रण किया गया है, जो महाकवि के व्यक्तित्व को भी अभिव्यक्ति प्रदान करने वाला है।

(ii) महाकवि कालिदास का कामशास्त्रीय ज्ञान तथा गहन स्त्री मनोविज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(iii) किसी भी सुन्दरी के कटिभाग में बँधी छन–छन करती हुई करधनी वस्तुतः कामियों के लिए कामभावना की उत्प्रेरक होती है।

(iv) यहाँ पर नदी में नायिका का, वहाँ पर स्थित कलरव करते हुए पक्षियों की पंक्ति में करधनी का तथा नदी की भँवर में नाभि का आरोप किए जाने से **सांगरूपक अलंकार** का सौन्दर्य विद्यमान है।

(v) यहाँ प्रयुक्त 'रस' पद के श्रृंगार तथा जल दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार की छटा दर्शनीय है।

(vi) इसीप्रकार चतुर्थ चरण में प्रयुक्त सामान्य कथन से पूर्व भाग में प्रयुक्त विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार भी दर्शनीय कहा जा सकता है।

(vii) साथ ही, उक्त तीनों अलंकारों का अंगांगिभाव होने से संकर अलंकार भी है। इन सभी की स्वाभाविक स्थिति भी उल्लेखनीय है, जो महाकवि की शैली की महती विशेषता रही है।

(viii) पत्थरों के कारण उबड़–खाबड़ मार्ग पर लड़खड़ा कर चलने की मदमस्त नदीरूपी नायिका की कल्पना भी यहाँ अत्यन्त मनभावन बन पड़ी है, जिसे कवि ने 'स्खलितसुभगम्' पद से अभिव्यक्त किया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **सन्निपत्य**– सम्+नि+ √पत्+ल्यप्

(ii) **प्रणयवचनम्**– प्रणयस्य वचनम्, प्रणय–प्र+ √नी+अच्।

(iii) **आद्यम्**– आदौ भवम्, इति, आदि+यत्, प्रारम्भिक।

(iv) **प्रियेषु**– प्रीणयन्तीति, प्रिया तेषु, प्रियाओं में। √प्री+कः।

(v) **रसाभ्यन्तरः**– रसः जलम् अभ्यन्तरे यस्याः सा, बहुव्रीहि।

(vi) **नायिका** पक्ष में, रसेन श्रृंगारेण अभ्यन्तरः, तृतीया तत्पुरुष,

(vii) **दर्शितावर्तनाभिः**– दर्शितः आवर्तः एव नाभिः यया सा, तस्याः, बहुव्रीहि, दिखायी है भँवररूपी नाभि जिसने।

(viii) **निर्विन्ध्यायाः**– विन्ध्यात् निष्क्रान्ता, तस्याः निर्विन्ध्या के।

(ix) **संसर्पन्त्याः**– सम्+ √सृप्+शतृ+ङीप्, षष्ठी वि., एकवचन।

(x) **स्खलितसुभगम्**– स्खलितेन सुभगं यथा स्यात् तथा ।

संजीवनी टीका– वीचीति। हे सखे! पथ्युज्जयिनीपथे वीचि–क्षोभेण तरंगचलनेन स्तनितानां मुखराणाम्। कर्तरि क्तः। विहगानां श्रेणिः पंक्तिरेव कांचीगुणे यस्यास्तस्याः स्खलितेनोपस्खलनेन मदस्खलितेन च सुभगं यथा तथा संसर्पन्त्याः प्रवहन्त्याः गच्छन्त्याश्च। तथा दर्शितः

प्रकटित आवर्तोऽम्भसां भ्रम एव नाभिर्यया। 'स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः' इत्यमरः। निष्क्रान्ता विन्ध्यान्निर्विन्ध्या नाम नदी। 'निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पंचम्या' इति समासः। 'द्विगुप्राप्तापन्नालयम्' इत्यादिना परवल्लिंगता–प्रतिषेधः। तस्याः नद्याः सन्निपत्य संगत्य रसो जलमभ्यन्तरे यस्य सः। अन्यत्र रसेन श्रृंगारेणाभ्यन्तरोऽन्तरंगो भवः। सर्वथा तस्या रमनुभवेत्यर्थः। 'श्रृंगारादौ छले वीर्ये सुवर्णे विषशुक्रयोः। तिक्तदावमृते चैव निर्यासे पारदे ध्वनौ। आस्वादे च रसं प्राहुः' इति शब्दार्णवे।

ननु तत्प्रार्थनामन्तरेण कथं तत्रानुभवो युज्येतेत्यत आह–स्त्रीणामिति। स्त्रीणां प्रियेषु विषये विभ्रमो विलास एवाद्यं प्रणयवचनं प्रार्थनावाक्यं हि। स्त्रीणामेष स्वभावो यद्विलासैरेव रागप्रकाशनं न तु कण्ठत इति भावः। विभ्रमश्चात्र नाभिसंदर्शनादिरुक्त एव।।29।।

अवतरणिका– इसी प्रसंग में यक्ष का मेघ के प्रति कथन है कि वृष्टि करके तुम्हें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि निर्विन्ध्या नदी तुम्हारे वियोग के कारण होने वाली अपनी दुर्बलता का परित्याग कर दे–

वेणीभूतप्रतनुसलिलासावतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः।
सौभाग्यं ते सुभग! विरहावस्थया व्यंजयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः।।30।।

अन्वय– सुभग! वेणी–भूत–प्रतनु–सलिला तट–रुह–तरु–भ्रंशिभिः जीर्ण–पर्णैः पाण्डु–छाया विरह–अवस्थया अतीतस्य ते सौभा–ग्यम् व्यंजयन्ती असौ सिन्धुः येन विधिना कार्श्यम् त्यजति, सः त्वया एव उपपाद्यः।।30।।

अनुवाद– हे सौभाग्यशाली मेघ! स्त्रियों की चोटी के समान क्षीण धारा वाली, तट पर उगे हुए वृक्षों के गिरने वाले सूखे पत्तों से पीली कान्ति से युक्त, वियोग की अवस्था द्वारा प्रवास में गए हुए तुम्हारे सौभाग्य को अभिव्यक्त करती हुई, वह नदी जिस उपाय से दुर्बलता का परित्याग करे, वह तुम्हारे द्वारा किया जाना चाहिए।

'चन्द्रिका'– हे सौभाग्यशाली मेघ! तुम आठ माह पर्यन्त प्रवास पर चले जाते हो, इसलिए तुम्हारी प्रिया निर्विन्ध्या प्रसाधन न करने के कारण केवल एक चोटी को ही धारण कर रही होगी। तुम्हारे वियोग में उसका शरीर पीला पड़ गया होगा। इसलिए जब तुम उससे मिलने के लिए जाओगे तो तुम्हें कुछ ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे उसकी दुर्बलता दूर हो जाए अर्थात् उसके ऊपर तुम अत्यधिक वर्षारूपी दीर्घकालीन सम्भोग करना।

विशेष–(i) यहाँ प्रयुक्त 'सुभग' पद द्वारा मेघ का सौभाग्य सूचित किया गया है, क्योंकि यदि प्रियतमा अपने प्रिय के वियोग में दुर्बल होती है, तो यह पुरुष के लिए उसके पतिव्रता होने के कारण सौभाग्य का विषय ही कहा जाएगा।

(ii) नदी के ऊपर विरहिणी नायिका का आरोप करने के कारण समासोक्ति अलंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(iii) नदी को यहाँ एकवेणी धरा उसकी क्षीण जलधारा के कारण कहा गया है, कवि की मनोहारिणी कल्पना द्रष्टव्य है।

(iv) प्राचीन समय में पति के वियोग में स्त्रियाँ केवल एक चोटी ही बनाती थी या फिर अपने बालों का शृंगार ही नहीं करती थीं, उसी ओर संकेत किया गया है।

(v) रतिरहस्य में काम की दस[1] अवस्थाओं का वर्णन किया गया है, उनमें यहाँ पर 'कृशता' नाम पंचम दशा का उल्लेख हुआ है।

(vi) उल्लेखनीय है कि ग्रीष्म ऋतु में नदियों का जल सूख जाता है, उनकी जलधारा सिमट कर पतली हो जाती है तथा तट पर उगे हुए वृक्षों के गिरने से उनके सूखे पत्तों से वह पीली कान्ति वाली हो जाती है, इस सबमें कवि ने वियोग में दुर्बल नायिका की

---

[1]. नयनप्रीतिः प्रथमं चित्राऽऽसंगस्ततोऽथ संकल्पः।
निद्राच्छेदस्तनुता विषयनिवृत्तिस्त्रपानाशः।।
उन्मादो मूर्च्छा मृतिरित्येताः स्मरदशाः दशैव स्युः।

मनोहारिणी परिकल्पना की है, महाकवि की कल्पना की उर्वरा शक्ति भी अभिव्यक्त हुई है।

(vii) यहाँ प्रयुक्त 'सिन्धु' पद से कुछ विद्वानों द्वारा मान्य कश्मीर में प्रवाहित होने वाली सिन्धु नदी से अभिप्राय ग्रहण न करके, मालवा में बहने वाली छोटी पहाड़ी नदी **काली सिन्धु** से लेना चाहिए, जो चम्बल की सहायक नदी के रूप में जिला धार तथा तहसील बागली में बरझोरी गाँव के पास विन्ध्य पर्वत से निकलती है।

(viii) किन्तु मल्लिनाथ ने इसका अर्थ निर्विन्ध्या नदी ही किया है। इसलिए हमने भी यहाँ उन्हीं का अनुकरण करते हुए यही अभिप्राय ग्रहण करके अर्थ प्रस्तुत किया है।

(ix) यहाँ निर्विन्ध्यारूपी नायिका पर पर्याप्तरूप से वृष्टि करके अर्थात् उसके साथ तृप्तिपर्यन्त सम्भोग करके, उसकी कृशता को दूर करने से अभिप्राय ग्रहण करना चाहिए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) जीर्णपर्णैः– जीर्णानि पर्णानि तैः।

(ii) **सुभग**– शोभनं भगं भाग्यं यस्य सः, तत्सम्बुद्धौ, बहुव्रीहि।

(iii) **पाण्डुच्छाया**– पाण्डुः छाया यस्याः सा, बहुव्रीहि।

(iv) **विरहावस्थया**– विरहस्य अवस्था, षष्ठी तत्पुरुष समास।

(v) **तटरुहतरुभ्रंशिभिः**– रुहन्ति इति, रुहाः, तटयोः रुहाः ते च तरवः, तेभ्यः भ्रश्यन्ति इति तैः, तट पर उत्पन्न वृक्षों से गिरने वाले।

(vi) **वेणीभूतप्रतनुसलिला**– अवेणी वेणीभूतम्, वेणीभूतम् प्रतनु सलिलं यस्याः सा, बहुव्रीहि, वेणीभूत–वेणी+च्वि+ √भू+क्त ।

(vii) **व्यंजयन्ती**– वि+ √अंज्+णिच्+शतृ+ङीप् ।

(viii) **त्यजति**– √त्यज्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ix) **उपपाद्यः**– उप+ √पद्+णिच्+ण्यत्, करना चाहिए।

(x) **कार्श्यम्**– कृश+ष्यञ्, कृशता को। विधिना–वि+ √धा+किः,

संजीवनी टीका– वेणीति। अवेणी वेणीभूतं वेण्याकारं प्रतनु स्तोकं च सलिलं यस्याः सा तथोक्ता। अन्यत्र वेणीभूतकेशपाशेति च

ध्वन्यते। रुहन्तीति रुहाः। इगुपधलक्षणः कप्रत्ययः। तटयो रुहा ये तरवस्तेभ्यो भ्रश्यन्तीति तथोक्तैः जीर्णपर्णैः शुष्कपत्रैः पाण्डुच्छाया पाण्डुवर्णा। अतएव हे सुगभ! विरहावस्थया पूर्वोक्तप्रकारया करणेन। अतीतस्यैतावन्तं कालमतीत्य गतस्य प्रोषितस्येत्यर्थः। ते तव सौभाग्यं सुभगत्वम्। 'हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च' इत्युभयपदवृद्धिः। व्यंजयन्ती प्रकाशयन्ती। स खलु सुभगो यमंगनाः कामयन्त इति भावः। असौ पूर्वोक्ता सिन्धुर्नदी निर्विन्ध्या। 'स्त्री नद्यां ना नदे सिन्धुर्देशभेदेऽम्बुधौ गजे' इति वैजयन्ती।

येन विधिना व्यापारेण कार्श्यं त्यजति स विधिस्त्वयैवोपपाद्यः। कर्तव्य इत्यर्थः। स च विधिरेकत्र वृष्टिरन्यत्र सम्भोगंस्तदभावनिबन्धन–त्वात् कार्श्यस्येति भावः। इयं पंचमी मदनावस्था। तदुक्तं रतिरहस्ये– 'नयनप्रीतिः प्रथमं चित्तासंगस्ततोऽथ संकल्पः। निद्राच्छेदस्तनुता विषय–निवृत्तिस्त्रपानाशः। उन्मादो मूर्च्छा मृतिरित्येताः स्मरदशा दशैव स्युः' इति।'तामतीतस्य' इति पाठमाश्रित्य सिन्धुर्नाम नद्यन्तरमिति व्याख्यातम्। किन्तु सिन्धुर्नाम कश्चिन्नदः काश्मीरदेशेऽस्ति। नदी तु कुत्रापि नास्तीत्युपेक्ष्यमित्याचक्षते।।30।।

अवतरणिका– इसप्रकार निर्विन्ध्या नदी रूपी वियोगिनी उसकी प्रिया की कृशता का उपक्रम कराने के बाद यक्ष, अपने मित्र मेघ से उज्जयिनी नगरी की प्रशंसा करते हुए कहता है कि–

प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्
पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम्।
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम्।।31।।

अन्वय– उदयन–कथा–कोविद–ग्राम–वृद्धान्, अवन्तीन् प्राप्य, पूर्व–उद्दिष्टाम्, श्री–विशालाम् विशालाम् पुरीम् अनुसर, सुचरित–फले स्वल्पी–भूते गाम् गतानाम् स्वर्गिणाम् शेषैः पुण्यैः हृतम् कान्तिमत् दिवः एकम् खण्डम् इव।।31।।

अनुवाद— उदयन की कथाओं को जानने वाले गाँव के वृद्ध पुरुषों से सुशोभित, अवन्ति प्रदेश को प्राप्त करके, तुम पूर्व में कही गयी, धन–धान्य से सम्पन्न, उज्जयिनी नामक नगरी में अवश्य जाना, जो मानो पुण्यकर्मों के फलों के क्षीण होने पर, पृथ्वी पर आए हुए देवों के बचे पुण्यों द्वारा लाए गए कान्तियुक्त स्वर्ग के टुकड़े के समान है।

'चन्द्रिका'— मार्ग के थोड़ा टेढ़ा होते हुए भी मैंने जिस उज्जयिनी नगरी में जाने की बात तुमसे कही थी, उसी विषय में ध्यातव्य है कि वहाँ पर गाँव के बूढ़े लोग उदयन की अत्यन्त सरस कथाओं को जानने वाले हैं, ऐसे उन वृद्ध पुरुषों से सुशोभित उस अवन्ति प्रदेश में जाकर, तुम उज्जयिनी नगरी को देखोगे, जो धन–धान्य एवं अद्भुत ऐश्वर्य से परिपूर्ण है।

यह उज्जयिनी कोई सामान्य नगरी नहीं है, अपितु इसका सौन्दर्य देखते ही बनता है। उसकी अप्रतिम शोभा को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो यह नगरी, पुण्यकर्मों के फलों के क्षीण होने पर, जिन देवों का फिर से पृथ्वी पर आगमन होता है, उन्हीं के शेष पुण्यों द्वारा लाए गए स्वर्ग के ही देदीप्यमान एक टुकड़े के समान हो।

विशेष—(i) भारतीय मान्यता के अनुसार व्यक्ति को पुण्यकर्म करने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है, किन्तु स्वर्ग में उनके फलों को भोगने के बाद, उन्हें फिर से इसी पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करना पड़ता है[1], महाकवि ने यहाँ उसी मान्यता की ओर संकेत किया है।

(ii) प्राचीनकाल में उदयन की कथा अत्यन्त लोकप्रिय रही है, गाँवों के वृद्ध लोग इन कथाओं को कहकर आगन्तुकों का मनोरंजन करते रहे हैं, जिसका आगे उल्लेख भी किया गया है।

(iii) यह उदयन कथा पैशाची भाषा में लिखी गयी गुणाढ्य की बृहत्कथा में मिलती है, जो सम्प्रति मूलरूप में अनुपलब्ध है। इसका

---

1. तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति। गीता–9/21।

संस्कृत अनुवाद सोमदेव ने अपने कथासरित्सागर तथा क्षेमेन्द्र ने बृहत्कथामंजरी में किया है।

(iv) महाकवि भास ने भी अपने स्वप्नवासवदत्तम् एवं यौगन्ध-रायणम् नामक नाटकों में कथावस्तु के रूप में उदयन की इसी कथा को ग्रहण किया है।

(v) कुछ विद्वानों ने 'विशालाम्' को उज्जयिनी का विशेषण न मानकर उसी का अन्य नाम भी माना है।

(vi) कुछ टीकाकारों ने यहाँ प्रयुक्त 'अनुसर' के स्थान पर 'अपसर' पाठ को भी स्वीकार किया है।

(vii) अभूतपूर्व समृद्धि तथा भूरपूर सुखों से युक्त होने के कारण उज्जयिनी नगरी को यहाँ स्वर्ग के एक टुकड़े के समान कहा गया है, जिसे मानो देवता लोग ही अपने पुण्यों को भोगने के बाद कुछ शेष पुण्यों के बदले स्वर्ग से यहाँ लेकर आए हैं।

(viii) यहाँ प्रयुक्त 'श्रीविशालां विशालां' में यमक अलंकार[1] का सौन्दर्य विद्यमान है, इसमें प्रथम पद का अर्थ 'सम्पत्ति' से युक्त है तथा द्वितीय उज्जयिनी नगरी का ही अन्य नाम है।

(ix) इसीप्रकार 'दिवः खण्डमिव' अंश में उत्प्रेक्षालंकार का मनभावन प्रयोग हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **प्राप्य**– प्र+ √आप्+क्त्वा(ल्यप्)।

(ii) **उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्**– उदयनस्य कथा तासां कोविदाः, तादृशाः ग्रामवृद्धाः येषु तान्, **विदाः**-- विदन्ति, इति विदाः।

(iii) **पूर्वोद्दिष्टाम्**– पूर्वम् उद्दिष्टा ताम्, केवल समास।

(iv) **अनुसर**– अनु+ √सृ+लोट्, मध्यम पुरुष, एकवचन।

(v) **श्रीविशालाम्**– श्रिया विशाला ताम्, तृतीया तत्पुरुष।

(vi) **विशालाम्**– विविधाः शालाः भवनानि यस्यां सा, बहुव्रीहि।

(vii) **सुचरितफले**– शोभनं चरितम्, इति गति समास।

---

[1]. अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः, यमकम्। काव्यप्रकाश– 9/117 ।

(viii) **स्वल्पीभूते**— अस्वल्पं स्वल्पं यथा सम्पद्यते तथा भूतं स्वल्पीभूतं, तस्मिन्, स्वल्प+च्वि+ √भू+क्त, सप्तमी विभक्ति, एक वचन।

(ix) **स्वर्गिणाम्**— स्वर्गोऽस्ति येषां ते स्वर्गिणः, तेषाम्।

(x) **गतानाम्**— √गम्+क्त, ष.ब.व। **शेषैः**— शिष+घञ्, तृ.ब.व।

(xi) **कान्तिमत्**— कान्ति+मतुप्। **हृतम्**— √हृ+क्त कर्मणि।

संजीवनी टीका— प्राप्येति। विदन्तीति विदाः। इगुपधलक्षणः कः। ओकसो वेद्यस्थानस्य विदाः कोविदाः। ओकारलुप्ते पृषोदरादित्वात् साधुः। उदयनस्य वत्सराजस्य कथानां वासवदत्ताहरणाद्यद्भुतोपाख्यानानां कोविदास्तत्त्वज्ञा ग्रामेषु ये वृद्धास्ते सन्ति येषु तानवन्तीस्तन्नामजनपदान् प्राप्य अत्र पूर्वोद्दिष्टां पूर्वोक्तां 'सौधोत्संगप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्य-निन्याः इत्युक्तां श्रीविशालां सम्पत्तिमतीम्। 'शोभासम्पत्तिपद्मासु लक्ष्मीः श्रीरिव दृश्यते' इति शाश्वतः। विशालां पुरीमुज्जयिनीमनुसर व्रज। कथमिव स्थिताम्। सुचरितफले पुण्यफले स्वर्गोपाभोगलक्षणे स्वल्पीभूते।

अत्यल्पाल्पावशिष्टे सतीत्यर्थः। गां भूमिं गतानाम्। गौरिला कुम्भिनी क्षमा' इत्यमरः। पुनरपि भूलोकगतानामित्यर्थः। स्वर्गिणां स्वर्गवतां जनानां शेषैर्भुक्तशिष्टाः पुण्यः सुकृतैर्हृतमानीतम्। स्वर्गा-नुष्ठितकर्मशेषाणां स्वर्गदानावश्यम्भावादिति भावः। कान्तिरस्यास्तीति कान्तिमदुज्ज्वलम्। सारभूतमित्यर्थः। एकं भुक्तादन्यत्। 'एके मुख्या-न्यकेवलाः' इत्यमरः। दिवः स्वर्गस्य खण्डमिव स्थितामित्युत्प्रेक्षा। एतेना-तिक्रान्तसकलभूलोकनगरसौभाग्यसारत्वमुज्जयिन्या व्यज्यते।।31।।

अवतरणिका— भोगविलास से परिपूर्ण उज्जयिनी में शिप्रा नदी के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए, महाकवि वहाँ प्रवाहित होने वाले रसिक वायु के विषय में उल्लेख करते हैं कि—

दीर्घीकुर्वन् पटुमदकलं कूजितं सारसानाम्
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमंगानुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः।।32।।

अन्वय– यत्र प्रत्यूषेषु पटु–मद–कलम् सारसानाम् कूजितम् दीर्घी–कुर्वन्, स्फुटित–कमल–आमोद–मैत्री–कषायः अंग–अनुकूलः शिप्रा–वातः, प्रार्थना–चाटुकारः प्रियतमः इव, स्त्रीणाम् सुरत–ग्लानिम् हरति ।।32।।

अनुवाद– जहाँ पर प्रातःकाल में मद से मनोहर सारसों के स्पष्ट कलरव को अपेक्षाकृत अधिक बढ़ाता हुआ, विकसित कमलों की सुगन्ध के सान्निध्य से सुगन्धित, अंगों को सुख प्रदान करने वाला, शिप्रा नदी का वायु रतियाचना में चाटुकारितापूर्ण वचन बोलने वाले, प्रियतम के समान, स्त्रियों की सुरत विषयक थकान को दूर करता है।

'चन्द्रिका'– इस उज्जयिनी की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यहाँ पर प्रातः के समय मद के कारण मनोरम दिखायी देने वाले सारसों के कलरव को स्पष्टरूप से अत्यधिक बढ़ाता हुआ तथा शिप्रा नदी में खिले हुए कमलों की सुगन्ध के सम्पर्क के कारण अत्यन्त सुगन्धित, अंगों को सुख देने वाला शिप्रा नदी का शीतल वायु भी, रति की याचना में मधुर वचन बोलने वाले प्रेमी के समान, वहाँ की स्त्रियों की सम्भोग विषयक थकान को दूर करता है।

विशेष–(i) वस्तुतः उज्जयिनी भोगविलास से परिपूर्ण नगरी है, जहाँ पर वायु भी रसिक होने से प्रेमी के समान ही आचरण करते हुए स्त्रियों की सम्भोग विषयक थकान को चतुर प्रेमी के समान सारसों के माध्यम से मधुर वचन बोलकर दूर करता है। महाकवि की यह परिकल्पना सहृदय मनः आह्लादिनी एवं दर्शनीय है।

(ii) प्रातःकाल में सारस शीतल हवा के सम्पर्क के कारण अधिक कूजते हैं, जिसे वायु दूर–दूर तक फैला देता है। इससे महाकवि का प्राणिविज्ञान विषयक गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(iii) उज्जयिनी नगरी वस्तुतः शिप्रा नदी के ही पवित्र तट पर बसी हुई है। इसलिए यहाँ इसी शिप्रा के वायु का उल्लेख हुआ है।

(iv) प्रियतमा के साथ रमण के बाद जिसप्रकार प्रेमी उससे पुनः रमण के लिए अनेक प्रकार की मीठी–मीठी बातें करके, उसकी थकान दूर करके, उसे प्रसन्न करता है, ठीक वैसे ही यहाँ शिप्रा नदी का शीतल वायु भी उज्जयिनी की स्त्रियों में तरोताजगी भरने का निरन्तर प्रयास करता रहता है।

(v) कुछ टीकाकारों ने यहाँ खण्डिता नायिका की कल्पना करते हुए अर्थ किया है, जो समीचीन प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि जब खण्डिता नायिका के साथ रतिक्रिया ही सम्पन्न नहीं हुई तो फिर उसकी थकावट को भला कैसे दूर किया जा सकता है? आचार्य मल्लिनाथ ने भी इसी अर्थ को उचित नहीं माना है।

(vi) यहाँ प्रयुक्त 'अंगानुकूलः' से अभिप्राय 'शरीर में सुख प्रदान करने वाले 'स्पर्श' से ग्रहण करना चाहिए।

(vii) आनन्दवर्धनाचार्य ने यहाँ पर ध्वनि के साथ–साथ वाच्य अलंकारों की संसृष्टि भी बतायी है,[1] क्योंकि यहाँ पर 'मैत्री' पद में अविवक्षितवाच्य ध्वनि तथा दूसरे पदों 'दीर्घीकुर्वन्' में गम्योत्प्रेक्षा, 'प्रत्यूषेषु' में स्वभावोक्ति और 'प्रियतम इव' पदों में उपमालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(viii) इसीप्रकार उपमेय 'शिप्रावात' का उपमान 'प्रियतम' के साथ सम्भावना करने से उत्प्रेक्षालंकार भी विद्यमान है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **मदकलम्**– मदेन कलं, तत्, तृ.त.

(ii) **दीर्घीकुर्वन्**– अदीर्घदीर्घं यथा सम्पद्यते तथा कुर्वन्।

(iii) **स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः**– स्फुटितानि कमलानि इति स्फुटितकमलानि, तेषाम् आमोदः, √स्फुट्+क्त,स्फुटित,मित्रस्य भावः,मैत्री

(iv) **अंगानुकूलः**– अंगानाम् अनुकूलः, षष्ठी तत्पुरुष।

(v) **शिप्रावातः**– शिप्रायाः वातः, षष्ठी तत्पुरुष।

---

[1]. अत्र हि मैत्रीपदमविवक्षितवाच्यो ध्वनिः, पदान्तरेष्वलंकारान्तराणि। ध्वन्यालोक

(vi) **प्रियतमः**– प्राणान्रातीति, प्रिय, प्रिय+तमप्, प्रियतम।

(vii) **सुरतग्लानिम्**– शोभनं रतं इति, तस्य सुरतस्य ग्लानिः तां

(viii) **हरति**– √हृ+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, हरण करता है।

(ix) **प्रार्थनाचाटुकारः**– चाटु करोति, इति चाटु+ √कृ+अण्, चाटुकारः, प्रार्थनायां चाटूकारः, फिर से सम्भोग के लिए प्रिय वचनों का प्रयोग करने वाला। प्रार्थना– प्र+अर्थ+ √युज्+टाप्, निवेदन करना।

संजीवनी टीका– दीर्घीकुर्वन्निति। यत्र विशालायां प्रत्यूषेष्वह–मुखेषु। 'प्रत्युषोऽहर्मुख कल्पम्' इत्यमरः। पटु प्रस्फुटम्। मदकलं मदेना–व्यक्तमधुरम्। 'ध्वनौ तु मधुरास्फुटे। कलः' इत्यमरः। सारसानां पक्षि–विशेषाणाम्। 'सारसो मैथुनी कामी गोनर्दः पुष्कराह्वयः' इति यादवः। यद्वा सारसानां हंसानाम्। 'चक्रांगः सारसो हंसः' इति शब्दार्णवे। कूजितं रुतं दीर्घीकुर्वन्। विस्तारयन्नित्यर्थः। यावद्वातं शब्दावृत्तैरिति भावः। एतेन प्रियतमः स्वचाटुवाक्यानुसारिक्रीड़ापक्षिकूजितमविच्छिन्नीकुर्वन्निति च गम्यते। स्फुटितानां विकसितानां कमलानामामोदेन परिमलेन सह या मैत्री संसर्गस्तेन कषायः सुरभिः। 'रागद्रव्ये कषायोऽस्त्री निर्यासे सौरभे रसे' इति यादवः। अन्यत्र विमर्दगन्धीत्यर्थः। 'विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे। आमोदः सोऽतिनिर्हारी' इत्यमरः।

अंगानुकूलो गात्रसुखस्पर्शः। अन्यत्र गाढालिंगनदत्तगात्रसंवाहन इत्यर्थः। भवभूतिना चोक्तम्– अशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि' इति। संवाह्यन्ते च सुरतश्रान्ताः प्रियैर्युवतयः। एतत् कविरेव वक्ष्यति– 'सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानाम्' इति। शिप्रा नाम काचित्त–त्रत्या नदी तस्या वातः शिप्रावातः। शिप्राग्रहणं शैत्यद्योतनार्थम्। प्रार्थना सुरतस्य याच्ञा तत्र चाटु करोतीति तथोक्तः। पुनः सुरतार्थं प्रियवचन–प्रयोक्तेत्यर्थः। कर्मण्यण् प्रत्ययः। प्रियतमो वल्लभ इव स्त्रीणां सुरत–ग्लानि सम्भोगखेदं हरति नुदति। चाटूक्तिभिर्विस्मृतपूर्वरतिखेदाः स्त्रियः प्रियतमप्रार्थनां सफलयन्तीति भावः। 'प्रार्थनाचाटुकारः' इत्यत्र खण्डिता–नायिकानुवीता' इति व्याख्याने सुरतग्लानिहरणं न सम्भवति। तस्याः पूर्वं

सुरताभावात् पश्चात्तनसुरतग्लानिहरणं तु नेदानीन्तनकोपशमनार्थं चाटु–वचनसाध्वमित्युत्प्रेक्षैवोचिता विवेकिनाम्। 'ज्ञातेऽन्यासंगविकृते खण्डिते–र्ष्याकषायिता' इति दशरूपके।।32।।

अवतरणिका– इसके बाद महाकवि उज्जयिनी नगरी की महिमा एवं वैभव का विशेषरूप से उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

हारांस्तारांस्तरलगुटिकान् कोटिशः शंखशुक्तीः
शष्पश्यामान् मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान्।
दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान् विद्रुमाणां च भंगान्
संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषाः।।33।।

अन्वय– यस्याम् कोटिशः विपणि–रचितान् तारान् तरल–गुटिकान् हारान् शंख–शुक्तीः शष्प–श्यामान् उन्मयूख–प्ररोहान् मरकत–मणीन् विद्रुमाणाम् भंगान् च दृष्ट्वा सलिल–निधयः तोय–मात्रा–अवशेषाः संलक्ष्यन्ते ।।33।।

अनुवाद– जिस उज्जयिनी नगरी में करोड़ों की संख्या में बाजारों में बेचने के लिए सजाए गए, शुद्ध मध्यमणि भाग वाले हारों को, शंख एवं सीपियों को, घास के समान हरे अंकुरों के समान, ऊपर उठती हुई किरणों से दीपित, मरकत मणियों को और मूँगों के टुकड़ों को देखकर, समुद्र भी मानो जलमात्र ही शेष दिखायी देता है।

'चन्द्रिका'– जिस उज्जयिनी में मैंने तुम्हारे लिए जाने की बात कही है, वह वस्तुतः इतनी अधिक समृद्ध एवं वैभवशाली है, कि उसके बाजारों में प्रतिदिन बेचने के लिए शुद्ध मध्यमणि के भागों से युक्त अनेक हार, शंख, सीपी और ताजी घास के समान, हरे अंकुरों के तुल्य ऊपर की ओर उठती हुई किरणों से युक्त, देदीप्यमान मरकत मणियाँ तथा मूँगों के टुकड़े भी करोड़ों की संख्या में लाए जाते हैं, जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो समुद्र तो जलमात्र ही शेष रह गया होगा, क्योंकि उसमें से सभी शंख, सीप, मरकत मणि एवं मूँगे आदि रत्न तो निकाल लिए गए हैं।

विशेष–(i) महाकवि कालिदास का मणि, रत्न विषयक सूक्ष्म एवं गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।[1]

(ii) सामान्यरूप से समुद्र को रत्नों का आकर (रत्नाकर) कहा गया है, किन्तु उसमें से उज्जयिनी के बाजारों में बेचने के लिए सभी प्रकार के बहुमूल्य रत्नों को निकाल लिया गया है, इसलिए उसे यहाँ 'जलमात्र' शेष कहा गया है।

(iii) 'सलिलनिधयः' पद में बहुवचन का प्रयोग सभी सातों समुद्रों का कथन करने के लिए किया गया है। अतिशयोक्ति अलंकार[2] का प्रयोग दर्शनीय है।

(iv) इसीप्रकार उपमान समुद्र की अपेक्षा उपमेय उज्जयिनी की उत्कृष्टता बताने के कारण व्यतिरेक अलंकार[3] का प्रयोग हुआ है।

(v) उज्जयिनी की समृद्धि का मनभावन वर्णन करने से उदात्त अलंकार[4] का प्रयोग भी हुआ है।

(vi) कुछ टीकाकारों ने प्रस्तुत श्लोक को अलका वर्णन के प्रसंग में ग्यारहवें श्लोक के बाद स्वीकार किया है, जो समीचीन प्रतीत नहीं होता, क्योंकि यहाँ पर स्पष्टरूप से उज्जयिनी के बाजारों की समृद्धि का ही वर्णन किया गया है।

(vii) कुछ संस्करणों में प्रस्तुत श्लोक एवं आगे के दो श्लोकों को प्रक्षिप्त कहा गया है, जो संगत प्रतीत नहीं होता है।

---

1. भूमिका में प्रतिपादित 'काव्यकार कालिदास का वैदुष्य' शीर्षक पृष्ठ संख्या–55–58 के अन्तर्गत इसप्रकार के अन्य अनेक बिन्दुओं को भी जोड़ा जा सकता है, क्योंकि वहाँ तो हमने इस विषय में संकेतमात्र किया है।

2. निगीर्याध्यवसानन्तु प्रकृतस्य परेण यत्।
प्रस्तुतस्य यदन्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम्।।
कार्यकारणयोर्यश्च पौर्वापर्यविपर्ययः।
विज्ञेयाऽतिशयोक्तिः सा ।। काव्यप्रकाश– 10/153 ।

3. उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः। काव्यप्रकाश– 10/159 ।

4. उदात्तं वस्तुनः सम्पत्। काव्यप्रकाश– 10/176 ।

(viii) प्राचीन समय में शंख तथा सीपी दोनों को ही विनिमय का साधन मानने के कारण बहुमूल्य माना जाता था। यहाँ उसी की ओर संकेत किया गया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **विपणिरचितान्**— विपणिषु रचिताः तान्, सप्तमी तत्पुरुष, **रचित**— √रच्+क्त, सजाया गया।

(ii) **तरलगुटिकान्**— तरलाः गुटिकाः येषु, तान्, बहुव्रीहि।

(iii) **शंखशुक्तीः**— शंखाश्च शुक्तयश्च, द्वन्द्व समास।

(iv) **शष्पश्यामान्**— शष्पाणि इव श्यामास्तान्, उपमित कर्मधारय

(v) **उन्मयूखप्ररोहान्**— उद्गताः मयूखाः प्ररोहा येषां ते, तान् ।

(vi) **मरकतमणीन्**— मरकतानि च ते मणयः, तान्, कर्मधारय।

(vii) **तोयमात्रावशेषाः**— तोयम् एव तोयमात्रम्, तत् अवशेषो येषां ते बहुव्रीहि समास, जलमात्र बचे हुए, समुद्रों का विशेषण ।

(viii) **सलिलनिधयः**— सलिलानां निधयः, षष्ठी तत्पुरुष ।

(ix) **संलक्ष्यन्ते**— सम्+ √लक्ष्, आत्मने, लट्, प्र.पुरुष, बहुवचन।

संजीवनी टीका— हारानिति। यस्यां विशालायां कोटिशो विपणिषु पण्यवीथिकासु। 'विपणिः पण्यवीथिका' इत्यमरः। रचितान् प्रसारितान्। इदं विशेषणं यथालिंगं सर्वत्र सम्बध्यते। तारांछुद्धान्। 'तारो मुक्तादिसंशुद्धौ तरणे शुद्धमौक्तिके' इति विश्वः। तरलगुटिकान्मध्य-मणीभूतमहारत्नानम्। तरलो हारमध्यगः' इत्यमरः। 'पिण्डे मणौ महारत्ने गुटिकाबद्धपारदे' इति शब्दार्णवे। हारान्मुक्तावलीः। तथा कोटिशः शंखाश्च मुक्तास्फोटांश्च। 'मुक्तास्फोटः स्त्रियां शुक्तिः शंखः स्यात् कम्बुरस्त्रियाम्' इत्यमरः।

शष्पं बालतृणं तद्वच्छ्यामान्। 'शष्पं बालतृणं घासो यवसं तृण-र्जुनम्' इत्यमरः। उन्मयूखप्ररोहानुदगतरम्यांकुरान् मरकतमणीन् गारुड-रत्नानि। तथा विद्रुमाणां भंगान् प्रवालखण्डांश्च दृष्ट्वा सलिलनिधयः समुद्रास्तोयमात्रमवशेषो येषां ते तादृशाः संलक्ष्यन्ते। तथानुमीयन्त इत्यर्थः। रत्नाकरादप्यतिरिच्यत रत्नसम्पद्भिरिति भावः।।33।।

अवतरणिका– वियोगी यक्ष, अपने मित्र मेघ से उज्जयिनी के ऐतिहासिक महत्त्व का उल्लेख करते हुए कहता है कि–

प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽपि जह्रे
हैमं तालद्रुमवनमभूदत्र तस्यैव राज्ञः।
अत्रोद्भ्रान्तः किल नलगिरिः स्तम्भमुत्पाट्य दर्पा–
दित्यागन्तून् रमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः।।34।।[1]

अन्वय– अत्र वत्सराजः प्रद्योतस्य प्रिय–दुहितरम् जह्रे अत्र तस्य एव राज्ञः हैमम् ताल–द्रुम–वनम् अभूत्, अत्र नल–गिरिः दर्पात् स्तम्भम् उत्पाट्य उद्भ्रान्तः किल इति, अभिज्ञः जनः, यत्र आगन्तून् बन्धून् रमयति ।।34।।

अनुवाद– यहाँ पर वत्सदेश के राजा उदयन ने प्रद्योत की प्रिय पुत्री वासवदत्ता का हरण किया था और यहाँ पर ही उस राजा का स्वर्णमय ताड़ वृक्षों वाला वन था एवं इसके विषय में ऐसी मान्यता है कि यहीं पर 'नलगिरि' नामक हाथी मद से स्तम्भ को उखाड़कर घूमता रहता था। इसप्रकार पुरातन कथाओं के जानकार लोग, जहाँ पर बाहर से आए हुए बन्धुओं का मनोरंजन करते हैं।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में महाकवि ने उज्जयिनी की कुल चार विशेषताओं का कथन किया है। **प्रथम**, यही वह उज्जयिनी है, जिसमें वत्सराज उदयन ने महासेन प्रद्योत की पुत्री वाससदत्ता का अपहरण कर लिया था। **द्वितीय**, वह महासेन इतना अधिक समृद्ध था कि उसका स्वर्ण द्वारा निर्मित ताड़ वृक्षों वाला कृत्रिम वन था, **तृतीय**, उस महासेन प्रद्योत का 'नलगिरि' नामक मदमस्त एवं उच्चकोटि का हाथी था, जो अत्यधिक बलशाली होने से, अपने बाँधे जाने वाले स्तम्भ को ही उखाड़कर इधर–उधर घूमता रहता था। **चतुर्थ**, इसप्रकार की इस उज्जयिनी की पुरानी कथाओं के विशेषज्ञ लोग बाहर से आने

---

[1]. कुछ विद्वानों ने प्रस्तुत श्लोक को भी प्रक्षिप्त स्वीकार किया है।

वाले अतिथि–बन्धुओं को, ये सभी कथाएँ सुनाकर उनका मनोरंजन करते थे।

विशेष–(i) यहाँ कवि ने वत्सदेश के राजा उदयन की लोक प्रसिद्ध कथा की ओर संकेत किया है, तदनुसार– उसने प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता का बड़ी योजनाबद्ध तरीके से अपहरण कर लिया था।

(ii) कथासरित्सागर में प्रद्योत को मगध का राजा बताया गया है, जो चण्डमहासेन से भिन्न व्यक्ति था।

(iii) किन्तु प्रायः सभी टीकाकारों ने इसका अर्थ चण्डमहासेन ही अर्थ किया है, जिसके पास हाथियों की विशाल सेना थी, अत्यन्त समृद्धिशाली उसका, एक नलगिरि नाम का शक्तिशाली हाथी भी था।

(iv) कुछ प्रतियों में 'प्रद्योतस्य' के स्थान पर 'चण्डस्य' पाठ भी उपलब्ध होता है। प्रो. एम. आर. काले ने 'चण्डस्य' पाठ मानकर ही अर्थ किया है।

(v) इसीप्रकार प्रद्योत के हाथी का नाम यहाँ 'नलगिरि' कहा गया है, जबकि कथासरित्सागर में यह नाम 'नडागिरि' मिलता है।

(vi) महाकवि की बीती हुई घटना की चित्रात्मक शैली दर्शनीय है, जिसके कारण भाविक अलंकार[1] का अप्रतिम सौन्दर्य देखने योग्य बनता है।

(vii) महाकवि द्वारा तात्कालिक सामाजिक स्थिति का सुन्दर एवं मनमोहक चित्रण किया गया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **जह्रे**– √हृ+लिट्, प्र.पु. ए.वचन।

(ii) **वत्सराजः**– वत्सानां राजा इति, वत्स+राजन्+टच् ।ष.तत्पु.

(iii) **तालद्रुमवनम्**– तालस्य द्रुमाः, षष्ठी तत्पुरुष, तेषां वनम्, षष्ठी तत्पुरुष, ताड़वृक्षों का (स्वर्णिम, कृत्रिम) वन।

(iv) **अभूत्**– √भू+लुङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन, हुआ।

(v) **हैमम्**– हेम्नो विकारः, हेमन्+अण्, स्वर्ण से बनाया गया।

---

[1] . प्रत्यक्षा इव यद्भावाः क्रियन्ते भूतभाविनः। तद्भाविकम्। काव्यप्रकाश– 10/173।

(vi) **उत्पाट्य**– उत्+√पट्+णिच्+क्त्वा (ल्यप्) उखाड़कर।

(vii) **अभिज्ञः**– अभि जानाति, इति, अभि+√ज्ञा+क।

(viii) **आगन्तून्**– आ+√गम्+तुन्, आगन्तु+ द्वि.वि., बहु.व.।

(ix) **रमयति**– √रम्+णिच्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संजीवनी टीका– प्रद्योतस्येति। अत्र प्रदेशे वत्सराजो वत्स–देशाधीश्वरः उदयनः। प्रद्योतस्य नामोज्जयिनीनायकस्य राज्ञः प्रियदुहितरं वासवदत्तां जह्रे जहार। अत्र स्थले तस्यैव राज्ञः प्रद्योतस्य हैमं सौवर्णं तालद्रुमवनमभूत्। अत्र नलगिरिर्नामेन्द्रदत्तस्तदीयो गजो दर्पान् मदात् स्तम्भमालानमुत्पाट्योद्धृत्योद्भ्रान्त उत्पत्य भ्रमणं कृतवान्। इतीत्थं भूताभिः कथाभिरित्यर्थः। अभिज्ञः पूर्वोक्तकथाभिज्ञः कोविदो जन आगन्तून् देशान्तरादागतान्। औणादिकस्तुन् प्रत्ययः। बन्धून्यत्र विशालायां रमयति विनोदयति। अत्र भाविकालंकारः। तदुक्तम्– 'अतीतानागते यत्र प्रत्यक्षत्वेन लक्षिते। अत्यद्भुतार्थकथनाद्भाविकं तदुदाहृतम्।।34।।

अवतरणिका– उज्जयिनी के ऐतिहासिक महत्त्व का उल्लेख करने के बाद, महाकवि उसके वैभव का फिर से कथन करते हैं कि–

पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्र वाहाः
शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात्।
योधाग्रण्यः प्रतिदशमुखं संयुगे तस्थिवांसः
प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणांकैः।।35।।[1]

अन्वय– यत्र वाहाः पत्र–श्यामा दिनकर–हय–स्पर्धिनः, शैल–उदग्राः करिणः, प्रभेदात् त्वम् इव वृष्टिमन्तः, योधा–अग्रण्यः संयुगे प्रति–दश–मुखम् तस्थिवांसः, चन्द्रहास–व्रणांकैः प्रत्यादिष्ट–आभरण–रुचयः।

---

[1]. प्रस्तुत श्लोक को प्रायः अधिकांश विद्वानों ने प्रक्षिप्त माना है।

अनुवाद– **जिस उज्जयिनी में पत्तों के समान हरे घोड़े, सूर्य के घोड़ों से स्पर्धा करने वाले हैं, मद को बहाने के कारण पर्वत के समान ऊँचे हाथी, तुम्हारे समान जल (मद) को बरसाने वाले हैं तथा युद्ध में रावण के सम्मुख लड़कर, 'चन्द्रहास' नामक तलवार के घावों के चिह्नों से युक्त योद्धा लोग, आभूषणों की रुचि का तिरस्कार करने वाले हैं।**

'चन्द्रिका'– जिस उज्जयिनी नगरी में घोड़ों का रंग हरा है, जिसके कारण वे सूर्य के घोड़ों के साथ स्पर्धा रखने वाले हैं, इसीप्रकार यहाँ पर हाथी भी पर्वत के समान विशाल एवं ऊँचे शरीर वाले हैं, जो प्रतिक्षण तुम्हारे समान मद का स्रवण करते रहते हैं अर्थात् जिसप्रकार तुम जल की वृष्टि करते हो, वैसे ही वे मद की वर्षा करते रहते हैं। इतना ही नहीं, उज्जयिनी के योद्धा लोग स्वर्णाभूषणों को इस कारण धारण नहीं करते हैं, क्योंकि उनके शरीरों पर युद्ध में लड़ने के बाद रावण की 'चन्द्रहास' नामक भयानक तलवार के अनेक घावों के चिह्न ही आभूषणों के रूप में विद्यमान है।

विशेष–(i) पुराणों में सूर्य के घोड़ों का रंग हरा माना गया है।

(ii) घोड़ों की सूर्य के घोड़ों से उपमा उनके सुन्दर एवं तेज वेग से दौड़ने के लिए दी गयी है। उपमालंकार का प्रयोग दर्शनीय है।

(iii) 'चन्द्रहास' रावण की तलवार का नाम था, जो वस्तुतः चन्द्रमा के समान अत्यधिक चमक वाली थी अथवा मानो चन्द्रमा की चमक का भी उपहास करती थी।

(iv) कुछ विद्वानों ने प्रस्तुत श्लोक को अलका वर्णन का मानते हुए अर्थ किया है, किन्तु हाथी, घोड़ों के वर्णन प्रसंग में वह संगत प्रतीत नहीं होता है।

(v) रावण की चन्द्रहास तलवार का प्रयोग वस्तुतः यहाँ पर प्रद्योत और महासेन के युद्ध में तलवारों की भीषणता का उल्लेख करने के लिए किया गया है।

(vi) युद्ध में शक्तिशाली शत्रु की भयंकर तलवारों के घावों को योद्धा लोग प्राचीनकाल में अत्यन्त सम्मानजनक मानते थे, जिसके कारण वे आभूषणों को धारण करने में भी रुचि नहीं रखते थे, यहाँ उसी ओर संकेत किया गया है।

(vii) उत्कृष्ट कोटि के श्रेष्ठ युवा हाथी के गण्डस्थलों से निरन्तर सुगन्धित तरलपदार्थ बहता रहता है, जिसे काव्य की भाषा में 'मद' कहते हैं। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में इसका अत्यधिक वर्णन किया गया है।

(viii) हाथी के मद बहाने की उपमा मेघ की जलवर्षा के साथ की गयी है। अतः उपमालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(ix) चन्द्रालोककार ने प्रस्तुत श्लोक में 'भग्नप्रक्रम' दोष[1] माना है, क्योंकि यहाँ पर 'त्वमिव वृष्टिमन्तः' में उपमानवाचक पद 'त्वम्' एक वचन में तथा उपमेय वाचक पद 'करिणः' बहुवचन में प्रयोग किया गया है।

(x) इसके अलावा उज्जयिनी के अतीत का प्रत्यक्षवत् वर्णन होने से 'भाविक अलंकार' का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी––(i) **प्रत्यादिष्ट**–प्रति+आ+ √दिश्+क्त

(ii) **वाहाः**– वहन्ति, इति वाहाः, √वह्+घञ्, घोड़े।

(iii) **दिनकरहयस्पर्धिनः**– दिनं कराति, इति, दिनकरः, तस्य हयाः, तैः सह स्पर्धन्ते तच्छीलाः, सूर्य के घोड़ों से स्पर्धा करने वाले।

(iv) **चन्द्रहासव्रणांकैः**–चन्द्रहासस्य व्रणानि तानि एव अंकः, तैः।

(v) **शैलोदग्राः**– शैलाः पर्वताः तेषाम् इव उदग्राः उन्नताः, उपमित समास, पर्वत के समान ऊँचे हाथियों का विशेषण।

(vi) **प्रतिदशमुखम्**– दशमुखानि यस्य सः, दशमुखं प्रति।

(vii) **तस्थिवांसः**– √स्था+क्वसु, तस्थिवान्, प्रथमा, बहुवचन।

---

1. भग्नप्रक्रममारब्धशब्दनिर्वाहहीनता।
अक्रमः कृष्णः पूजयन्ते त्वामनभ्यर्च्य देवताः।। चन्द्रालोक–2/27 ।

(viii) पत्रश्यामाः– पत्राणि इव श्यामाः, हरितवर्णाः, कर्मधारय।

(ix) दिनकरहयस्पर्धिनः –दिन+ √कृ+ट+हय+ √स्पर्ध्+णिनि+ प्रथमा विभक्ति, बहुवचन। सूर्य के घोडों से स्पर्धा करने वाले।

संजीवनी टीका– पत्रेति। हे जलद! यत्र विशालायां वाहाः हयाः पत्रश्यामाः पलाशवर्णाः, अतएव दिनकरहयस्पर्धिनो वर्णतो वेगतश्च सूर्याश्वकल्पास्तथा शैलोदग्राः शैलवदुन्नताः करिणः प्रभेदान् मदस्रावा–द्धेतोस्त्वमिव वृष्टिमन्तः। अग्रं नयन्तीत्यग्रण्यः। 'सत्सूद्विष–' इत्यादिना क्विप्। 'अग्रग्रामाभ्यां नयतेः' इति वक्तव्याण्णत्वम्। योधानामग्रण्यो भट–श्रेष्ठाः संयुगे युद्धे प्रतिदशमुखभि रावणं तस्थिवांसः स्थितवन्तः। अतएव चन्द्रहासस्य रावणासेर्व्रणानि क्षतान्येवांकाश्चिह्नानि तैः। 'चन्द्रहासो रावणासावसिमात्रेऽसि च क्वचित्' इति शाश्वतः। प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः प्रतिषिद्धभूषणकान्तयः शस्त्रप्रकारा एव वीराणां भूषणमिति भावः। अत्रापि भाविकालंकारः।।35।।

अवतरणिका– इसके बाद यक्ष, अपने मित्र मेघ से उज्जयिनी के महलों की शोभा को देखते हुए, मार्ग की थकान को दूर करने का परामर्श देते हुए कहता है कि–

जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूप–
र्बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः।
हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखेदं नयेथा
लक्ष्मीं पश्यंल्ललितवनितापादरागांकितेषु।।36।।

अन्वय–जाल–उद्गीर्णैः केश–संस्कार–धूपैः उपचित–वपुः बन्धु –प्रीत्या भवन–शिखिभिः दत्त–नृत्य–उपहारः, कुसुम–सुरभिषु ललित–वनिता–पाद–राग–अंकितेषु हर्म्येषु अस्याः लक्ष्मीम् पश्यन् अध्व–खेदम् नयेथाः।।36।।

अनुवाद– वातायनों की जालियों से निकलते हुए, स्त्रियों के केशों को सुगन्धित करने वाले, द्रव्यों की गन्ध से पुष्ट शरीर से युक्त, मित्र के स्नेह के कारण भवनों के मोरों द्वारा दिए गए, नृत्यरूपी

उपहार वाले, तुम पुष्पों से सुगन्धित, उन सुन्दरियों के चरणों के लाक्षारस से चिह्नित महलों में, इस उज्जयिनी की शोभा को देखते हुए मार्ग की थकान को दूर करना।

'चन्द्रिका'– यक्ष का आशय है कि जब तुम उज्जयिनी नगरी पहुँचोगे तो वहाँ पर तुम पहले की अपेक्षा अधिक पुष्ट शरीर वाले हो जाओगे, क्योंकि वहाँ पर स्त्रियाँ अपने केशों में सुगन्धित द्रव्यों की गन्ध का प्रयोग करती हैं, जो महलों के वातायनों से निकलकर तुम्हारे शरीर को पुष्टता प्रदान करेगी। साथ ही, वहाँ पर भवनों में रहने वाले तुम्हारे मित्र पालतू मोर प्रेमवश तुम्हें नृत्यरूपी उपहार प्रदान करेंगे।

इसके अतिरिक्त पुष्पों की सुगन्ध से सुगन्धित महल में निवास करने वाली सुन्दरियों के चरणों में लगाए गए, लाक्षारस के चिह्नों से चिह्नित, इन महलों के अप्रतिम सौन्दर्य को देखते हुए ही तुम अपनी मार्ग विषयक थकान को दूर कर लेना अर्थात् इस सबको देखकर तो रसिक प्रवृत्ति वाले तुम्हारी मार्ग की थकान स्वतः ही दूर हो जाएगी।

विशेष–(i) प्राचीन समय में स्त्रियाँ स्नान के बाद, अपने केशों को 'अगरु' की धूप देकर उन्हें सुगन्धित करती थीं, जो सुगन्धित धुआँ (धूप) महल के वातायनों से निकलकर बाहर की ओर जाता था, वह धूम, ज्योतिः, मेघ के शरीर से मिलकर उसे पुष्टता प्रदान करने वाला होगा, यही अभिप्राय है। कवि की सूक्ष्मदृष्टि अभिव्यक्त हुई है।

(ii) कुछ प्रतियों में यहाँ 'केशसंस्कारधूमैः' पाठ भी प्रयुक्त हुआ है, अर्थ की दृष्टि से जो अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

(iii) मोरों को यहाँ मेघ का बन्धु बताया गया है, क्योंकि ग्रीष्म ऋतु से सन्तप्त मोर आकाश में मेघों को देखकर नृत्य करने लगते हैं, जिसकी यहाँ मेघ के उपहाररूप में मनभावन परिकल्पना की गयी है।

(iv) इसीप्रकार उत्तरमेघ–19 में भी मोर को मेघ का मित्र कहा गया है। (नीलकण्ठ सुहृद्वः)

(v) कुछ प्रतियों में 'अध्वखिन्नान्तरात्मा' पाठ भी मिलता है, जिसका 'थकी हुई अन्तरात्मा वाला' अर्थ करना होगा।

(vi) इसके अलावा 'अध्वखेदं' के स्थान पर भी भिन्न पाठभेद उपलब्ध होते हैं। जैसे– मुक्त्वाखेदं, त्यक्त्वा खेदं, खेदं नीत्वा, नीत्वा खेदम्, इनसे अर्थ में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता है।

(vii) 'भवनशिखिभिः' पद से प्राचीनकाल में महलों व घरों में मोरों को पालने की प्रथा की ओर संकेत किया गया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **बन्धुप्रीत्या**– बन्धोः प्रीतिः तया।

(ii) **जालोद्गीर्णैः**– जालेभ्यः उद्गीर्णाः तैः, उद्गीर्णः–उद्+√गृ+क्त, तृतीया, बहुवचन, वातायनों की जालियों से निकले हुए।

(iii) **केशसंस्कारधूपैः**– केशानां संस्कारः, तस्य धूपाः, तैः ।

(iv) **उपचितवपुः**– उपचितं वपुः, यस्य सः, बहुव्रीहि, उप+√चि+क्त, वृद्धि को प्राप्त हुए शरीर वाले, (**धूप**–धुआँयुक्त सुगन्धित पदार्थ)

(v) **भवनशिखिभिः**– भवनानां भवनेषु वा शिखिनः, तैः।

(vi) **बन्धुप्रीत्या**– बन्धोः प्रीतिः तया, षष्ठी तत्पुरुष समास।

(vii) **शिखिनः**– शिखा चूड़ा अस्ति येषां ते शिखिनः। मयूर।

(viii) **दत्तनृत्योपहारः**– दत्तः नृत्यमेव उपहारः, यस्मै सः। √दा+ क्त, **दत्तः**, **उपहारः**– उप+√हृ+घञ्। दिए गए नृत्यरूपी उपहार वाला। यहाँ मोर के नृत्य की उपहाररूप में परिकल्पना की गयी है।

(ix) **कुसुमसुरभिषु**– कुसुमैः सुरभिणि, तेषु, तृतीया तत्पुरुष।

(x) **अध्वखेदम्**– अध्वनः खेदः, तम्, √खिद्+घञ्, खेदः।

(xi) **नयेथाः**– √नी+विधिलिङ्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(xi) **ललितवनितापादरागांकितेषु**– ललिताश्च ताः वनिताः, पादयोः रागः, ललितवनितानां पादरागः, तेन अंकितानि, तेषु, √रंज्+घञ्, रागः। सुन्दरियों के पैरों के लाक्षारस से चिह्नितों में।

संजीवनी टीका– जालोद्गीर्णैरिति। जालोद्गीर्णैर्गवाक्षमार्ग–निर्गतैः। 'जालं गवाक्ष आनाये बालके कपटे गणे' इति यादवः। केश–

संस्कारधूपैः। वनिताकेशवासनार्थेर्गन्धद्रव्यधूपैरित्यर्थः। अत्र संस्कार–धूपयोस्तादर्थ्येऽपि यूपदार्वादिवत् प्रकृतिविकारत्वाभावादश्वघासादिवत् षष्ठीसमासो न चतुर्थी समासः। उपचितवपुः परिपुष्टशरीरः। बन्धौ बन्धुरिति वा प्रीत्या भवनशिखिभिर्गृहमयूरैर्दत्तो नृत्यमेवोपहार उपायनं यस्मै स तथोक्तः। 'उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथोपदा' इत्यमरः। कुसुमैः सुरभिषु। ललितवनिताः सुन्दरस्त्रियः। 'ललितं त्रिषु सुन्दरम्' इति शब्दार्णवे। तासां पादरागेण लाक्षारसेनांकितेषु चिह्नितेषु हर्म्येषु धनिक–भवनेष्वस्या उज्जयिन्या लक्ष्मीं पश्यन्नध्वगमनेन खेदं क्लेशं नयेथाः अपनय।।36।।

अवतरणिका– उज्जयिनी नगरी की शोभा का दर्शन करने के बाद यक्ष, अपने मित्र मेघ से वहाँ पर स्थित महाकालेश्वर धाम जाने के लिए भी कहता है कि–

भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य।
धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या–
स्तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः।।37।।

अन्वय– भर्तुः कण्ठ–छविः इति गणैः सादरम् वीक्ष्यमाणः, कुवलय–रजः–गन्धिभिः, तोय–क्रीड़ा–निरत–युवति–स्नान–तिक्तैः गन्ध–वत्याः मरुद्भिः, धूत–उद्यानम् त्रिभुवन–गुरोः चण्डीश्वरस्य पुण्यम् धाम यायाः।।37।।

अनुवाद– यह तो हमारे स्वामी भगवान् शंकर के कण्ठ के समान छवि वाला है, इस विचार से शिव के गणों द्वारा आदरपूर्वक देखे जाते हुए तुम, कमल के पराग से सुगन्धित, जल–क्रीड़ा में संलग्न, सुन्दरियों के स्नान से सुवासित गन्धवती नदी की वायुओं से प्रकम्पित उद्यान वाले, तीनों लोकों के गुरु, पार्वती के पति भगवान् शंकर के पुण्य धाम (महाकालेश्वर) अवश्य जाना।

'चन्द्रिका'– हे मेघ! उज्जयिनी नगरी में जाने के बाद, तुम्हें यहाँ स्थित तीनों लोकों के गुरु एवं माँ पार्वती के पति भगवान् महाकालेश्वर मन्दिर में अवश्य जाना चाहिए, क्योंकि यहाँ जाने पर तुम्हें महादेव के गण यह विचारकर अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखेंगे कि यह तो हमारे स्वामी भगवान् शंकर के नीले कण्ठ के समान छवि वाला है।

इसके अलावा वहाँ पर तुम कमल के पराग से सुगन्धित, जल क्रीड़ा में संलग्न सुन्दरियों के स्नान से सुगन्धित 'गन्धवती' नदी की शीतल वायुओं से प्रकम्पित करने वाले, उद्यानों का भी अवलोकन करोगे।

विशेष–(i) चण्डीश्वर से अभिप्राय यहाँ उज्जयिनी स्थित महाकाल के मन्दिर से ही ग्रहण करना चाहिए, जिसे यहाँ 'पुण्यधाम' संज्ञा प्रदान की गयी है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में महाकवि की महाकाल अर्थात् भगवान् शंकर के प्रति अगाध श्रद्धा की अभिव्यक्ति हुई है।

(iii) पुराणों में महाकाल मन्दिर के दर्शन मात्र से मुक्ति की बात का उल्लेख मिलता है–

'मृत्युलोके महाकालं दृष्ट्वा मुक्तिमवाप्नुयात्।।'

(iv) गन्धवती नदी वस्तुतः मालव प्रदेश में प्रवाहित होने वाली छोटी सी नदी है, जो बाद में शिप्रा में ही मिल जाती है। यहाँ उसी की ओर संकेत किया गया है।

(v) ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि यहाँ पर स्वयं कुछ समय रहा है, तभी तो उन्होंने इस नदी के जलों के कमलों के पराग कणों से और वहाँ पर सुन्दरियों के स्नान के कारण, जलों के सुगन्धित होने की बात का उल्लेख किया है एवं इनके सम्पर्क के कारण प्रवाहित होने वाली, वायु द्वारा यहाँ पर स्थित उद्यान भी सुवासित हो गया है।

(vi) भगवान् महादेव का कण्ठ नीला होने का कारण, समुद्र मन्थन के अवसर पर निकले हुए भयंकर हलाहल विष का पान करना है। मेघ को भी यहाँ उन्हीं के कण्ठ के समान कान्ति वाला कहा गया है, इससे भगवान् शंकर के साथ–साथ मेघ की उत्कृष्टता का वर्णन होने से उदात्त अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(vii) इसके अतिरिक्त शंकर के नीले कण्ठ रूप उपमान की उपमेयरूप तथा मेघ की उपमानरूप में परिकल्पना से प्रतीप अलंकार भी विद्यमान है।[1]

(viii) 'तिक्त' पद का प्रयोग यहाँ पर सुन्दरियों द्वारा शरीर को सुगन्धित करने के लिए, अनेक प्रकार के उबटनों के प्रयोग से सुगन्धित एवं किंचित् तिक्त होने की बात का कथन किया गया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **यायाः**– √या+वि.लि., म.पु., ए.व.।

(ii) **कण्ठच्छविः**– कण्ठस्य छविः, इव छविः यस्य, सः बहुव्रीहि।

(iii) **वीक्ष्यमाणाः**–वि+ √ईक्ष्+यक्+मुक्+शानच्, देखे जाते हुए।

(iv) **कुवलरजोगन्धिभिः**– कुवलयानां रजांसि, तेषां गन्धः, सः एषाम् अस्ति, इति, कुवलयरजोगन्धिनः, तैः, कमल के पराग कणों से सुगन्धित, कुवलयरजोगन्ध+इनि, कुवलयरजोगन्धिन्, तृतीया, बहुवचन।

(v) **गन्धवत्याः**– प्रशस्तो गन्धोऽस्ति यस्याः तस्याः।

(vi) **धूतोद्यानम्**– धूतानि उद्यानानि यस्मिन् तत्, बहुव्रीहि।

(vii) **तोयक्रीड़ानिरतयुवतिस्नानतिक्तैः**– तोये क्रीड़ा, तस्यां निरताः, तादृशः युवतयः, तासां स्नानम्, तेन तिक्ताः, तैः।

(viii) **त्रिभुवनगुरोः**– त्रयाणां भुवनानां समाहारः, इति त्रिभुवनम्, त्रिभुवनस्य गुरुः, तस्य, तीनों लोकों के गुरु, महादेव का विशेषण।

---

[1]. आक्षेप उपमानस्य प्रतीपमुपमेयता।
तस्यैव यदि वा कल्प्या तिरस्कारनिबन्धनम्।। काव्यप्रकाश–10 / 201 ।

(ix) **चण्डीश्वरस्य**– चण्ड्याः ईश्वरः, चण्डेश्वरः, तस्य, पार्वती का पति अर्थात् भगवान् महादेव।

संजीवनी टीका– भर्तुरिति। भर्तुः स्वामिनो नीलकण्ठस्य भगवतः कण्ठस्येव छविर्यस्यासौ कण्ठच्छविरिति हेतोर्गणैः प्रमथैः। 'गणस्तु गणनायां स्याद् गणेशे प्रथमे चये' इति शब्दार्णवे। सादरं यथा तथा वीक्ष्यमाणः सन्। प्रियवस्तुसादृश्यादतिप्रियत्वं भवेदिति भावः। त्रयाणां भुवनानां समाहारस्त्रिभुवनम्। 'तद्धितार्थ–'इत्यादिना समासः। तस्य गुरोस्त्रैलोक्यनाथस्य चण्डीश्वरस्य कात्यायनीवल्लभस्य पुण्यं पावनं धाम महाकालाख्यं स्थानं यायाः गच्छेः। विध्यर्थे लिङ्। श्रेयस्करत्वात् सर्वथा यातव्यमिति भावः। उक्तं च स्कान्दे–'आकाशे तारकं लिंग पाताले हाटकेश्वरम्।

मर्त्यलोके महाकालं दृष्ट्वा काममवाप्नुयात्।' इति न केवलं मुक्तिस्थानमिदं, किन्तु विलासस्थानमपीत्याह–धूतेति। कुवलयरजोगन्धि–भिरुत्पलपरागगन्धवृद्धिस्तोयक्रीड़ासु निरतानामासक्तानां युवतीनां स्नानं स्नानीयं चन्दनादि। करणे ल्युट्। 'स्नानीयेऽभिषवे स्नानम्' इति यादवः। तेन तिक्तैः सुरभिभिः 'कटुतिक्तकषायास्तु सौरभे च प्रकीर्तिताः' इति हलायुधः। सौगन्ध्यातिशयार्थं विशेषणद्वयम्। गन्धवत्या नाम नद्यास्तत्र–त्याया मरुद्भिर्मारुतैर्धूतोद्यानं कम्पिताक्रीडमिति धाम्नोर्विशेषणम्।।37।।

अवतरणिका– इसके पश्चात् विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से उज्जयिनी स्थित महाकालेश्वर की सन्ध्याकालीन पूजा में सम्मिलित होने एवं अपने गर्जनों के सम्पूर्ण फलों को प्राप्त करने की बात का उल्लेख करते हुए कहता है कि–

अप्यन्यस्मिंजलधर! महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।
कुर्वन्संध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया–
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम्।।38।।

अन्वय– जलधर! महाकालम् अन्यस्मिन् काले अपि आसाद्य, यावत् भानुः नयन–विषयम् अत्येति, (तावत्) ते स्थातव्यम्, शूलिनः श्लाघनीयाम् संध्या–बलि–पटहताम् कुर्वन्, (त्वम्) आमन्द्राणाम् गर्जितानाम् अविकलम् फलम् लप्स्यसे ।।38।।

अनुवाद– हे जलधर! महाकाल के मन्दिर में अन्य समय पर पहुँचकर, जब तक सूर्य नेत्रों के विषय को पार कर लेता है, तब तक तुम्हें ठहरना चाहिए, क्योंकि त्रिशूलधारी भगवान् महादेव की श्लाघनीय सन्ध्याकालीन पूजा में नगाड़े का काम करते हुए तुम, निश्चय ही गम्भीर गर्जनों के सम्पूर्ण फल को प्राप्त कर लोगे।

'चन्द्रिका'– हे मेघ! यदि तुम किसी कारणवश उज्जयिनी के महाकाल मन्दिर में दिन में किसी समय पहुँच जाओ, तो सूर्य के अस्ताचल जाने की प्रतीक्षा करना, क्योंकि मेरा ऐसा मानना है कि ऐसा करने पर तुम त्रिशूल को धारण करने वाले भगवान् शंकर की सन्ध्या कालीन पूजा में सम्मिलित हो सकोगे तथा पूजा के इस पुनीत अवसर पर बजाए जाने वाले, नगाड़े का काम करते हुए, तुम्हें निश्चय ही अपने गम्भीर गर्जनों के फलों की पूर्णरूप से प्राप्ति हो जाएगी अर्थात् भगवान् शंकर की पूजा के इस अवसर पर गम्भीर और धीमे गर्जन का प्रयोग करके, तुम्हें अभूतपूर्व पुण्यों की प्राप्ति अवश्य होगी।

विशेष–(i) उज्जयिनी में स्थित महाकालेश्वर का प्राचीन मन्दिर अद्भुत एवं संसार में दूर–दूर तक प्रसिद्ध है। इसी का अन्य नाम महाकाल भी है। इसकी गणना द्वादश ज्योतिर्लिंगों में की जाती है।

(ii) काव्यकार कालिदास ने इसकी प्रशंसा अपनी अन्तिम कृति रघुवंश महाकाव्य[1] में भी की है।

---

[1]. असौ महाकालनिकेतनस्य वसन्नदूरे किल चन्द्रमौलेः।
तमिस्रपक्षेऽपि सह प्रियाभिर्ज्योत्स्नावतो निर्विशति प्रदोषान्।। रघु.–6/34 ।

(iii) ऐसा प्रतीत होता है कि काव्यकार कालिदास महाकाल की सायंकालीन आरती अर्थात् पूजा में स्वयं भी सम्मिलित हुए हैं और उन्होंने यहाँ होने वाली नगाड़े की मनोरम ध्वनि को सुना भी है।

(iv) भगवान् शंकर की आरती में सम्मिलित होना ही अत्यन्त पुण्यदायी है, फिर उनकी महिमा में वाद्ययन्त्र का बजाना तो और भी अधिक पुण्यों को देने वाला है, यही अभिप्राय है।

(v) प्रस्तुत श्लोक में पूर्वार्द्ध के प्रति उत्तरार्द्ध का वाक्यार्थ हेतु रूप में प्रस्तुत किया गया है, इसलिए काव्यलिंग अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **महाकालं**– महान् चासौ कालः, तं

(ii) **जलधर**– धरति, इति, √धृ+अच्, जलानां धरः, इति जलधरः, षष्ठी तत्पुरुष, तत्सम्बुद्धौ, जलधर! जलों को धारण करने वाला मेघ, जलं धरतीति, ऐसा विग्रह उचित नहीं होगा, क्योंकि ऐसा करने से उपपद समास होकर 'जलधार' बनेगा, न कि जलधर।

(iii) **नयनविषयम्**– नयनयोः विषयः, तम्, षष्ठी तत्पुरुष।

(iv) **आसाद्य**– आ+√सद्+णिच्+क्त्वा (ल्यप्) प्राप्त करके।

(v) **अत्येति**– अति+√इण्, लट्, प्र.पु., ए.व., पार करता है।

(vi) **लप्स्यसे**– √लभ्+लृट्, आत्मने., म.पु., ए.व., प्राप्त करोगे।

(vii) **सन्ध्याबलिपटहताम्**– सन्ध्यायां बलिः, तत्र पटहता, ताम्।

(viii) **शूलिनः**– शूलम् अस्य अस्ति, इति शूल+इनि, प.वि.,ए.व.

(ix) **श्लाघनीयाम्**– √श्लाघ्+अनीयर्+टाप्, प्रशंसनीय को।

(x) **आमन्द्राणाम्**– आ+ईषत् मन्द्राणि, तेषां, थोड़ा गम्भीर।

(xi) **अविकलम्**– विगता कला यस्मात् तत् विकलं, न विकलं तत्, बहुव्रीहि एवं नञ् समास। सम्पूर्णरूप से।

संजीवनी टीका– अपीति। युग्मम्। हे जलधर! महाकालं नाम पूर्वोक्तं चण्डीश्वरस्थानमन्यस्मिन् सन्ध्यातिरिक्तेऽपि कालं आसाद्य प्राप्य ते तव स्थातव्यम्। त्वया स्थातव्यमित्यर्थः। 'कृत्यानां कर्तरि वा' इति

षष्ठी। यावद्यावता कालेन भानुः सूर्यो नयनविषयं दृष्टिपथमत्येत्यतिक्रामति। अस्तमयकालपर्यन्तं स्थातव्यमित्यर्थः। यावदित्येतदवधारणार्थे। 'यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे' इत्यमरः। किमर्थमत आह–कुर्वन्निति। श्लाघनीयां प्रशस्यां शूलिनः शिवस्य सन्ध्यायां बलिः पूजा तत्र पटहतां कुर्वन् सम्पादयन्नमन्द्राणामीषद् गम्भीराणां गर्जितानामविकलमखण्डं फलं लप्स्यसे प्राप्स्यसि। लभेः कर्तरि लट्। महाकालनाथबलिपटहत्वेन विनियोगात्ते गर्जितसाफल्यं स्यादित्यर्थः।।38।।

अवतरणिका– वियोगी यक्ष, अपने मित्र मेघ से इसी महाकाल आरती के अवसर पर, नृत्य करने वाली वेश्याओं के भ्रमर–पंक्तियों के समान, कटाक्षपात के आनन्द प्राप्ति के विषय में भी कहता है कि–

पादन्यासैः क्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतैः
रत्नच्छायाखचितबलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः।
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान्प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू–
नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्कटाक्षान्।।39।।

अन्वय– तत्र पाद–न्यासैः क्वणित–रशनाः, लीला–अवधूतैः रत्न–छाया–खचित–बलिभिः चामरैः क्लान्त–हस्ताः वेश्याः, त्वत्तः नख–पद–सुखान्, वर्षा–अग्रबिन्दून् प्राप्य, त्वयि मधुकर–श्रेणि–दीर्घान् कटाक्षान् आमोक्ष्यन्ते।।39।।

अनुवाद– हे मेघ! सन्ध्या के समय वहाँ पैरों की गति के साथ बजती हुई करधनियों वाली, विलासपूर्वक डुलाए गए, कंगन के रत्नों की कान्ति से विभूषित दण्ड वाले, चँवरों से क्लान्त हाथों वाली वेश्याएँ, तुमसे नखक्षतों को सुख प्रदान करने वाली, वर्षा की पहली बिन्दुओं को प्राप्त करके, तुम्हारे ऊपर भ्रमर–पंक्तियों के समान, लम्बे कटाक्षों को पूर्णरूप से छोड़ेंगी।

'चन्द्रिका'– अभिप्राय यह है कि महाकाल की सन्ध्याकालीन आरती के अवसर पर पैरों की गति के साथ नृत्य करते हुए, कटिभाग में बँधी हुई करधनियों की मधुर ध्वनि तथा अत्यन्त विलासपूर्वक डुलाए

जाते हुए, कंगनों के रत्नों की कान्ति से सुशोभित दण्ड को निरन्तर चलाने के कारण थके हुए हाथों वाली वेश्याएँ, अपने प्रेमियों द्वारा दिए गए नखक्षतों को सुख प्रदान करने वाली, मेघ की वर्षा की प्रथम बूँदों के स्पर्श को पाकर, अत्यन्त आनन्द का अनुभव करते हुए, अपने नेत्रों रूपी भ्रमरपंक्ति के समान लम्बे कटाक्षों से तुम्हें देखेंगी, यह तुम्हारे जैसे रसिक के लिए अत्यन्त सौभाग्य एवं आनन्द की बात होगी।

विशेष–(i) महाकाल की आरती के अवसर पर कुछ वेश्याएँ नृत्य भी करती थीं तथा दूसरी रत्नजटित चँवरों को भी डुलाती थी, इत्यादि का उल्लेख करके कवि ने तात्कालिक सामाजिक एवं धार्मिक सुन्दर चित्र को प्रस्तुत किया है।

(ii) यहाँ प्रयुक्त 'नखपदसुखान्' से अभिप्राय प्रेमियों द्वारा बनाए गए, उन नखों के चिह्नों से ग्रहण करना चाहिए, जिन्हें काम शास्त्र में प्रशंसनीय तथा स्त्रियों के लिए सौभाग्यदायक माना गया है। सारोद्धारिणी टीकाकार ने इसका अर्थ 'नखपद के समान सुखों को' (नखपदवत् सुखान्) किया है, जो उतना प्रभावी प्रतीत नहीं होता है।

(iii) नृत्य की विधाओं में भी एक देशिक विधा चामर को धारण करके नृत्य करने की भी मानी गयी है, किन्तु उसकी अपेक्षा आरती के अवसर पर चँवर डुलाने का आज भी हमारे मन्दिरों में विधान है, अधिक संगत प्रतीत होता है।

(iv) वेश्याओं द्वारा मेघ के प्रति कटाक्षपात करने से शृंगार रस की भी अभिव्यंजना हो रही है।

(v) इसीप्रकार मेघ, शिव की उपासना के फलस्वरूप कमनीय कामिनियों का दर्शनलाभ भी प्राप्त करता है,यह भी ध्वनित हो रहा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **त्वत्तः**– त्वत्+तसिल्, तुमसे।

(ii) **पादन्यासैः**– पादानां न्यासः, तैः, षष्ठी तत्पुरुष।

(iii) **क्वणितरसना**– क्वणिताः रशनाः, यासाम् ताः, बहुव्रीहि।

(iv) **लीलावधूतैः**– लीलया अवधूतानि, तैः, तृतीया तत्पुरुष।

(v) **रत्नच्छायाखचितवलिभिः**– रत्नानां छाया, ताभिः खचिताः वलयोः येषां तानि, तैः **खचिता**– √खच्+क्त, टाप्।

(vi) **वेश्याः**– वेशे भवाः, वेश्येन नेपथ्येन शोभन्ते, इति

(vii) **नखपदसुखान्**– नखानां पदानि, तेषु सुखान्, स., तत्पु.

(viii) **वर्षाग्रबिन्दून्**– अग्राश्च ते बिन्दवः, कर्मधारय, इति अग्र–बिन्दवः, वर्षायाः अग्रबिन्दवः, ष.त., तान्, वर्षा की पहली बिन्दुओं को।

(ix) **आमोक्ष्यन्ते**– आ+ √मुच्+लृट्, आत्मने.प्रथमपुरुष, बहु.व.।

(x) **क्लान्तहस्ताः**– क्लान्ताः हस्ताः, येषाम् ताः।

(xi) **मधुकरश्रेणिदीर्घान्**– मधुकराणां श्रेणिः, तद्वत् दीर्घान्।

संजीवनी टीका– पादन्यासैरिति। तत्र सन्ध्याकाले पादन्यासैश्–चरणनिक्षेपैर्नृत्यांगैः क्वणिताः शब्दायमाना रशना यासां तास्तथोक्ताः। क्वणतेरकर्मकत्वात् 'गत्यर्थाकर्मक–' इत्यादिना कर्तरि क्तः। लीलया विलासेनावधूतैः। बलिश्चामरमणीनां छायया कान्त्या खचिता रूषिता बलयश्चामरदण्डाः येषां तैः। 'बलिश्चामरदण्डे च जराविश्लथचर्मणि' इति विश्वः। चामरैर्बालव्यजनैः क्लान्तहस्ताः। एतेन देशिकं नृत्यं सूचितम्। तदुक्तं नृत्यं सूचितम्। तदुक्तं नृत्यसर्वस्वे– 'खड्गकन्दुकवस्त्रादि–दण्डिकाचामरस्रजः। वीणां च धृत्वा यत् कुर्युर्नृत्यं तद् देशिकं भवेत्।' इति। वेश्या महाकालनाथमुपेत्य नृत्यन्त्यो गणिकास्त्वत्तो नखपदेषु नखक्षतेषु सुखान् सुखकरान्। 'सुखहेतौ सुखे सुखम्' इति शब्दार्णवे। वर्षस्याग्रबिन्दून् प्रथमबिन्दून् प्रायः त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् अपांगानामोक्ष्यन्ते। 'परैरुपकृताः सन्तः सद्यः प्रत्युपकुर्वते' इति भावः। कामिनीदर्शनीयत्वलक्षणं शिवोपासनाफलं सद्यो लप्स्यस इति ध्वनिः।।39।।

अवतरणिका– इसी क्रम में विरही यक्ष अपने मित्र मेघ से पुनः कहता है कि–

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः
सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः।

नृत्तारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्याः ।।40।।

अन्वय– पश्चात् नृत्त–आरम्भे प्रति–नव–जपा–पुष्प–रक्तम् सान्ध्यम् तेजः दधानः, उच्चैः भुज–तरु–वनम् मण्डलेन अभिलीनः भवान्याः शान्त–उद्वेग–स्तिमित–नयनम् दृष्ट–भक्तिः, पशुपतेः आर्द्र–नाग–अजिन–इच्छाम् हर ।।40।।

अनुवाद– उस सन्ध्याकालीन पूजा के पश्चात् ताण्डव नृत्य के आरम्भ होने पर, ताजे जपा पुष्प के समान लाल सन्ध्याकालीन तेज को धारण करते हुए, ऊँचे भुजारूपी वृक्षों के वनों को मण्डलाकार रूप में व्याप्त करके, पार्वती द्वारा भयरहित निश्चल नेत्रों से भक्तिपूर्वक देखे गए, तुम महादेव के गीले हस्तिचर्म को ओढ़ने की इच्छा को निश्चय ही दूर कर देना।

'चन्द्रिका'– महाकाल मन्दिर में जब पूजा समाप्त हो जाए तो उसके बाद ताण्डव नृत्य के आरम्भ होने पर, नूतन जपा पुष्प के समान लालिमा वाले सन्ध्याकालीन तेज को धारण करते हुए, वहाँ पर स्थित ऊँचे–ऊँचे भुजारूपी वृक्षों के वनों को गोलाकार रूप में व्याप्त करके तुम, महादेव की प्रियतमा पार्वती द्वारा भय से रहित, निश्चल नेत्रों के माध्यम से अत्यन्त आदरपूर्वक देखे जाओगे, क्योंकि ऐसी स्थिति में होने पर तुम महादेव की आर्द्रगजचर्म को ओढ़ने की इच्छा को भी अवश्य पूरा कर देना।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में 'नृत्त' पद के प्रयोग से कवि के नृत्य, संगीत विषयक ज्ञान की प्रतीति हो रही है।

(ii) भगवान् शंकर प्रलयकाल में जो नृत्य करते हैं, उसे 'ताण्डव नृत्य' कहा जाता है। इस अवसर पर वे सभी दिशाओं में अपनी लम्बी भुजाओं को प्रसारित करते हैं।

(iii) महादेव के लिए यहाँ 'पशुपति' विशेषण का साभिप्राय प्रयोग किया गया है। शैवदर्शन में पशु, जीवात्मा तथा पति शिव के

लिए प्रयुक्त हुआ है। दूसरे शब्दों में, अविद्या के पाश से मुक्त शिव को यहाँ 'पति' कहा गया है।

(iv) शिवपुराण के अनुसार गजासुर का वध करके, भगवान् शिव ने अपने शरीर पर या हाथों में उसका गीला चर्म धारण किया था, यहाँ पर उसी कथा की ओर संकेत किया गया है।

(v) महाकवि का अभिप्राय है कि रक्त से सने हुए गजचर्म को देखकर तो पार्वती डर जाती और शिव का नृत्य भी नहीं देख पाती, किन्तु इस अवसर पर तुम गीले गजचर्म की शोभा को धारण करोगे, तो वे भी निर्भय होकर शिव का ताण्डव नृत्य देख सकेंगी।

(vi) गजासुर ने ब्रह्मा जी की तपस्या करके उनसे वरदान प्राप्त कर लिया था, बाद में इसने चारों ओर अत्याचार करना शुरु कर दिया तो देवों की प्रार्थना पर महादेव ने इसका वध किया था तथा उसके रक्त से भीगे चर्म को अपने शरीर पर धारण किया था। इसीलिए शंकर का अन्य नाम 'कृत्तिवासा' भी है।

(vii) हमारे विवेच्य काव्यकार कालिदास ने इसका उल्लेख अपने प्रथम काव्य कुमारसम्भव (5/67–68) महाकाव्य में ब्रह्मचारी एवं पार्वती संवाद प्रसंग में भी किया है।

(viii) उपर्युक्त श्लोक में भुजाओं पर तरुओं का आरोप होने के कारण रूपक अलंकार का, 'प्रतिनवजपापुष्परक्तम्' में लुप्तोपमालंकार का तथा सन्ध्या के तेज को मेघ द्वारा धारण करने से, निदर्शना अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।

(ix) साथ ही, इन दोनों अलंकारों के अंगांगिभाव से प्रयुक्त होने के कारण संसृष्टि अलंकार का भी प्रयोग हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **हर**– √हृ+लोट्, म.पु.,ए.व.।

(ii) **नृत्यारम्भे**– नृत्यस्य आरम्भः, तस्मिन्, षष्ठी तत्पुरुष।

(iii) **सान्ध्यम्**– सन्ध्यायां भवम्, इति, संध्या+अण्।

(iv) **प्रतिनवजपापुष्परक्तम्**— प्रति नवानि जपापुष्पाणि, प्रतिनवं च तत् जपापुष्पं वा, कर्मधारय, तद्वत् रक्तम् उपमित समास।

(v) **दधानः**— √धा+शानच्, धारण करता हुआ।

(vi) **दृष्टभक्तिः**— दृष्टा भक्तिः यस्य सः, बहुव्रीहि। √दृश्+ क्त + टाप्, देख ली गयी है, भक्ति जिसकी वह, मेघ।

(vii) **शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं**— शान्त उद्वेगः, तेन स्तिमिते नयने यस्मिन् कर्मणि तत्, बहुव्रीहि, √शम्+क्त, शान्तः, उद्+ √विज्+घञ्, उद्वेगः। भय से रहित निश्चल नेत्रों से ।

(viii) **आर्द्रनागाजिनेच्छाम्**— नागस्य अजिनम्, तस्य इच्छा, ताम्, कर्मधारय, षष्ठी तत्पुरुष, हाथी के गीले चर्म की इच्छा को।

(ix) पशुपतेः— पशूनां पतिः, इति, तस्य, भगवान् शिव की।

संजीवनी टीका— पश्चादिति। पश्चात्सन्ध्याबल्यनन्तरं पशुपतेः शिवस्य नृत्यारम्भे ताण्डवप्रारम्भे प्रतिनवजपापुष्परक्तं प्रत्यग्रजपाकुसुमा-रुणं सन्ध्यायां भवं सान्ध्यं तेजो दधानः। उच्चैरुन्नतं भुजा एव तरवस्तेषां वनं मण्डलेन मण्डलाकारेणाभिलीनोऽभिव्याप्तः सन्। कर्तरि क्तः। भवान्या भवपत्न्या। 'इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुला-चार्याणामानुक्' इति ङीष्। आनुगागमश्च। शान्त उद्वेगो गजाजिन-दर्शनभयं ययोस्ते अत एव स्तिमिते निश्चले नयने यस्मिन् कर्मणि तत्तथोक्तम्। 'उद्वेगस्त्वरिते क्लेशे भये मन्थरगामिनि' इति शब्दार्णवे।

भक्तिः पूज्येष्वनुरागः। भावार्थे क्तिन् प्रत्ययः। दृष्टा भक्तिर्यस्य स दृष्टभक्तिः सन्। पशुपतेरार्द्रं यत्रागाजिनं गजचर्म। 'अजिनं चर्म कृत्तिः स्त्री' इत्यमरः। तत्रेच्छां हर निवर्तय। त्वमेव तत्स्थाने भवेत्यर्थः। गजासुरमर्दनानन्तरं भगवान् महादेवस्तदीयमार्द्राजिनं भुजमण्डलेन बिभ्रत्ताण्डवं चकारेति प्रसिद्धिः। दृष्टभक्तिरिति कथं रूपसिद्धिः। 'दृष्टशब्दस्य 'स्त्रियाः पुंवत्—' इत्यादिना पुंवद्भावस्य दुर्घटत्वादपूरणी-प्रियादिष्विति निषेधात्। भक्तिशब्दस्य प्रियादिषु पाठादिति। तदेतच्चाद्यं

दृढ़भक्तिरिति शब्दामाश्रित्य प्रतिविहितं गणव्याख्याने दृढ़ं भक्तिरस्येति नपुंसकं पूर्वपदम्।

अदार्ढ्यनिवृत्तिपरत्वे दृढ़शब्दाल्लिंगविशेषस्यानुपकारित्वात् स्त्री–त्वमविवक्षितमिति। भोजराजस्तु– 'भक्तौ च कर्मसाधनायामि' त्यनेन सूत्रेण भज्यते सेव्यत इति कर्मार्थत्वे भवानीभक्तिरित्यादि भवति। भाव–साधनायां तु स्थिरभक्तिर्भवान्यामित्यादि भवति' इत्याह। तदेतत्सर्वं सम्यग्विवेचितं रघुवंशसंजीविन्यां 'दृढ़भक्तिरिति ज्येष्ठे' इत्यत्र। तस्मात् दृष्टभक्तिरित्यत्रापि मतभेदेन पूर्वपदस्य स्त्रीत्वेन नपुंसकत्वेन च रूप–सिद्धिरस्तीति स्थितम्।।40।।

अवतरणिका– इसी प्रसंग में विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से उज्जयिनी में अपनी विद्युत् को चमकाकर अभिसारिकाओं को मार्ग दिखाने की बात करते हुए कहता है कि–

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः।
सौदामन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वीं
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लवास्ताः।।41।।

अन्वय– तत्र नक्तम् रमण–वसतिम् गच्छन्तीनाम्, योषिताम् सूचि–भेद्यैः तमोभिः रुद्ध–आलोके नरपति–पथे कनक–निकष–स्निग्धया, सौदामन्या, ऊर्वीम् दर्शय, तोय–उत्सर्ग–स्तनित–मुखरः मा स्म भूः ताः विक्लवाः (भवन्ति) ।।41।।

अनुवाद– उस उज्जयिनी के अन्तर्गत प्रेमियों के घर जाती हुई, स्त्रियों के अत्यन्त गाढ़े अन्धकार के कारण दिखायी न देने वाले, राजमार्ग पर कसौटी पर खींची गयी स्वर्णरेखा के समान, चमकने वाली, बिजली से पृथ्वी को दिखा देना, उस समय हे मेघ! तुम जलों की वर्षा तथा गर्जनों से वाचाल मत होना, क्योंकि वे स्त्रियाँ तो भीरु होती हैं।

'चन्द्रिका'– इसके पश्चात् उज्जयिनी के अन्तर्गत रात्रि में जब अभिसारिकाएँ अपने प्रेमियों से मिलने के लिए उनके घर जा रही होंगी तो अत्यधिक घने अन्धकार के कारण दिखायी न देने वाले, उनके राजमार्ग को तुम कसौटी पर खींची गई सुन्दर सी स्वर्ण की पतली रेखा के समान, दीपित होने वाली बिजली को चमकाकर, उन्हें मार्ग अवश्य दिखा देना, किन्तु ध्यान रहे, इस समय तुम जलों की वृष्टि मत करना और न ही गर्जनों से वाचाल बनना, क्योंकि स्त्रियाँ वस्तुतः भीरू स्वभाव की होती हैं। इसलिए तुम्हारे ऐसा करने से वे भयभीत हो जाएँगी।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने स्त्रियों को किंचित् डरपोक स्वभाव की बताकर उनके विषय में अपने गहन ज्ञान एवं मनोविज्ञान को प्रदर्शित किया है।

(ii) 'योषित' पद स्त्रीवाचक होने के साथ–साथ यहाँ अभि–सारिका अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

(iii) जो स्त्रियाँ लोकनिन्दा से बचने के लिए, लोगों की दृष्टि को बचाकर, अपने प्रेमियों से मिलने के लिए रात्रि में उनके घर पर या निर्दिष्ट स्थान पर जाती हैं, उन्हें संस्कृत साहित्य जगत् में अभि–सारिका[1] संज्ञा प्रदान की गयी है।

(iv) रात्रि के अन्धकार की गहनता को प्रदर्शित करने के लिए यहाँ पर कवि ने 'सूचीभेद्यैः' पद का प्रयोग किया है, जिसे मात्र सुई से ही भेदा जा सकता है, ऐसा घना अन्धकार।

(v) अभिसारिकाओं को किसी प्रकार की परेशानी न हो, उसके लिए कवि ने मेघ से वर्षा एवं गर्जन दोनों को ही न करने के लिए कहा है। इससे उनकी अभिसारिकाओं के प्रति उदारदृष्टि अभिव्यंजित हुई है तथा कवि का स्वयं का व्यक्तित्व भी अभिव्यक्त हुआ है।

---

1 कान्तार्थिनी तु या याति संकेते साऽभिसारिका' इत्यमरः।

(vi) 'कनकनिकषास्निग्धया' से कवि की मनोहारिणी कल्पना के साथ लुप्तोपमालंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(vii) इसीप्रकार वर्षा व गर्जन न करने के प्रति 'विकल्वास्ताः' को हेतुरूप में उद्धृत करने से काव्यलिंग अलंकार एवं इन दोनों अलंकारों के अंगांगिभाव होने से 'संसृष्टि' का प्रयोग भी दर्शनीय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **विकल्वाः**– वि+ √क्लु+अच्+टाप्।

(ii) **रमणवसतिम्**– रमयतीति रमणः, रमणस्य विसतिः, ताम्।

(iii) **गच्छन्तीनाम्**– √गम्+शतृ+ङीष्, षष्ठी बहुवचन।

(iv) **सूचिभेद्यैः**– सूचिभिः भेद्यानि, तैः, भेत्तुं योग्यैः, इति।

(v) **रुद्धालोके**– रुद्धः आलोकः यस्मिन् सः, तस्मिन्।

(vi) **नरपतिपथे**– नराणां पतिः, तस्य नरपतेः पन्थाः, तस्मिन्।

(vii) **कनकनिकषस्निग्धया**– कनकस्य निकषः, इति तस्य इव स्निग्धं, यस्याः तया, उपमित समास। कसौटी पर खींची स्वर्णरेखा से।

(viii) **सौदामन्या**– सुदाम्ना अद्रिणा एकदिक् सौदामनी, तया।

(ix) **तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः**– तोयस्य उत्सर्गः, स्तनितं च ताभ्यां मुखरः,उत्+ √सृज्+घञ्,स्तन+क्त, मुखम् अस्ति यस्य स मुखरः।

संजीवनी टीका– गच्छन्तीनामिति। तत्रोज्जयिन्यां नक्तं रात्रौ रमणवसतिं प्रियभवनं प्रति गच्छन्तीनां योषिताम्। अभिसारिकाणा–मित्यर्थः। सूचिभिर्भेद्यैः। अतिसान्द्रैरित्यर्थः। तमोभिरुद्धालोके निरुद्ध–दृष्टिप्रसारे नरपतिपथे राजमार्गे कनकस्य निकषो निकष्यत इति व्युत्पत्या निकष उपलगतरेखा तस्येव स्निग्धं तेजो यस्यास्तया। 'स्निग्धं तु मसृणे सान्द्रे रम्ये क्लीबे च तेजसि' इति शब्दार्णवे। सुदाम्नाद्रिणै–कदिक्सौदामनी विद्युत् 'तेनैकदिक्' इत्यणप्रत्ययः।

तयोर्वी मार्गं दर्शय। किंच तोयोत्सर्गस्तनिताभ्यां वृष्टिगर्जिताभ्यां मुखरः शब्दायमानो मा स्म भूः। कुतः। ता योषितो विकल्वा भीरवः। ततो वृष्टिगर्जिते न कार्ये इत्यर्थः। नात्र तोयोत्सर्गसंहितं स्तनितमिति विग्रहः। विशिष्टस्यैव केवलस्तनितस्याप्यनिष्टत्वात्। न च द्वन्द्वपक्षेऽल्पाच्तरपूर्व–

निपातशास्त्रविरोधः 'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' इति सूत्र एव विपरीतनिर्देशेन पूर्वनिपातशास्त्रस्यानित्यत्वज्ञापनादिति।।41।।

अवतरणिका– इसके बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से, उस रात्रि को, उज्जयिनी में ही सोए हुए कबूतरों वाली, महल की किसी बलभी में व्यतीत करके, फिर से अलका नगरी के लिए चलने हेतु परामर्श देते हुए कहता है कि–

तां कस्यांचिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः।
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः।।42।।

अन्वय– चिर–विलसनात् खिन्न–विद्युत्–कलत्रः भवान्, सुप्त–पारावतायाम् कस्यांचित् भवन–वलभौ, ताम् रात्रिम् नीत्वा, सूर्ये दृष्टे पुनः अपि अध्व–शेषम् वाहयेत्, सुहृदाम् अभ्युपेतार्थ–कृत्याः न मन्दायन्ते खलु ।।42।

अनुवाद– **हे मेघ! बहुत देर तक चमकने के कारण खिन्न विद्युत्रूपी पत्नी वाले आप, सोए हुए कबूतरों वाली, किसी महल की बलभी में उस रात्रि को व्यतीत करके, सूर्य के दिखायी पड़ने पर फिर से शेष मार्ग को पूरा करना, क्योंकि मित्र के कार्य को स्वीकार करने वाले, निश्चय ही विलम्ब नहीं करते हैं।**

'चन्द्रिका'– हे मित्र मेघ! बहुत देर तक चमकने के कारण थकी हुई विद्युत्रूपी स्त्री वाले तुम, उज्जयिनी की उस रात्रि को इसप्रकार के महल की बलभी में बिताना, जहाँ पर कबूतर आराम से सोए हुए हों, इस अवसर पर तुम्हें न तो गर्जन ही करना है और न ही अपनी प्रियतमा बिजली को ही चमकाना है, क्योंकि ये सोए हुए कबूतर जाग जाएँगे।

इसप्रकार इस रात्रि में विश्राम करने के बाद, तुम जैसे ही प्रातःकाल सूर्य के दर्शन हों, तो फिर से शेष मार्ग पर चलने के लिए

तैयार हो जाना, क्योंकि श्रेष्ठ लोगों का यह स्वभाव होता है कि वे अपने मित्रों के कार्य को पूरा करने के लिए, जब एक बार अपनी स्वीकृति प्रदान कर देते हैं, उस कार्य के पूरा होने तक वे कभी भी उस कार्य में विलम्ब या उसकी उपेक्षा नहीं करते हैं।

विशेष–(i) यहाँ प्रयुक्त 'विद्युत्कलत्र' पद द्वारा स्त्रियों की चंचलता एवं विलास की एवं 'खिन्न' पद से उनकी कोमलता की अभिव्यंजना भी हो रही है।

(ii) इसीप्रकार यहाँ 'चमकना' अर्थ में प्रयुक्त 'विलसन' पद से मेघ की पत्नी विद्युत् द्वारा रतिक्रीड़ा आदि में अनेक प्रकार से सहयोग देने से ग्रहण करना चाहिए, जिसके कारण वह अब थक जाएगी, इसीलिए उस रात्रि में उसके साथ बिना वर्षा एवं गर्जन किए, वहीं पर विश्राम करने की सलाह दी गयी है।

(iii) अन्तिम चरण में कवि का अभिप्राय है कि यदि कोई भी सज्जन एवं परोपकारी व्यक्ति, अपने मित्र के किसी भी काम को अपने हाथ में ले लेता है, तो फिर वह उसके पूरा करने तक प्रयत्नशील रहता है, उससे विमुख नहीं होता है।

(iv) इस कथन से मेघ के श्रेष्ठ एवं परोपकारी मित्र होने की भी अभिव्यंजना हो रही है।

(v) यहाँ पर मेघ में पति एवं विद्युत् में पत्नी का आरोप करने से रूपक अलंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(vi) श्लोक के पूर्वार्द्ध में प्रयुक्त विशेष कथन का अन्तिम चरण में प्रयुक्त सामान्य कथन से समर्थन किए जाने से अर्थान्तरन्यास अलंकार का प्रयोग भी हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **दृष्टे**– √दृश्+क्त, स.वि.,ए.व।

(ii) **चिरविलसनात्**– चिरं विलसनं, तस्मात्, हेतु में पंचमी।

(iii) **खिन्नाविद्युत्कलत्रः**–खिन्ना विद्युत् सा एव कलत्रं यस्य सः।

(iv) **सुप्तपारावतां**– सुप्ताः पारावताः, यस्यां सा, तस्याम्।

(v) **भवनवलभौ**– भवनस्य वलभिः, तस्याम्, सप्तमी तत्पुरुष।

(vi) **सुहृदाम्**– शोभनं हृदयं येषां ते, तेषाम्, मित्र का, बहुव्रीहि।

(vii) **अभ्युपेतार्थकृत्याः**– अभ्युपेता अर्थस्य कृत्या यैः,ते बहुव्रीहि, अभि+उप्+ √इण्+क्त, टाप्, अभ्युपेता, कृत्या– √कृ+क्यप्+टाप्।

(viii) **मन्दायन्ते**– √मन्द+ क्यष्+लट्, आत्मने. प्र.पु., बहुव.।

संजीवनी टीका– तामिति। चिरं विलसनात्स्फुरणात् खिन्नं विद्युदेव कलत्रं यस्य स भवान्सुप्ताः पारावताः कलरवा यस्यां तस्याम्। विविक्तायामित्यर्थः। 'पारावतः कलरव कपोतः' इत्यमरः। जनसंचार–स्तत्रासम्भावित एवेति भावः। कस्यांचिद्भवनवलभौ। गृहाच्छादनोपरिभाग इत्यर्थः। 'आच्छादनं स्याद्वलभी गृहाणाम्' इति हलायुधः। तां रात्रिं नीत्वा सूर्ये दृष्टे सति। उदिते सतीत्यर्थः। पुनरप्यध्वशेषं वाहयेत्। तथाहि सुहृदां मित्रणामभ्युपेतार्थस्यांगीकृतार्थस्य प्रयोजनस्य कृत्या क्रिया यैस्ते। अभ्युपेतसुहृदर्था इत्यर्थः। सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः। 'कृत्या क्रिया–देवतयोः कार्ये स्त्री कुपिते त्रिषु' इति यादवः। 'कृञः श च' इति चकारात् क्यप्, न मन्दायन्ते खलु न मन्दा भवन्ति हि। न विलम्बन्त इत्यर्थः। 'लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्' इति क्यष्। वा क्यपः इत्यात्मने–पदम्।।42।

अवतरणिका– इसी क्रम में विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से प्रातःकाल में कमलिनीरूपी खण्डिता नायिकाओं के अश्रुओं को पोंछने के लिए उद्यत सूर्य के मार्ग को छोड़ देने का परामर्श देते हुए कहता है कि–

तस्मिन्काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां
शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु।
प्रालेयास्त्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः।
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः।।43।।

अन्वय– तस्मिन् काले प्रणयिभिः खण्डितानाम् योषिताम् नयन–सलिलम् शान्तिम् नेयम्, अतः भानोः वर्त्म आशु त्यज, नलिन्याः

कमल–वदनात् प्रालेय–अस्त्रम् हर्तुम् प्रत्यावृत्तः, सः अपि त्वयि कररुधि अनल्प–अभ्यसूयः स्यात्।।43।।

अनुवाद– उस सूर्योदय के समय प्रेमियों द्वारा खण्डिता नायिकाओं के अश्रुओं को शान्त किया जाता है, इसलिए सूर्य के मार्ग को शीघ्र ही छोड़ देना, क्योंकि कमलिनी के कमलरूपी मुख से ओस रूपी अश्रुओं को पोंछने के लिए, लौटा हुआ वह सूर्य भी, तुम्हारे द्वारा किरणरूपी हाथों को रोक दिए जाने पर अत्यधिक क्रुद्ध हो जाएगा।

'चन्द्रिका'–प्रातःकाल के अवसर पर हमेशा ही खण्डिता नायिकाओं के अश्रुओं को प्रेमी लोग पोंछते हैं, इसलिए तुम्हें इस अवसर पर सूर्य का मार्ग नहीं रोकना चाहिए, क्योंकि वह भी तो इस समय अपनी प्रियतमा कमलिनी के कमलरूपी मुख के ओसरूपी आँसुओं को पोंछने के लिए वापस आया है। अतः यदि तुम ऐसा करोगे अर्थात् उस सूर्य के किरणरूपी हाथों को रोकोगे, तो निश्चय ही वह तुम्हारे प्रति अत्यधिक क्रोधित हो जाएगा। इसलिए तुम्हें सूर्य के मार्ग को छोड़कर ही अलकापुरी की ओर आगे बढ़ना चाहिए।

विशेष–(i) सूर्य, कमलिनी एवं मेघ तीनों का ही मानवीकरण अत्यन्त मनभावन बन पड़ा है। कवि की कल्पनाशीलता भी अतीव प्रशंसनीय है।

(ii) यहाँ कमलिनियों में खण्डिता नायिका की सुन्दर कल्पना की गयी है, क्योंकि उसका प्रेमी सूर्य उन्हें छोड़कर, रात्रि अन्यत्र व्यतीत करके अपने कपोलों पर दूसरी प्रियतमा के सिन्दूर को धारण किए हुए, उसके समीप आया है, जो अब उनके अश्रुरूपी ओस को पोंछने का उपक्रम करेगा।

(iii) इसीप्रकार सूर्य की किरणों में हाथों की तथा कमलिनियों के ऊपर स्थित ओस में अश्रुओं की कल्पना भी महनीय रही है।

(iv) संस्कृत साहित्य में अनेक प्रकार की नायिकाओं का उल्लेख किया गया है, उनमें 'खण्डिता' नायिका भी एक है, प्रेमी यदि नायिका को छोड़कर रात्रि अन्यत्र किसी दूसरी नायिका के पास

व्यतीत करता है और दूसरे दिन उस नायिका के साथ संयोग के चिह्नों को लेकर वापस पहली नायिका के पास आता है, तो पूर्व नायिका 'खण्डिता' कहलाती है।[1]

(v) सम्पूर्ण संस्कृत काव्य जगत् में कमलिनी सूर्य की प्रेमिका के रूप में वर्णित हुई है। इसलिए कवि ने यह सुन्दर कल्पना की है।

(vi) सूर्य को क्रुद्ध करने से अनिष्ट की आशंका है, इसीलिए कवि ने यहाँ उसके मार्ग को छोड़ने के लिए मेघ को परामर्श दिया है।

(vii) लिंग साम्य के कारण सूर्य और कमलिनी में नायक, नायिका के व्यवहार के आरोप करने से समासोक्ति अलंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(viii) इसीप्रकार सूर्य के मार्ग के त्यागरूप कार्य में उत्तरार्द्ध में प्रयुक्त वाक्यार्थ को हेतुरूप में प्रस्तुत करने से काव्यलिंग तथा 'कर' पद के श्लिष्ट होने से श्लेष अलंकार का भी प्रयोग हुआ है।

(ix)साथ ही, इन तीनों का अंगांगिभाव होने से संकर अलंकार की सृष्टि भी हुई है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **हर्तुम्**– √हृ+तुमुन्, हरण करने हेतु

(ii) **प्रणयिभिः**– प्रणय+इन्, तृतीया विभक्ति, बहुवचन।

(iii) **नयनसलिलम्**– नयनयोः सलिलम्, षष्ठी तत्पुरुष।

(iv) **नलिन्याः**–नलानि सन्ति अस्याः इति, तस्याः, कमलिनी के

(v) **कमलवदनात्**– कमलम् एव वदनम्, तस्मात् कर्मधारय।

(vi) **प्रालेयास्रम्**– प्रालेयम् एव अस्रम्, ततः आगतम्, इति।

(vii) **प्रत्यावृत्तः**– प्रति+आ+ √वृत्+क्त, लौटा हुआ ।

(viii) **अनल्पाभ्यसूयः**– न अल्पा इति, नञ्, अनल्पा अभ्यसूया यस्य सः, बहुव्रीहि, अत्यधिक क्रोधित, सूर्य का विशेषण।

(ix) **स्यात्**– √अस्+विधिलिङ्, प्र.पु., ए.व.,सम्भावनायां लिङ्।

---

[1]. पार्श्वमेति प्रियो यस्या अन्यसंयोग चिह्नितः।
सा खण्डितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकषायिता।। साहित्यदर्पण–3/75 ।

संजीवनी टीका– तस्मिन्निति। तस्मिन् काले पूर्वोक्ते सूर्योदय–काले प्रणयिभिः प्रियतमैः खण्डितानां योषिता नायिकाविशेषाणाम्। 'ज्ञाते ऽन्यासंगविकृते खण्डितेर्ष्याकषायिता' इति दशरूपके। नयनसलिलं शान्ति नेयं नेतव्यम्। नयतिर्द्विकर्मकः। अतो हेतोर्भानोर्वर्त्माशु शीघ्रं त्यज। तस्यावरको मा भूरित्यर्थः। विपक्षेऽनिष्टमाचष्टे– सोऽपि भानुः। नलान्यम्बुजानि यस्याः सन्तीति नलिनी पद्मिनी। 'तृणेऽम्बुजे नलं ना तु राज्ञि नाले तु न स्त्रियाम्' इति शब्दार्णवे। तस्याः स्वकान्तायाः कमलं स्वकुसुममेव वदनं तस्मात् प्रालेयं हिममेवास्रमश्रुहेतुं शमयितुं प्रत्यागतः।

नलिन्यश्च भर्तुर्भानोर्देशान्तरे नलिन्यन्तरगमनात् खण्डितात्वमि–त्याशयः। ततस्त्वयि। करानंशून्रुणद्धीति कररुत्। क्विप्। तस्मिन् कररुधि सति। हस्तरोधिनि सतीति च गम्यते। 'बलिहस्तांशवः कराः' इत्यमरः। अनल्पाभ्यसूयोऽधिकविद्वेषः स्यात्। प्रायेणेच्छाविशेषविघाताद् द्वेषो रोषविशेषश्च कामिनां भवतीति भावः। किंच 'आत्मानं चार्कमीशानं विष्णुं वा द्वेष्टि यो जनः। श्रेयांसि तस्य नस्यन्ति रौरवं च भवेद् ध्रुवम्।' इति निषेधात्कार्यहानिर्भविष्यतीति ध्वनिः।

अवतरणिका–इसप्रकार उज्जयिनी से सूर्य के मार्ग को अवरुद्ध न करते हुए, अलकापुरी की ओर बढ़ने पर आगे सर्वप्रथम गम्भीरा नदी मिलेगी, जिसके विषय में यक्ष, अपने मित्र मेघ से कहता है कि–

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्माऽपि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम्।
तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्या–
न्मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि।।44।।

अन्वय– गम्भीरायाः सरितः प्रसन्ने चेतसि इव पयसि, प्रकृति–सुभगः ते छाया–आत्मा अपि प्रवेशम् लप्स्यते, तस्मात् त्वम् अस्याः कुमुद–विशदानि चटुल–शफर–उद्वर्तन–प्रेक्षितानि धैर्यात् मोघी–कर्तुम् न अर्हसि।।44।।

अनुवाद– हे मेघ! गम्भीरा नायिका के निर्मल चित्त के समान, गम्भीरा नदी के स्वच्छ जल में, स्वभाव से सुन्दर तुम्हारा छायारूपी शरीर ही प्रवेश प्राप्त कर सकेगा, इसलिए तुम इस गम्भीरा नदी के कुमुद पुष्प के समान उज्ज्वल एवं चंचल मछलियों के उद्वर्तनरूपी चितवनों को धैर्यपूर्वक निष्फल करने में समर्थ नहीं हो (अर्थात् तुम्हें निष्फल नहीं करना चाहिए)

'चन्द्रिका'– इसके बाद तुम्हारे मार्ग में गम्भीरा नायिका के पूर्णतया निर्मल मन के समान, 'गम्भीरा' नामक नदी मिलेगी, जिसका जल अत्यधिक निर्मल होगा, इसलिए इस जल में केवल स्वभाव से सुन्दर तुम्हारा छायारूपी शरीर ही प्रवेश कर सकेगा अर्थात् तुम स्वयं उसमें प्रविष्ट नहीं हो सकोगे। इतना ही नहीं, गम्भीरा नदी की कुमुद के पुष्प के समान उज्ज्वल तथा चंचल, इधर–उधर घूमने वाली मछलियों रूपी चितवनों को तुम धैर्य धारण करके निष्फल करने में समर्थ नहीं हो सकोगे अर्थात् तुम उसकी प्रेमपूर्ण चंचल चितवन से निश्चय ही प्रभावित होकर आनन्द की अनुभूति करोगे।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में नायक–नायिकापरक अन्य अर्थ भी प्रतीत हो रहा है, जिसके कारण समासोक्ति अलंकार की सुन्दर अभिव्यंजना हो रही है।

(ii) गम्भीरा नामक छोटी सी नदी, जो मालवदेश में बहती है, इसके नाम से गम्भीरा नायिका की अभिव्यक्ति हुई है, मन से निर्मल, जो अपनी चितवन मात्र से ही नायक को प्रभावित कर लेती है।

(iii) वर्षा से पूर्व सभी नदियों का जल निर्मल होता है, जिसकी ओर यहाँ कवि द्वारा संकेत किया गया है।

(iv) कवि का अभिप्राय है कि जिसप्रकार गम्भीरा नायिका अनुरागयुक्त अपने हृदय में प्रिय की मूर्ति को धारण कर लेती है, वैसे ही यह गम्भीरा नदी अपने निर्मल जल में मेघ की परछाई अर्थात् छाया को प्रियतम के रूप के समान धारण कर लेगी।

(v) चित्त एवं जल का सादृश्य वर्णित होने से उपमा तथा 'उद्वर्तनप्रेक्षितानि' में रूपक, दोनों अलंकारों के साथ, इन दोनों का अंगांगिभाव होने के कारण संकर अलंकार का सौन्दर्य भी विद्यमान है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i)**प्रसन्ने**–प्र+ √सद्+क्त, स.वि.,ए.व.।

(ii) **प्रकृतिसुभगः**–प्रकृत्या सुभगः, तृ. तत्पु.। प्र+ √कृ+क्तिन्।

(iii) **लप्स्यते**– √लभ्+लृट्, आत्मने. प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iv) **कुमुदविशदानि**– कुमुदानि इव विशदानि, तानि, उप.समा.।

(v) **चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि**– चटुलाः शफराः, तेषाम् उद्वर्त–नानि तानि एव,प्रेक्षितानि,उद्+ √वृत्+ल्युट्,उद्वर्तन, प्र+ √ईक्ष्+क्त,प्रेक्षित।

(vi) **मोघीकर्तुम्**– अमोघानि मोघानि यथा सम्पद्यन्ते तथा कर्तुम्, गति तत्पुरुष, मोघ+ च्वि+ √कृ+तुमुन्, निष्फल करने के लिए।

(vii) **अर्हसि**– √अर्ह्+लट्, मध्यमपुरुष, एकवचन, योग्य हो।

संजीवनी टीका– गम्भीराया इति। गम्भीरा नाम सरित्। उदात्तनायिका च ध्वन्यते। तस्याः प्रसन्नेऽनुरक्तत्वाद्दोषरहितो चेतसीव प्रसन्नेऽतिनिर्मले पयसि। प्रकृत्या स्वभावेनैव सुभगः सुन्दरः। 'सुन्दरे–ऽधिकभाग्ये च दुर्दिनेतरवासरे। तुरीयांशे श्रीमति च सुभगः' इति शब्दार्णवे। ते तव छाया चासावात्मा च। सोऽपि प्रतिबिम्बशरीरं च प्रवेशं लप्स्यते। अपि शब्दात् प्रवेशमनिच्छोरपीति भावः। तस्माच्छायाद्वारापि प्रवेशावश्यं भावित्वादस्या गम्भीरायाः। कुमुदवद्विशदानि धवलानि चटुलानि शीघ्राणि शफराणां मीनानामुद्वर्तनान्युल्लुण्ठनान्येव प्रेक्षितान्य–वलोकनानि। 'त्रिषु स्याच्चटुलं शीघ्रम्' इति विश्वः। एतावदेव गम्भीराया अनुरागलिंगम्। धैर्यद्धाष्ट्र्यात्। वैयात्यादिति यावत्। मोघीकर्तुं विफली कर्तुं नार्हसि। नानुरक्ता विप्रलब्धव्येत्यर्थः। धूर्तलक्षणं तु–'क्लिश्नाति नित्यं गमितां कामिनीमतिसुन्दरः। उपैत्यरक्तां यत्नेन रक्तां धूर्तो विमुंचति।' इति।

अवतरणिका– इसी क्रम में स्वाभाविक रूप से प्रवाहित होती हुई, गम्भीरा नदी में दूसरी शृंगारिक चेष्टाओं की कल्पना करते हुए यक्ष, अपने मित्र मेघ से कहता है कि–

तस्याः किंचित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं
नीत्वा[1] नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम्।
प्रस्थानं ते कथमपि सखे! लम्बमानस्य भावि
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः।।45।।

अन्वय– सखे! प्राप्त–वानीर–शाखम्, किंचित् कर–धृतम् इव, मुक्त–रोधः नितम्बम् तस्याः नीलम्, सलिल–वसनम् नीत्वा, लम्बमानस्य ते प्रस्थानम् कथम् अपि भावि, ज्ञात–आस्वादः विवृत–जघनाम् विहातुम् कः समर्थः? ।।45।।

अनुवाद– हे मित्र! बेंत की शाखाओं तक पहुँचते हुए, इसलिए मानो हाथ में कुछ पकड़े हुए तटरूपी नितम्बों को छोड़े हुए, उस गभीरा नदी के जलरूपी वस्त्र को हटाकर झुके हुए, तुम्हारा प्रस्थान निश्चय ही कठिनतापूर्वक होगा, क्योंकि भोग के आनन्द को जानने वाला, अनावृत्त जँघाओं को छोड़ने में कौन व्यक्ति समर्थ हो सकता है?

'चन्द्रिका'– यहाँ कवि ने गम्भीरा नदी में इसप्रकार की नायिका की कल्पना की है, जिसके नितम्बों से उसका प्रियतम वस्त्र को खिसकाने की चेष्टा करता है, किन्तु वह रमणी उस वस्त्र को अपने हाथ से थाम लेती है, ठीक उसीप्रकार मेघ ने अपनी प्रेमिका गम्भीरा के जलरूपी वस्त्र को उसके नितम्बों से हटा दिया है, तो उसे अपने वेतसलता रूपी हाथों से गम्भीरा ने थाम लिया है। इसप्रकार की विवृत जघना को भला कौन व्यक्ति छोड़ने में समर्थ हो सकता है? जिसने पूर्व में काम के रस का आस्वादन कर लिया हो।

विशेष–(i) यहाँ पर गम्भीरा नदी में विवृत जघना नायिका का, मेघ में रसिक नायक का, नदी के तट में नितम्ब का, जल में वस्त्र का तथा वानीर शाखा में हाथ का आरोप करने के कारण 'सांगरूपक' अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।

[1]. पाठभेद– हृत्वा।

(ii) ग्रीष्म ऋतु में नदियों का जल, तट को छोड़कर मध्य में आ जाता है, किन्तु फिर भी वेंत की लताएँ थोड़ा झुककर उसका स्पर्श करती रहती हैं, इसी दृश्य में महाकवि ने उक्त शृंगारिक कल्पना की है, जो महाकवि के व्यक्तित्व को भी अभिव्यक्त करती है।

(iii) यहाँ प्रयुक्त 'करधृतमिव' में उत्प्रेक्षालंकार का तथा अन्तिम चरण में प्रयुक्त सामान्य अर्थ से पूर्व में प्रयुक्त विशेष अर्थ का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।

(iv) सम्भोग शृंगार की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है, जो सहृदय के चित्त को आह्लादित करने वाली है।

(v) इसके अतिरिक्त नायक–नायिका के व्यवहारों की अभि–व्यक्ति होने से समासोक्ति अलंकार का प्रयोग भी दर्शनीय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **विहातुम्**– वि+ √हा+तुमुन्।

(ii) **प्राप्तवानीरशाखम्**– प्राप्ताः वानीराणां शाखाः येन तस्मिन् वा, तत् बहुव्रीहि समास, बेंत की शाखाओं तक पहुँचे हुए।

(iii) **करधृतम्**–करेण धृतम्, तत् तृतीया तत्पुरुष, हाथ से थामे

(iv) **मुक्तरोधोनितम्बम्**– रोध एव नितम्बः, मुक्तः रोधो नितम्बः, येन तत्, बहुव्रीहि समास, **मुक्त**– √मुच्+क्त, √रुध्+घञ्, **रोधः**।

(v) **सलिलवसनम्**– सलिलमेव वसनम्, तत्, कर्मधारय समास।

(vi) **ज्ञातस्वादः**– ज्ञातः स्वादः येन सः, बहुव्रीहि, √ज्ञा+क्त,

(vii) **विवृतजघनाम्**– विवृतं जघनं यस्याः, सा ताम् बहुव्रीहि।

(viii) **विहातुम्**– वि+ √हा+तुमुन्, **आस्वादः**–आ+ √स्वद्+घञ्

संजीवनी टीका– **तस्या इति**। हे सखे! प्राप्ता वानीरशाखा वेतसशाखा येन तत्तथोक्तमतएव किंचिदीषत्करधृतं हस्तावलंबितमिव स्थितम्। मुक्तस्त्यक्तो रोधस्तटमेव नितम्बः कटिर्येन तत्तथोक्तम्। 'नितम्बः पश्चिमे श्रोणिभागेऽद्रिकटके कटौ' इति यादवः। नीलं कृष्ण–वर्ण तस्या गम्भीरायाः सलिलमेव वसनं नीत्वाऽपनीय। प्रस्थानसमये प्रेयसीवसनग्रहणं विरहतापविनोदनार्थमिति प्रसिद्धम्। लम्बमानस्य पीत–

सलिलभराल्लम्बमानस्य। अन्यत्र जघनारूढस्य। ते तव प्रस्थानं प्रयाणं कथमपि कृच्छ्रेण भावि। कृच्छ्रत्वे हेतुमाह ज्ञातेति। ज्ञातस्वादोऽनुभूतरसः कः पुमान् विवृतं प्रकटीभूतं जघनं कटिस्तत्पूर्वभागो वा यस्यास्ताम् ' जघनं स्यात्कटौ पूर्वश्रोणिभागापरांशयोः' इति यादवः। विहातुं त्यक्तुं समर्थः। न कोऽपीत्यर्थः।।45।।

अवतरणिका– तत्पश्चात् विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से कहता है कि इसप्रकार गम्भीरा नदी के जल को ग्रहण करके, तुम देवगिरि पर्वत की ओर आगे बढ़ना, तो वायु भी तुम्हारा सहयोगी होगा–

त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः
स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः।
नीचैर्वास्यात्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरिं ते
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम्।।46।।

अन्वय– त्वत् निष्यन्द–उच्छ्वसित–वसुधा–गन्ध–सम्पर्क–रम्यः स्रोतोरन्ध्रः, ध्वनित–सुभगम् दन्तिभिः पीयमानः, कानन–उदुम्बराणाम् परिणमयिता शीतः वायुः, देव–पूर्वम् गिरिम् उप–जिगमिषोः ते नीचैः वास्याति।।46।।

अनुवाद– हे मेघ! तुम्हारे बरसने से फूली हुई पृथ्वी के गन्ध के सान्निध्य से रमणीय, सूँड़ों के छिद्रों से ध्वनि उत्पन्न होने से सुन्दरतापूर्वक हाथियों द्वारा पिए जाते हुए, वन के गूलरों को परिपक्व कर देने वाला, शीतल वायु देवगिरि के पास जाने के अभिलाषी, तुम्हारे नीचे की ओर से ही बहेगा।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में कवि ने प्रमुखरूप से चार बातों का कथन किया है। **प्रथम**, जब तुम गम्भीरा नदी के जल का पान करके देवगिरि के पास जाने का विचार करोगे, तो मार्ग में तुम्हारे द्वारा की गयी जलवृष्टि से पृथ्वी की ऊपर की परत थोड़ा फूल जाएगी। **द्वितीय**, मिट्टी के फूलने से उससे सोंधी–सोंधी गन्ध निकलेगी। **तृतीय**,

वह गन्ध हाथियों को अत्यधिक प्रिय है, इसलिए वे सभी अपनी सूँड़ों के छिद्रों से ध्वनि निकालते हुए प्रसन्नतापूर्वक उस गन्ध का पान करेंगे। **चतुर्थ,** इस अवसर पर तुम्हारी अनुकूल दिशा में प्रवाहित होने वाला, शीतल वायु वन में स्थित गूलर के फलों को पकाने वाला होगा।

विशेष–(i) प्रो. विल्सन के अनुसार– देवगिरि वस्तुतः आधुनिक देवगढ़ है, जो चम्बल नदी से दक्षिण में मालवा के केन्द्र में विद्यमान है। आधुनिक विद्वान् भी इस मत से सहमत हैं।

(ii) ग्रीष्म ऋतु में पृथ्वी अत्यधिक संतप्त हो जाती है एवं वर्षाऋतु में जब मेघ से प्रथम जलबिन्दु पृथ्वी पर गिरती हैं, तो इससे धरती की ऊपर की मिट्टी थोड़ा फूल जाती है और उससे भीनी–भीनी खुशबू निकलती है, जिसे हाथी अपनी सूँड़ों को ऊपर की ओर उठाकर अत्यन्त प्रेम के साथ सूँघते हैं, कवि ने यहाँ उसी ओर संकेत किया है।

(iii) वायु का नीचे से बहने का अभिप्राय बादलों के अनुकूल मानसून के होने से ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि मेघ की दिशा का निर्धारण पूर्णरूप से वायु के प्रवाह पर निर्भर करता है।

(iv) आषाढ़ माह की प्रथम बूँदों के साथ ही गूलर का पकना भी आरम्भ हो जाता है, उपर्युक्त उल्लेखों से महाकवि का हस्तिविज्ञान एवं वनस्पति विज्ञान विषयक गहन ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **शीतः**– शीतमस्याऽस्तीति।

(ii) **देवपूर्वम्**– देवः देवशब्दः पूर्व यस्य सः, तम् बहुव्रीहि समास

(iii) **उपजिगमिषोः**– उपगन्तुमिच्छुः, तस्य, उप+ √गम्+सन्+उ, षष्ठी विभक्ति, एक वचन, पास जाने के इच्छुक ।

(iv) **परिणामयिता**– परि+ √नम्+णिच्+तृच्, प्रथमा वि., एकव.।

(v) **पीयमानः**– √पा+क्यच्+शानच्, पिया जाता हुआ।

(vi) **काननोदुम्बराणाम्**– काननः उदुम्बराः तेषाम्, सप्त. तत्पु.।

(vii) **दन्तिभिः**– प्रशस्ताः दन्ताः एषां सन्ति, इति, तैः, तृ.ब.व.।

(viii) **स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगम्**– स्रोतसः रन्ध्राणि, तेषां ध्वनितः, तेन सुभगं यथा तथा, षष्ठी तत्पुरुष, तृतीया तत्पुरुष।

(ix) **निष्यन्दः**–नि+ √स्यन्द्+घञ्, बहना, बरसना, **उच्छ्वसित**– उत्+ √श्वस्+ क्त, गन्ध, **सम्पर्कः**– सम्+ √पृच्+घञ्।

संजीवनी टीका–त्वदिति। त्वन्निष्यन्देन तव वृष्ट्योच्छ्वसिताया उपबृंहिताया वसुधाया भूमेर्गन्धस्य सम्पर्केण रम्यः। सुरभिरित्यर्थः। स्रोतः शब्देनेन्द्रियवाचिना तद्विशेषो घ्राणं लक्ष्यते। 'स्रोतोऽम्बुवेगेन्द्रिययोः' इत्यमरः। स्रोतोरन्ध्रेषु नासाग्रकुहरेषु यद् ध्वनितं शब्दस्तेन सुभगं यथा तथा दन्तिभिर्गजैः पीयमानः। वसुधागन्धलोभादाघ्रायमाण इत्यर्थः। अनेन मान्द्यमुच्यते। काननेषु वनेषूदूम्बराणां जन्तूफलानाम् 'उदुम्बरो जन्तुफलो यज्ञांगो हेमदुग्धकः' इत्यमरः। परिणमयिता परिपाकयिता। 'मितां ह्रस्वः' इति ह्रस्वः। शीतो वायुः। देवपूर्वं देवशब्दपूर्वं गिरिम्। देवगिरिमित्यर्थः।

उपजिगमिषोरुपगन्तुमिच्छोः। गमेः सन्नन्तादु प्रत्ययः। ते तव नीचैः शनैर्वास्यति। त्वां बीजयिष्यतीत्यर्थः। सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठी। देवपूर्वं गिरिम्' इत्यत्र देवपूर्वत्वं गिरिशब्दस्य न तु संज्ञिनस्तदर्थस्येति संज्ञायाः संज्ञित्वाभावादवाच्यवचनं दोषमाहुरालंकारिकाः, तदुक्तमेका– वल्याम्– यदवाच्यस्य वचनमवाच्यवचनं हि तत्' इति। समाधानं तु देवशब्दविशेषितेन गिरिशब्देन शब्दपरेण मेघोपगमनयोग्यो देवगिरिर्लक्ष्यत इति कथंचित्सम्पाद्यम्।।46।।

अवतरणिका– इसके बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से पुनः कहता है कि देवगिरि पर विद्यमान भगवान् कार्तिकेय पर तुम अपनी वृष्टिरूपी पुष्पों की वर्षा करना–

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान्व्योमगंगाजलार्द्रैः।
रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना–
मत्यादित्यं हुतवहमुखे सम्भृतं तद्धि तेजः।।47।।

अन्वय– तत्र नियत–वसतिम् स्कन्दम् पुष्पमेघी–कृत–आत्मा भवान्, व्योम–गंगा–जलार्द्रैः पुष्पासारैः स्नपयतु। हि तत् वासवीनाम् चमूनाम् रक्षा–हेतोः, नव–शशि–भृता, हुतवह–मुखे सम्भृतम् अत्यादित्यम् तेजः ।।47।।

अनुवाद– हे मेघ! उस देवगिरि पर स्थायीरूप से रहने वाले, कुमार कार्तिकेय को पुष्पों की वर्षा करने वाले मेघ बनकर, तुम आकाश गंगा के जल से भीगे हुए पुष्पों की वर्षा से स्नान कराना, क्योंकि वह कार्तिकेय वस्तुतः इन्द्र की सेना की रक्षा के लिए, नूतन चन्द्रमा को धारण करने वाले महादेव द्वारा, अग्नि के मुख में एकत्र किया हुआ सूर्य से भी बढ़कर तेजोरूप है।

'चन्द्रिका'– उस देवगिरि पर कुमार कार्तिकेय वस्तुतः स्थायी रूप से निवास करते हैं, इसलिए तुम्हें वहाँ पर पुष्पों की वर्षा करने वाले, मेघ का रूप धारण करके, आकाश में स्थित गंगा के जल से भीगे हुए, पुष्पों की वर्षा से भगवान् कार्तिकेय को स्नान कराना है, क्योंकि वे वस्तुतः देवराज इन्द्र की भी सेना की रक्षा करने के लिए, नए–नए चन्द्रमा को मस्तक पर धारण करने वाले, भगवान् शंकर द्वारा अग्नि के मुख में इकट्ठे किए हुए, सूर्य से भी बढ़कर तेज का स्वरूप हैं। इसलिए तुम्हें उनकी लेशमात्र भी उपेक्षा नहीं करनी है।

विशेष–(i) पौराणिक मान्यता के अनुसार तारकासुर के वध के उपरान्त देवों द्वारा प्रार्थना किए जाने पर भगवान् कार्तिकेय इसी देव गिरि पर माँ पार्वती और भगवान् शिव के साथ स्थायीरूप से निवास करते हैं।

(ii) कवि ने मेघ से यहाँ पुष्पों की वृष्टि करने की अपेक्षा की है, जो आकाश गंगा के जल से पवित्र किए हुए हों, क्योंकि मेघ तो अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने में सक्षम हैं।

(iii) पुराणों के अनुसार गंगा की स्थिति आकाश, पृथ्वी तथा पाताल तीनों स्थानों पर विद्यमान है, क्योंकि इसे देव, मनुष्य तथा

नागों के सन्तापों को हरण करने वाला माना गया है। यही कारण है कि इसे 'त्रिपथगा' भी कहते हैं।

(iv) भगवान् शंकर नूतन चन्द्रमा को अपने मस्तक पर धारण करते हैं, इस विषय में पुराणों में कथा मिलती है, कि समुद्रमन्थन के अवसर पर निकले हलाहल की गर्मी को शान्त करने के लिए, उन्होंने अपने मस्तक पर शीतल चन्द्रमा की नूतन कला को धारण किया था।

(v) प्रस्तुत श्लोक में 'हुतवहमुखे संभृतम्' पद भी एक पौराणिक कथा की ओर संकेत कर रहा है। तीनों लोकों को संत्रस्त करने वाले तारकासुर के वध के लिए भगवान् शंकर से प्रार्थना करने पर उन्होंने पार्वती में अपने वीर्य का आधान किया, जो उसे सहन न कर सकी, तो उसने इसे अग्नि के मुख में रख दिया। बाद में सहन न होने पर उन्होंने भी इसे गंगा में डाल दिया, अन्त में गंगा ने भी सहन न कर पाने पर इसे अपने तट पर उगे हुए शरकण्डों में डाल दिया, वहीं पर देवों के सेनापति कार्तिकेय का जन्म हुआ, जिसका पालन पोषण छः कृत्तिकाओं द्वारा किया गया। इसीलिए भगवान् कार्तिकेय को शरजन्मा भी कहते हैं।

(vi) महाभारत के अनुसार वीर्य के स्खलित होने से ये 'स्कन्द' कहलाए तथा गुहा में निवास करने के कारण इन्हें 'गुह' कहा जाता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **रक्षाहेतोः**— रक्षायाः हेतोः, ष.तत्पु.।

(ii) **नियतवसतिम्**— नियता वसतिः यस्य सः, तम् बहुव्रीहि।

(iii) **पुष्पमेघीकृतात्मा**— पुष्पाणां मेघः, अपुष्पमेघः पुष्पमेघः कृति, पुष्पमेघीकृतः आत्मा यस्य सः, **पुष्पमेघी**— पुष्पमेघ+च्वि+ √कृ+क्त,

(iv) **पुष्पासारैः**— पुष्पाणाम् आसाराः, तै, षष्ठी तत्पुरुष।

(v) **स्नपयतु**— √स्ना+णिच्+लोट्, प्रथमपुरुष, एक वचन,

(vi) **व्योमगंगाजलार्द्रैः**— व्योम्नि गंगा, तस्याः जलम्, तेन आर्द्राः, तैः। आकाश गंगा के जलों से आर्द्र अर्थात् गीले उनके द्वारा।

(vii) **नवशशिभृता**— शशोऽस्यास्तीति शशी, शश+इनि, नव चासौ शशिः, तम् नवशशिनं विभर्ति इति नवशशिभूतः,तेन तृतीया, ए.व.।

(viii) **वासवीनाम्**— वासवस्य इमा वासव्यः, वासव+अण्+ङीप्।

(ix) **हुतवहमुखे**— वहतीति वहः, हुतस्य वहः, तस्य मुखम्, तस्मिन्, √हुत्+क्त, हुतः, √वह्+अच्—वहः।

(x) **अत्यादित्यम्**— आदित्यम् अतिक्रान्तम्, तत्पुरुष समास।

संजीवनी टीका— तत्रेति। तत्र देवगिरौ नियता वसतिर्यस्य तम् नित्यसन्निहितमित्यर्थः। पुरा किल तारकाख्यासुरविजयसंतुष्टः सुर–प्रार्थनावशाद्भगवान् भवानीनन्दनः स्कन्दो नित्यमहमिह सह शिवाभ्यां वसामीत्युक्त्वा तत्र वसतीति प्रसिद्धिः। स्कन्दं कुमारं स्वामिनम्। पुष्पाणां मेघः पुष्पमेघः। पुष्पमेघीकृतात्मा कामपत्वात् पुष्पवर्षुकमेघीकृतविग्रहः सन् व्योमगंगाजलार्द्रैः। पुष्पासारैः पुष्पसंपातैः। 'धारासंपात आसारः' इत्यमरः। भवान्स्वयमेव स्नपयत्वभिषिंचतु। स्वयं पूजाया उत्तमत्वादिति भावः। तथा च शम्भुरहस्ये—'स्वयं यजति चेद् देवमुत्तमा सोदरात्मजैः। मध्यमा या यजेद् भृत्यैरधमा याजनक्रिया।' इति। स्कन्दस्य पूज्यत्वसमर्थनेनार्थेना–र्थान्तरं न्यस्यति रक्षेति। तत् भगवान् स्कन्द इत्यर्थः। विधेयप्राधान्यान्न–पुंसकनिर्देशः। वासवस्येमा वासव्यः। 'तस्येदम्' इत्यण्। तासां वासवी–नामैन्द्रीणां चमूनां सेनानां रक्षाहेतो रक्षायाः कारणेन। रक्षार्थमित्यर्थः। षष्ठी हेतुप्रयोगे' इति षष्ठी। नवशशिभृता भगवता चन्द्रशेखरेण। वहतीति वहः। पचाद्यच्। हुतस्य वहो हुतवहो वह्निस्तस्य मुखे सम्भृतं संचितम्। आदित्यमतिक्रान्तमत्यादित्यम्। 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इति समासः। तेजो हि साक्षाद्भगवतो हरस्येव मूर्त्यन्तरमित्यर्थः। अतः पूज्यमिति भावः। मुखग्रहणं तु शुद्धत्वसूचनार्थम्। तदुक्तं शम्भुरहस्ये—'गवां पश्चाद् द्विजस्याङ्घ्रिर्योगिनां हृत्कवेर्वचः। परं शुचितमं विद्यान्मुखं स्त्रीवह्निवाजिनाम्। इति।।47।।

अवतरणिका— तत्पश्चात् विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से कहता है कि उस देवगिरि पर स्थित भगवान् कार्तिकेय की पुष्प–वृष्टि द्वारा

पूजा करने के बाद, उसके वाहन मोर को भी अपने मधुर गर्जन से तुम नृत्य अवश्य कराना–

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति।
धौतापांगं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूरं
पश्चाददद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः।।48।।

अन्वय– ज्योतिः लेखा–वलयि गलितम् यस्य, बर्ह–भवानी पुत्र–प्रेम्णा, कुवलय–दल–प्रापि कर्णे करोति, हर–शशि–रुचा धौत–अपांगम् पावकेः, तम् मयूरम् पश्चात् अद्रि–ग्रहण–गुरुभिः गर्जितैः नर्तयेथाः।।48।।

अनुवाद– **कान्ति की रेखाओं के मण्डल से युक्त, गिरे हुए जिनके पंख को पार्वती, पुत्र–स्नेह से नीलकमल की पंखुड़ियों के साथ, अपने कान में धारण करती हैं, महादेव के सिर पर विद्यमान चन्द्रमा, कान्ति से धुले हुए नेत्र के प्रान्त भाग वाले, कार्तिकेय के वाहन उस मोर को, बाद में पर्वत द्वारा ग्रहण करने के कारण, प्रतिध्वनि से बढ़े हुए गर्जनों द्वारा नृत्य कराना।**

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में महाकवि ने भगवान् कार्तिकेय के वाहन मोर की महिमा का कथन किया है, जो उनकी सेवा के कारण उसे प्राप्त है। **प्रथम** तो यह कि उसे पूँछ के रूप में ऐसे पंखों की प्राप्ति हुई है, जो चमकती हुई कान्ति की रंगीन गोलाकार रेखाओं से युक्त होने से अत्यधिक सुन्दर प्रतीत होते हैं। **द्वितीय**, नृत्य करते हुए जब यही पंख यदि पृथ्वी पर गिर जाता है, तो उसे कार्तिकेय की माता पार्वती अपने कान में, कमल की पंखुडी के स्थान पर सम्मान देते हुए धारण कर लेती हैं। **तृतीय**, भगवान् कार्तिकेय के वाहन इस मोर के नेत्रों के प्रान्त भाग शिव के मस्तक पर स्थित चन्द्रमा की कान्ति से धुले हुए हैं। **चतुर्थ**, इसप्रकार की विशेषताओं वाले इसी मोर को हे

मेघ! तुम पर्वत के द्वारा ग्रहण करने से प्रतिध्वनि के रूप में बढ़े हुए गर्जनों द्वारा नृत्य अवश्य कराना।

विशेष–(i) महाकवि की भगवान् कार्तिकेय के प्रति गहन आस्था एवं श्रद्धा की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) इसके अतिरिक्त मोरपंख में स्थित चमकती हुई रंगीन गोल रेखाओं तथा उनके वर्षाऋतु में गिरने के उल्लेख से महाकवि का प्राणिविज्ञान, विशेषरूप से मयूर–विज्ञान भी अभिव्यंजित हुआ है।

(iii) अपने पुत्र कार्तिकेय के वाहन मोर का पंख पृथ्वी पर गिरने के बाद, पार्वती द्वारा उसे कान में नीलकमल दल के साथ या उसके स्थान पर आभूषणरूप में धारण करने की बात का उल्लेख करने से उनका मोर के प्रति 'पुत्र वात्सल्य' भी प्रदर्शित हुआ है।

(iv) उपर्युक्त श्लोक में प्रतिध्वनि का उल्लेख करने से महाकवि का भौतिक विज्ञान विषयक ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है, क्योंकि यह शाश्वत एवं वैज्ञानिक सत्य है कि कोई भी ध्वनि किसी ऊँचे पर्वत या दीवार से टकराकर प्रतिध्वनि के रूप में बढ़कर, वापस हमारे पास ही आ जाती है, कवि इस तथ्य से भलीभाँति परिचित हैं।

(v) ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने इस देवगिरि की यात्रा करके, भगवान् कार्तिकेय के दर्शन अवश्य किए थे।

(vi) श्रीकृष्ण भी मयूरपंख को अपने मस्तक पर धारण करते हैं तथा उन्हीं का अनुकरण करके प्राचीन काल में स्त्रियाँ भी अपनी सौन्दर्य वृद्धि के लिए इसे अपने कानों में लगाती थीं।

(vii) यहाँ पर दो अर्थ सम्भव हैं। **प्रथम,** पार्वती नीलकमल दल के स्थान पर गिरे हुए मोर पंख को धारण करती हैं। **द्वितीय,** वे इसे नीलकमल दल के साथ दूसरे कान में धारण करती हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **भवानी**– √भव+आनुक्+ङीप्।

(ii) **ज्योतिर्लेखावलयि**– ज्योतिषः लेखाः, तासां वलयम्, तत् अस्ति अस्य इति ज्योतिर्लेखावलय+ मत्वर्थे इनि ।

(iii) **कुवलयदलप्रापि**– कुवलयस्य दलं, तत् प्राप्नोति यथा स्यात् तथा, प्रापि– प्र+ √आप्+णिनि, सप्तमी, एकवचन।

(iv) **धौताऽपांगम्**– धौतौ अपांगौ यस्य तम्, बहुव्रीहि समास।

(v) **हरशशिरुचा**– हरस्य शशिः या हरशिरः स्थितः शशिः, तस्य रुक्, तया। षष्ठी तत्पुरुष, शिव के चन्द्रमा की कान्ति द्वारा।

(vi) **अद्रिग्रहणगुरुभिः**– अद्रेः ग्रहणं, तेन गुरुः, तैः, √ग्रह्+ल्युट्

(vii) **नर्तयेथाः**– √नृत्+णिच्, आत्मने. विधिलिंग, म.पु., ए.व.।

संजीवनी टीका– ज्योतिरिति। ज्योतिषस्तेजसो लेखा राजयस्तासां वलयं मण्डलं यस्यास्तीति तथोक्तम्। गलितं भ्रष्टम्। न तु लौल्यात् स्वयं छिन्नमिति भावः। यस्य मयूरस्य बर्हं पिच्छम् 'पिच्छबर्हे नपुंसके' इत्यमरः। भवानी गौरी। पुत्रप्रेम्णा पुत्रस्नेहेन कुवलयस्य दलं पत्रं तत्प्रापि तद्योगे यथा तथा कर्णे करोति। दलेन सह धारयतीत्यर्थः। यद्वा कुवलयस्य दलप्रापि दलभाजि दलार्हे कर्णे करोति। क्विन्तासप्तमी। दलं परिहृत्य तत्स्थाने बर्हं धत्त इत्यर्थः। नाथस्तु 'कुवलयदलक्षेपि' इति पाठमनुसृत्य 'क्षेपो निन्दासारणं वा' इति व्याख्यातवान्। हरशशिरुचा हरशिरश्चन्द्रिकया धौतापांगं स्वतोऽपि शौकल्यादतिधवलितनेत्रान्तम्। 'अपांगौ नेत्रयोरन्तौ' इत्यमरः। पावकस्याग्नेरपत्यं पावकिः स्कन्दः। 'अत इञ्' इति इञ्। तस्य तं पूर्वोक्तं मयूरं पश्चात्पुष्पाभिषेचनानन्तरमद्रेर्देवगिरेः कर्तुः। ग्रहणेन गुहासंक्रमणेन गुरुभिः प्रतिध्वानमहद्भिरित्यर्थः। गर्जितैर्नर्तयेथा नृत्यं कारय। मार्दंगिकभावेन भगवन्तं कुमारमुपास्स्वेति भावः। 'नर्तयेथाः' इत्यत्र 'अणावकर्मकाच्चितवत् कर्तृकात्' इत्यात्मनेपदापवादः। 'निगरणचलनार्थेभ्यश्च' इति परस्मैपदं न भवति, तस्य 'न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः' इति प्रतिषेधात्।।48।।

अवतरणिका– इसप्रकार सरकण्डों के वन में उत्पन्न हुए भगवान् कार्तिकेय के मोर को नर्तन कराने के बाद, विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से रन्तिदेव की कीर्ति स्वरूपा चर्मण्वती नदी के सम्मान में झुक जाने की बात का उल्लेख करते हुए कहता है कि–

आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लंधिताध्वा
सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्वीणिभिर्मुक्तमार्गः।
व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्
स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम्।।49।।

अन्वय–एनम् शर–वण–भवम्, देवम् आराध्य, वीणिभिः सिद्ध–द्वन्दैः जल–कण–भयात् मुक्त–मार्गः, उल्लंघित–अध्वा सुरभित–नय–आलम्भजाम् भुवि स्रोतो मूर्त्या परिणताम्, रन्तिदेवस्य कीर्तिम् मानयिष्यन् व्यालम्बेथाः।।49।।

अनुवाद– इन सरकण्डों के वन में उत्पन्न हुए, स्वामी कार्तिकेय की उपासना करके, वीणाधारण करने वाले सिद्ध युगलों द्वारा जल–बिन्दुओं के गिरने के भय से छोड़े हुए, गर्म मार्ग वाले तुम, कुछ दूर चलकर, 'गवालभ्य यज्ञ' से उत्पन्न पृथ्वी के नदीरूप में परिवर्तित महाराज रन्तिदेव की कीर्तिरूप 'चर्मण्वती नदी' का सम्मान करते हुए थोड़ा झुक जाना।

'चन्द्रिका'– सरकण्डों के वन में उत्पन्न भगवान् कार्तिकेय को प्रसन्न करने के लिए, आकाशचारी सिद्ध युगल, उनकी स्तुति वीणा वादन के साथ करते हैं, तुम्हारे द्वारा की जाने वाली वर्षा के कारण उसकी बूँदों से वीणा के खराब होने का डर है, इसलिए वे तुम्हारा मार्ग छोड़कर अलग खड़े हो जाएँगे। इसके बाद तुम थोड़ा सा मार्ग तय करके, गवालम्भ यज्ञ से उत्पन्न होने वाली एवं नदी रूप में परिवर्तित राजा रन्तिदेव की कीर्तिस्वरूपा चर्मण्वती नदी को सम्मान प्रदान करते हुए थोड़ा झुक जाना।

विशेष–(i) **रन्तिदेव**– भरतवंश में उत्पन्न दशपुर के प्रतापी, दानदाता एवं विशाल यज्ञों के कर्ता राजा, जो स्वयं अनेक दिनों तक भूखे रहकर भी अतिथि सेवा के लिए प्रसिद्ध थे। यहाँ कवि ने उन्हीं की ओर संकेत किया है।

(ii) यहाँ पर 'शरवणभवम्' पद कार्तिकेय के जन्म विषयक वैशिष्ट्य का कथन करने के लिए प्रयोग किया गया है।

(iii) महाभारत एवं पुराणों[1] में राजा रन्तिदेव द्वारा किए गए 'गोमेध यज्ञ' की ओर संकेत किया गया है तथा उसी के परिणामस्वरूप चर्मण्वती नदी के प्रवाहित होने की कथा की ओर भी इंगित किया है। यही चर्मण्वती नदी वस्तुतः वर्तमान में चम्बल कहलाती है।

(iv) प्रस्तुत श्लोक में कीर्ति एवं चर्मण्वती नदी का भेद होने पर भी अभेद का अध्यवसाय किया गया है। अतः अतिशयोक्ति अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **आराध्य**– आ+ √राध्+क्त्वा(ल्यप)

(ii) **शरवणभवम्**– शराणां वनम्, तत्र भवः, यस्य सः, तम्।

(iii) **सिद्धद्वन्द्वैः**– सिद्धानां द्वन्द्वानि, तैः, षष्ठी तत्पुरुष।

(iv) **जलकणभयात्**– जलस्य कणाः, तेभ्यः भयात्, ष.तत्पु.।

(v) **मुक्तमार्गः**– मुक्तः मार्गः, यस्य सः, बहुव्रीहि समास।

(vi) **उल्लिंघिताध्वा**– उल्लंघितः अध्वा येन सः, बहुव्रीहि।

(vii) **सुरभितनयालम्भजाम्**– सुरभेः तनया, तासाम् आलम्भः, तस्मात् जाता, ताम्, षष्ठी एवं उपपद तत्पुरुष समास।

(viii) **स्रोतोमूर्त्या**– स्रोतसः मूर्तिः, तया, प्रवाहरूप से, ष. तत्पु.।

(ix) **मानयिष्यन्**– √मान्+णिच्+शतृ, सम्मान करते हुए।

(x) **व्यालम्बेथाः**– वि+आ+ √लम्ब्+ विधिलिङ्, म.पु, एकवचन।

संजीवनी टीका– आराध्येति। एनं पूर्वोक्तं शरा बाणतृणानि। 'शरो बाणे बाणतृणे' इति शब्दार्णवे। तेषां वनं शरवणम्। 'प्रतिरन्तः शर–' इत्यादिना णत्वम्। तत्र भवो जन्म यस्य तं शरवणभवम्। 'अवर्ज्यो बहुव्रीहिर्व्यधिकरणो जन्माद्युत्तरपदः' इति वामनः। अवज्योऽगतिकत्वादा–श्रयणीय इत्यर्थः। देवं स्कन्दम्। 'शरजन्मा षडानन' इत्यमरः। आराध्यो–पास्य। वीणिभिर्वीणावद्भिः। व्रीह्यादित्वादिनिः। सिद्धद्वन्द्वैः सिद्धमिथुनैः।

---

[1]. महाभारत शान्तिपर्व, सर्ग–29, भागवतपुराण–9/21।

भगवन्तं स्कन्दमुपवीणयितुमागतैरिति भावः। जलकणभयात्। जलसेकस्य वीणाक्वणनप्रतिबन्धकत्वादिति भावः।

मुक्तमार्गस्त्यक्तवर्त्मा सन्नल्लंघिताध्वा। कियन्तमध्वानं गत इत्यर्थः। सुरभितनयानां गवामालम्भेन संज्ञपनेन जायत इति तथोक्ताम्। भुवि लोके स्रोतोमूर्त्या प्रवाहरूपेण परिणतां रूपविशेषमापन्नां रन्तिदेवस्य दशपुरपतेर्महाराजस्य कीर्तिम्। चर्मण्वत्याख्यां नदीमित्यर्थः। मानयिष्यन् सत्कारयिष्यन् व्यालम्बेथाः। आलम्ब्यावतरेरित्यर्थः। पुरा किल राज्ञो रन्तिदेवस्य गवालम्भेष्वेकत्र संभृताद्रक्तनिष्यन्दाच्चर्मराशेः काचिन्नदी सस्यन्दे। सा चर्मण्वतीत्याख्यायत इति।।49।।

अवतरणिका– इसके पश्चात् महाकवि, मेघ के चर्मण्वती नदी में जल लेने के लिए, किंचित् झुके होने की शोभा का सुन्दर परि-कल्पना द्वारा वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे
तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम्।
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी–
रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम्।।50।।

अन्वय– शार्ङ्गिणः वर्ण–चौरे त्वयि जलम् आदातुम् अवनते, गगन–गतयः पृथुम् अपि दूरभावात् तनुम् तस्याः सिन्धोः प्रवाहम् दृष्टीः आवर्ज्य एकम् स्थूल–मध्य–इन्द्र–नीलम् भुवः मुक्ता–गुणम् इव नूनम् प्रेक्षिष्यन्ते ।।50।।

अनुवाद– श्रीकृष्ण की शोभा को चुराने वाले तुम्हारे जल को लेने के लिए झुक जाने पर, वहाँ विचरण करने वाले सिद्ध आदि देवगण विशाल होने पर भी दूर होने के कारण, पतली उस चर्मण्वती नदी के प्रवाह को दृष्टि आबद्ध करके, निश्चय ही एक लड़ी वाली, मध्य में मोटे इन्द्रनील मणि से युक्त, पृथ्वीरूपी नायिका की, मोती की माला के समान देखेंगे।

'चन्द्रिका'– जब श्रीकृष्ण की कान्ति को चुराने वाला, कृष्णवर्ण मेघ, विशाल आकार वाली होते हुए भी, दूर से देखने के कारण एक लड़ी वाली मोतियों की माला के समान पतली दिखायी देने वाली, चर्मण्वती नदी में जलग्रहण करने के लिए थोड़ा झुकेगा, तो इस अवसर पर वह पृथ्वीरूपी नायिका की एक लड़ी वाली, मोतियों की माला के मध्य में स्थित **मोटे इन्द्रनील मणि की शोभा** को धारण करेगा, जिसे आकाशचारी सिद्ध एवं देवगण आकाश में स्थित होकर देखेंगे।

विशेष–(i) यद्यपि यहाँ पर चर्मण्वती नदी, आकार में अत्यधिक विशाल है, किन्तु दूर से देखने के कारण इसका स्वच्छ जलप्रवाह आकाश में स्थित सिद्धगणों को पतला ही दिखायी देगा, जिसमें कवि ने मोतियों की माला की मनभावन कल्पना की है।

(ii) इसके अलावा इसी नदी पर जल लेने के लिए झुके हुए मेघ में उस एक लड़ी वाली माला के मध्य में स्थित मोटे इन्द्रनील मणि की परिकल्पना भी सहृदय मनोहारिणी बन पड़ी है।

(iii) भौतिक विज्ञान का सिद्धान्त है कि कोई भी वस्तु दूर से देखने पर, अपने वास्तविक आकार से छोटी दिखायी देती है। प्रस्तुत उल्लेख से महाकवि का भौतिक विज्ञान विषयक गहन ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(iv)श्रीकृष्ण के धनुष का नाम 'शाङ्‌र्ग' होने से उन्हें 'शाङ्‌र्गी' नाम भी दिया गया है। साथ ही, उनके श्यामवर्ण होने से मेघ को उनका वर्ण चुराने वाला कहा गया है।

(v) पौराणिक मान्यताओं के अनुसार सिद्ध, गन्धर्व, यक्षादि देवयोनियाँ आकाश में विचरण करती रहती हैं, उन्हीं को लक्ष्य करके यहाँ कवि ने 'गगनगतयः' पद का प्रयोग किया है।

(vi) यहाँ पर कृष्णवर्ण को चुराने रूप वस्तु के सम्बन्ध के असम्भव होने पर भी, मेघ द्वारा कृष्ण का वर्ण चुराने की बात में उपमा

की परिकल्पना करनी पड़ती है। इसलिए निदर्शनालंकार[1] का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(vii) इसीप्रकार चर्मण्वती नदी के प्रवाह में मुक्तामाला की तथा उसमें स्थित नीलवर्ण वाले मेघ में मोटे इन्द्रनील मणि की सम्भावना करने के कारण उत्प्रेक्षालंकार भी दर्शनीय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **दृष्टीः**– √दृश्+क्तिन्, द्वि.वि. बहुव.

(ii) **शाङ्‌र्गिणः**– श्रृंगस्य विकारः, शाङ्‌र्गम् अस्य अस्ति, इति, तस्य। श्रृंग+अण्, तस्य विकारः सूत्र से अण्, श्रीकृष्ण का विशेषण।

(iii) **आवर्ज्य**– आ+ √वृज्+णिच्+क्त्वा(ल्यप्) झुकाकर।

(iv) **प्रेक्षिष्यन्ते**– प्र+ √ईक्ष्+लट्+आत्मने, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

(v) **स्थूलमध्येन्द्रनीलम्**– मध्यः इन्द्रनीलः, स्थूलः मध्यः इन्द्रनीलः यस्य सः, तम्, बहुव्रीहि। बीच में स्थित स्थूल इन्द्रनील मणि वाले।

(vi) **गगनगतयः**– गगने गतिः येषां ते, बहुव्रीहि, √गम्+क्तिन्

(vii) **मुक्तागुणम्**– मुक्तानां गुणः, तम्, षष्ठी तत्पुरुष,

(viii) **प्रवाहम्**– प्र+ √वह्+घञ्, प्रवाह को।

संजीवनी टीका– **त्वयीति। शार्गिणः कृष्णस्य वर्णस्य कान्तेश्– चौरे। तत्तुल्यवर्ण इत्यर्थः। त्वयि जलमादातुमवनते सति पृथुमपि दूरत्वात् तनुं सूक्ष्मतया प्रतीयमानं तस्याः सिन्धोश्चर्मण्वत्याख्यायाः प्रवाहम्। गगने गतिर्येषां ते गगनगतयः खेचराः सिद्धगन्धर्वादयः अयमपि बहुव्रीहिः पूर्ववज्जन्माद्युत्तरपदेषु द्रष्टव्यः। नूनं सत्यं दृष्टीरावर्ज्य नियम्मैकयष्टिकं स्थूलो महान्मध्यो मध्यमणीभूत इन्द्रनीलो यस्य तं भुवो भूमेर्मुक्तागुणं मुक्ताहारमिव प्रेक्षिष्यन्ते। अत्र अत्यन्तनीलमेघसंगतस्य प्रवाहस्य भूकण्ठ– मुक्तागुणत्वेनोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षैवेयमितावशब्देन व्यज्यते। निरुक्तकारस्तु 'तत्र तत्रोपमा यत्र इव शब्दस्य दर्शनम्' इतीव शब्ददर्शनादत्राप्युपमैवेति बभ्राम।।50।।**

---

[1]. अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः, निदर्शना। काव्यप्रकाश– 10/149।

अवतरणिका– तत्पश्चात् विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से चर्मण्वती नदी को पार करके, आगे बढ़कर दशपुर की स्त्रियों के नेत्रों के कौतूहल का विषय बनने की बात का उल्लेख करते हुए कहता है कि–

तामुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां
पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णसारप्रभाणाम्।
कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्बं
पात्रीकुर्वन् दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम्।।51।।

अन्वय– ताम् उत्तीर्य आत्म–बिम्बम् परिचित–भ्रूलता–विभ्रमाणाम् पक्ष्म–उत्क्षेपात्, उपरि–विलसत्–कृष्णसार–प्रभाणाम् कुन्द–क्षेप–अनुग–मधुकर–श्री–मुषाम् दशपुर–वधू–नेत्र–कौतूहलानाम् पात्री कुर्वन्, व्रज।51

अनुवाद– **हे मेघ! उस चर्मण्वती नदी को पार करके तुम, अपने शरीर (बिम्बम्) को, भौहोंरूपी लताओं के विलास से परिचित, पलकों को ऊपर उठाने से सुशोभित, श्वेत–श्याम एवं लाल कान्ति से युक्त, हिलते हुए कुन्द पुष्पों का अनुसरण करने वाले, भौरों की शोभा को भी चुराने वाले, दशपुर की स्त्रियों के नेत्रों के, कौतूहल का विषय बनते हुए प्रस्थान करना।**

'चन्द्रिका'– यहाँ पर मुख्य वाक्य है कि इस चर्मण्वती नदी को पार करने के बाद तुम, अपने आकर्षक स्वरूप को, दशपुर की विलासवती स्त्रियों के नेत्रों के कौतूहल का विषय बनाते हुए मार्ग पर आगे प्रस्थान करना। शेष सभी षष्ठी बहुवचन के पद उन स्त्रियों के नेत्रों की विशेषताओं को बताने के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

प्रथम, तो वे स्त्रियाँ अपनी भौहोंरूपी लताओं के विलास से सुपरिचित हैं। **द्वितीय,** पलकों को ऊपर उठाने के कारण उनके नेत्र, ऊपर की ओर श्याम, श्वेत एवं लाल कान्ति से सुशोभित हैं। **तृतीय,** वे हिलते हुए कुन्द पुष्पों का अनुकरण करने वाले, भौरों की शोभा को भी

चुराने वाले हैं, क्योंकि वे स्त्रियाँ आकाश मार्ग में जाते हुए, तुम्हारे ऊपर अत्यन्त कौतूहलपूर्वक दृष्टिपात करेंगी।

विशेष–(i) महाकवि ने दशपुर की स्त्रियों के आकर्षक नेत्र एवं उनके भ्रूविलासों का सुन्दर एवं साक्षात् चित्र सहृदय सामाजिक के समक्ष प्रस्तुत किया है, कवि की कल्पनाशक्ति अतीव प्रशंसनीय है।

(ii) दशपुर वस्तुतः राजा रन्तिदेव की राजधानी थी, इसीलिए कवि ने यहाँ पर उस प्रदेश की कामिनियों की कौतूहलपूर्ण दृष्टि का मनभावन प्रस्तुतीकरण किया है।

(iii) मादक गन्ध वाला कुन्दपुष्प, भौरों को अपनी ओर अत्यधिक आकर्षित करता है, हिलते हुए कुन्दपुष्प के पीछे उड़ते हुए भौरों का उल्लेख करने से, कवि का प्राणि विज्ञान एवं वनस्पति विज्ञान विषयक गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(iv) दशपुर की वर्तमान स्थिति के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। कुछ इसे मन्दसौर तो अन्य धौलपुर मानने के पक्षधर हैं।

(v) दशपुर की स्त्रियों के नेत्रों को, कुन्द पुष्पों की शोभा का अनुकरण करने वाला बताया गया है, अतः उपमालंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(vi) इसीप्रकार एक की शोभा को दूसरा भला कैसे चुरा सकता है, इसप्रकार का वस्तु सम्बन्ध असम्भव होने तथा बाद में उसके उपमा में परिवर्तित होने से निदर्शनालंकार भी प्रयुक्त हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **उत्तीर्य**– उद्+√तृ+क्त्वा, ल्यप्

(ii) **परिचितभ्रूलताविभ्रमाणाम्**– भ्रुवः लता इव इति, तासाम् विभ्रमाः, परिचिताः भ्रूलताः विभ्रमाः, येषु तानि, बहुव्रीहि तेषाम्

(iii) **आत्मबिम्बम्**– आत्मनो बिम्बः, तम्, षष्ठी तत्पुरुष।

(iv) **पक्ष्मोत्क्षेपात्**– पक्ष्मणाम् उत्क्षेपः, तस्मात्, पलकों को ऊपर उठाने से । षष्ठी तत्पुरुष।

(v) **उपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम्**– कृष्णाश्च ताः, शाराश्च इति कृष्णशाराः, उपरि विलसन्त्यः, कृष्णरक्तसिताः शाराः,

(vi) **पात्रीकुर्वन्**– अपात्रं पात्रं यथा सम्पद्यते, तथा कुर्वन्

(vii) **व्रज**– √व्रज्+लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन, जाना।

(viii) **कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषाम्**– क्षेपणमिति क्षेपः, कुन्दानां क्षेपः, ताम् मुष्णाति इति। **अनुगाः**– अनुगच्छन्तीति, अनु+ √गम्+ड।

(ix) **दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम्**– दश पुराणि यस्मिन् तत्, दशपुरम्, दशपुरस्य वध्वः, तासां नेत्राणि, तेषां कौतूहलानि, तेषाम्।

संजीवनी टीका– तामिति। तां चर्मण्वतीमुत्तीर्य भ्रुवौ लता इव भ्रूलताः उपमितसमासः। तासां बिभ्रमा विलासाः परिचिताः क्लृप्ता येषु तेषां पक्ष्माणि नेत्रलोमानि। 'पक्ष्म सूत्रे च सूक्ष्मांशे किंजल्के नेत्रलोमानि' इति विश्वः। तेषामुत्क्षेपादुन्नमनाद्धेतोः कृष्णाश्च ताः शाराश्च कृष्णशारा नीतशबलाः। 'वर्णो वर्णेन' इति समासः। 'कृष्णरक्तसिताः शाराः' इति यादवः। ततश्च शारशब्दादेव सिद्धे कार्ष्ण्ये पुनः कृष्णपदोपादानां कार्ष्ण्यप्राधान्यार्थम्। रक्तत्वं तु न विवक्षितमुपमानानुसारात्तस्य स्वाभा–विकस्य स्त्रीनेत्रेषु सामुद्रिकविरोधादितरस्याप्रसंगात्। क्वचिद्भावकथनं तूपपत्तिविषयम्। उपरि विलसन्त्ययः कृष्णशाराः प्रभा येषां तेषाम्। कुन्दानि माध्यकुसुमानि। 'माध्यं कुन्दम्' इत्यमरः। तेषां क्षेप इतस्तत–श्चलनं तस्यानुगा अनुसारिणो ये मधुकरा तेषां श्रियं मुष्णन्तीति यथोक्तानाम् क्षिप्यमाणकुन्दानुविधायि मधुकरकल्पनामित्यर्थः। दशपुरं रन्तिदेवस्य नगरं तस्य वध्वः स्त्रियः। 'वधूर्जाया स्नुषा स्त्री च' इत्यमरः। तासां नेत्रकौतूहलानां नेत्राभिलाषाणाम्। साभिलाषदृष्टीनामित्यर्थः। आत्मबिम्बं स्वमूर्तिं पात्रीकुर्वन् व्रज गच्छ।।51।।

अवतरणिका– इसप्रकार मेघ को दशपुर की स्त्रियों के आकर्षक नेत्रों के कौतूहल का विषय बनाने के बाद विरही यक्ष, उससे ब्रह्मावर्त जनपद में क्षत्रियों की युद्धस्थली, प्रसिद्ध कुरुक्षेत्र का सेवन करने की बात का उल्लेख करते हुए कहता है कि–

ब्रह्मावर्तं जनपदमथच्छायया गाहमानः
क्षेत्रं क्षत्रप्रधानपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः।
राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि।।52।।

अन्वय– अथ ब्रह्मावर्तम् जनपदम् छायया गाहमानः, क्षत्र–प्रधान–पिशुनम् तत् कौरवम् क्षेत्रम् भजेथाः, यत्र गाण्डीव–धन्वा शित–शर–शतैः राजन्यानाम् मुखानि, त्वम् इव धारापातैः कमलानि अभ्यवर्षत्।।52

अनुवाद– इसके पश्चात् ब्रह्मावर्त नामक जनपद में छाया द्वारा प्रवेश करते हुए, क्षत्रियों के युद्ध की सूचना देने वाले, उस कुरुक्षेत्र का सेवन करना, जहाँ पर गाण्डीव धनुष को धारण करने वाले, अर्जुन ने असंख्य तीक्ष्ण बाणों से राजाओं के मुखों पर उसी प्रकार वर्षा की थी, जिसप्रकार तुम जलधाराओं से कमलों पर वृष्टि करते हो।

'चन्द्रिका'– इसके बाद हे मेघ! तुम्हें ब्रह्मावर्त नामक जनपद में केवल अपनी छाया द्वारा ही प्रवेश करते हुए जाना चाहिए, क्योंकि वहाँ जाकर तुम्हें कौरव, पाण्डव क्षत्रियों के युद्ध की सूचना देने वाले पवित्र कुरुक्षेत्र का भी सेवन करना है। इस कुरुक्षेत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ पर प्रसिद्ध गाण्डीव धनुष को धारण करने वाले, कुन्तीपुत्र अर्जुन ने अपने असंख्य तथा तीक्ष्ण बाणों द्वारा शत्रु राजाओं के मुखों पर ठीक उसीप्रकार वर्षा की थी, जिसप्रकार तुम अपने जल की धाराओं द्वारा कमलों पर वृष्टि करते हो।

विशेष–(i) ब्रह्मावर्त जनपद में छाया द्वारा प्रवेश करने की बात का उल्लेख, यहाँ उसके पवित्र होने से उसके प्रति आदर एवं श्रद्धाभाव होने के कारण किया गया है, क्योंकि शास्त्रों में पवित्र स्थलों को लाँघने का निषेध किया गया है।[1]

(ii) पौराणिक मान्यता के अनुसार ब्रह्मा जी द्वारा सृष्टि की रचना इसी स्थान पर की गयी थी।

---

[1]. पीठक्षेत्राश्रमादीनि परिवृत्यान्यतो व्रजेत्।

(iii) मनुस्मृतिकार के अनुसार सरस्वती एवं दृषद्वती इन दो नदियों के बीच का पवित्र भाग ब्रह्मावर्त[1] कहलाता है।

(iv) इतिहास प्रसिद्ध है कि कुरुक्षेत्र में कौरवों एवं पाण्डवों का भयंकर युद्ध हुआ था तथा इसी स्थान पर इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार करके, भगवान् परशुराम ने 'स्यमन्तपंचक' क्षेत्र की स्थापना की थी। थानेसर से दक्षिणपूर्व में स्थित यहाँ पर एक सूर्यकुण्ड है, जिसकी तीर्थ स्थल के रूप में पुराणों में भी प्रसिद्धि रही है।

(v) अर्जुन के धनुष का नाम 'गाण्डीव' होने से यहाँ उसे 'गाण्डीव धन्वा' कहा गया है। महाभारत के अनुसार यह धनुष सोम ने वरुण को, वरुण ने अग्नि को तथा खाण्डव वन दहन करने भं सहयोग करने के उपलक्ष्य में अग्नि ने, इसे अर्जुन को प्रदान किया था।

(vi) कुरुक्षेत्र के युद्ध के अवसर पर अर्जुन द्वारा राजाओं के मुखरूपी कमलों पर की गयी शरवृष्टि की उपमा, मेघ द्वारा कमलों पर की गयी जलवृष्टि से देने के कारण, रूपक एवं उपमालंकार का सौन्दर्य विद्यमान है। परिकल्पना अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **गाहमानः**– √गाह्+शानच्,

(ii) **अभ्यवर्षत्**– अभि+ √वृष्+लङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iii) **राजन्यानाम्**– राज्ञाम् अपत्यानि राजन्यः, षष्ठी बहुवचन।

(iv) **भजेथाः**– √भज्+विधिलिङ्, मध्यमपुरुष, एकवचन,

(v) **कौरवम्**– कुरुणामिदम् इति कौरवम्, कुरु+अण्,

(vi) **क्षत्रप्रधानपिशुनम्**– क्षत्राणां प्रधानम्, तस्य पिशुनम्,

(vii) **ब्रह्मावर्तम्**– ब्रह्मणः आवर्तम्, या ब्रह्मणः आवर्तः सृष्टिः यस्मिन् स ब्रह्मावर्तः, तम्, जहाँ बैठकर ब्रह्मा ने सृष्टि आरम्भ की।

(viii) **गाण्डीवधन्वा**– गाण्डी ग्रन्थिः अस्यास्तीति गाण्डीवः, गाण्डीवं धनुः यस्य सः, बहुव्रीहि। गाण्डीव धनुष को धारण करने वाला।

---

1. सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त प्रचक्षते। मनु.– 2/17।

संजीवनी टीका– ब्रह्मावर्तमिति। अथानन्तरं ब्रह्मावर्तं नाम जनपदं देशम्। अत्र मनुः–'सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्। तं देव–निर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते' इति। छाययाऽनातपमण्डलेन गाहमानः प्रविशन्न तु स्वरूपेण। 'पीठक्षेत्राश्रमादीनि परिवृत्यान्यतो व्रजेत्' इति वचनात्। क्षत्रप्रधनपिशुनम्। अत्रापि शिरकपालादिमत्तया कुरुपाण्डव–युद्धसूचकमित्यर्थः। 'युद्धमायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम्' इत्यमरः। तत्प्रसिद्धं कुरूणामिदं कौरवं क्षेत्रं भजेथाः।

कुरुक्षेत्रं व्रजेत्यर्थः। तत्र कुरुक्षेत्रे गाण्ड्यस्यास्तीति गाण्डीवं धनुर्विशेषः। 'गाण्ड्यजगात्संज्ञायाम्' इति मत्वर्थीयो वप्रत्ययः। 'कपिध्वजस्य गाण्डीवगाण्डीवौ पुंनपुंसकौ' इत्यमरः। तद्धनुर्यस्य स गाण्डीवधन्वार्जुनः। 'वा संज्ञायाम्' इत्यनङादेशः। सितशरशतैर्निशित–बाणसहस्रै राजन्यानां राज्ञां मुखानि धाराणामुदकधाराणां पातैः कमलानि त्वमिवाभ्यवर्षदभिमुखं वृष्टवान्। शरवर्षेण शिरांसि चिच्छेदेत्यर्थः।।52।।

अवतरणिका– तत्पश्चात् विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से कुरुक्षेत्र में प्रवाहित होने वाली, श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम द्वारा सेवन की गयी, सरस्वती के जल का पान करने की बात का उल्लेख करते हुए कहता है कि–

हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनांकां
बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लांगली याः सिषेवे।
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य! सारस्वतीना–
मन्तःशुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः।।53।।

अन्वय– बन्धु–प्रीत्या समर–विमुखः, लांगली अभिमत–रसाम् रेवती–लोचनांकाम् हालाम् हित्वा याः सिषेवे, सौम्य! त्वम् अपि तासाम् सारस्वतीनाम् अपाम् अभिगमम् कृत्वा, अन्तःशुद्धः भविता वर्ण–मात्रेण कृष्णः।।53।।

अनुवाद– बन्धुजनों के स्नेह के कारण महाभारत के युद्ध से विमुख हुए, हल को धारण करने वाले, बलराम ने अभीष्ट स्वाद वाली

तथा रेवती के नेत्रों के प्रतिबिम्ब वाली मदिरा का त्याग करके, जिस सरस्वती नदी के जल का सेवन किया था, हे सौम्य! तुम भी उसी सरस्वती नदी के जलों को प्राप्त करके, हृदय से शुद्ध होकर केवल वर्णमात्र से ही श्याम रह जाओगे।

'चन्द्रिका'– यहाँ पर मुख्य वाक्य है कि हे सौम्य! कुरुक्षेत्र में तुम पवित्र सरस्वती नदी के जल का सेवन अवश्य करना, क्योंकि ऐसा करने से तुम केवल वर्णमात्र से ही कृष्ण रह जाओगे। अन्यथा तो तुम्हारा हृदय पूर्णरूप से शुद्ध हो जाएगा। श्लोक के पूर्वार्द्ध में इस नदी की पवित्रता विषयक महत्ता का उल्लेख करते हुए, ऐतिहासिक तथ्य को भी उद्घाटित किया गया है। तदनुसार–

अपने ही बन्धुबान्धवों के कारण महाभारत के युद्ध से विमुख हुए, हल को शस्त्र के रूप में धारण करने वाले, महाबली बलराम ने अत्यन्त प्रिय स्वाद वाली, अपनी पत्नी रेवती के नेत्रों के प्रतिबिम्ब से युक्त अर्थात् अपनी पत्नी द्वारा पिलाए जाने वाली, मदिरा का परित्याग करके, जिस सरस्वती नदी के जल का सेवन किया था, ऐसी उस पवित्र नदी के जल का सेवन करके ही तुम भी आगे बढ़ना।

विशेष–(i) सरस्वती नदी के प्रति महाकवि की अगाध श्रद्धा–भावना की अभिव्यक्ति हुई है। मान्यता है कि यह महाभारत काल में कुरुक्षेत्र में प्रवाहित होती थी, जो बाद में लुप्त हो गयी।

(ii) बलराम के विषय में प्रसिद्ध है कि उन्हें कौरव, पाण्डव दोनों ही प्रिय थे। इसलिए किसी की ओर से भी युद्ध न करके, वे तटस्थ होकर दुःखी मन से तीर्थयात्रा पर चले गए थे, क्योंकि स्वयं दुर्योधन उनका शिष्य था और पाण्डव उनकी बुआ कुन्ती के पुत्र थे।

(iii) बलराम के लिए यहाँ महाकवि द्वारा 'लांगली' विशेषण का प्रयोग किया गया है, क्योंकि 'हल' ही उनका आयुध था। इसीलिए वे 'हलधर' के नाम से भी जाने जाते हैं।

(iv) 'रेवती' बलराम की पत्नी का नाम था, जो स्वयं उन्हें अपने हाथों से मदिरापान कराती थी। उसी दृष्टि से यहाँ मदिरा में उसके नेत्रों के प्रतिबिम्ब के पड़ने की बात का उल्लेख हुआ है।

(v) यहाँ प्रयुक्त 'सिषेवे' क्रियापद का प्रयोग, विशेष अभिप्राय की अभिव्यक्ति के लिए किया गया है, क्योंकि महाभारत युद्ध से तटस्थ बलराम ने तीर्थयात्रा का निर्णय करके, नैमिषारण्य में प्रवेश किया, जहाँ पर अपने प्रति सूत की उपेक्षा से क्रुद्ध होकर, इन्होंने उसे कुशा की नोंक से मार डाला और बाद में प्रायश्चित्त स्वरूप कुरुक्षेत्र में जाकर सरस्वती नदी के जलों का सेवन किया।

(vi) वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में सरस्वती की पवित्र नदियों में गणना की गयी है, महाभारत काल में यह कुरुक्षेत्र से प्रयागराज की ओर प्रवाहित होती थी, वहीं इसका गंगा, यमुना के साथ संगम होता था, किन्तु वर्तमान में यह नदी सर्वत्र लुप्त हो गयी है।

(vii) वस्तुतः पकी फसल को भिगोने, विरहियों को दुःखी करने आदि से, अनेक लोगों को पीड़ा पहुँचाने के कारण मेघ, केवल कृष्णवर्ण ही नहीं, अपितु पापी भी है, किन्तु सरस्वती नदी के पान से यह पूर्णरूप से पवित्र हो जाएगा, केवल रंगभर इसका काला रह जाएगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **भविता**– √भू+लुट्, प्र.पु., ए.व.।

(ii) **बन्धुप्रीत्या**–बन्धूनां प्रीत्या, ष. तत्पुरुष, भाइयों के स्नेह से।

(iii) **समरविमुखः**– समरात् विमुखः, विपरीतं मुखं यस्य सः, ब.

(iv) **लांगली**– लांगलं अस्य अस्ति इति, लांगल+इनि।

(v) **अभिमतरसाम्**– अभिमतः रसः यस्याः सा, ताम्, बहुव्रीहि

(vi) **सिषेवे**– √सेव्+लिट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, सेवा की।

(vii) **सारस्वतीनाम्**– सरस्वत्याः इमाः तासाम्, सरस्वती+ अण् + ङीप्, सरांसि सन्ति यस्यां सा, सरस्+मतुप्+ङीप्, सरस्वती नदी के।

(viii)**हित्वा**– √हा+ क्त्वा, छोड़कर। **अभिमत**–अभि+ √मन्+क्त

(ix) रेवतीलोचनांकाम्– रेवत्याः लोचने, ते एव अंक यस्याः सा, तां, रेवती के नेत्रों के प्रतिबिम्ब वाली, मदिरा का विशेषण।

संजीवनी टीका– हित्वेति। बन्धुप्रीत्या कुरुपाण्डवस्नेहेन न तु भयेन। समरविमुखो युद्धनिस्पृहः। लाङ्गलमस्यास्तीति लांगली हलधरः। अभिमतरसामभीष्टस्वादां तथा रेवत्याः स्वप्रियाया लोचने एवांकः प्रतिबिम्बत्वाच्चिह्नं यस्यास्तां हालां सुराम्। 'सुरा हरिप्रिया हाला' इत्यमरः। 'अभिप्रयुक्तं देशभाषापदमित्यत्र सूत्रे हालेति देशभाषापदम–प्यतीव कविप्रयोगात्साधु' इत्युदाजहार वामनः। हित्वा त्यक्त्वा। दुस्त्य–जामपीति भावः। याः सरस्वतीरपः सिषेवे।

हे सौम्य! सुभग, त्वं तासां सरस्वत्या नद्या इमाः सारस्वत्यस्ता–सामभिगमनं सेवां कृत्वाऽन्तोऽन्तरात्मनि शुद्धो निर्मलो निर्दोषो भविता। 'ण्वुल्तृचौ' इति तृच्। अपि सद्य एव पूतो भविष्यसीत्यर्थः। 'वर्तमान–सामीप्ये वर्तमानाद्वा' इति वर्तमानप्रत्ययः। वर्णमात्रेण वर्णेनैव कृष्णः श्यामः। न तु पापेनेत्यर्थः। अन्तःशुद्धिरेव सम्पाद्या न तु बाह्या। बहिः शुद्धोऽपि सूतवधप्रायश्चित्तार्थं सारस्वतसलिलसेवी तत्र भगवान् बलभद्र एव निदर्शनम्। अतो भवताऽपि सरस्वती सर्वथा सेवितव्येति भावः।।53।

अवतरणिका– इसप्रकार कुरुक्षेत्र में सरस्वती नदी के पवित्र जल का पान कराने के बाद, विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से हरिद्वार के पास में 'कनखल' नामक स्थान पर प्रवाहित होने वाली, हिमालय से उतरी हुई पवित्र गंगा नदी के पास जाने की बात का उल्लेख करते हुए कहता है कि–

तस्माद् गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम्।
गौरीवक्त्रभ्रकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः
शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता।।54।।

अन्वय– तस्मात् अनु–कनखलम् शैलराज–अवतीर्णाम् सगर–तनय–स्वर्ग–सोपान–पंक्तिम् जह्नोः कन्याम् गच्छेः, गौरी–वक्त्र– भ्रकुटि

–रचनाम् फेनैः विहस्य इव इन्दु–लग्न–ऊर्मि–हस्ता या शम्भोः केश–ग्रहणम् अकरोत् ।।54।।

अनुवाद– **उस कुरुक्षेत्र से तुम कनखल के पास में पर्वतराज हिमालय से उतरी हुई, राजा सगर के पुत्रों के लिए स्वर्ग की सीढ़ी के समान, जह्नु ऋषि की पुत्री गंगा के पास जाना, पार्वती के मुख पर भौहों के भंग से मानो उपहास करके, चन्द्रमा में लगे तरंगरूपी हाथों वाली, जिस गंगा ने महादेव के बालों को ही पकड़ लिया था।**

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में महाकवि ने कुरुक्षेत्र से अग्रिम पड़ाव के रूप में कनखल जाने की बात करते हुए, वहाँ पर गंगा के जल को पीने की बात कही है, किन्तु उससे पहले वह यहाँ पर गंगा की अनेक विशेषताओं के विषय में बताता है। तदनुसार–

प्रथम, तो कनखल के पास में पर्वतराज हिमालय से उतरी हुई गंगा प्रवाहित होती है। **द्वितीय,** इसकी विशेषता है कि इसने राजा सगर के पुत्रों का उद्धार किया था, इसलिए यह उनके लिए स्वर्ग की सीढ़ी के समान है। **तृतीय,** यह नदी जह्नु ऋषि की पुत्री के रूप में भी जानी जाती है। **चतुर्थ,** इसकी महत्त्वपूर्ण विशेषता तो यह भी है कि इसने पार्वती के मुख पर टेढ़ी भौहों का अपने फेन के द्वारा, मानो उपहास करते हुए, चन्द्रमा में लगे हुए तरंगरूपी हाथों से भगवान् महादेव की जटाओं को पकड़ लिया था, जो वस्तुतः उनकी स्वयं की महिमा का बखान करने वाली महत्त्वपूर्ण घटना है।

विशेष–(i) 'कनखल' वस्तुतः हरिद्वार के समीप में अत्यन्त प्राचीन एवं पवित्र तीर्थ है। पौराणिक मान्यता के अनुसार दुर्जन व्यक्ति भी यहाँ स्नान करने से मुक्त हो जाता है।[1]

(ii) पौराणिक कथा के अनुसार राजा भगीरथ का अनुसरण करते हुए गंगा ने मार्ग में विद्यमान जह्नु ऋषि की यज्ञशाला आदि को

---

[1]. खलः को नाऽत्र वै भजते तत्र मज्जनात्।
अतः कनखलं तीर्थं नाम्ना चक्रुर्मुनीश्वराः।।

बहा दिया तो क्रुद्ध ऋषि ने इसको पी लिया, किन्तु बाद में देवों की प्रार्थना पर इसे अपने कर्ण--छिद्र से निकाल दिया, तभी से गंगा का 'जह्नु पुत्री' या 'जाह्नवी' नाम पड़ा।

(iii) कवि ने यहाँ गंगा को सगर के पुत्रों के लिए स्वर्ग की सीढ़ी कहा है, क्योंकि सूर्यवंशी राजा सगर के साठ हजार पुत्र थे। एक बार राजा ने 'इन्द्र' पद को पाने के लिए सौवाँ अश्वमेध यज्ञ किया, तो इन्द्र ने इस पद के छिन जाने के डर से यज्ञ का अश्व चुराकर कपिल मुनि के आश्रम में बाँध दिया, बाद में जब अश्व को खोजते हुए, उनके साठ हजार पुत्र कपिल के आश्रम में पहुँचे तो उन्होंने उन्हीं को चोर समझकर भलाबुरा कहा।

परिणामस्वरूप कपिल मुनि से उन्हें अपने दृष्टिपात मात्र से भस्म कर डाला। पुत्रों के न लौटने पर राजा सगर की केशिनी नामक पत्नी से उत्पन्न पुत्र 'अंशुमान्' ने उनकी भस्म को खोजकर, मुनि से उनके उद्धार की प्रार्थना की। मुनि ने इसके उपाय रूप में गंगा का स्वर्ग से पृथ्वी पर आना बताया, तो अंशुमान् आदि अनेक राजाओं ने इस दिशा में प्रयत्न किए, किन्तु सफलता न मिली। अन्त में भगीरथ घोर तपस्या करके, इस प्रयत्न में सफल हुए और उन्होंने अपने पूर्वजों का उद्धार किया। इसीलिए गंगा का नाम 'भागीरथी' भी पड़ा।

(iv) इसीप्रकार यहाँ प्रयुक्त 'गौरीवक्त्रभृकुटिरचनाम्' पद भी इसी पौराणिक कथा की ओर संकेत करता है। जब भगीरथ ने गंगा को पृथ्वी पर लाने के लिए ब्रह्मा जी की तपस्या की, तो उन्होंने इसके लिए महादेव को प्रसन्न करने के लिए कहा, जिससे वे स्वर्ग से गिरती हुई गंगा को धारण कर लें। राजा भगीरथ ने वैसा ही किया। अन्त में शिव ने प्रसन्न होकर गंगा को अपनी जटाओं में धारण किया।

(v) उक्त विशेषण से कवि ने इसी प्रसंग में मनभावन शृंगारिक कल्पना की है कि अपनी सौत गंगा को देखकर, जब पार्वती ने ईर्ष्यावश भौहें चढ़ा लीं, तो गंगा ने प्रौढ़ा नायिका के समान, उन्हें

चिढ़ाने के लिए शिव के केश पकड़ लिए। भगवान् महादेव के केश पकड़ने से यहाँ गंगा द्वारा विपरीत रति की भी अभिव्यंजना हो रही है।

(vi) मुद्राराक्षस में भी कवि विशाखदत्त ने शिव एवं पार्वती संवाद प्रसंग में वक्रोक्ति के माध्यम से इसीप्रकार की भावनाओं की अभिव्यक्ति की है। नाटककार विशाखदत्त हमारे विवेच्य काव्यकार के समकालीन ही थे।[1]

(vii) उपर्युक्त श्लोक में 'विहस्य इव' में उत्प्रेक्षा एवं 'ऊर्मय एव हस्ताः' में रूपक एवं इन दोनों की स्थिति 'तिलतण्डुलन्याय' से स्वतन्त्र होने के कारण संसृष्टि अलंकार का सौन्दर्य भी विद्यमान है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **विहस्य**— वि+ √हस्+क्त्वा(ल्यप्)

(ii) **अनुकनखलम्**— कनखलस्य समीपे, कनखल के पास में।

(iii) **गच्छेः**— √गम्+विधिलिङ्, मध्यमपुरुष, एकवचन, जाना।

(iv) **इन्दुलग्नोर्मिहस्ता**— इन्दौ लग्नाः, तादृश्यः ऊर्मयः, हस्ताः एव यस्याः सा, बहुव्रीहि, चन्द्रमा में लगे हुए तरंगरूपी हाथों वाली।

(v) **केशग्रहणम्**— केशानां ग्रहणम् तत्, **ग्रहणम्**— √ग्रह्+ल्युट्

(vi) **अकरोत्**— √कृ+लङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन, किया।

(vii) **गौरीवक्त्रभ्रकुटिरचनाम्**— गौर्याः वक्त्रम्, तस्मिन् भ्रकुटि-रचना, षष्ठी तत्पुरुष एवं सप्तमी तत्पुरुष, पार्वती के मुख पर भ्रूभंग को

(viii) **शैलराजावतीर्णाम्**— शैलानां राजा, तस्मात् अवतीर्णाम्,

(ix) **सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम्**— सगरस्य तनयाः सगरतन-यानाम् सोपानपंक्तिः, ताम्, सगर के पुत्रों की स्वर्ग की सीढ़ी।

संजीवनी टीका— तस्मादिति। **तस्मात् कुरुक्षेत्रात् कनखलस्याद्रेः समीपेऽनुकनखलम् 'अनुर्यत्समया' इत्यव्ययीभावः। शैलराजाद्धिमवतोऽवतीर्णा सगरतनयानां स्वर्गसोपानपंक्तिम्। स्वर्गप्राप्तिसाधनभूतामित्यर्थः। जह्नोर्नाम राज्ञः कन्यां जाह्नवीं गच्छेर्गच्छ। विध्यर्थे लिङ्। या जाह्नवी**

---

[1]. द्रष्टव्य, लेखककृत, मुद्राराक्षस, भूमिका, 'विशाखदत्त का स्थिति काल' बिन्दु, पृष्ठ—13—18। प्रकाशक— चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली, 2019।

गौर्या वक्त्रे या भ्रुकुटिरचना सापत्न्यरोषाद् भ्रूभंगकरणं तां फेनैर्विहस्या–वहस्येव, धावल्यात् फेनानां हासत्वेनोत्प्रेक्षा। इन्द्रौ शिरोमाणिक्यभूते लग्ना ऊर्मयः एव हस्ता यस्याः सेन्दुलग्नोर्मिहस्ता सती शम्भोः केश ग्रहणमकरोत्। यथा काचित् प्रौढ़ा नायिका सपत्नीमसहमाना स्ववाल्लभ्यं प्रकटयन्ती स्वभर्तारं सह शिरोरत्नेन केशेष्वाकर्षति तद्वदिति भावः। इदं च पुरा किल भगीरथप्रार्थनया भगवतो गगनपथात् पतन्तीं गंगां गंगाधरो जटाजूटेन जग्राहेति कथामुपजीव्योक्तम्।।54।।

अवतरणिका–इसप्रकार गंगा के पास जाकर, जल ग्रहण करने पर मेघ में, गंगा–यमुना की शोभा की मनभावन कल्पना करते हुए कवि कहते हैं कि–

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्धलम्बी,
त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः।
संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसि च्छाययाऽसौ,
स्यादस्थानोपगतयमुनासंगमेवाभिरामा।।55।।

अन्वय– सुर–गजः इव, व्योम्नि पश्च–अर्ध–लम्बी त्वम्, अच्छ–स्फटिक–विशदम् तस्याः अम्भः,तिर्यक् पातुम् तर्कयेः, चेत् सपदि स्रोतसि संसर्पन्त्या भवतः छायया असौ, अस्थान–उपगत–यमुना–संगम इव अभिरामा स्यात्।।55।।

अनुवाद– देवताओं के हाथी के समान, आकाश में शरीर के आगे के भाग को झुकाते हुए तुम, जब निर्मल स्फटिक के समान उज्ज्वल, उस गंगा के जल को तिरछा होकर पीने का विचार करोगे, तो उसी क्षण गंगा के प्रवाह में पड़ने वाली तुम्हारी छाया से वह गंगा, प्रयाग से भी भिन्न स्थान में मानो यमुना के संगम को प्राप्त हुई सी मनोहर प्रतीत होगी।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में कवि की प्रथम कल्पना है कि गंगा नदी के ऊँचे तट पर स्थित होकर मेघ जब अपने आगे के भाग

को थोड़ा झुकाकर गंगा जल को ग्रहण करेगा, तो उसकी शोभा नदी में जल पीते हुए देवताओं के कृष्णवर्ण वाले हाथी के समान होगी।

दूसरी परिकल्पना में कवि ने थोड़ा तिरछे होकर जल पीते हुए, विशाल आकार वाले मेघ की स्फटिक के समान पूर्णतया स्वच्छ एवं निर्मल जल में कृष्णवर्ण परछाई के पड़ने से गंगा–यमुना के संगम की स्थिति की बात का उल्लेख, प्रयागराज से भिन्न कनखल में भी होने के रूप में किया है।

विशेष–(i) काव्यकार की चित्रात्मक शैली दर्शनीय है, थोड़ा तिरछा होकर जल पीते हुए हाथी के समान, मेघ की निर्मल जल में परछाई से गंगा–यमुना के संगम की कल्पना भी मनभावन बन पड़ी है।

(ii) कुछ व्याख्याकारों ने 'सुरगज' का अर्थ 'ऐरावत' किया है, जबकि यहाँ पर इसका अर्थ 'दिग्गज' या 'देवों का हाथी' अर्थ करना, उसके विशाल आकार को बताने की दृष्टि से अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि ऐरावत का रंग श्वेत माना गया है, जबकि मेघ कृष्ण वर्ण होने से उसकी उपमा में अनौचित्य की प्रतीति हो रही है, ऐसा मानने पर ही बादल एवं हाथी दोनों के ही काले होने पर, गंगा–यमुना के संगम की कवि की कल्पना सार्थक हो सकेगी।

(iii) कवि का हस्ति विज्ञान विषयक गहन एवं सूक्ष्म ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने हाथी को नदी के तट पर स्थित होकर, उसमें जल पीते हुए, उसे समीप से देखा था।

(iv) वस्तुस्थिति यह भी है कि काव्यकार को गंगा–यमुना के संगम का दृश्य अत्यधिक प्रिय रहा है, क्योंकि इस शोभा का उल्लेख उन्होंने अन्यत्र भी अनेक स्थलों पर किया है।

(iv) प्रस्तुत श्लोक में उपमा एवं उत्प्रेक्षालंकार का मनभावन प्रयोग हुआ है, कवि की आलंकारिक शैली दर्शनीय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **पातुम्**– √पा+तुमुन्, पीने के लिए

(ii) **तर्कयेः**– √तर्क्+विधिलिङ्, मध्यमपुरुष, एकवचन, सोचोगे

(iii) **सुरगजः**– सुराणां गजः, षष्ठी तत्पुरुष, देवों के हाथी।

(iv) **पश्चार्द्धलम्बी**– अपरं च तत् अर्धं पश्चार्द्धम्, पीछे के आधे भाग से लटका हुआ। पश्चार्द्ध+ √लम्ब्+णिनि, पश्चार्द्धलम्बिन्, प्र.वि.ए.व.

(v) **संसर्पन्त्या**–सम्+ √सृप्+शतृ+ङीप्, तृतीया विभक्ति, ए.व.।

(vi) **अच्छस्फटिकविशदम्**– अच्छश्चासौ स्फटिकः तदिव विशदं

(vii) तिर्यक्– तिरः वक्रम्, अंचति गच्छति, इति।

(viii) अभिरामा– अभिरमन्ते अस्याम्, अभि+ √रम्+घञ्+टाप्,

(ix) **अस्थानोपगतयमुनासंगमा**– न स्थानम्, इति अस्थानाम्, अस्थाने उपगतः, यमुनायाः संगमः, अस्थानोपगतो यमुनासंगमो यस्याः सा, बहुव्रीहि, प्रयाग भिन्न स्थान पर यमुना के साथ संगम करती हुई।

संजीवनी टीका– तस्या इति। सुरगज इव कश्चिद्दिग्गज इव व्योम्नि पश्चादर्ध पश्चार्धं पश्चिमार्धमित्यर्थः। पृषोदरादित्वात्साधुः। तेन लम्बत इति पश्चार्धलम्बी सन्पश्चार्धभागेन व्योम्नि स्थित्वा। पूर्वार्धेन जलोन्मुख इत्यर्थः। केचित् 'पूर्वार्द्धलम्बी' इति पठन्ति। अच्छस्फटिक–विशदं निर्मलस्फटिकावदातं तस्या गंगाया अम्भस्तिर्यक्तिरश्चीनं यथा तथा पातुं त्वं तर्कयेर्विचारश्चेत्। सपति स्रोतसि प्रवाहे संसर्पन्त्या संक्रामन्त्या भवतश्छायया प्रतिबिम्बेनासौ गंगा अस्थाने प्रयागादन्यत्रो–पगतः प्राप्तो यमुनासंगमो यथा सा तथाभूतेवाभिरामा स्यात्।।55।।

अवतरणिका– इसप्रकार गंगा के जल का पान करने के बाद, मेघ के हिमालय पर स्थित गंगा के उद्‌गम स्रोत पर, प्रस्थान करने की बात का उल्लेख करते हुए महाकवि कहते हैं कि–

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः।
वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृंगे निषण्णः
शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपंकोपमेयाम्।।56।।

अन्वय– आसीनानाम् मृगाणाम् नाभि–गन्धैः सुरभित–शिलम्, तस्याः एव प्रभवम् तुषारैः गौरम् अचलम् प्राप्य, अध्व–श्रम–विनयने, तस्य श्रृंगे निषण्णः, शुभ्र–त्रिनयन–वृष–उत्खात–पंक–उपमेयाम् शोभाम् वक्ष्यसि।।56।।

अनुवाद– जहाँ पर बैठे हुए, हरिणों की कस्तूरी की गन्ध से सुगन्धित शिलाओं वाले, उस गंगा के उदगम स्थल, हिम से श्वेत पर्वत को पाकर, मार्ग की थकान को दूर करने वाले तुम, उस शिखर पर स्थित होकर, महादेव के श्वेत नन्दी बैल द्वारा उखाड़े गए, कीचड़ के समान शोभा को धारण कर लोगे।

'चन्द्रिका'– कनखल में गंगा के जल को पीने के बाद, तुम गंगा के उदगम स्थल गंगोत्री पर पहुँचोगे, तो वहाँ पर तुम्हें पर्वत की सुगन्धित शिलाओं पर बैठे हुए कस्तूरी मृग मिलेंगे, जिससे तुम्हें असीम आनन्द की अनुभूति होगी। इसके अलावा यहाँ आकर जब तुम हिम से ढ़के हुए धवल पर्वत के शिखर पर मार्ग की थकान को दूर करने के लिए विश्राम करोगे, तो तुम्हारी शोभा तीन नेत्रों वाले भगवान् महादेव के 'उत्खातकेलि' करते हुए श्वेत नन्दी बैल द्वारा, अपने सींगों से उखाड़े गए, सींगों के अग्रभाग पर लगे हुए, कृष्णवर्ण कीचड़ के समान होगी।

विशेष–(i) 'कस्तूरी मृग' वस्तुतः मृगों की एक जाति विशेष होती है, जो हिमालय की निश्चित ऊँचाई पर ही मिलती है। मान्यता है कि इनकी नाभि में ही सुगन्धित पदार्थ कस्तूरी होता है और ये जहाँ पर भी बैठ जाते हैं, वह स्थान भी सुगन्धित हो जाता है। प्रस्तुत उल्लेख से कवि का प्राणिविज्ञान विषयक ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) हिम से श्वेत चोटी पर कृष्णवर्ण मेघ की कल्पना कवि ने नन्दी बैल के सींग पर रखे हुए कीचड़ से की है, जो अत्यधिक मनोहारिणी कही जा सकती है। कवि की अद्भुत कल्पनाशीलता अभिव्यक्त हुई है।

(iii) मदमस्त बैल असीम आनन्द की अनुभूति के अवसर पर अपने समक्ष मिट्टी के टीले में ही जोरदार टक्कर मारता है, जिसके परिणामस्वरूप उसके सींगों पर मिट्टी का काला कीचड़ लग जाता है, इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को साहित्य की भाषा में 'उत्खातकेलि' कहते हैं, यहाँ कवि ने उसी ओर संकेत किया है।

(iv) प्रस्तुत श्लोक में हिमालय की उपमा शिव के वृषभ से तथा मेघ की उसके सींगों पर लगे कीचड़ के साथ दी गयी है जिससे उपमालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **निषण्णः**– नि+√सद्+क्त,

(ii) **वक्ष्यसि**–√वह्+ लृट्, म. पु., एकवचन, वहन करोगे।

(iii) **नाभिगन्धैः**– नाभेः गन्धैः, नाभि में स्थित गन्धों द्वारा।

(iv) **सुरभितशिलैः**– सुरभिः संजातो यासां ताः सुरभिताः सुरभिताः शिलाः यस्य सः, तम् बहुव्रीहि, सुरभि+इतच्+टाप्, सुरभिताः।

(v) **अचलम्**– चलति, इति चलः, न चलः अचलः, तम्।

(vi) **अध्वश्रमविनयने**– अध्वनः श्रमः, तस्य विनयनम्, विनीयते अनेनेति विनयनम्, सामर्थ्य के कर्ता अर्थ में ल्युट् प्रत्यय का प्रयोग।

(vii) **शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपंकोपमेयाम्**– त्रीणि नयनानि यस्य सः, त्रिनयनस्य वृषः, शुभ्रः त्रिनयनवृषः, तेन उत्खातः, तादृशः पंकः, तेन उपमेया, ताम्, **उत्खात**– उत्+√खन्+क्त, **उपमेया** उप+√मा+यत्+टाप्

(viii) **प्रभवम्**– प्रभवति अस्मादिति, तम्, प्र+√भू+अप्,

संजीवनी टीका– आसीनानामिति। आसीनानामुपविष्टानां मृगाणां कस्तूरिकामृगाणाम्। अन्यथा नाभिगन्धानुपपत्तेः। नाभिगन्धैः कस्तूरीगन्धस्तेषां तदुद्भवत्वात्। अत एव मृगनाभिसंज्ञा च। 'मृगनाभि–र्मृगमदः कस्तूरी च' इत्यमरः। अथवा नाभयः कस्तूर्यः 'नाभिः प्रधाने कस्तूर्यां मदे च क्वचिदीरितः' इति विश्वः। तासां गन्धैः सुरभिताः सुरभिकृताः शिला यस्य तं तस्याः गंगाया एव प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः कारणम्। तुषारैर्गौरं सितम्। 'अवदातः सितो गौरः' इत्यमरः।

अन्वय– आसीनानाम् मृगाणाम् नाभि–गन्धैः सुरभित–शिलम्, तस्याः एव प्रभवम् तुषारैः गौरम् अचलम् प्राप्य, अध्व–श्रम–विनयने, तस्य श्रृंगे निषण्णः, शुभ्र–त्रिनयन–वृष–उत्खात–पंक–उपमेयाम् शोभाम् वक्ष्यसि।।56।।

अनुवाद– जहाँ पर बैठे हुए, हरिणों की कस्तूरी की गन्ध से सुगन्धित शिलाओं वाले, उस गंगा के उद्‌गम स्थल, हिम से श्वेत पर्वत को पाकर, मार्ग की थकान को दूर करने वाले तुम, उस शिखर पर स्थित होकर, महादेव के श्वेत नन्दी बैल द्वारा उखाड़े गए, कीचड़ के समान शोभा को धारण कर लोगे।

'चन्द्रिका'– कनखल में गंगा के जल को पीने के बाद, तुम गंगा के उद्‌गम स्थल गंगोत्री पर पहुँचोगे, तो वहाँ पर तुम्हें पर्वत की सुगन्धित शिलाओं पर बैठे हुए कस्तूरी मृग मिलेंगे, जिससे तुम्हें असीम आनन्द की अनुभूति होगी। इसके अलावा यहाँ आकर जब तुम हिम से ढ़के हुए धवल पर्वत के शिखर पर मार्ग की थकान को दूर करने के लिए विश्राम करोगे, तो तुम्हारी शोभा तीन नेत्रों वाले भगवान् महादेव के 'उत्खातकेलि' करते हुए श्वेत नन्दी बैल द्वारा, अपने सींगों से उखाड़े गए, सींगों के अग्रभाग पर लगे हुए, कृष्णवर्ण कीचड़ के समान होगी।

विशेष–(i) 'कस्तूरी मृग' वस्तुतः मृगों की एक जाति विशेष होती है, जो हिमालय की निश्चित ऊँचाई पर ही मिलती है। मान्यता है कि इनकी नाभि में ही सुगन्धित पदार्थ कस्तूरी होता है और ये जहाँ पर भी बैठ जाते हैं, वह स्थान भी सुगन्धित हो जाता है। प्रस्तुत उल्लेख से कवि का प्राणिविज्ञान विषयक ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) हिम से श्वेत चोटी पर कृष्णवर्ण मेघ की कल्पना कवि ने नन्दी बैल के सींग पर रखे हुए कीचड़ से की है, जो अत्यधिक मनोहारिणी कही जा सकती है। कवि की अद्भुत कल्पनाशीलता अभिव्यक्त हुई है।

(iii) मदमस्त बैल असीम आनन्द की अनुभूति के अवसर पर अपने समक्ष मिट्टी के टीले में ही जोरदार टक्कर मारता है, जिसके परिणामस्वरूप उसके सींगों पर मिट्टी का काला कीचड़ लग जाता है, इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को साहित्य की भाषा में 'उत्खातकेलि' कहते हैं, यहाँ कवि ने उसी ओर संकेत किया है।

(iv) प्रस्तुत श्लोक में हिमालय की उपमा शिव के वृषभ से तथा मेघ की उसके सींगों पर लगे कीचड़ के साथ दी गयी है जिससे उपमालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **निषण्णः**– नि+√सद्+क्त,

(ii) **वक्ष्यसि**–√वह्+ लृट्, म. पु., एकवचन, वहन करोगे।

(iii) **नाभिगन्धैः**– नाभेः गन्धैः, नाभि में स्थित गन्धों द्वारा।

(iv) **सुरभितशिलैः**– सुरभिः संजातो यासां ताः सुरभिताः सुरभिताः शिलाः यस्य सः, तम् बहुव्रीहि, सुरभि+इतच्+टाप्, सुरभिताः।

(v) **अचलम्**– चलति, इति चलः, न चलः अचलः, तम्।

(vi) **अध्वश्रमविनयने**– अध्वनः श्रमः, तस्य विनयनम्, विनीयते अनेनेति विनयनम्, सामर्थ्य के कर्ता अर्थ में ल्युट् प्रत्यय का प्रयोग।

(vii) **शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपंकोपमेयाम्**– त्रीणि नयनानि यस्य सः, त्रिनयनस्य वृषः, शुभ्रः त्रिनयनवृषः, तेन उत्खातः, तादृशः पंकः, तेन उपमेया, ताम्, **उत्खात**– उत्+√खन्+क्त, **उपमेया** उप+√मा+यत्+टाप्

(viii) **प्रभवम्**– प्रभवति अस्मादिति, तम्, प्र+√भू+अप्,

संजीवनी टीका– आसीनानामिति। आसीनानामुपविष्टानां मृगाणां कस्तूरिकामृगाणाम्। अन्यथा नाभिगन्धानुपपत्तेः। नाभिगन्धैः कस्तूरीगन्धस्तेषां तदुद्भवत्वात्। अत एव मृगनाभिसंज्ञा च। 'मृगनाभि– र्मृगमदः कस्तूरी च' इत्यमरः। अथवा नाभयः कस्तूर्यः 'नाभिः प्रधाने कस्तूर्यां मदे च क्वचिदीरितः' इति विश्वः। तासां गन्धैः सुरभिताः सुरभिकृताः शिला यस्य तं तस्याः गंगाया एव प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः कारणम्। तुषारैर्गौरं सितम्। 'अवदातः सितो गौरः' इत्यमरः।

अचलं प्राप्य। विनीयतेऽनेनेति विनयम्। करणे ल्युट्। अध्वश्रमस्य विनयनेऽपनोदने तस्य हिमाद्रेः शृंगे निषण्णः सन्। शुभ्रो यस्त्रिनयनस्य त्र्यम्बकस्य वृषो वृषभः। 'सुकृते वृषभे वृषः' इत्यमरः। तेनोत्खातेन विदारितेन पंकेन सहोपमेयामुपमातुमर्हां शोभां वक्ष्यसि वोढासि। वहतेर्लृट्। 'त्रिनयन–' इत्यत्र 'पूर्वपदात्संज्ञायामगः' इति णत्वं न भवति, 'क्षुभ्नादिषु च' इति निषेधात्। तस्याः प्रभवमित्यादिना हिमाद्रौ मेघस्य वैवाहिको गृहविहारो ध्वन्यते।।56।।

अवतरणिका– तत्पश्चात् विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ की श्रेष्ठ एवं परोपकारी व्यक्ति के रूप में प्रशंसा करके, हिमालय पर्वत पर लगी हुई दावानल को शान्त करने की बात करते हुए कहता है कि–

तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्निः।
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै–
रापन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम्[1]।।57।।

अन्वय– वायौ सरति सरल–स्कन्ध–संघट्ट–जन्मा उल्का–क्षपित –चमरी–बाल–भारः दवाग्निः, चेत् तम् बाधेत, एनम् वारि–धारा–सहस्रैः शमयितुम् अर्हसि अलम्, हि उत्तमानाम् सम्पदः आपन्न–आर्ति–प्रशमन–फलाः (भवन्ति)।।57।।

अनुवाद– यदि वायु के चलने पर, देवदारु के वृक्षों के तनों के रगड़ने से उत्पन्न ज्वालाओं से, चमरी गायों के बालों के समूह को जला डालने वाली, जंगल की आग उस हिमालय को पीड़ित करे, तो उस अग्नि को जल की हजारों धाराओं से भलीप्रकार शान्त करने में तुम समर्थ हो, क्योंकि उत्कृष्ट लोगों की सम्पत्तियाँ आपत्ति में पीड़ित लोगों की पीड़ा को दूर करने रूप फलों वाली होती हैं।

'चन्द्रिका'– वस्तुतः गर्मी की ऋतु में तेज हवाओं के चलने से देवदारु एवं बाँस आदि के वृक्षों के परस्पर रगड़ने से जंगल में आग

---

1. प्रस्तुत अंश से महाकवि के करुणामय स्वभाव की भी अभिव्यंजना हो रही है।

लग जाती है और यही अग्नि वहाँ पर पायी जाने वाली चमरी गायों की पूँछ में लग जाती है, भयभीत होकर इधर–उधर दौड़ती हुई वे इसे सारे वन में लगा देती हैं, इसी को 'दावानल' भी कहते हैं।

इसी विषय में कवि मेघ से कहता है कि यदि हिमालय पर तुम्हें ऐसी स्थिति देखने को मिले, तो तुम इस दावाग्नि को अपने जल की हजारों धाराओं से शान्त करने में पूर्णतया समर्थ हो, इसलिए तुम्हें ऐसा ही करना चाहिए, क्योंकि जो उत्कृष्ट एवं परोपकारी स्वभाव के लोग होते हैं, उनकी तो सभी सम्पत्तियाँ दीनदुखियों तथा पीड़ितों की पीड़ा दूर करने रूप फलों वाली ही होती हैं।

विशेष–(i) ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि ने स्वयं हिमालय पर इसप्रकार के दृश्यों का अवलोकन किया है। साथ ही, महाकवि के कोमल स्वभाव वाले व्यक्तित्त्व की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हो रही है।

(ii) मेघ की सम्पत्ति तो उसका जल ही है, इसीलिए इस सम्पत्ति का भरपूर उपयोग हिमालय के वन एवं वहाँ रहने वाले जीवों की दावाग्नि विषयक पीड़ा को दूर करने के लिए कहा गया है, जिससे मेघ का उत्कृष्ट स्वभाव भी अभिव्यंजित हुआ है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक में पूर्व में प्रयुक्त अर्थ का समर्थन अन्तिम चतुर्थ चरण के अर्थ से किए जाने से अर्थान्तरन्यास अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **वायौ**– वाति, इति, तस्मिन्।

(ii) **अर्हसि**– √अर्ह्+लट्+ मध्यमपुरुष, एक वचन, योग्य हो।

(iii) **बाधते**– √बाध्+विधिलिङ्, आत्मने, प्र.पु. एकवचन ।

(iv) **वारिधारासहस्रैः**– वारीणां धाराः, तेषां सहस्राणि, तैः।

(v) **सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा**– सरलानां स्कन्धाः तेषां संघट्टः, तस्मात्, जन्म यस्य सः, बहुव्रीहि। सम्+ √घट्ट्+घञ्, संघट्टः।

(vi) **उल्काक्षपितचमरीबालभारः**– उल्काभिः क्षपिताः, चमरीणां बालभारः, चमरीबालभारः, उल्काक्षपितः चमरीबालभारः येन सः, बहुव्रीहि

(vii) **दवाग्निः**– दवस्य अग्निः, ष. तत्पुरुष, जंगल की आग।

(viii) **शमयितुम्**– √शम्+णिच्+तुमुन्, शान्त करने के लिए।

(ix) आपन्नार्तिप्रशमनफलाः– आपन्नानां अर्तिः, तस्याः प्रशमनम्, तदेव फलं यस्याः ताः, बहुव्रीहि। **आपन्नः**– आ+ √पद्+क्त,

संजीवनी टीका– तमिति। वायौ वनवाते सरति वाति सहि सति सरलानां देवदारुद्रुमाणां स्कन्धाः प्रदेशविशेषाः। 'अस्त्री प्रकाण्डः स्कन्धः स्यान्मूलाच्छाखावधेस्तरोः' इत्यमरः। तेषां संघट्टेन संघर्षणेन जन्म यस्य स तथोक्तः। जन्मोत्तरपदत्वाद् व्यधिकरणोऽपि बहुव्रीहिः साधुरित्युक्तम्। उल्काभिः स्फुल्लिंगैः क्षपिता निर्दग्धाश्चमरीणां बालभाराः केशसमूहाः येन, दव एवाग्निर्दवाग्निर्वनवह्निः। 'वने च वनवह्नौ च दवो दाव इतीष्यते' इति यादवः। तं हिमाद्रिं बाधते चेत्पीडयेद्यदि। एनं दवाग्निं वारिधारासहस्रैः शमयितुमर्हसि। युक्तं चैतदित्याह– उत्तमानां महतां सम्पदः समृद्धयः आपन्नानामार्तानामर्तिप्रशमनमापन्निवारणमेव फलं प्रयोजनं यासां तास्तथोक्ता हि। अतो हिमाचलस्य दावानलस्त्वया शमयितव्य इति भावः।।57।।

अवतरणिका– तत्पश्चात् विरही यक्ष, तात्कालिक समय में हिमालय पर मिलने वाले **'शरभ'** नामक भयंकर एवं हिंसक पशु विशेष की उद्दण्डता के विषय में, अपने मित्र मेघ को सावधान करते हुए कहता है कि–

ये संरम्भोत्पतनरभसाः स्वांगभंगाय तस्मिन्
मुक्ताध्वानं सपदि शरभा लंघयेयुर्भवन्तम्।
तान्कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्
के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः।।58।।

अन्वय– तस्मिन् संरम्भ–उत्पतन–रभसाः ये शरभाः मुक्त–अध्वानम् भवन्तम्, सपदि स्व–अंग–भंगाय लंघयेयुः, तान् तुमुल–करका–वृष्टि–पात–अवकीर्णान् कुर्वीथाः, निष्फल–आरम्भ–यत्नाः के वा परिभव–पदम् न स्युः।।58।।

अनुवाद– उस हिमालय पर्वत पर क्रोध के कारण वेगपूर्वक उछलने वाले, जो 'शरभ' मार्ग को छोड़ देने वाले, आपको शीघ्र ही अपने अंगों के नष्ट करने के लिए लाँघने का प्रयास करें, तो उन्हें भयंकर ओलों की वर्षा करके, तितर–बितर कर देना, क्योंकि व्यर्थ काम करने वाले कौन लोग तिरस्कार के पात्र नहीं होते हैं?

'चन्द्रिका'– कवि कहता है कि यदि क्रोध के कारण आकाश में ऊँचा उछलने वाले, बहुत से शरभों से हिमालय में तुम्हारा सामना हो जाए और उनका मार्ग छोड़ दिए जाने पर भी वे तुम्हारे ऊपर आक्रमण करके, तुम्हारे अंगों को छिन्न–भिन्न करने का प्रयास करें, तो निश्चय ही, उन सभी को अपने भयंकर ओलों की वर्षा से तितर–बितर कर देना अर्थात् भगा देना, क्योंकि व्यर्थ के काम करने वाले सभी दुष्ट प्रकृति के लोग वस्तुतः तिरस्कार के ही पात्र होते हैं, इसलिए इनका इसीप्रकार तिरस्कार करना उचित है।

विशेष–(i) 'शरभ' वस्तुतः आठ पैरों वाला, सिंह से भी भयंकर जंगली पशु होता है, जो प्राचीन समय में हिमालय में पाया जाता था, यदि मेघ के आकार एवं गर्जन आदि से उसको अपना प्रतिद्वन्द्वी समझकर, यह उस पर आक्रमण करे, तो भीषण ओलों की वर्षा करके उसे शान्त करने की बात का यहाँ कवि द्वारा कथन किया गया है।

(ii) 'शरभ' को यहाँ पर दुष्ट व्यक्ति का भी प्रतीक कहा जा सकता है, जिसे दण्डित करके ही शान्त किया जा सकता है, इससे कवि के व्यक्तित्व एवं मान्यताओं की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(iii) उल्लेखनीय है कि यहाँ कवि ने शरभों को केवल तितर बितर करने की ही बात की है, मारने की नहीं, इससे कवि का अहिंसक एवं कोमल स्वभाव भी अभिव्यक्त हुआ है।

(iv) यहाँ चतुर्थ चरण के अर्थ द्वारा तृतीय चरण के अर्थ का समर्थन करने से अर्थान्तरन्यास अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(v) 'वा' अव्यय पद का यहाँ 'हेतु' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **स्युः**– √अस्+वि.लि.,प्र.पु.बहु व.।

(ii) **मुक्ताध्वानम्**– मुक्तः अध्वा येन तम् बहुव्रीहि, √मुच्+क्त

(iii) **स्वांगभंगाय**– स्वानि च तानि अंगानि, तासां भंगः, तस्मै।

(iv) **लंघयेयुः**– √लंघ्+विधिलिङ्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(v) **संरम्भोत्पतनरभसाः**– संरम्भेण उत्पतनं, तस्मिन् रभसः, येषां ते, बहुव्रीहि संरम्भणम् इति, सम्+ √रम्+घञ्–संरम्भः,उत्+ √पत्+ल्युट्।

(vi) **कुर्वीथाः**–√कृ+विधिलिङ्, आत्मने, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(vii) **निष्फलारम्भयत्नाः**– निष्फलाश्च ते आरम्भाः, तेषु यत्नः येषां ते, निर्गतं फलं यस्मात् सः, बहुव्रीहि। व्यर्थ काम करने वाले।

(viii) **परिभवपदम्**– परिभवस्य पदम्, परि+ √भू+अप् भावे।

(ix) **तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्**– तुमुलाश्च ताः करकाः, तासां वृष्टिः , तस्याः पातः, तेन अवकीर्णाः, तान्, √पत्+घञ्, पातः।

संजीवनी टीका– य इति। तस्मिन् हिमाद्रौ संरम्भः कोपः। 'संरम्भः संभ्रमे कोपे' इति शब्दार्णवे। तेनोत्पतने उत्प्लवने रभसो वेगो येषां ते तथोक्ताः 'रभसो वेगहर्षयोः' इत्यमरः। ये शरभा अष्टापदमृग-विशेषाः। 'शरभः शलभे चाष्टापदे प्रोक्तो मृगान्तरे' इति विश्वः। मुक्तोऽध्वा शरभोत्प्लवनमार्गो येन तं भवन्तं सपदि स्वांगभंगाय लंघयेयुः। सम्भावनायां लिङ्। भवतोऽतिदूरत्वात् स्वांगभंगातिरिक्तं फलं नास्ति लंघनस्येत्यर्थः। तान् शरभांस्तुमुलाः संकुलाः करका वर्षोपलाः। 'वर्षो-पलस्तु करका' इत्यमरः। तासां वृष्टिस्तस्याः पातेनावकीर्णान्विक्षिप्तान् कुर्वीथाः कुरुष्व। विध्यर्थे लिङ्। क्षुद्रोऽप्यधिक्षिपन् प्रतिपक्षः सद्यः प्रतिपक्षेप्तव्य इति भावः। तथाहि आरभ्यन्त इत्यारम्भाः कर्माणि तेषु यत्न उद्योगः स निष्फलो येषां तथोक्ताः। निष्फलकर्मोपक्रमा इत्यर्थः।

अतः के वा प्रतिभवपदं तिरस्कारपदं न स्युर्न भवन्ति। सर्व एव भवन्तीत्यर्थः। यदत्र 'घनोपलस्तु करक' इति यादववचनात्करकशब्दस्य

नियत पुंल्लिंगताभिप्रायेण करकाणामावृष्टिः' केषांचिद् व्याख्यानं तदन्ते नानुमन्यन्ते। 'वर्षापलस्तु कारका' इत्यमरवचनव्याख्याने क्षीरस्वामिना 'कमण्डलौ च करकः सुगते च विनायकः' इति नानार्थे पुंस्यपि वक्ष्यतीति वदतोभयलिंगताप्रकाशनात्। यादवस्य तु पुंल्लिंगता विधाने तात्पर्यं न तु स्त्रीलिंगतानिषेध इति तद्विरोधोऽपि। 'करकस्तु स्यादाक्रोशे च कमण्डलौ। पक्षिभेदे करे चापि करका च घनोपले' इति विश्वप्रकाश–वचने तूभयलिंगता व्यक्तैवेति न कुत्रापि विरोधवार्ता। अतएव रूद्रः– 'वर्षोपलस्तु करका करकोऽपि च दृश्यते' इति।।58।।

अवतरणिका– इसके बाद यक्ष, अपने मित्र मेघ से हिमालय पर स्थित भगवान् महादेव के चरण–चिह्नों की परिक्रमा करने की बात का उल्लेख करते हुए कहता है कि–

तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुमौलेः
शश्वत्सिद्धैरुपचितबलिं भक्तिनम्रः परीयाः।
यस्मिन्दृष्टे करणविगमादूर्ध्वमुद्धूतपापाः
संकल्पन्ते[1] स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः।।58।।

अन्वय– तत्र दृषदि व्यक्तम्, सिद्धैः शश्वत् उपचित–बलिम्, अर्धेन्दु–मौलेः चरण–न्यासम् भक्ति–नम्रः परीयाः, यस्मिन् दृष्टे उद्धूत–पापाः श्रद्दधानाः, करण–विगमात् ऊर्ध्वम् स्थिर–गण–पद–प्राप्तये संक–ल्पन्ते।।58।।

अनुवाद– उस हिमालय में शिला पर प्रकट हुए, सिद्ध नामक देवों द्वारा निरन्तर पूजा किए गए, महादेव के चरण–चिह्नों की भक्ति भाव से झुककर प्रदक्षिणा करना, क्योंकि जिन चरणों के दिखायी देने पर पापों से मुक्त हुए श्रद्धालु लोग, शरीर का त्याग करने के बाद, शिव के गणों के 'शाश्वत' पद को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

'चन्द्रिका'– हे मित्र! मेघ, यदि तुम्हें उस हिमालय में कहीं शिला के ऊपर अंकित, सिद्धगणों द्वारा पूजा किए गए, भगवान् महादेव

---

[1]. पाठभेद– कल्पिष्यन्ते

के चरण–चिह्नों की प्राप्ति संयोगवश हो जाए, तो तुम्हें अत्यधिक भक्तिभाव के साथ झुककर, उनकी प्रदक्षिणा करनी चाहिए, क्योंकि इन चरण–चिह्नों की तो इतनी अधिक महिमा है कि इनके दर्शनमात्र से ही श्रद्धालु व्यक्ति पाप मुक्त हो जाता है और इस नश्वर शरीर का परित्याग करने के बाद, शिव के गणों के 'शाश्वत' पद को प्राप्त कर लेता है। इसलिए तुम्हें इन चरण–चिह्नों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

विशेष–(i) महादेव के प्रति कवि की गहन आस्था एवं श्रद्धा की अभिव्यक्ति हुई है, क्योंकि उनके साक्षात् दर्शन की बात तो दूर, चरण–चिह्नों के दर्शनमात्र से ही जन्ममरण के चक्र से छुटकारा प्राप्त करने की बात का यहाँ उल्लेख किया गया है।

(ii) 'सिद्ध' पद यहाँ देवयोनि विशेष के लिए प्रयुक्त हुआ है।

(iii) 'उपचितबलिम्' के स्थान पर 'उपहृतबलिम्' पाठ भी मिलता है, किन्तु दोनों में अर्थ की भिन्नता नहीं है, क्योंकि दोनों का अर्थ चरण–चिह्नों की पत्र–पुष्पादि से पूजा करना ही है।

(iv) पौराणिक मान्यता है कि भगवान् शिव अपने मस्तक पर द्वितीया के चन्द्रमा को धारण करते हैं, इसीलिए उन्हें यहाँ पर 'अर्धेन्दुमौलेः' कहा गया है।

(v) भारतीय मान्यता के अनुसार हिमालय आदि पर विचरण करने से देवों के चरणों के पाषाण की शिलाओं पर चिह्न (श्री चरण–न्यास) बन जाते हैं, यहाँ उसी ओर संकेत किया गया है।

(vi) भारतीय संस्कृति में देवों की परिक्रमा का विशेष विधान किया गया है, जो देवता को अपने दाएँ हाथ की ओर करके ग्रहण की जाती है। ज्योतिष आदि शास्त्रों में इनके तीन, पाँच, सात या ग्यारह करने का उल्लेख मिलता है।

(vii) प्रस्तुत श्लोक में भारतीय संस्कृति के समर्थन से महाकवि की राष्ट्रीय भावना भी अभिव्यक्त हुई है।

(viii) भगवान् महादेव की सेवा में रहने वालों को 'गण' या 'प्रमथ' कहते हैं, मान्यता है कि– शिव के चरण–चिह्नों की **श्रद्धा भावना से पूजा एवं परिक्रमा** करने से व्यक्ति को इसी 'शाश्वत' पद की प्राप्ति होती है और वह संसार में जन्ममरण के चक्कर से मुक्त हो जाता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **व्यक्तम्**– वि+ √अंज्+क्त,

(ii) **उपचितवलिम्**– उपचितः बलिः यस्य सः, तम्, बहुव्रीहि।

(iii) **अर्धेन्दुमौलेः**–अर्धश्चासौ इन्दुः, अर्धेन्दुः मौलौ यस्य सः,तस्य

(iv) **चरणन्यासम्**– चरणयोः न्यासः, नि+ √अस्+घञ्, न्यासः।

(v) **परीयाः**– परि+ √इण्+विधिलिङ्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(vi) **उद्धूतपापाः**– उद्धूतानि पापानि येषां ते, बहुव्रीहि।

(vii) **भक्तिनम्रः**– भक्त्या नम्रः, √भज्+क्तिन्, भक्तिः।

(viii) **श्रद्दधानाः**– श्रत्+ √धा+शानच्, प्रथमा, बहुवचन ।

(ix) **संकल्पन्ते**– सम्+ √क्लृप्+लट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

संजीवनी टीका– तत्रेति। हिमाद्रौ कस्यांचिच्छिलायां व्यक्तं प्रकट शश्वत्सदा सिद्धैर्योगिभिः। 'सिद्धिर्निष्पत्तियोगयोः' इति विश्वः। उपचितबलिं रचितपूजाविधिम्। 'बलिः पूजोपहारयोः' इति यादवः। अर्ध–श्चासाबिन्दुश्चेत्यर्धेन्दुः। 'अर्धः खण्डे समेऽशके' अति विश्वः। स मौजौ यस्य तस्येश्वरस्य चरणन्यासं पादविन्यासम्। भक्तिः पूज्येष्वनुरागस्तया नम्रः सम्परीयाः प्रदक्षिणं कुरु। परिपूर्वादिणो लिङ्। यस्मिन्पादन्यासे दृष्टे सत्युद्धूतपापानिरस्तकल्मषाः सन्त श्रद्दधाना विश्वसन्तः पुरुषाः। श्रद्धा विश्वासः। आस्तिक्यबुद्धिरिति यावत्। श्रदन्तरोरुपसर्गवाद वृत्ति–र्वक्तव्या' इति श्रत्पूर्वाद्दधातेः शानच्।

करणस्य क्षेत्रस्य विगमादूर्ध्वं देहत्यागानन्तरम्। 'करणं साधकतमं क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपि' इत्यमरः। स्थिरं शाश्वतं गणानां प्रथमानां पदं स्थानम्। 'गणाः प्रथमसंख्यौघा' इति वैजयन्ती। तस्य प्राप्तये संकल्पन्ते समर्था भवन्ति। क्लृपतेः पर्याप्तवचनस्यालमर्थत्वातद्योगे 'नम स्वस्ति–' इत्यादिना चतुर्थी। 'अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्' इति भाष्यकारः

'अव्यक्तं व्यंजयामास शिवः श्रीचरणद्वयम्। हिमाद्रौ शाम्भवादीनां सिद्धये सर्वकर्मणाम्। दृष्ट्वा श्रीचरण सम्यक् साधकः स्थिरर्येत्तनुम्। इच्छाधीन शरीरो हि विचरेच्च जगत्त्रयम्।' इति शम्भुरहस्ये।।59।।

अवतरणिका– तत्पश्चात् विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ को गर्जन द्वारा भगवान् शंकर के अर्चन में, संगीत की पूर्णता करने का निर्देश देते हुए कहता है कि–

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः
संरक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः।
निर्ह्लादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु ध्वनिः स्यात्
संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः।।60।।

अन्वय–अनिलैः पूर्यमाणाः कीचकाः मधुरम् शब्दायन्ते, संरक्ताभिः किन्नरीभिः त्रिपुर–विजयः गीयते, कन्दरेषु ते निर्ह्लादः मुरजे ध्वनिः इव स्यात् चेत्, (तर्हि) तत्र पशुपतेः संगीत–अर्थः ननु समग्रः भावी।।60।।

अनुवाद– **वायु से भरे हुए बाँस मधुर शब्द करते हैं तथा किन्नरों की स्त्रियाँ एक साथ मिलकर त्रिपुर विजय का गान करती हैं, तब यदि गुफाओं में तुम्हारा गर्जन, नगाड़े के शब्द के जैसा हो जाए, तो वहाँ पर महादेव के संगीत की सामग्री अवश्य ही पूर्ण हो जाएगी।**

'चन्द्रिका'– जब तुम हिमालय पर स्थित शिव के क्षेत्र में पहुँचोगे, तो वहाँ पर छिद्रों से युक्त बाँस के वृक्ष वायु के भरने से मधुर शब्द कर रहे होंगे एवं किन्नरों की स्त्रियाँ श्रीमहादेव के त्रिपुरासुर पर विजय विषयक गीतों को मधुर स्वर में गा रही होंगी। इसी समय यदि तुम्हारा गर्जन पर्वत की गुफाओं में घुसकर, नगाड़े की ध्वनि के समान गम्भीर हो जाएगा, तो निश्चय ही भगवान् शिव के लिए संगीत की सामग्री की पूर्णता हो जाएगी।

विशेष–(i) कवि का संगीत विषयक प्रेम अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) बाँस विशेष को 'कीचक' कहते हैं, जिसमें छिद्र होते हैं, वन में तीव्र वायु के चलने से इनके छिद्रों में हवा भरने से ये मधुर शब्द करते हैं। कवि ने यहाँ उसी ओर संकेत किया है।

(iii) 'किन्नर' देव विशेष की जाति है, जो गान–विद्या के लिए प्रसिद्ध है। मान्यता है कि इन्द्र की सभा में अप्सराएँ नृत्य प्रस्तुत करती थीं और किन्नर गीत गाते थे।

(iv) भगवान् महादेव ने 'त्रिपुर' नामक राक्षस पर विजय प्राप्त की थी, इसलिए इसी विजय को किन्नर लोग प्रशंसात्मक रूप में अपने गान के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं, यही भारतीय लोकपरम्परा भी है।

(v) यहाँ 'कीचक' का मधुर शब्द, किन्नर गायन तथा मेघ का गम्भीर गर्जन, इन तीनों का शिव के चरण–चिह्न के क्रम से स्थित होने के कारण पर्याय अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(vi) 'मय' नामक राक्षस ने दैत्यों के लिए आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी पर क्रमशः स्वर्ण, रजत और लोह से निर्मित नगरों का निर्माण किया था, जिनमें क्रमशः विद्युन्माली, रक्ताक्ष एवं हिरण्याक्ष आदि प्रमुख दैत्य रहते हुए देवताओं को सताने लगे, तो देवों की प्रार्थना पर महादेव ने अपने बाणों की वर्षा से इन तीनों पुरों का दहन कर दिया, तभी से किन्नर लोग 'त्रिपुरविजय' गान करते हैं।

(vii) महाकवि का अभिप्राय है कि इस प्रसंग में कीचक की मधुर ध्वनियाँ बाँसुरी का कार्य करेंगी, नृत्य एवं गीत किन्नरियों द्वारा किया जा रहा होगा, इसलिए मेघ द्वारा किया गया गर्जन, गुफाओं में जाकर प्रतिध्वनि के रूप में लौटकर, गम्भीरता के कारण नगाड़े का काम करेगा। इसप्रकार संगीत के सभी उपादान(सामग्री)पूर्ण हो जाएँगे।

(viii) प्ररतुत श्लोक में 'मुरज इव' में उपमालंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) पूर्यमाणाः— √पृ+शानच्, प्र.बहुव.

(ii) शब्दायन्ते–शब्दं कुर्वन्ति,इति, शब्द+ √क्यङ्+लट्, प्र.पु.ब.व.

(iii) संसक्ताभिः– सम्+ √संज्+टाप्, तृतीया, बहुवचन।

(iv) त्रिपुरविजयः– त्रयाणां पुराणां समाहारः, तस्य विजयः।

(v) गीयते– √गै+लट्, प्रथमपुरुष, एक वचन, गाया जाता है।

संजीवनी टीका– शब्दायन्त इति। हे मेघ अनिलैः पूर्यमाणाः कीचकाः वेणुविशेषाः। 'वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः' इत्यमरः। 'कीचकाः दैत्यभेदे स्याच्छुष्कवंशे द्रुमान्तरे' इति विश्वः। मधुरं श्रुतिसुखं यथा तथा शब्दायन्ते शब्दं कुर्वन्ति। स्वनन्तीत्यर्थः। 'शब्दवैर–कलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे' इति क्यङ्। अनेन वंशवाद्यसम्पत्तिरुक्ता। संसक्ताभिः संयुक्ताभिर्वंशवाद्यानुषक्ताभिर्वा। 'सरक्ताभिः' इति पाठे संरक्तकण्ठीभिरित्यर्थः। किंनरीभिः किंनरस्त्रीभिः। त्रयाणां पुराणां समाहारस्त्रिपुरम्। 'तद्धितार्थोत्तरपद–' इति समासः।

पात्रादित्वान्नपुंसकत्वम्। तस्य विजयो गीयते। कन्दरेषु दरीषु। 'दरी तु कन्दरो वा स्त्री' इत्यमरः। ते तव निर्ह्रादो मुरजे वाद्यभेदे ध्वनिरिव । मुरजध्वनिरिवेत्यर्थः। स्याच्चेतर्हि तव चरणसमीपे पशुपतेर्नित्यसंनिहितस्य शिवस्य संगीतम् सम्यग्गीतम्। 'तोर्यत्रिकं तु संगीतं न्यायारम्भे प्रसिद्धके। तूर्याणां तित्रये च' इति शब्दार्णवः। तदेवार्थः संगीतार्थः संगीतवस्तु। 'अर्थोऽभिधेयैरेवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु' इत्यमरः। समग्रः सम्पूर्णो भावी ननु भविष्यति खलु। 'भविष्यति गम्यादयः' इति भविष्यदर्थे णिनिः।।60।।

अवतरणिका– तत्पश्चात् विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से क्रौंच नामक पर्वत से उत्तर दिशा की ओर जाने के लिए कहता है कि–

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान्विशेषान्
हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौंचरन्ध्रम्।
तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी
श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः।।61।।

अन्वय– प्रालेय–आद्रेः उप–तटम् तान् तान् विशेषान् अतिक्रम्य, हंस–द्वारम् भृगुपति–यशोवर्त्म, यत् क्रौंच–रन्ध्रम्, तेन बलि–नियमन–

अभ्युद्यतस्य विष्णोः श्यामः पादः इव, तिर्यक्–आयाम–शोभी उदीचीम् दिशम् अनुसरेः ।।61।।

अनुवाद– हिमालय पर्वत के तट के पास उन–उन दर्शनीय वस्तुओं को लाँघकर, हंसों का द्वार स्वरूप, परशुराम के कीर्ति का मार्ग रूप, जो क्रौंच पर्वत का छिद्र है, उसमें 'बलि' नामक दैत्य को बाँधने के लिए तत्पर, भगवान् विष्णु के साँवले पैरों के समान तिरछे हुए, आकार से सुशोभित होने वाले तुम, उत्तर दिशा की ओर जाना।

'चन्द्रिका'– इस हिमालय पर्वत के आसपास के जो भी विशेष दर्शनीय स्थल हैं, उन सभी को लाँघते हुए तुम, हंसों के मानसरोवर जाने के द्वाररूप में माने जाने वाले तथा परशुराम की कीर्ति के द्वार के रूप में प्रसिद्ध, जो क्रौंच पर्वत का छिद्र विद्यमान है, बलि के बन्धन में प्रवृत्त भगवान् विष्णु के श्याम वर्ण वाले चरण के समान तिरछी लम्बाई की शोभा को प्राप्त करने वाले तुम, उस छिद्र से होकर उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करना।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में 'क्रौंचरन्ध्र' को परशुराम का 'यशोवर्त्म' कहा गया है। मेघ इस 'रन्ध्र' में प्रविष्ट होता हुआ, आगे प्रस्थान करेगा, तो विष्णु के लम्बे चरण के समान दिखायी देगा।

(ii) मल्लिनाथ के अनुसार शिव से धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करते समय, परशुराम ने कार्तिकेय के साथ स्पर्धा करते हुए, अपने अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों से क्रौंच पर्वत को बींध दिया था। इसलिए इस क्रौंचरन्ध्र को परशुराम की कीर्तिस्वरूप कहा गया है।

(iii) 'क्रौंच' वस्तुतः मैनाक पर्वत का पुत्र है तथा उसका यह 'रन्ध्र' वर्तमान में 'नीतिभासा' या 'नीतिमाण दर्रे' के रूप में जाना जाता है, जो गढ़वाल तथा कुमायूँ की सीमा पर विद्यमान है।

(iv) पौराणिक मान्यता के अनुसार वामन अवतार भगवान् विष्णु ने 'बलि' नामक दैत्य को नियन्त्रित करने के लिए, अपने तिरछे और लम्बे श्याम चरणों का उपयोग किया था।

(v) क्रौंच पर्वत के इस छोटे से रन्ध्र से विशाल आकार वाले, मेघ के सीधा प्रविष्ट न हो पाने के कारण, थोड़ा तिरछा और लम्बा होकर, उसके प्रवेश की कल्पना की गयी है, इस समय उसकी शोभा विष्णु के श्याम एवं तिरछे दीर्घ चरण के समान होगी।

(vi) 'प्रालेय' वस्तुतः 'हिम' को कहते हैं, इसलिए यहाँ 'प्रालेयाद्रि' विशेषण हिमालय के लिए प्रयोग किया गया है।

(vii) भूवैज्ञानिकों की मान्यता है कि प्राचीन काल में आए एक प्रलय के कारण, भारत एवं अफ्रीका को जोड़ने वाले एक सागर के उभरने से ही हिमालय की उत्पत्ति हुई है। प्रस्तुत विशेषण का प्रयोग कवि ने सम्भवतः इसी आशय को अभिव्यक्त करने के लिए किया है, जिससे उनकी भूवैज्ञानिकी दृष्टि भी अभिव्यक्त हुई है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **अतिक्रम्य**— अति+ √क्रम्+ल्यप्

(ii) **अनुसरेः**— अनु+ √सृ+विधिलिङ्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(iii) **प्रालेयाद्रेः**— प्रालेयस्य अद्रिः, **प्रलय**— प्र+ √लीङ्+अच्, प्रलयात् आगतम्, इति प्रालेयम्, तत आगत से अण् प्रत्यय।

(iv) **उपतटम्**—तटस्य समीपे, **हंसद्वारम्**— हंसानां द्वारम् ष.तत्पु.

(v) **भृगुपतियशोवर्त्म**— भृगुणां पतिः, तस्य यशः, तस्य वर्त्म।

(vi) **क्रौंचरन्ध्रम्**— क्रौंचस्य रन्ध्रम्, षष्ठी तत्पुरुष।

(vii) **उदीचीम्**— उद+ √अंच्+क्विन्+ङीप्, उत्तर दिशा में।

(viii) **तिर्यगायामशोभी**— तिर्यक् चासौ आयामः, तेन शोभते ।

(ix) **विष्णोः**— वेवेष्टीति, विष्णुः, तस्य विष्+नु, भगवान् विष्णु।

(x) **बलिनियमनाभ्युद्यतस्य**— बलेः नियमनं, तस्मिन् अभ्युद्यतः, तस्य, **नियमन**— नि+ √यम्+ल्युट्, **अभ्युद्यत**— अभि+उत्+ √यम्+क्त,

संजीवनी टीका— प्रालेयाद्रेरिति। प्रालेयाद्रेर्हिमाद्रेरुपतटं तट— समीपे। 'अव्ययं विभक्ति—' इत्यादिना समीपार्थेऽव्ययीभावः। तांस्तान्। वीप्सायां द्विरुक्तिः। विशेषान्द्रष्टव्यार्थान्। 'विशेषोऽवयवे द्रव्ये द्रष्टव्यो— त्तमवस्तुनि' इति शब्दार्णवे। अतिक्रम्यानुसरेर्गच्छेरित्यनागतेन सम्बन्धः।

हंसानां द्वारं हंसद्वारम्। मानसप्रस्थायिनो हंसाः क्रौंचरन्ध्रेण संचरन्ते इत्यागमः। भृगुपतेर्जामदग्न्यस्य यशोवर्त्म। यशः प्रवृत्तिकारणमित्यर्थः। यत् क्रौंचस्याद्रे रन्ध्रमस्ति तेन क्रौंचबिलेन बलेर्दैत्यस्य नियमने बन्धने ऽभ्युद्यतस्य प्रवृत्तस्य विष्णोर्व्यापकस्य त्रिविक्रमस्य श्यामः कृष्णवर्णः पाद इव तिर्यगायामेन क्षिप्रप्रवेशनार्थं तिरश्चीनदैर्घ्येण शोभत इति, तथाविधः सन्नुदीचीमुत्तरां दिशमनुसरेरनुगच्छ। पुरा किल भगवतो देवाद् धूर्जटे–र्धनुरुपनिषदमधीयानेन भृगुनन्दनेन स्कन्दस्य स्पर्धया क्रौंचशिखरिणमति–निशितविशिखमुखेन हेलया मृत्पिण्डभेदं भित्त्वा ततः क्रौंचभेदादेव सद्यः समुज्जृम्भिते कस्मिन्नपि यशःक्षीरनिधौ निखिलमपि जगज्जलमाप्लावि–तमिति कथा श्रूयते।।61।।

अवतरणिका– तत्पश्चात् विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से कहता है कि इसी क्रौंचरन्ध्र से निकलकर तुम कैलास पर्वत पर जाना–

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः।
शृंगोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः।।62।।

अन्वय– ऊर्ध्वम् च गत्वा, (त्वम्) दश–मुख–भुज–उच्छ्वासित–प्रस्थ–सन्धेः, त्रिदश–वनिता–दर्पणस्य कैलासस्य अतिथिः स्याः, कुमुद–विशदैः शृंगोच्छ्रायैः खम् वितत्य स्थितः, यः प्रतिदिनम् राशी–भूतः त्र्यम्बकस्य अट्टहासः इव।।62।।

अनुवाद– हे मेघ! इसके अतिरिक्त थोड़ा ऊपर की ओर जाकर, तुम रावण की भुजाओं द्वारा शिथिल किए गए शिखरों के जोड़ों वाले, देवताओं की स्त्रियों के दर्पण के समान, कैलास पर्वत का अतिथि हो जाना, कुमुद के पुष्पों के समान श्वेत उच्च शिखरों से आकाश को व्याप्त करके विद्यमान, जो कैलास पर्वत मानो प्रतिदिन एकत्र हुआ महादेव का अट्टहासरूप है।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में कैलास पर्वत की चार विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। **प्रथम**, यह रावण की भुजाओं द्वारा ढ़ीली कर दिए गए शिखरों के जोड़ों वाला है। **द्वितीय**, देवांगनाएँ अपने प्रसाधन के लिए इसका दर्पण के समान प्रयोग करती हैं। **तृतीय**, आकाश को व्याप्त करके, बर्फ से ढ़के हुए, इसके ऊँचे–ऊँचे शिखर, कुमुद के पुष्पों के समान श्वेत दिखायी देते हैं। **चतुर्थ**, इन तीनों प्रकार की विशेषताओं वाला यह पर्वत, मानो महादेव के इकट्ठे हुए अट्टहास के रूप में दिखायी देता है।

विशेष–(i) हिम से धवल कैलास पर्वत में महादेव के अट्टहास की कल्पना अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है, क्योंकि कवियों द्वारा हास का रंग 'धवल' माना गया है, इसलिए यह कैलास वस्तुतः प्रतिदिन किए गए शिव के अट्टहासों का इकट्ठा हुआ ढेररूप है, अन्य कुछ नहीं।

(ii) एक बार रावण अपने छोटे भाई कुबेर की अलका नगरी को विजित करके, वापस आ रहा था, मार्ग में कैलास पर्वत पड़ा, वहाँ स्थित शिवगणों ने उसे पर्वत से होकर जाने के लिए मना कर दिया तो रावण ने क्रुद्ध होकर कैलास को ही उखाड़ना चाहा, तभी शिव ने इस पर्वत को अपने पैर के अँगूठे से दबा दिया, पीड़ा होने से रावण चिल्लाने लगा, इसीलिए इसकी रावण संज्ञा हुई। (√रू, रवीति रावणः)

(iii) शिव के लिए यहाँ पर 'त्रयम्बक' विशेषण का प्रयोग किया गया है, जो उनके तीनों लोकों में पड़ने वाली, दृष्टि को कहता है। त्रिषु लोकेषु अम्बकं (दृष्टिः) यस्य सः, भगवान् शिवः।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **स्याः**– √अस्+विधि., म.पु., ए.व.।

(ii) **अट्टहासः**– अट्टश्चासौ हासः, कर्मधारय समास।

(iii) **अतिथिः**– अविद्यमाना तिथिः यस्य सः, बहुव्रीहि।

(iv) **कुमुदविशदैः**– कुमुदवत् विशदाः, तैः, उपमित तत्पुरुष।

(v) **शृंगोच्छ्रायैः**– शृंगाणाम् उच्छ्रायाः, तैः √श्रिञ्+घञ्, श्राया।

(vi) **वितत्य**–वि+ √तन्+क्त्वा(ल्यप्) दिनं दिनं प्रति–**प्रतिदिनम्**

(vii) त्र्यम्बकस्य– त्रीणि अम्बकानि यस्य सः, तस्य बहुव्रीहि।

(viii) राशिभूतः– अराशिः राशिः यथा सम्पद्यते तथा भूतः।

संजीवनी टीका– गत्वेति। क्रौंचबिलनिर्ममनान्तरमूर्ध्वं च गत्वा दशमुखस्य रावणस्य भुजैर्बाहुभिरुच्छ्वासिता विश्लेषिताः प्रस्थानां सानूनां संधयो यस्य तस्य। एतेन नयनकौतुकसद्भाव उक्तः। त्रिर्दशपरिमाणमेषामस्तीति त्रिदशाः। 'संख्याव्यया–' इत्यादिना बहुव्रीहिः। 'बहुव्रीहिः–' बहुव्रीहौ संख्येये डच्' इत्यादिना समासान्तो डच् प्रत्ययः। त्रिदशानां देवानां वनितास्तासां दर्पणस्य। कैलासस्य स्फटिकमयत्वाद्रजतमयत्वाद्वा बिम्बग्राहित्वेनेदमुक्तम्। कैलासस्यातिथिः स्याः। यः कैलासः कुमुद–विशदैर्निर्मलैः श्रृंगाणामुच्छ्रायैरौन्नत्यैः खमाकाशं वितत्य व्याप्य प्रतिदिनं दिने दिने राशीभूतत्र्यम्बकस्य त्रिलोचनस्याट्टहासोऽप्रतिहास इव स्थितः। 'अट्टावतिशयक्षौभौ' इति यादवः। धावल्याद्धासत्वेनोत्प्रेक्षा। हासादीनां धावल्यं कविसमयसिद्धम्।।62।।

अवतरणिका– तत्पश्चात् विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ के कैलास पर्वत पर पहुँचने के बाद की शोभा के विषय में उल्लेख करते हुए कहता है कि–

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नांजनाभे
सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य–
शोभामद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्री–
मंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव।।63।।

अन्वय– स्निग्ध–भिन्न–अंजनाभे, त्वयि तट–गते, सद्यः कृत्त–द्विरद–दशन–छेद–गौरस्य तस्य अद्रेः, मेचके वाससि, अंस–न्यस्ते सति हलभृतः इव, स्तिमित–नयन–प्रेक्षणीयाम् भवित्रीम् शोभाम् उत्पश्यामि।63

अनुवाद– चिकने पिसे हुए काजल के समान कान्ति वाले, तुम्हारे कैलास पर्वत के शिखर पर पहुँचने पर, तुरन्त काटे गए हाथी के दाँत के टुकड़े के समान, श्वेत उस कैलास पर्वत की, नीले वस्त्र

को कन्धे पर रखते हुए बलराम के समान, निर्मिमेष नेत्रों से देखे जाने योग्य भावी शोभा को देखने की, मैं कल्पना करता हूँ।

'चन्द्रिका'– एकदम चिकने, पिसे हुए काजल के समान कृष्ण वर्ण की कान्ति वाले तुम, जब कैलास पर्वत की चोटी पर पहुँचोगे, तो मेरे विचार से अभी–अभी काटे गए हाथी के दाँत के टुकड़े के समान, श्वेत उस कैलास पर्वत पर तुम्हारी शोभा, वस्तुतः बिना पलक झपकाए नेत्रों से देखी जाने योग्य, उस बलराम के समान होगी, जिसने अपने कन्धे पर नीले वस्त्र को धारण किया हुआ हो।

विशेष–(i) श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम गौर वर्ण के थे और जब भी वे नीला वस्त्र धारण करते, तो उनकी शोभा दुगुनी हो जाती थी, जिसे लोग अपलक निहारते रहते थे। महाकवि ने यहाँ उसी ओर संकेत किया है, क्योंकि गौरवर्ण कैलास पर्वत पर कृष्णवर्ण या नील वर्ण मेघ की शोभा ठीक वैसी ही आकर्षक होगी।

(ii) क्योंकि हाथी के दो दाँत बाहर की ओर निकले होते हैं, इसीलिए उसे 'द्विरद' कहते हैं। (द्वौ रदौ यस्य सः, बहुव्रीहि)

(iii) यहाँ मेघ की तुलना पिसे हुए चिकने काजल तथा बलराम के नीले वस्त्र से एवं बलराम के गौरवर्ण की उपमा कैलास के गौरवर्ण से की गयी है। अतः पूर्णोपमालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **तटगते**– तटं गतः, तस्मिन्

(ii) **अंसन्यस्ते**– अंसे न्यस्तम्, तस्मिन्, नि+ √अस्+क्त, न्यस्त

(iii) **स्निग्धभिन्नांजनाभेः**– स्निग्धं च तत् भिन्नं तादृशम् अंजनं तस्य आभा इव आभा यस्य, सः बहुव्रीहि। √स्निह्+क्त, √भिद्+क्त, भिन्न

(iv) **हलभृत**–हलं बिभर्ति इति, तस्य, हल+ √भृ+क्विप्, बलराम

(v) **स्तिमितनयनप्रेक्षणीयाम्**– स्तिमिते च ते नयने, ताभ्यां प्रेक्षणीयां ताम्, **स्तिमित**– √स्तिम्+क्त, **प्रेक्षणीय**– प्र+ √ईक्ष्+अनीयर्,

(vi) **भवित्रीम्**–भू+ √तृच्+ङीप्, द्वितीया, एकवचन, होने वाली।

(vii) **उत्पश्यामि**– उत्+ √दृश्+लट्, उत्तमपुरुष, एकवचन।

संजीवनी टीका– उत्पश्यामिति। स्निग्धं मसृणं भिन्नं मर्दितां च यदंजनं कज्जलं तस्यामेवाभ यस्य तस्मिन्त्वयि तटगते सानुगते सति सद्यः कृत्तस्य छिन्नस्य द्विरददशनस्य गजदन्तस्य छेदवद् गौरस्य धवलस्य तस्याद्रेः कैलासस्य मेचके श्यामले 'कृष्णे नीलासितश्यामकाल–श्यामलमेचकाः' इत्यमरः। वाससि वस्त्रेऽसंन्यस्ते सति हलभृतो बलभद्र–स्येव स्तिमिताभ्यां नयनाभ्यां प्रेक्षणीयां शोभां भावित्रीं भाविनीमुत्पश्यामि। शोभा भविष्यतीति तर्कयामीत्यर्थः। श्रौती पूर्णोपमालंकारः।।63।।

अवतरणिका– तत्पश्चात् विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से कैलास पर्वत पर पैदल विचरण करने वाले, माँ पार्वती एवं भगवान् महादेव के क्रीड़ा पर्वत पर, जल के ठोसरूप में सीढ़ी बनकर, उन दोनों की सेवा करने के लिए कहता है कि–

हित्वा तस्मिन् भुजगवलयं शम्भुना दत्तहस्ता
क्रीड़ाशैले यदि च विचरेत् पादचारेण गौरी।
भंगीभक्त्या विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलौघः
सौपानत्वं कुरु मणितटारोहणायाऽग्रयायी।।64।।

अन्वय– तस्मिन् क्रीड़ा–शैले च भुजग–वलयम् हित्वा, शम्भुना दत्त–हस्ता गौरी, यदि पाद–चारेण विचरेत्, अग्रयायी स्तम्भित–अन्तः जलौघः, भंगी–भक्त्या विरचित–वपुः, मणितट–आरोहणाय सौपानत्वम् कुरु।।64।।

अनुवाद– उस कैलास पर स्थित क्रीड़ा–पर्वत पर, सर्परूपी कंगन को छोड़कर, महादेव द्वारा दिए गए हाथ वाली पार्वती, यदि पैदल ही विचरण करें, तो आगे बढ़कर अपने अन्दर स्थित जलों के प्रवाह को ठोस करके, अपने शरीर को सीढ़ियों के आकार में बनाकर, तुम मणिमय तट पर चढ़ने के लिए सीढ़ी का काम करना।

'चन्द्रिका'– यक्ष कहता है कि यदि अपने सर्परूपी कंकन का परित्याग करके भगवान् महादेव, अपनी प्रिया पार्वती को अपना हाथ थमाकर, उस कैलास पर्वत पर विद्यमान क्रीड़ापर्वत पर, पैदल ही

विहार कर रहे हों, तो इस अवसर पर तुम्हारा कर्तव्य होगा कि तुम अपने अन्दर विद्यमान जल के प्रवाह को ठोस करके, अपने सम्पूर्ण शरीर से उनके समक्ष सीढ़ियों के आकार को धारण करते हुए, मणिमय तट के ऊपर चढ़ने में उनके लिए सीढ़ी के रूप में सेवा करना।

विशेष–(i) शम्भुरहस्य में महादेव की क्रीड़ा के लिए देवों द्वारा कुछ कृत्रिम पर्वतों[1] के निर्माण की बात का उल्लेख किया गया है।

(ii) पर्वतों के ऊँचे–नीचे होने से उन पर पैदल चलना शिव–पार्वती के लिए थोड़ा कठिन होगा, जिसे दूर करने के लिए, यहाँ मेघ से बर्फरूप में परिवर्तित होकर, सीढ़ी के आकार वाला बनने की बात कही गयी है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक में सर्प पर कंगन का आरोप होने से रूपक अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।

(iv) सामान्यरूप से महादेव अपने हाथों में सर्पों को कंगन के रूप में धारण करते हैं, किन्तु विहार के समय पार्वती, शिव का हाथ थामने के लिए भयभीत न हों, इसलिए उन्होंने इन भुजगवलयों को त्याग दिया है। कवि ने यहाँ उसी ओर संकेत किया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **कुरु**– √कृ+लोट्, म.पु., एकवचन।

(ii) **क्रीड़ाशैले**– क्रीड़ायाः शैलः, तस्मिन्, षष्ठी तत्पुरुष।

(iii) **हित्वा**– √हा(त्यागे)+क्त्वा, छोड़कर।

(iv) **विचरेत्**– वि+ √चर्+विधिलिङ्, प्रथमपुरुष, एक वचन।

(v) **भुजगवलयम्**– भुजग एव वलयः, तम्, कर्मधारय समास।

(vi) **दत्तहस्ताः**– दत्तः हस्तः यस्यै सा बहुव्रीहि।

(vii) **पादचारेण**– पादाभ्यां चारः, तेन। **चार**– चर्+घञ् ।

(viii) **अग्रयायी**– अग्रे यातीति, तच्छीलः, अग्र+ √या+णिनि।

(ix) **कुरु**– √कृ+लोट्, मध्यमपुरुष, एक वचन, करना।

---

[1]. कैलासः कनकाद्रिश्च मन्दरो गन्धमादनः।
क्रीड़ार्थं निर्मिताः शम्भोर्देवैः क्रीड़ाद्रयोऽभवन्।। शम्भुरहस्य।

(x) **स्तम्भितान्तजलौघः–** अन्तः स्थितं जलम्, अन्तर्जलम्, तस्य ओघः, षष्ठी तत्पुरुष, येन सः बहुव्रीहि। **स्तम्भित–** स्तम्भ+क्त,

(xi) **भंगीभक्त्या–** भंगीनां भक्तिः, तया, **भक्ति–** √भज्+क्तिन्

(xii) **विरचितवपुः–** विरचितं वपुः, येन सः, वि+ √रच्+क्त।

(xiii) **सोपानत्वम्–** सोपानस्य भावः, सोपन+त्व, सोपानरूप

(xiv) **मणितटारोहणाय–** मणीनां तटं तस्मिन् आरोहणम्, तस्मै, **आरोहण–** आ+ √रुह्+ल्युट्, मणितट पर चढ़ने के लिए ।

संजीवनी टीका– हित्वेति। तस्मिन्क्रीड़ाशैले कैलासे। 'कैलासः कनकादिश्च मन्दरो गन्धमादनः क्रीड़ार्थं निर्मिताः, शम्भोर्देवैः क्रीड़ाद्रयो ऽभवन्' इति शम्भुरहस्ये। शम्भुना शिवेन भुजग एव वलयः कंकणं तं हित्वा गौर्या भीरुत्वात् त्यक्त्वा दत्तहस्ता सती गौरी पादचारेण विचरेद्यदि तर्ह्यग्रयायी पुरोगतस्तथा स्तम्भितो घनीभावं प्रापितोऽन्तर्जल–स्यौघः प्रवाहो ये स तथाभूतः। भंगीनां पर्वणां भक्त्या रचनया विरचित–वपुः कल्पितशरीरः सन् मणीनां तटं मणितटं तस्यारोहणाय सोपानत्वं कुरु। सोपानभावं भजेत्यर्थः।।64।।

अवतरणिका– तत्पश्चात् विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से देव सुन्दरियों के विषय में कहता है कि–

तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं
नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम्।
ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे! घर्मलब्धस्य न स्यात्
क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भाययेस्ताः।।65।।

अन्वय– तत्र अवश्यम् सुर–युवतयः, वलय–कुलिश–उद्घट्टन–उद्गीर्ण–तोयम् त्वाम्, यन्त्र–धारा–गृहत्वम् नेष्यन्ति, सखे! घर्मलब्धस्य तव, यदि ताभ्यः मोक्षः न स्यात्, क्रीडा–लोलाः ताः, श्रवण–परुषैः गर्जितैः भाययेः।।65।।

अनुवाद– उस कैलास पर्वत पर अवश्य ही, देवताओं की युवतियाँ अपने कंगनों के छोरों के प्रहार से, जलों की वृष्टि करने

वाले, तुम्हें फव्वारों के रूप में परिवर्तित कर देंगी, हे मित्र! गर्मी से प्राप्त हुए तुम्हारा, यदि उन देव सुन्दरियों से छुटकारा न हो पाए, तो क्रीड़ा में आसक्त उन्हें, कानों को कटु लगने वाले गर्जनों से भयभीत कर देना।

'चन्द्रिका'– ग्रीष्मऋतु में मेघ से प्राप्त होने वाली छाया तथा जलवृष्टि का सभी लोग अधिकाधिक समय तक आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं, देवताओं की सुन्दरियाँ भी ऐसे अवसर पर मेघ को छोड़ना पसन्द नहीं करेंगी तथा वे अपने कंगनों के नुकीले भागों के प्रहार द्वारा तुम्हें फव्वारे के रूप में बदलकर तुम्हारा साथ ग्रहण करना चाहेंगी, क्योंकि ऐसा करने से गर्मी से सन्तप्त उनकी थकान दूर होगी, किन्तु उनके द्वारा ऐसा किए जाने पर मेरे सन्देश को ले जाने में अनावश्यक विलम्ब होगा, इसलिए यदि वे तुम्हें छोड़ना न चाहें, तो तुम अपने गर्जन से उन्हें थोड़ा भयभीत करके, आगे की ओर प्रस्थान करना।

विशेष–(i) वस्तुतः अत्यधिक ऊँचाई पर मेघ–वृष्टि स्थूल बूँदों के रूप में न होकर, छोटे–छोटे जल–कणों से फव्वारे रूप में ही होती है, जिसे आनन्ददायक मानते हुए देवांगनाएँ मेघ को नहीं छोड़ेंगी। यहाँ पर इसी ओर संकेत किया गया है।

(ii) सुर सुन्दरियों एवं मेघ के स्वाभाविक विलासों तथा दूसरे कार्यों का स्वाभाविक चित्रण होने से स्वभावोक्ति अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(iii) कुछ टीकाकारों ने यहाँ 'वलयकुलिश' को दृष्टिगत रखते हुए इसप्रकार अर्थ किया है– 'जब देवांगनाएँ अपने कंगन की नोकों को मेघ में जगह–जगह पर चुभोएँगी, तो असंख्य जल की बूँदें फव्वारे के रूप में उसके शरीर से निकलेंगी, जिससे वे ग्रीष्म से राहत का अनुभव करने के कारण, मेघ को आसानी से नहीं छोड़ेंगी।'

(iv) श्रृंगारिक दृष्टि से मेघ को नायक तथा सुरांगनाओं को नायिका के रूप में कामसंतप्त होने पर तृप्तिरूप अनुभूति के कारण मेघ को न छोड़ पाने रूप अर्थ की भी यहाँ अभिव्यंजना हो रही है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **नेष्यन्ति**– √नी+लृट्, पु.पु., बहुव.

(ii) **यन्त्रधारागृहत्वम्**– यन्त्रेषु धाराः, तासां गृहम्, तस्यभावः।

(iii) **क्रीड़ालोलाः**– क्रीड़ायां लोलाः, ताः, सप्तमी तत्पुरुष।

(iv) **घर्मलब्धस्य**– घर्मे लब्धः, तस्य, √लभ्+क्त, लब्धः।

(v) **श्रवणपुरुषैः**– श्रवणयोः परुषाणि तैः, सप्तमी तत्पुरुष।

(vi) **भाययेः**– √भी+णिच्+विधिलिङ्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

संजीवनी टीका– **तत्रेति। तत्र कैलासेऽवश्यं सर्वथा सुरयुवतयो वलयकुलिशानि कंकणकोटयः। शतकोटिवाचिना कुलिशशब्देन कोटि–मात्रं लक्ष्यते। तैरुद्घट्टनानि प्रहारास्तैरुद्गीर्णमुत्सृष्टं तोयं येन तं त्वां यन्त्रेषु धारा यन्त्रधारास्तासां गृहत्वं कृत्रिधारागृहत्वं नेष्यन्ति प्रापयि–ष्यन्ति। हे सखे! मित्र, घर्मे निदाघे लब्धस्य। घर्मलब्धत्वं चास्य देवभूमिषु सर्वदा सर्वर्तुसमाहारात् प्राथमिकमेघत्वांका। यथोक्तम्–'आषाढ़स्य प्रथम–' इति। तव ताभ्यः सुरयुवतिभ्यो मोक्षो न स्याद्यदि तदा क्रीड़ा–लोलाः क्रीड़ासक्ताः प्रमत्ता इत्यर्थः। ताः सुरयुवतीः श्रवणपरुषैः श्रवण–कटुभिर्गर्जितैः करणैर्भायस्त्रासयेः। अत्र हेतुभयाभावादात्मनेपदं पुगागमश्च न।। 65।।**

अवतरणिका– तत्पश्चात् विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से इस कैलास पर्वत का स्वेच्छापूर्वक उपभोग करने के लिए कहता है कि–

हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः
कुर्वन्कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य।
धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानीव वातै–
र्नानाचेष्टैर्जलद ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम्।।66।।

अन्वय– जलद! हेम–अम्भोज–प्रसवि, मानसस्य सलिलम् आददानः, ऐरावतस्य क्षण–मुख–पट–प्रीतिम् कुर्वन्, कल्पद्रुम–किसल–

यानि अंशुकानि इव, वातैः धुन्वन् नाना–चेष्टैः ललितैः तम् नगेन्द्रम् कामम् निर्विशेः । ।66 । ।

अनुवाद– हे मेघ! स्वर्ण के कमलों को उत्पन्न करने वाले, मानसरोवर के जल को ग्रहण करते हुए, ऐरावत हाथी को क्षणभर के लिए मुख पर वस्त्र का आनन्द प्रदान करते हुए, कल्पवृक्ष के पल्लवों को मानो सूक्ष्म वस्त्रों के समान, वायु द्वारा हिलाते हुए, अनेक प्रकार की चेष्टाओं वाले, विलासों द्वारा तुम, उस पर्वतराज कैलास का अपनी इच्छा के अनुसार उपभोग करना।

'चन्द्रिका'– हे मेघ! स्वर्णकमलों को उत्पन्न करने वाले, मान–सरोवर के जल का पान करते हुए तथा वहाँ पर स्थित ऐरावत हाथी को क्षणभर के लिए मुख पर वस्त्र को धारण करने का आनन्द प्रदान करते हुए, इसके अलावा कैलास पर्वत पर स्थित कल्पवृक्षों के कोमल पत्तों को महीन वस्त्र के समान, वायु द्वारा हिलाते हुए, इसप्रकार की अनेकानेक मनभावन चेष्टाओं वाली, ललित क्रीड़ाओं को करते हुए तुम, उस कैलास पर्वत का इच्छानुसार उपभोग करना।

विशेष–(i) **कल्पवृक्ष**– समुद्र मन्थन से उत्पन्न वृक्ष विशेष, जो व्यक्ति की सभी कामनाओं को पूरा करने में समर्थ माना जाता है।

(ii) लोकमान्यता के अनुसार मानसरोवर के जल में स्वर्ण कमल विकसित होते हैं, जो समीचीन प्रतीत नहीं होता है, किन्तु प्रातः काल में सूर्य की अरुण किरणों के पड़ने से इस सरोवर के कमलों की शोभा स्वर्ण कमल के समान प्रतीत होती है, यहाँ यही अभिप्राय उचित प्रतीत हो रहा है।

(iii) पौराणिक मान्यता के अनुसार समुद्रमन्थन के अवसर पर कल्पवृक्ष के साथ ही ऐरावत हाथी की भी समुद्र से ही उत्पत्ति हुई थी, जिसे इन्द्र ने अपने पास रखा था, कवि ने कैलासपर्वत पर कल्पवृक्ष के साथ उसकी उपस्थिति को भी दर्शाया है। इन्द्र के यहाँ प्रायः आने के कारण, ये दोनों भी महादेव की सेवा में निरन्तर उपस्थित रहते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **धुन्वन्**– √धु+ शतृ, कम्पयन्

(ii) **निर्विशे**– निर्+ √विश्+विधिलिङ्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(iii) **नानाचेष्टैः**– नाना चेष्टा येषु तैः, बहुव्रीहि।

(iv) **क्षणमुखपटप्रीतिम्**– मुखे पटः, तेन प्रीतिः, क्षणे मुखपट–प्रीतिः, ताम्, क्षणभर के लिए मुख पर वस्त्र के आनन्द को।

(v) **हेमाम्भोजप्रसवि**– हेम्नः अम्भोजानि तेषां प्रसवि, तत्। **अम्भोज**–अम्भसि जातः,इति, अम्भस्+ √जन्+ड, प्र+ √सू+इनि, **प्रसवि**।

(vi) **आददानः**– आ+ √दा+शानच्। **कुर्वन्**– √कृ+शत् ।

(vii) **कल्पद्रुमकिसलयानि**– कल्पद्रुमाणां किसलयानि। ष.तत्पु.

(viii) **जलद**–जलं ददाति, इति, जल+ √दा+क, मेघ, बादल।

(ix) **नगेन्द्रम्**– न गच्छन्ति, इति, नगाः, नगानाम् इन्द्रः, ष.तत्पु.

संजीवनी टीका– हेमेति। हे जलद! हेमाम्भोजानां प्रसवि जनकम्। 'जिदृक्षि–' इत्यादिनेनि प्रत्ययः। मानसस्य सरसः सलिलमा–ददानः। पिबन्नित्यर्थः। तत्स्थैरावतस्येन्द्रगजस्य। कामचारित्वाद्वा शिव–सेवार्थमिन्द्रागमनाद्वा समागतस्येति भावः। क्षणे जलादानकाले मुखे पटेन या प्रीतिस्तां कुर्वन्। तथा कल्पद्रुमाणां किसलयानि पल्लवभूतान्यंशुकानि सूक्ष्मवस्त्राणीव। 'अंशुकं वस्त्रमात्रे स्यात्परिधानोत्तरीययोः। सूक्ष्मवस्त्रे नातिदीप्तौ' इति शब्दार्णवः। वातैर्मेघवातैर्धुन्वन्। नाना बहुविधाश्चेष्टा–स्तोयपानादयो येषु तैर्ललितैः क्रीडितैः।'ना भावभेदे स्त्रीनृत्ये ललितं त्रिषु सुन्दरे। अस्त्रियां प्रमदागारे क्रीडिते जातपल्लवे' इति शब्दार्णवः। तं नगेन्द्रं कैलासं कामं यथेष्टं निर्विशेः समुपभुङ्क्ष्व। 'निर्वेशो भृतिभोगयोः' इत्यमरः। यथेच्छाविहारो मित्रगृहेषु मैत्र्याः फलम्। सहजमित्रं च ते कैलासः। मेघपर्वतयोरब्धिसूर्ययोरब्धिचन्द्रयोः शिखिजीमूतयोः समीराग्यो–र्मित्रता स्वयमिति भावः। ।66।।

अवतरणिका– तत्पश्चात् विरही यक्ष पूर्वमेघ के अन्त में अपने मित्र मेघ से इसी कैलास के ऊपर के भाग में विराजमान अलका नगरी को सरलता से पहचानने की बात करते हुए कहता है कि–

तस्योत्संगे प्रणयिन इव स्रस्तगंगादुकूलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन्।
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम्।।67।।

अन्वय– कामचारिन्! प्रणयिनः इव तस्य उत्संगे स्रस्त–गंगा–दुकूलाम् अलकाम् दृष्ट्वा, त्वम् पुनः न ज्ञास्यसे, (इति) न। उच्चैः विमाना या वः काले सलिल–उद्गारम् अभ्र–वृन्दम् कामिनी मुक्ता–जाल–ग्रथितम् अलकम् इव वहति।।67।।

अनुवाद– **अपनी इच्छानुसार विचरण करने वाले, हे मेघ! प्रेमी के समान, उस कैलास पर्वत की गोद में खिसकी हुई साड़ी वाली, गंगा की भाँति अलकापुरी को देखकर, तुम नहीं जान सकोगे, ऐसा नहीं है,** (अर्थात् निश्चय ही जान लोगे) **ऊँचे–ऊँचे सात मंजिल वाले, भवनों से युक्त, जो अलका नगरी, वर्षा काल में वृष्टि करने वाले, मेघों के समूह को ठीक उसीप्रकार धारण करती है, जैसे स्त्री मोतियों के गुच्छों से गुथे हुए केशों को धारण करती है।**

'चन्द्रिका'– हे स्वच्छन्द विचरण करने वाले मेघ! प्रेमी की गोद में अपने अंगों से नीचे की ओर सरकते हुए, स्वच्छ वस्त्र के समान, गंगारूपी नायिका इसी कैलास के ऊपरी भाग में नीचे की ओर खिसके हुए निर्मल वस्त्र वाली, अलका नगरी को देखकर निश्चय ही, तुम उसे इसरूप में पहचान लोगे, क्योंकि सात मंजिलों के भवन वाली, यह अलका नगरी वर्षा ऋतु में जल की वृष्टि करने वाले मेघों के समूह को अपने सिर पर वैसे ही धारण करती है, जिसप्रकार कोई निरभिमानी तथा क्रोध से रहित कामिनी मोतियों के गुच्छों से गूँथे गए, अपने केशपाश को धारण करती है।

विशेष–(i) कवि की मनोहारिणी कल्पना है कि यक्षों की राजधानी यह अलकापुरी मानो अपने प्रेमी कैलास पर्वत की गोद में

बैठी हुई है, जिसकी गंगारूपी श्वेत–साड़ी वस्तुतः नीचे की ओर खिसक गयी है।

(ii) अलका नगरी को यहाँ पर स्वाधीनपतिका नायिका के रूप में तथा कैलास पर्वत को अनुकूल नायकरूप में चित्रित किया गया है।

(iii) कवि की कल्पना है कि अलकारूपी नायिका ने अपने मेघरूपी काले बालों में, बूँदरूपी मोतियों को गूँथ रखा है, जो प्राचीन समय की भारतीय संस्कृति तथा स्त्रियों के प्रसाधन विषयक शैली को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली है।

(iv) प्रस्तुत श्लोक में उपमालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है। साथ ही, 'उत्संग' तथा 'विमान' पदों में श्लिष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति होने के कारण, श्लेष अलंकार का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(v) प्रस्तुत श्लोक के अलका नगरी के पक्ष में तथा कामिनी के पक्ष में दो अर्थ होंगे। **उत्संगे–** अलकापक्ष में, ऊर्ध्वभाग। कामिनी पक्ष में, गोद में। इसीप्रकार स्रस्तगंगादुकूलाम् अर्थात् गंगा के समान खिसके हुए वस्त्र अर्थात् साड़ी वाली अलकानगरी या सुन्दरी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी—(i) **ज्ञास्यसे–** √ज्ञा+लट्+म.पु., ए.व.।

(ii) **उत्संगे–** उद्+√संज्+घञ्, सप्तमी विभक्ति, एकवचन।

(iii) **वहति–**√वह्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, धारण करती है

(iv) **कामचारिन्–** कामेन चरति, इति काम+√चर्+णिनि।

(v) **स्रस्तगंगादुकूलाम्–** स्रस्त, √स्रस्+क्त, स्रस्तं गंगादुकूलं यस्याः सा, अलकानगरी, बहुव्रीहि, कामिनी पक्षे– गंगा इव दुकूलम्,

(vi) **उच्चैर्विमाना–** अलकापक्षे– उच्चैः विमानानि यस्यां सा। कामिनी पक्षे– विगतः मानः प्रणयकोपः यस्याः सा, बहुव्रीहि।

(vii) **सलिलोद्गारम्–** सलिलम् उद्गिरति, इति, तत्।

(viii) **मुक्ताजालग्रथितम्–** मुक्तानां जालानि, तैः ग्रथितः, तत्

(ix) **अभ्रवृन्दम्–** अभ्राणां वृन्दं, तत्, **दृष्ट्वा–** √दृश्+क्त्वा।

(x) **कामिनी–** काम+इनि+ङीप्, सुन्दर स्त्री।

संजीवनी टीका– तस्येति। प्रणयिनः प्रियतमस्येव तस्य कैलासस्योत्संग ऊर्ध्वभागे कटौ च। 'उत्संगो मुक्तसंयोगे सक्थन्यूर्ध्वतलेऽपि च' इति मालतीमालायाम्। गंगादुकूलं शुभ्रवस्त्रमिव। इत्युपमित–समासः। दुकूलं सूक्ष्मवस्त्रे स्यादुत्तरीये सितांशुके' इति शब्दार्णवः। अन्यत्र तु गगेव दुकूलम्। तत्स्रस्तं यस्यास्तां तथोक्तामलकां कुबेरनगरीं दृष्ट्वा। कामिनीमिवेति शेषः। हे कामचारिन्, त्वं पुनस्त्वं तु न ज्ञास्यस इति न, किंतु ज्ञास्यस एवेत्यर्थः। कामचारिणस्ते पूर्वमपि बहुकृत्वो दर्शनसंभवादज्ञानमसम्भावितमेवेति निश्चयार्थं नञ् द्वयप्रयोगः।

तदुक्तम्–'स्मृतिनिश्चयसिद्धार्थेषु नञ्द्वयप्रयोगः' इति उच्चैरुन्न–तानि विमानानि सप्तभूमिकभवनानि। 'विमानोऽस्त्री देवयाने सप्तभूमौ च सद्मानि' इति यादवः। यस्यां सा। मेघसंवाहनस्थानसूचनार्थमिदं विशेषणम् अन्यत्र विमाना निष्कोपा याऽलका। वो युष्माकं काले। मेघकाल इत्यर्थः। कालस्य सर्वमेघसाधारण्याद्वा इति बहुवचनम्। सलिलमुदिगरतीति सलिलोद्गारम्। स्रवत्सलिलधारमित्यर्थः। अभ्रवृन्दं मेघकदम्बकं कामिनी स्त्री मुक्ताजालैर्मौक्तिकसरैर्ग्रथितं प्रत्युप्तम्। 'पुंश्चल्यां मौक्तिके मुक्ता' इति यादवः।

अलकमिव चूर्णकुन्तलानीव। जातावेकवचनम्। 'अलकाश्चूर्ण–कुन्तलाः' इत्यमरः। वहति बिभर्ति। अत्र कैलासस्यानुकूलनायकत्वमल–कायाश्च स्वाधीनपतिकाख्यनायिकात्वं ध्वन्यते। 'एकायत्तोऽनुकूलः स्यात्' इति, प्रियोपलालिता नित्यं स्वाधीनपतिका मता' इति च लक्षयन्ति। उदाहरन्ति च लालयन्नलकाप्रान्तान् रचयन् पत्रमंजरीम्। एकां विनोदयन् कान्तां छायावदनुवर्तते इति।।67।।

।। इसप्रकार काव्यकार कालिदास द्वारा विरचित
मेघदूत गीतिकाव्य के 'पूर्वमेघ' की **डॉ. राकेश शास्त्री**, बाँसवाड़ा
निवासी द्वारा **'चन्द्रिका'** हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

●●●

।। श्रीः ।।

मेघदूतम्

उत्तरमेघः

उत्तरमेघ की पृष्ठभूमि– पूर्वमेघ में महाकवि ने अपने मित्र मेघ को अलकापुरी जाने के लिए निर्धारित एवं उचित मार्ग का निर्देश किया। तत्पश्चात् प्रस्तुत उत्तरमेघ में यक्षों की नगरी अलका के ऐश्वर्य पूर्ण सौन्दर्य का श्लोक संख्या 1 से 13 पर्यन्त विस्तार से वर्णन करके, श्लोक संख्या 14 से 20 पर्यन्त अलकापुरी में स्थित अपने घर की पहचान का उल्लेख किया। तदनन्तर विरह से अत्यन्त दुबली हुई यक्ष की प्रियतमा का हृदयद्रावक चित्रण करके, उसके लिए यक्ष द्वारा भेजा गया तलस्पर्शी सन्देश दिया है।

अवतरणिका– विरही यक्ष अपने मित्र मेघ से अलकानगरी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहता है कि–

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम्।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुंगमभ्रंलिहाग्राः
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः।।1।।

अन्वय– यत्र ललित–वनिताः, सचित्राः, संगीताय, प्रहत–मुरजाः, मणिमय–भुवः, अभ्रम्–लिह–अग्राः प्रासादाः, विद्युत्वन्तम्, सेन्द्रचापम् स्निग्ध–गम्भीर–घोषम्, अन्तः–तोयम्, तुंगम्, त्वाम्, तैः तैः विशेषैः तुल–यितुम् अलम् (सन्ति)।।1।।

अनुवाद– जिस अलका नगरी में सुन्दर स्त्रियों वाले, चित्रों से युक्त, संगीत के लिए बजाए गए मृदंगों वाले, मणिजटित फर्शों से सम्पन्न, गगनचुम्बी शिखरों वाले, भवन विद्युत् से युक्त, इन्द्रधनुष से

सम्पन्न, मधुर एवं गम्भीर गर्जन वाले, अपने अन्दर जलों को धारण करने वाले और ऊँचे, तुम्हारे साथ उन–उन गुणों के कारण, बराबरी करने में समर्थ हैं।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में महाकवि ने अलकापुरी की तुलना मेघ के साथ की है, क्योंकि अलकापुरी में यदि सुन्दर स्त्रियाँ निवास करती हैं, तो मेघ के पास भी तेजस्विनी विद्युत् है। अलकापुरी में यदि रंग बिरंगे चित्र विद्यमान हैं, तो मेघ के पास सात रंगों वाला इन्द्रधनुष है। अलकापुरी में यदि मधुर स्वर में मृदंग वादन होता रहता है, तो मेघ के पास उसका गम्भीर गर्जन सदैव विद्यमान रहता है।

इसीप्रकार अलकापुरी में यदि फर्श का निर्माण तरल सी दिखायी देती हुई मणियों को जड़कर किया गया है तो मेघ के पास में जलों के अतुलनीय भण्डार हैं। अलकापुरी में यदि उन्नत भवन विद्यमान है तो मेघ भी हमेशा ही उन्नत अवस्था में आकाश में ही स्थित रहता है। इसप्रकार एकमात्र मेघ में ही अलकापुरी के साथ तुलना करने की सामर्थ्य है, अन्य किसी में नहीं।

विशेष–(i) उपर्युक्त श्लोक में उपमानों के क्रम से उपमेयों के क्रम का उल्लेख किया गया है, इसलिए यहाँ यथासंख्य अलंकार[1] का सौन्दर्य दर्शनीय बन पड़ा है।

(ii) इसीप्रकार अलकापुरी के प्रासादों तथा मेघ में उपमा–नोपमेय भाव स्थापित किया गया है। अतः उपमालंकार का सौन्दर्य स्थित है तथा उक्त दोनों अलंकारों का अंगांगिभाव होने से संकर अलंकार भी सहज ही देखा जा सकता है।

(iii) अलकापुरी के महलों की भूमियाँ मणियों से जड़ी होने से उनकी कान्ति से वे जल से भरे हुए प्रतीत होते हैं, जबकि मेघ पहले ही पूर्णरूप से जलों से भरा हुआ है।

---

[1]. यथासंख्यं क्रमेणैव क्रमिकाणां समन्वयः। काव्यप्रकाश–10/164।

(iv) महलों के आगे के भाग आकाश को छूने वाले हैं, तो मेघ सदा ही सम्पूर्णरूप से आकाश का स्पर्श करता रहता है।

(v) यहाँ प्रयुक्त 'संगीताय' पद में 'तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या' वार्तिक सूत्र से चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **तुलयितुम्**– √तुल्+णिच्+तुमुन्।

(ii) **ललितवनिताः**– ललिताः वनिताः, येषु ते, बहुव्रीहि।

(iii) **सचित्राः**– चित्रेण सहिताः, इति बहुव्रीहि समास।

(iv) **संगीताय**– सम्+√गै+क्त, चतुर्थी विभक्ति, एकवचन ।

(v)**प्रहतमुरजाः**–प्रहताः मुरजाः येषु ते, बहुव्रीहि। प्र+√हन्++क्त।

(vi) **मणिमयभुवः**– मणिमयाः भुवः येषु ते, बहुव्रीहि समास।

(vii) **सेन्द्रचापम्**– इन्द्रस्य चापः, तेन सहितः, तम्, बहुव्रीहि।

(viii) **विद्युत्वन्तम्**– विद्युतः सन्ति अस्य इति, तम्, बहुव्रीहि।

(ix) **स्निग्धगम्भीरघोषम्**– स्निग्धः गम्भीरः घोषः, यस्य सः, तम्। स्निग्ध+√स्निह्+क्त, घोष–√घुञ्+घञ्, बहुव्रीहि समास।

(x) **अन्तस्तोयम्**– अन्तर्गतं तोयं यस्य सः, तम् बहुव्रीहि।

संजीवनी टीका– विद्युत्वन्तमिति। यत्रालकायां ललिता रम्या वनिताः स्त्रियो येषु। सह चित्रैर्वर्तन्त इति सचित्राः। 'आलेख्याश्चर्ययो–श्चित्रम् इत्यमरः। 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इति बहुव्रीहिः। 'वोपसर्जस्य' इति सहशब्दस्य समासः। संगीताय तौर्यत्रिकाय प्रहतमुरजास्ताडित–मृदंगाः। 'मुरजा तु मृदंगे स्यात् ढक्कामुरजयोरपि' इति शब्दार्णवः। मणिमय्यो मणिविकारा भुवो येषु ते। अभ्रं लिहन्तीत्यभ्रंलिहान्यभ्रंकषाणि। 'वहाभ्रे लिहः' इति खरप्रत्ययः। 'अरुर्द्विष–' इत्यादिना मुगागमः। अग्राणि शिखराणि येषां ते तथोक्ताः। अतितुंगा इत्यर्थः। प्रासादा देवगृहाणि। 'प्रासादो देवभूभुजाम्' इत्यमरः। विद्युतः अस्य सन्तीति विद्युन्वन्तम्।

सेन्द्रचापमिन्द्रचापवन्तम्। स्निग्धः श्राव्यो गम्भीरो घोषो गर्जितं यस्य तम्। अन्तरन्तर्गतं तोयं यस्य तम्। तुंगमुन्नतं त्वां तैस्तै–र्विशेषैर्ललितवनितत्वादिधर्मैस्तुलयितुं समीकर्तुमलं पर्याप्ताः। 'अलं भूषण–

पर्याप्तिशक्तिवारणवाचकम्' इत्यमरः। अथोपमानोपमेयभूतमेघप्रासाद-धर्माणां विद्युद्वनितादीनां यथासंख्यामन्योन्यसादृश्याम्मेघप्रासादसादृश्य-स्य सिद्धिरिति बिम्बप्रतिबिम्बभावेनेयं पूर्णोपमा। वस्तुतो भिन्नयोः परस्परसादृश्यादभिन्नयोरुपमानोपमेयधर्मयोः पृथगुपादानाद् बिम्बप्रति-बिम्बभावः।।1।।

अवतरणिका– विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अलकानगरी के सौन्दर्य का ही वर्णन करते हुए पुनः कहता है कि–

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः
चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्।।2।।

अन्वय– यत्र वधूनाम् हस्ते, लीला–कमलम् अलके, बाल–कुन्द–अनुविद्धम् आनने, लोध्र–प्रसव–रजसा पाण्डुताम् नीता श्रीः, चूडापाशे नव–कुरबकम्, कर्णे चारु शिरीषम्, सीमन्ते च त्वत् उपगमजम् नीपम् (विद्यन्ते)।।2।

अनुवाद– जिस अलकापुरी में स्त्रियों के हाथ में क्रीड़ाकमल, केशों में ताजे खिले हुए कुन्द के पुष्पों का गुम्फन, मुख पर धवलता को प्राप्त शोभायुक्त, लोध्र के पुष्पों के परागकण, केशों के पाश अर्थात् जूड़े में नए–नए कुरबक के पुष्प, कानों में सुन्दर शिरीष के पुष्प तथा माँग में तुम्हारे आने से उत्पन्न हुए, कदम्ब के पुष्प विद्यमान रहते हैं।

'चन्द्रिका'– महाकवि का अभिप्राय है कि अलकापुरी की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि यहाँ सभी छः ऋतुओं के पुष्प हमेशा ही खिले रहते हैं। यही कारण है कि यहाँ पर स्त्रियाँ अपने हाथों में **क्रीड़ाकमल** को धारण करती हैं, अपने केशों को सजाने के लिए कुन्द के पुष्पों का गुम्फन करती हैं, अपने मुख पर लोध्र के पुष्पों के पराग कणों की धवलता को धारण करके शोभायमान रहती हैं।

इसीप्रकार केशपाश अर्थात् बालों के जूड़े में वे ताजे **कुरबक के पुष्पों** को धारण करती हैं। इसके अलावा अपने कानों में आकर्षक **शिरीष के पुष्पों** को और अपनी सीमन्त अर्थात् माँग में वर्षा ऋतु में विकसित होने वाले **कदम्ब के पुष्पों** को धारण करती हैं। इसलिए अलकानगरी में स्त्रियों को किसी एक ऋतु के पुष्पों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। वे एक ही समय में सभी ऋतुओं का आनन्द उठाती हैं।

विशेष–(i) काव्यकार कालिदास को कुन्द का पुष्प अत्यन्त प्रिय रहा है, इसीलिए उन्होंने अनेक स्थलों पर इसका उपमानरूप में भी प्रयोग किया है।

(ii) स्त्रियों की प्रसाधन सामग्रियों का विस्तार से उल्लेख किया गया है। इसप्रकार महाकवि ने तात्कालिक स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का सुन्दर वर्णन किया है।

(iii) **लीलाकमल**– वस्तुतः प्राचीनकाल में स्त्रियाँ अपने हाथ में कमल को धारण करती थीं, जिसे कवियों द्वारा 'लीलाकमल' की संज्ञा प्रदान की गयी, क्योंकि इसे वे हमेशा विलासपूर्ण भाव–भंगिमाओं के साथ घुमाती रहती थीं।

(iv) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने सभी छः ऋतुओं के पुष्पों का उल्लेख किया है, जिससे प्रतीत होता है कि अलकापुरी में सभी ऋतुओं की शोभा हमेशा विद्यमान रहती थी, जिससे इस नगरी की अलौकिकता भी अभिव्यंजित हो रही है। साथ ही, महाकवि का ऋतु विज्ञान विषयक ज्ञान भी प्रदर्शित हुआ है।

(v) दूसरे शब्दों में, यह नगरी वस्तुतः भोग भूमि है, जिसके कारण यहाँ सभी छः ऋतुओं के पुष्प एवं वनस्पतियाँ हर समय विद्यमान रहती हैं, जिसे इसकी अद्भुत समृद्धि का सूचक भी कहा जा सकता है।

(vi) कमल यद्यपि ग्रीष्म एवं शरद् दोनों ही ऋतुओं में विकसित होता है, किन्तु यहाँ इसका अभिप्राय 'शरद् ऋतु' से ही ग्रहण करना चाहिए।

(vii) कुछ टीकाकारों ने इस श्लोक को कवि की ऋतु विषयक असावधानी भी कहा है, जो उचित प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि कवि का उद्देश्य यहाँ वस्तुतः अलका की समृद्धि एवं अलौकिकता का वर्णन करना है, जिसमें वह पूर्णरूप से सफल रहा है।

(viii) 'लोध्रप्रसवरजस्' से अभिप्राय यहाँ स्त्रियों द्वारा मुख पर लगाए जाने वाले लोध्रपुष्प के परागकणों से ग्रहण करना चाहिए, जिसे वे अपने सौन्दर्य में वृद्धि करने के लिए प्राचीनकाल में लगाती थीं। वर्तमान में इसे मुख पर लगाने वाले 'पाउडर' के रूप में देखा जा सकता है।

(ix) प्रस्तुत उल्लेखों से यह भी प्रतीत हो रहा है कि कालिदास के समय में स्त्रियाँ अपनी प्रसाधन सामग्री को प्रकृति के उपादानों से ही ग्रहण करती थीं। इससे कालिदास का प्रकृति विषयक प्रेम एवं मानव का प्रकृति के साथ तादात्म्य भी अभिव्यक्त हुआ है।

(x) यहाँ प्रयुक्त 'नीपम्' से अभिप्राय वर्षाऋतु में आने वाले 'कदम्ब' के पुष्प से ग्रहण करना चाहिए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **सीमन्ते**– सीम्नः अन्तः, तस्मिन्।

(ii) **लीलाकमलम्**– लीलार्थं कमलम्, मध्यमपदलोपी समास।

(iii) **बालकुन्दानुविद्धम्**– बालानि च तानि कुन्दानि, तैः अनु–विद्धम्, अनु+ √व्यध्+क्त, अभी खिले हुए कुन्द के पुष्पों का गुम्फन।

(iv) **लोध्रप्रसवरजसा**– लोध्रस्य प्रसवाः, तेषां रजसा, ष., तत्पु.।

(v) **चूड़ापाशे**– चूडानां पाशे, ष.,तत्पु.,केशपाश अर्थात् जूड़े में।

(vi) **नवकुरबकम्**– नवं च तत् कुरबकम्, कर्मधारय समास।

(vii) **त्वदुपगमजम्**– तव उपगमः, तस्मात् जातः, उप+ √गम्+ अप्, उपगम्। तुम्हारे आगमन से उत्पन्न होने वाले।

संर्जावनी टीका– हस्त इति। यत्रालकायां वधूनां स्त्रीणां हस्ते लीलार्थं कमलं लीलाकमलम्। शरल्लिंगमेतत्। तदुक्तम्– 'शरत् पंकजलक्षणा' इति। अलके कुन्तले। जातावेकवचनम्। अलकेष्वित्यर्थः। बालकुन्दैः प्रत्यग्रमाध्यकुसुमैरनुविद्धम्। अनुवेधो ग्रन्थनम्। नपुंसके भावे क्तः। यद्यपि कुन्दानां शैशिरत्वमस्ति 'मध्यं कुन्दम्' इत्यभिधानात्तथापि हेमन्ते प्रादुर्भावः शिशिरे प्रौढ़त्वमिति व्यवस्थाभेदेन हेमन्तकार्यत्वमित्या–शयेन बालेति विशेषणम्। 'अलकम्' इति प्रथमान्तपाठे सप्तमोपक्रमभंग स्यात्। नाथस्तु नियतपुल्लिंगताहानिश्चेति दोषान्तरमाह। तदसत्।

'स्वभाववक्राण्यकलानि तासाम्'। विर्धूतान्यकलानि पाटितमुरः कृत्स्नोऽधरः खण्डितः' इत्यादिषु प्रयोगेषु नपुंसकलिंगतादर्शनादिति। आनने मुखे लोध्रप्रसवानां लोध्रपुष्पाणां शैशिराणां रजसा परागेन, स्यादु–त्पादे फले पुष्पे प्रसवो गर्भमोचने' इत्यमरः। पाण्डुतां नीता श्री शोभा। चूड़ापाशे केशपाशे नवकुरबकं वासन्तः पुष्पविशेषः। कर्णे चारुपेशलं शिरीषं ग्रैष्मः पुष्पविशेषः। सीमन्ते मस्तककेशवीथ्याम्। 'सीमन्तमस्त्रियां मस्तकेशवीथ्यामुदाहृतम्' इति शब्दार्णवः। तवोपगमो मेघागम इत्यर्थः, तत्र जातं त्वदुपगमजम्। वार्षिकमित्यर्थः। नीपं कदम्बकुसुमम्। सर्वत्रा–स्तीति शेषः। 'अस्तिर्भवतिपरः प्रथमपुरुषोऽप्रयुज्यमानोऽप्यस्तीति' न्यायात् इत्थं कमलकुन्दादितत्कार्यसमाहाराभिधानादर्थात् सर्वर्तुसमाहार सिद्धिः। कारणं विना कार्यस्यासिद्धेरिति भाव।।2।।

अवतरणिका– इसी क्रम में विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अलकानगरी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए फिर से कहता है कि–

यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपा नित्यपुष्पा
हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्यः।
केकोत्कण्ठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापा
नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः।।3।।

अन्वय–यत्र पादपाः,नित्य–पुष्पाः, उन्मत्त–भ्रमर–मुखराः, नलिन्यः नित्य–पद्माः, हंस–श्रेणी–रचित–रशनाः, भवन–शिखिनः नित्य–भास्वत्–

कलापाः, केका–उत्कण्ठा, प्रदोषाः नित्य–ज्योत्स्नाः प्रतिहत–तमो वृत्ति-रम्याः (भवन्ति)।।3।।

अनुवाद– जिस अलका नगरी में वृक्ष, हमेशा ही पुष्पों से युक्त तथा उन्मत्त भ्रमरों से गुंजायमान रहते हैं, कमलिनियाँ सदा कमलों से युक्त एवं हंसों की पंक्तिरूपी करधनी को धारण करती हैं, घरों में पाले गए, मोर नित्य ही चमकीले पंखों वाले एवं केकारव के लिए गर्दन को उठाए हुए होते हैं तथा रात्रियाँ सदा ज्योत्स्ना से युक्त होने से विनष्ट हुए, अन्धकार के प्रसार वाली तथा मनोरम हैं।

'चन्द्रिका'– जिस अलकानगरी में वृक्ष, ऋतु की प्रतीक्षा करके पुष्पित एवं फलित नहीं होते हैं, अपितु हमेशा ही पुष्पों से लदे रहते हैं तथा मतवाले भौंरे उन पर मदमस्त होकर गुंजन करते रहते हैं। इसी प्रकार कमलनियाँ भी कमलों से युक्त होकर, सदा ही हंसों की पंक्ति रूपी करधनी को धारण किए हुए रहती हैं, जबकि घरों में पाले गए हमेशा ही चमकते हुए पंखों वाले, मोर भी यहाँ पर अपनी गर्दन को उठाकर केकारव करने में व्यस्त रहते हैं। इतना ही नहीं, रात्रियाँ भी यहाँ पर कभी अन्धकारयुक्त नहीं होती हैं, क्योंकि इसी के पास में स्थित उद्यान में चन्द्रकला को मस्तक पर धारण करने वाले, भगवान् शिव विराजमान हैं।

विशेष–(i) यक्षों की अलका नगरी का मनभावन एवं अद्भुत वर्णन किया गया है, क्योंकि यह सभी दूसरी उत्कृष्ट नगरियों से सर्वथा अलग है।

(ii) महाकवि का प्रकृति विषयक अद्भुतप्रेम अभिव्यक्त हुआ है। प्रस्तुत श्लोक में उनके सभी प्रिय उपादानों का प्रयोग किया गया है।

(iii) उनके प्राकृतिक उपादानों में विशेषरूप से वृक्ष, पुष्प, कमल, भ्रमर, हंस, मोर, उनके चमकीले पंख, मधुर केकारव तथा चाँदनी रहे हैं, इन सभी का यहाँ एक ही श्लोक में प्रयोग हुआ है।

(iv) प्राचीन समय में महलों में मोर पाले जाते थे, जिन्हें यहाँ 'भवनशिखिनः' कहकर सम्बोधित किया गया है।

(v) अलका नगरी की विशेषता है कि वहाँ पर कभी भी अन्धकार नहीं होता हैं, क्योंकि मस्तक पर चन्द्रमा की कला को धारण किए हुए भगवान् शंकर जो उसके बाहर स्थित उद्यान में सदा हमेशा ही विराजमान रहते हैं।

(vi) ध्यातव्य है कि आचार्य मल्लिनाथ ने इस श्लोक को प्रक्षिप्त मानकर भी इसपर टीका का उल्लेखं किया है।

(vii) विभिन्न संस्करणों में श्लोकों के क्रम में अन्तर मिलता है, किन्तु उससे अर्थ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(viii) हंसों की पंक्ति में 'करधनी' का आरोप करने से रूपक अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(ix) सामान्य स्थिति में वृक्षों पर फल एवं फूल, ये दोनों ही ऋतु के अनुसार आते हैं, किन्तु यह अलकानगरी की अलौकिकता ही है कि यहाँ पर वृक्ष हमेशा ही फूलों से लदे रहते हैं। यही बात कमल आदि अन्य पुष्पों के विषय में भी लागू होती है।

(x) दूसरे स्थलों की अपेक्षा यहाँ के वृक्षों आदि की उत्कृष्टता का प्रतिपादन करने के कारण 'व्यतिरेक अलंकार' का प्रयोग हुआ है।

(xi) इसीप्रकार अलका के प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन में दूसरे स्थलों के सौन्दर्य का निषेध करने के कारण परिसंख्या अलंकार[1] का प्रयोग भी अवलोकनीय है।

(xii) सामान्यरूप से मोर वर्षाऋतु में केकारव अधिक करता है, किन्तु अलकानगरी में वे सदा ही अपनी गर्दन को उठाकर केकारव करने में तल्लीन रहता है। कवि का पक्षीविज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) पादपाः– पादैः पिबन्तीति।

---

[1]. किंचित्पृष्टमपृष्टं वा कथितं यत्प्रकल्पते।
तादृगन्यव्यपोहाय परिसंख्या तु सा स्मृता।। काव्यप्रकाश–10/185।

(ii) **नित्यज्योत्स्नाः**— नित्या ज्योत्स्ना येषां ते, बहुव्रीहि समास।

(iii) **प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः**— तमसां वृत्तिः, इति, प्रतिहताः तमो वृत्तयः येषां ते, प्रतिहततमोवृत्तयश्च, ते रम्याः, प्रति+ √हन्+क्त, प्रतिहत।

(iv) **प्रदोषाः**— प्रकृष्टा दोषा येषां ते, बहुव्रीहि समास। रात्रि।

(v) **केकोत्कण्ठाः**— उद्गताः कण्ठा येषां ते, केकाभिः उत्कण्ठा।

(vi) **नित्यभास्वत्कलापाः**— नित्यं भास्वन्तः कलापाः, येषां ते। भाः अस्ति येषां ते, √भास्+क्विप्— भाः अस्ति येषां ते, भास्+मतुप्।

(vii) **भवनशिखिनः**— भवनेषु भवनानां वा शिखिनः, शिखा अस्ति येषां ते, शिखा+इनि, मोर के सिर पर कलगी अर्थात् शिखा होती है, इसीलिए इसे 'शिखी' भी कहते हैं।

(viii) **उन्मत्तभ्रमरमुखराः**— उन्मत्ताः च ते भ्रमराः, तैः मुखराः।

(ix) **नित्यपुष्पाः**— नित्यानि पुष्पाणि येषां ते, बहुव्रीहि समास।

संजीवनी टीका— **यत्रेति। यत्रालकायां पादपा वृक्षाः नित्यानि पुष्पाणि येषां ते तथा। न त्वृतुनियमादिति भावः। अत एवोन्मत्तैर्भ्रमरै-र्मुखराः शब्दायमानाः। नलिन्यः पद्मिन्यो नित्यानि पद्मानि यासां तास्तथा न तु हेमन्तवर्तितमित्यर्थः। अत एव हंसश्रेणीभिः रचितरशनाः। नित्यं हंसपरिवेष्टिता इत्यर्थः। भवनशिखिनः क्रीड़ामयूरा नित्यं भास्वन्तः कलापा बर्हाणि येषां ते यथोक्ताः। न तु वर्षास्वेव। अत एव केकाभि-रुत्कण्ठा उद्ग्रीवाः। प्रदोषा रात्रयो नित्या ज्योत्स्ना येषां ते। न तु शुक्लपक्ष एव। अत एव प्रतिहता तमसां वृत्तिव्याप्तिर्येषां ते च ते रम्या-श्चेति तथोक्ताः।।3।।**

अवतरणिका— इसी क्रम में विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अलका की ही अन्य विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहता है कि—

आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै-
र्नान्यस्तापः कुसुमशरजादिष्टसंयोगसाध्यात्।
नाप्यन्यस्मात्प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्ति-
र्वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनाद़न्यदस्ति।।4।।

अन्वय– यत्र वित्तेशानाम् नयन–सलिलम् आनन्द–उत्थम्, अन्यैः निमित्तैः न, इष्ट–संयोग–साध्यात् कुसुम–शर–जात् अन्यः तापः न, प्रणय–कलहात् अन्यस्मात् विप्रयोग–उपपत्तिः अपि न, च यौवनात् अन्यत् वयः खलु, न अस्ति।।4।।

अनुवाद– जहाँ पर यक्षों के आँसू आनन्द के कारण उत्पन्न होते हैं, दूसरे कारणों से नहीं, प्रिय के मिलन से दूर होने वाले, कामदेव के बाण से उत्पन्न होने वाले, संताप के अतिरिक्त कोई दूसरा सन्ताप भी नहीं है, प्रणय में होने वाली कलह के अलावा दूसरे किसी कारण से विरह–प्राप्ति नहीं होती है तथा यौवन के अलावा दूसरी कोई अवस्था भी नहीं है।

'चन्द्रिका'– इस अलकानगरी की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि यहाँ पर रहने वाले सभी यक्षादि पूर्णरूप से सुखी हैं। उन्हें किसी भी प्रकार का सन्ताप नहीं है। यहाँ किसी भी प्रकार का 'कलह' देखने को नहीं मिलता है तथा सभी एकमात्र यौवन अवस्था वाले हैं, उन्हें कभी भी कष्टकारी वृद्धावस्था का सामना नहीं करना पड़ता है।

इसी तथ्य का उल्लेख करते हुए कवि उक्त कथन की पुष्टि में कहते हैं कि– यहाँ पर आँसू केवल आनन्दातिरेक से निकलते हैं, पीड़ा या दुःख जैसे दूसरे कारणों से उनका निकलना नहीं होता है। इसीप्रकार कामदेव के बाण से उत्पन्न होने वाले सन्ताप के अतिरिक्त दूसरा कोई भी ताप नहीं है और यह भी स्थायी नहीं है, क्योंकि प्रिय के मिलने पर यह सहजरूप से दूर हो जाता है। इसके अलावा प्रणय कलह के अतिरिक्त दूसरे किसी कारण से लोगों को विरह की प्राप्ति नहीं होती है। इसीप्रकार यहाँ पर एकमात्र यौवन अवस्था में ही सभी लोग रहते हैं, उन्हें दूसरी शारीरिक अवस्थाओं अर्थात् बुढापे आदि से गुजरना नहीं पड़ता है।

विशेष–(i) पूर्णतया कष्टरहित अलका नगरी का उल्लेख हुआ है, जहाँ पर सुख के अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं, जिसे दूसरे **स्वर्ग** के रूप में भी देखा जा सकता है।

(ii) कवि की उर्वरा कल्पनाशक्ति वस्तुतः प्रशंसनीय है, जिसमें उन्होंने 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' को साकार करने का प्रयास किया है।

(iii) कामदेव के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि उसका धनुष इक्षु दण्ड से निर्मित होता है, उसकी प्रत्यंचा भौंरों द्वारा बनायी गयी है तथा वह कमल, अशोक, आम्रमंजरी, नवमल्लिका और नीलकमल ये पाँच प्रकार के पुष्पों को बाणरूप[1] में प्रयोग करता है।

(iv) कवि का अभिप्राय है कि अलका के निवासी ज्वर आदि के सन्ताप से पीड़ित नहीं होते हैं, अपितु उन्हें केवल प्रियमिलन से दूर होने वाले सन्ताप की ही प्राप्ति होती है, जो प्रिय के मिलने के साथ ही दूर भी हो जाती है, अधिक समय तक वह भी नहीं रहती है।

(v) इसीप्रकार प्रणयकलह के अलावा दूसरा कोई विवाद ही नहीं होता है, यह भी क्षणिक ही होता है, क्योंकि कुछ ही क्षणों के बाद पति–पत्नी दोनों में सुलह हो जाती है, वे परस्पर मिल जाते हैं।

(vi) मान्यता है कि यक्ष, कुबेर के धनों की रक्षा करते हैं, इसलिए इन्हें यहाँ पर 'वित्तेश' कहा गया है।

(vii) यक्षयोनि वस्तुतः देवयोनि होने के कारण, इनमें केवल युवावस्था होने का ही यहाँ कवि द्वारा उल्लेख किया गया है।

(viii) आनन्दाश्रुओं का वर्णन करते हुए भी दुःख के आँसुओं का प्रतिषेध करने से **परिसंख्या अलंकार** का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(ix) अलकापुरी में यक्षों में 'तमोवृत्ति' की अनुपलब्धता भी अभिव्यंजित हो रही है।

---

1. अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका।
नीलोत्पलं च पंचैते पंचबाणस्य सायकाः।।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **तापः**– √तप्+घञ्, सन्ताप, दुःख।

(ii) **वित्तेशानाम्**– वित्तानाम् ईशाः, तेषाम्, ष. तत्पु., यक्षों का।

(iii) **आनन्दोत्थम्**– आनन्दात् उत्तिष्ठतीति, उद्+ √स्था+क।

(iv) **इष्टसंयोगसाध्यात्**– इष्टस्य संयोगः, तेन साध्यः, तस्मात्। **इष्ट**– √इष्+क्त,**संयोग**–सम्+ √युज्+घञ्,**साध्य**– √साध्+ण्यत्, कर्मणि।

(v) **कुसुमशरजात**– कुसुमानि एव शरा यस्य सः, बहुव्रीहि, तेभ्यः जातः इति, तस्मात्, कुसुमशर+ √जन्+ड, कामदेव से उत्पन्न।

(vi) **नयनसलिलम्**– नयनयोः सलिलम्, नेत्रों का जल अश्रु।

(vii) **प्रणयकलहात्**– प्रणयस्य कलहः तस्मात्, षष्ठी तत्पुरुष।

(viii) **यौवनात्**– यूनो भावः, तस्मात्, युवन्+अण्, यौवन।

(ix) **वियोगोपपत्तिः**– विप्रयोगस्य उपपत्तिः, वि+प्र+ √युज्+घञ्, **विप्रयोगः**, **उपपत्ति**– उप+पद्+क्तिन्, भावे। वियोग की प्राप्ति।

संजीवनी टीका– आनन्देति। **यत्रालकायां वित्तेशानां यक्षाणाम्। 'वित्ताधिपः कुबेरः स्यात्प्रभौ धनिकयक्षयोः' इति शब्दार्णवः। आनन्दोत्थमानन्दजन्यमेव नयनसलिलम्। अन्यैर्निमित्तैः शोकादिभिर्न। इष्टसंयोगेन प्रियजनसमागमेन साध्यनिवर्तनीयात्। न त्वप्रतीकार्यादित्यर्थः। कुसुमशरजान्मशरजादन्वस्तापो नास्ति प्रणयकलहादन्यस्मात् कारणाद्विप्रयोगोपपत्तिर्विरहप्राप्तिरपि नास्ति। किंच यौवनादन्यद्वयो वार्धकं नास्ति।। श्लोकद्वयं प्रक्षिप्तम्।।4।।**

अवतरणिका– तत्पश्चात् विरही यक्ष अपने मित्र मेघ से अलका नगरी की विशेषताओं का ही वर्णन करते हुए कहता है कि–

यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्यः हर्म्यस्थलानि
ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः
आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतं
त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु।।5।।

अन्वय– यस्याम् यक्षाः, उत्तम–स्त्री–सहायाः, सित–मणिमयानि ज्योतिः–छाया–कुसुम–रचितानि हर्म्य–स्थलानि एत्यः, त्वत् गम्भीर–

ध्वनिषु पुष्करेषु शनकैः आहतेषु कल्पवृक्ष–प्रसूतम् रतिफलम् मधुः आसेवन्ते।।5।।

अनुवाद–जिस अलकापुरी में यक्ष, सुन्दर स्त्रियों के साथ मिलकर, स्फटिक मणियों से जटित एवं तारागणों के प्रतिबिम्बरूपी पुष्पों से परिष्कृत, महलों की अटारियों के समीप जाकर, तुम्हारे समान गम्भीर ध्वनि वाले, 'पुष्कर' नामक नगाड़े के धीरे–धीरे बजाए जाने पर, कल्पवृक्ष से उत्पन्न होने वाली, रतिफल नामक 'मदिरा' का बार–बार सेवन करते हैं।

'चन्द्रिका'– अलका नगरी में यक्ष, सुन्दर स्त्रियों के साथ महलों की अटारियों पर जाकर, कल्पवृक्ष से प्राप्त होने वाली रतिसुख में वृद्धि करने वाली **मदिरा** का पान करके सम्भोग का असीम आनन्द प्राप्त करते हैं। इसी क्रम में अटारियों की विशेषता को कहते हैं कि–

महलों की इन अटारियों पर स्फटिक मणियों को जड़ा हुआ है, जिससे उनमें आकाश में दीपित होने वाले, तारों के समूह के प्रतिबिम्ब रूपी पुष्प दिखायी देते रहते हैं तथा इसी प्रसंग में उल्लेखनीय यह भी है कि यहाँ पर मेघ के समान गम्भीर ध्वनि करने वाले 'पुष्कर' नामक वाद्य यन्त्र, मधुर स्वर में मद्दिम संगीत के वातावरण का निर्माण करते हैं।

विशेष–(i) यहाँ प्रयुक्त 'रतिफल' से अभिप्राय सम्भोग सुख से ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि यक्ष, महलों की अटारियों पर जाकर, मधुर संगीतमय सुरम्य वातावरण में सुरत–क्रिया के आनन्द को प्राप्त करते हैं, किन्तु मल्लिनाथ ने इसका 'मदिरा' अर्थ किया है।

(ii) 'पुष्कर' नामक नगाड़े के नामोल्लेख से कवि का संगीत शास्त्रीय गहन ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(iii) महलों की अटारियाँ भी स्फटिक (सितमणि) मणियों से जड़ी हुई हैं, इससे अलका की अद्भुत समृद्धि की अभिव्यंजना हुई है।

(iv) रात्रि के समय स्फटिक मणियों में तारागणों के प्रतिबिम्बों के पड़ने से उनके पुष्प खचित होने की महकवि की परिकल्पना भी अत्यन्त आकर्षक बन पड़ी है।

(v) महाकवि का कामशास्त्रीय गहन ज्ञान अभिव्यक्त होने के साथ–साथ सहृदय को, उनके शृंगारिक व्यक्तित्व की भी सुन्दर अनुभूति हो रही है। वस्तुतः यहाँ पर कवि सम्भोग के लिए मादक वातावरण बनाने में पूर्णरूप से सफल रहा है।

(vi) कुछ विद्वानों ने यहाँ प्रयुक्त 'हर्म्यस्थलानि' पद का अर्थ 'महलों के भूभाग' भी किया है, जो संगत प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि तारागणों का प्रतिबिम्ब महलों की अट्टालिकाओं पर ही अधिक सुन्दररूप में दृष्टिगोचर हो सकता है।

(vii) इसके अतिरिक्त अट्टालिकाओं पर पूर्णतया एकान्त होने से निर्विघ्न संभोगसुख की प्राप्ति भी सम्भव है।

(viii) अलकापुरी में **कल्पवृक्ष** की उपस्थिति दर्शाकर कवि ने इसे स्वर्ग के समान सुखों से भरपूर बताया है, क्योंकि कल्पवृक्ष की महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि वह याचकों को उनका अभीष्ट बिना प्रयास के ही प्रदान कर देता है।

(ix) अलकापुरी की समृद्धि का वर्णन करने के कारण **उदात्त अलंकार** का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(x) इसीप्रकार तारागणों के प्रतिबिम्बों में पुष्पों का आरोप करने के कारण **रूपक अलंकार** का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(xi) साथ ही, 'त्वद्गम्भीरध्वनिषु' में **लुप्तोपमालंकार** भी प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि यहाँ पर उपमावाचक इव पद का लोप हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **एत्य**– आ+ √इण्+क्त्वा(ल्यप्)।

(ii) **आसेवन्ते**– आ+ √सेव्+लट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन, आत्मने.।

(iii) **उत्तमस्त्रीसहायाः**– उत्तमाः स्त्रियः सहायाः येषां ते, बहुव्री.।

(iv) **सितमणिमयानि**– सिताः च ते मणयः, तेषां विकाराः, इति।

(v) **ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि**– ज्योतिषां ताराणां छायाः प्रति बिम्बानि, ज्योतिश्छायाः एव कुसुमानि, तैः रचितानि। षष्ठी, तृ, तत्पुरुष।

(vi) **हर्म्यस्थलानि**– हर्म्याणां स्थलः तानि, षष्ठी तत्पुरुष।

(vii) **त्वद्गम्भीरध्वनिषु**– गम्भीरः चासौ ध्वनिः, तव मेघस्य इव गम्भीर ध्वनिः येषां ते, तेषु, बहुव्रीहि। तुम्हारे समान गम्भीर ध्वनियों में।

(viii) **कल्पवृक्षप्रसूतम्**–कल्पवृक्षात् प्रसूतं, तत्, पंचमी तत्पुरुष।

(ix) **रतिफलम्**– रतिः निधुवनं फलं प्रयोजनं यस्य तत्, बहुव्री.।

संजीवनी टीका– यस्यामिति। यस्यामलकायां यक्षा देवयोनि–विशेषा उत्तमस्त्री सहाया ललितांगनासहचराः सन्तः सितमणिमयानि स्फटिकमणिमयानि चन्द्रकान्तमयानि वा। अत एव ज्योतिषां तारकाणां छायाः प्रतिबिम्बान्येव कुसुमानि तै रचितानि परिष्कृतानि। 'ज्योतिस्तारा–ग्निभाज्वालादृक्पुत्रार्थध्वरात्मसु' इति वैजयन्ती। एतेन पानभूमेरम्लारशो–भत्वमुक्तम् हर्म्यस्थलान्येत्य प्राप्य। त्वद्गम्भीरध्वनिरिव ध्वनिर्येषां तेषु पुष्करेषु वाद्यभाण्डमुखेषु। 'पुष्करं करिहस्ताग्रे वाद्यभाण्डमुखे जले' इत्यमरः।

शनकैर्मन्दमाहतेषु सत्सु। एतच्च नृत्यगीतयोरप्युपलक्षणम्। कल्पवृक्षप्रसूतं कल्पवृक्षस्य काङ्क्षितार्थप्रदत्वान्मध्वपि तत्र प्रसूतम्। रतिः फलं यस्य तद्रितिफलाख्यं मधु मद्यमासेवन्ते। आदृत्य पिबन्तीत्यर्थः। 'तालक्षीरसितामृतामलगुडोन्मत्तास्थिकालाह्वयदार्विन्द्रद्रुममोरटेक्षुकदली–गुल्मप्रसूनैर्युतम्। इत्थं चेन्मधुपुष्पभंगद्युपचितं पुष्पद्रुममूलावृतं, क्वाथेन स्मरदीपनं रतिफलाख्यं स्वादु शीतं मधु इति मदिरार्णवे।

अवतरणिका– तत्पश्चात् कवि अलकापुरी के अद्भुत ऐश्वर्य को अभिव्यंजित करने वाली, कन्याओं की क्रीड़ा–सम्बन्धी बातों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भि–
र्मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारितोष्णाः।
अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः

संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः।।6।।

अन्वय– यत्र मन्दाकिन्याः सलिल–शिशिरैः मरुद्भिः सेव्यमानाः, अनुतट–रुहाम् मन्दाराणाम् छायया, वारित–उष्णाः अमर–प्रार्थिताः कन्याः कनक–सिकता–मुष्टि–निक्षेप–गूढैः अन्वेष्टव्यैः मणिभिः संक्रीडन्ते।।6।।

अनुवाद– जिस अलका नगरी में गंगा नदी के जल से शीतल वायु द्वारा सेवा की जाती हुई, तट पर उगे हुए, मन्दार के वृक्षों की छाया से रोकी गयी धूप वाली, देवताओं द्वारा अभिलषित, यक्षों की कन्याएँ, स्वर्ण की बालुकाओं को मुट्ठी में रखकर छिपायी गयी तथा तत्पश्चात् ढूँढ़ने योग्य मणियों द्वारा खेलती हैं।

'चन्द्रिका'– इस अलकापुरी में यक्षों की सुन्दर कन्याएँ अर्थात् अविवाहित युवतियाँ, जिन्हें प्राप्त करने की अभिलाषा देवता भी करते हैं, पास में ही विद्यमान मन्दाकिनी नदी के तट पर जाकर, **गुप्तमणि** नाम के खेल को खेलती हैं। यह मुख्य वाक्य है। शेष अंश में गंगा तट के सुरम्य वातावरण तथा कन्याओं के सौन्दर्य आदि पर प्रकाश डाला गया है। **प्रथम,** गंगा के तट पर इसके जलकणों को साथ लेकर शीतल वायु मन्दगति से बह रहा है। **द्वितीय,** इसके तट पर उगे हुए मन्दार के वृक्ष अपनी घनी छाया से सूर्य के ताप को रोक रहे हैं, जिससे वातावरण अत्यन्त रमणीय हो गया है।

विशेष–(i) जिस अलकापुरी की कन्याएँ देवों द्वारा भी चाही जाती हैं, इससे उनके सौन्दर्यातिरेक की अभिव्यंजना हो रही है।

(ii) तात्कालिक समय में बालाओं द्वारा मनोरंजन हेतु खेली जाने वाली गुप्तमणि या **गुप्तकेलि** नामक क्रीड़ा–विधि का विस्तार से उल्लेख हुआ है। साथ ही, खेलने हेतु मणियों के कथन से अलकापुरी की समृद्धि भी अभिव्यंजित हो रही है।

(iii) पुराणों में हिमालय को देवों का निवास कहा गया है, इसीलिए कैलास में स्थित अलकापुरी की समीपवर्तिनी गंगा वस्तुतः स्वर्ग की गंगा ही है, इसीलिए यहाँ उसके 'मन्दाकिनी' नाम का कथन

किया गया है, जो पृथ्वी पर आने पर भागीरथी, जाह्नवी या जह्नु पुत्री हो जाती है।

(iv) **मन्दार**– पाँच प्रकार के देववृक्षों[1] में से एक, कल्पवृक्ष का उल्लेख कवि द्वारा पूर्व में किया जा चुका है।

(v) कवि द्वारा यहाँ यक्षों की सुन्दर कन्याओं द्वारा खेले जाने वाले, एक देशज खेल का उल्लेख किया गया है, जिसमें बालक एकत्र किए रेत में कोई भी वस्तु छिपाता है तथा दूसरा बालक उसे खोजता है, शब्दार्णव में इसे गुप्तमणि कहा है। इसके माध्यम से तात्कालिक समाज का सुन्दर चित्रण किया गया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **सेव्यमानाः**– √सेव्+शानच्।

(ii) **सलिलशिशिरैः**– सलिलेन शिशिरैः, जलों से शीतल।

(iii) **अनुतटरुहाम्**– तटे इति अनुतटम्, अनुतटं रोहन्ति, इति, तेषाम्, उपपद तत्पुरुष, अनुतट+ √रुह्+क्विप्, तटों पर उगे हुए।

(iv) **अमरप्रार्थिताः**– अमरैः प्रार्थिताः, प्र+ √अर्थ+णिच्+क्त।

(v) **वारितोष्णाः**– वारितः उष्णः यासां ताः, बहुव्रीहि समास।

(vi) **अन्वेष्टव्यैः**– अनु+ √इष्+तव्यत्, तृतीया विभक्ति बहुवचन।

(vii) **संक्रीडन्ते**–सम्+ √क्रीड्+लट्, प्र.पु., बहुवचन, आत्मनेपद।

(viii) **कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढ़ैः**– कनकस्य सिकताः, तासु, मुष्टिभिः निक्षेपः, तेन गूढैः, **निक्षेपः**–नि+ √क्षिप्+घञ्, **गूढः**– √गुह्+क्त।

(ix) **कन्याः**– कमनीया भवति, इति, क्वेयं नेतव्या, इति।

संजीवनी टीका– मन्दाकिन्या इति। यत्रालकायाममरैः प्रार्थिता। सुन्दर्य इत्यर्थः। कन्या यक्षकुमार्यः। 'कन्या कुमारिका नार्योः'इति विश्वः। मन्दाकिन्या गंगायाः सलिलेन शिशिरैः शीतलर्मरुद्भिः सेव्यमानाः सत्यः। तथानुतटं तटेषु रोहन्तीत्यनुतटरुहः। क्विप्। तेषां मन्दाराणां छायया–ऽनातपेन वारितोष्णाः शमितातपाः सत्यः, कनकस्य सिकतासु मुष्टिभि–

---

[1] . पंचैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः।
सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम्।। अमरकोष

निक्षेपेण गूढैः संवृतैरत एवान्वेष्टव्यैर्मृग्यैर्मणिभिः रत्नैः 'संक्रीडन्ते गुप्त–मणिसंज्ञया दैशिकक्रीडया सम्यक्क्रीडन्तीत्यर्थः। 'क्रीड़ोऽनुसंपरिभ्यश्च' इत्यात्मनेपदम्। 'रत्नादिभिर्बालुकादौ गुप्तैर्द्रष्टव्यकर्मभिः। कुमारीभिः कृता 'क्रीड़ा' नाम्ना गुप्तमणिः स्मृताः। रासक्रीड़ा गूढमणिर्गुप्तकेलिस्तुलायनम्। पिच्छकन्दुकदण्डाद्यैः स्मृता दैशिककेलयः। इति शब्दार्णवे।।6।।

अवतरणिका– विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अलकानगरी की विशेषताओं के कथन क्रम में प्रेमीजनों के मध्य की जाने वाली, मन भावन श्रृंगारिक चेष्टाओं का उल्लेख करते हुए कहता है कि–

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणां
क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु।
अर्चिस्तुंगानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्
ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः।।7।।

अन्वय– यत्र अनिभृत–करेषु प्रियेषु, नीवी–बन्ध–उच्छ्वसित–शिथिलम् क्षौमम् रागात् आक्षिपत्सु, ह्री–मूढानाम् बिम्ब–अधराणाम् चूर्ण –मुष्टिः,अर्चिः–तुंगान् रत्न–प्रदीपान् अभिमुखम् प्राप्य, अपि विफल–प्रेरणा भवति।।7।।

अनुवाद– जिस अलका नगरी में चंचल हाथों वाले, प्रेमीजनों द्वारा अधोवस्त्र की गाँठ खोले जाने से शिथिल हुए, रेशमी वस्त्र को प्रेम के कारण हटा देने से लज्ज़ा के कारण किंकर्तव्यविमूढ़, बिम्बाफल के समान अधरोष्ठ वाली, सुन्दरियों की कुंकुमादि चूर्णों की मुट्ठी, उन्नत प्रकाश सम्पन्न, मणिमय दीपकों के समक्ष पहुँचकर भी निष्फल प्रेरणा वाली हो जाती हैं।

'चन्द्रिका'–प्रस्तुत श्लोक में प्रतिपादित अभिप्राय को हम इस प्रकार समझ सकते हैं। **प्रथम,** तो प्रेमीयुगल रतिक्रीड़ा के लिए सन्नद्ध हैं। **द्वितीय,** भवन में मणिमय दीपक प्रज्वलित हैं। **तृतीय,** चंचल हाथों वाले प्रेमीजनों द्वारा प्रेमिका के अधोवस्त्र की गाँठ को खोल दिया गया है, जिससे शिथिल हुए रेशम से बने हुए अधोवस्त्र को वह हटाने का

प्रयास कर रहा है। **चतुर्थ**, इस कारण मुग्धा प्रेमिका लज्जा से सराबोर हो जाती है तथा किंकर्तव्यविमूढ़ होकर, वहाँ स्थित मणिमय दीपकों को बुझाने का प्रयास कर रही हैं, जिसमें वे समीप में रखे हुए कुंकुमादि के सुगन्धित चूर्ण को मुट्ठी में भरकर, मणिमय दीपकों के ऊपर फैंकती हैं, किन्तु उनका यह प्रयास चूर्ण के वहाँ तक पहुँचने पर भी निष्फल हो जाता है और वे दीपक बुझते नहीं हैं, अपितु जलते ही रहते हैं, क्योंकि मणिमय दीपकों पर यह चूर्ण कारगर सिद्ध नहीं हो पाता है।

विशेष–(i) अलकापुरी में की जाने वाली काम केलि–क्रीड़ाओं का मनभावन एवं स्वाभाविक चित्रण किया गया हैं। अतः स्वभावोक्ति अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(ii) अपने निर्वस्त्र होने के कारण लज्जावश सुन्दरियाँ मणिमय दीपकों को बुझाने के लिए, **कुंकुमादि के चूर्ण** को मुट्ठी में भरकर, उनके ऊपर फैंकती हैं, किन्तु वहाँ तक पहुँचकर भी चूर्ण की मुष्टि दीपकों को बुझाने में असमर्थ हो जाती हैं।

(iii) मणिमय दीपकों को बुझाने के लिए कुंकुमचूर्ण को उनके ऊपर मुट्ठी में भरकर फैंकने की कल्पना अत्यन्त मनोहारिणी बन पड़ी है। कवि की अद्भुत श्रृंगारिक कल्पना शक्ति अभिव्यक्त हुई है।

(iv) 'नीवीबन्धन' द्वारा अधोवस्त्र को रोका जाता है, उसकी गाँठ के ढ़ीला करने पर, अधोवस्त्र का नीचे गिरना स्वाभाविक है, रेशमी होने के कारण उसे रोक पाने में असमर्थ लज्जाशील मुग्धा प्रेमिकाओं द्वारा भवन में अंधेरा करने के लिए, मणिमय दीपकों पर चूर्ण की मुट्ठी को फैंका गया है।

(v) यहाँ पर चूर्णमुष्टि प्रक्षेपण रूप कारण के होने पर भी रत्न प्रदीपों का निर्वाण अर्थात् बुझना रूप कार्य न होने से विशेषोक्ति अलंकार[1] का सौन्दर्य विद्यमान है।

---

[1]. विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः। काव्यप्रकाश– 10 / 163।

(vi) इसीप्रकार 'बिम्बाधराणाम्' में उपमावाचक 'इव' पद का लोप होने से लुप्तोपमालंकार का प्रयोग भी हुआ है।

(vii) स्त्री मनोविज्ञान या प्रेमी मनोविज्ञान का सुन्दर चित्रण किया गया है, क्योंकि यह शाश्वत सत्य है कि मुग्धा नायिकाएँ प्रियतम के साथ प्रकाश में सहवास करने में लज्जा का अनुभव करती हैं।

(viii) स्त्री के अधरों की उपमा के लिए संस्कृत के अन्य कवियों के समान, कवि को बिम्बाफल अत्यधिक प्रिय रहा है। यही कारण है प्रस्तुत काव्य में इसका अनेक बार प्रयोग किया गया है।

(ix) 'क्षौमम्' अर्थात् रेशमी वस्त्र के उपयोग से तात्कालिक सामाजिक स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) रागात्– √रंज्+घञ्, हेतौ पंचमी।

(ii) **अनिभृतकरेषु**– न निभृताः, कराः, येषां ते, तेषु, बहुव्रीहि। **निभृताः**– नि+√भृ+क्त, हाथ का विशेषण, चंचल हाथों में।

(iii) **आक्षिपत्सु**– आक्षिपन्ति इति, तेषु, आ+√क्षिप्+शतृ, स.ब.।

(iv) **ह्रीमूढानाम्**–ह्रिया मूढाः, तासाम्, तृ.,तत्., √मुह्+क्त+टाप्।

(v) **बिम्बाधराणाम्**– बिम्बम् इव अधरो यासां ता, तासाम्, बहु.।

(vi) **चूर्णमुष्टिः**– चूर्णस्य मुष्टिः, षष्ठी तत्पुरुष समास।

(vii) **अर्चिस्तुंगान्**– अर्चिभिः तुंगाः, तान्, तृतीया तत्पुरुष, मणि मय दीपकों की चारों ओर फैल रही ऊँची किरणों को।

(viii) **रत्नप्रदीपान्**– रत्नानि एव प्रदीपः, तान् कर्मधारय ।

(ix) **विफलप्रेरणा**– विगतं फलं यस्याः सा अथवा विफला प्रेरणा यस्याः सा, चूर्णमुष्टि को फैंकने की प्रेरणा का विफल होना।

संजीवनी टीका– नीवीति। यत्रालकायामनिभृकरेषु चपलहस्तेषु प्रियेषु। नीवी वसनग्रन्थिः। 'नीवी परिपणे ग्रन्थौ स्त्रीणां जघनवाससि' इति विश्वः। सैव बन्धो नीवीबन्धः। चूतवृक्षवदपौनरुक्त्यम्। तस्योच्छ्व–सितेन त्रुटितेन शिथिलं क्षौमं दुकूलं रागादाक्षिपत्स्वाहरत्सु सत्सु ह्री–मूढानां लज्जाविधुराणाम्। बिम्बं बिम्बिकाफलम्। 'बिम्बं फले बिम्बिकायाः

प्रतिबिम्बे च मण्डले' इति विश्वः। बिम्बमिवाधरो यासां तासां बिम्बाधराणां स्त्रीविशेषाणाम् विशेषाः कामिनी कान्ता भीरुबिम्बाधराऽंगना' इति शब्दार्णवः। चूर्णस्य कुंकुमादेर्मुष्टिः। अर्चिभिर्मयूखैस्तुंगान् 'अर्चिर्मयूखशिखयोः' इति विश्वः। 'रत्नान्येव प्रदीपानभिमुखं रत्नप्रदीपनिर्वापणप्रवृत्त्या मौग्ध्यं व्यज्यते।।7।।

अवतरणिका– विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अलकानगरी की दूसरी विशेषताओं में, वायु द्वारा प्रेरित वायु और मेघों की शरारत पूर्ण क्रियाओं का वर्णन करते हुए कहता है कि–

नेत्रा नीताः सततगतिना यद्विमानाग्रभूमी–
रालेख्यानां स्वजलकणिकादोषमुत्पाद्य सद्यः।
शंकास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशाः जालमार्गै
र्धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति।।8।।

अन्वय– नेत्राः सतत–गतिना, यत् विमान–अग्र–भूमीः नीताः, आलेख्यानाम्, स्व–जल–कणिका–दोषम् उत्पाद्य, सद्यः शंका–स्पृष्टाः इव, धूम–उद्गार–अनुकृति–निपुणाः त्वादृशाः जलमुचः, जर्जराः, जाल–मार्गैः निष्पतन्ति।।8।।

अनुवाद– प्रेरणा प्रदान करने वाली वायु द्वारा, जिस अलका पुरी के सात मंजिलों वाले, महलों के ऊपरी भाग पर पहुँचाए गए, चित्रों में अपने जल कणों से दोष उत्पन्न करके, शीघ्र ही भय से स्पर्श किए गए, मानो धुएँ के निकलने का अनुकरण करने में निपुण, तुम्हारे समान मेघ, छिन्न–भिन्न होकर वातायनों से निकल जाते हैं।

'चन्द्रिका'– जिस अलका नगरी में भवन सात मंजिलों के ऊँचे बने हुए हैं, यद्यपि उनकी प्रत्येक मंजिल में दीवारों पर चित्र बनाए गए हैं, किन्तु उनकी सबसे ऊपरी मंजिल में वायु की प्रेरणा को प्राप्त करके, तुम्हारे समान जल की वृष्टि करने वाले बादल, अपने जल के कणों से उन चित्रों में दोष उत्पन्न करके, उसके बाद पकड़े जाने के डर से मानो धुएँ के आकार को धारण करने में निपुण होने के कारण,

छिन्न–भिन्न होकर महलों की खिड़कियों के जालीदार झरोखों से निकलकर बाहर की ओर भाग जाते हैं।

विशेष–(i) यहाँ पर 'शंकास्पृष्टा इव' उत्प्रेक्षालंकार का दर्शनीय प्रयोग हुआ है। कवि की सुन्दर कल्पना अवलोकनीय है।

(ii) कवि का अभिप्राय है कि मेघरूपी कुछ लोग स्वयं में शरारती नहीं होते हैं, किन्तु दुष्टप्रकृति वायु जैसे शरारती तत्त्व से प्रेरित होने से उनके द्वारा ऐसा अनुचित कार्य कर दिया जाता है।

(iii) सात मंजिलों वाले भवनों या महलों को 'विमान' कहते हैं, यहाँ उसकी सबसे ऊपरी मंजिल से अभिप्राय ग्रहण करना चाहिए।

(iv) निरन्तर गतिशील होने से कवि ने यहाँ वायु के लिए **'सततगति'** विशेषण का सार्थक एवं साभिप्राय प्रयोग किया है।

(v) आचार्य मल्लिनाथ ने इसका 'जार'परक अर्थ भी किया है। तदनुसार– वायुरूपी अन्तःपुर के दूतों द्वारा महलों के शिखरों पर पहुँचाए गए बादलरूपी जार, वहाँ पर स्थित स्त्रीरूपी चित्रों को अपनी बूँदों से बिगाड़कर, दूसरे शब्दों में, व्यभिचार करके, पकड़े जाने के डर से धुएँ के रूप में अर्थात् वेश बदलकर खिड़कियों के मार्ग से निकल जाते हैं अर्थात् भाग जाते हैं।

(vi) यहाँ प्रयुक्त 'शंकास्पृष्टाः' से कवि का अभिप्राय है कि– वायु से प्रेरित हुए सीधे सादे मेघों ने अपने नूतन जल की बूँदों से महलों की दीवारों पर बनाए गए, चित्रों को खराब कर दिया है, इसके लिए स्वयं को दोषी मानकर, वे मानो धुएँ का अनुकरण करते हुए, छिन्न–भिन्न होकर वातायनों से बाहर की ओर निकल जाते हैं।

(vii) 'जलमुचः' पद का यहाँ कवि द्वारा साभिप्राय प्रयोग किया गया है, क्योंकि जल की वृष्टि करने वाला, मेघ ही चित्रों को खराब करने में सक्षम है, सूखा बादल नहीं।

(viii) काव्यकार कालिदास की शैलीगत विशेषता है कि वे सर्वत्र ही पदों का चयन विशिष्ट अभिप्राय के साथ करते हैं। प्रस्तुत श्लोक में प्रत्येक पद साभिप्राय प्रयुक्त हुआ है।

(ix) प्राचीन समय में महलों की भित्तियों पर चित्रकारी की जाती थी, बादलों के अन्दर प्रवेश होने से वे खराब भी हो जाते थे, यहाँ कवि ने उसी ओर संकेत किया है। तात्कालिक सामाजिक स्थिति का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **नेत्रा**– नयति, इति, तेन। प्रेरक।

(ii) **उत्पाद्य**– उत्+ √पद्+णिच्+क्त्वा (ल्यप्) उत्पन्न करके।

(iii) **सततगतिना**– सततं गतिः यस्य सः, ते, बहुव्रीहि समास।

(iv) **निष्पतन्ति**– निस्+ √पत्+लट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

(v) **जालमार्गैः**– जालानां मार्गः, तै, षष्ठी तत्पुरुष समास।

(vi) **शंकास्पृष्टाः**– शंकया स्पृष्टा, ते, तृतीया तत्पुरुष समास।

(vii) **स्वजलकणिकादोषम्**– स्वः जलमीति, तस्य कणिका, ताभिः दोषः, तम्, अपने जल के कणों के दोष को।

(viii) **धूमोद्गारानुकृतिनिपुणाः**– धूमस्य उद्गारः, तस्य अनुकृतिः, तस्यां निपुणाः, उद्गार–उद्+ √गृ+घञ्, अनु+ √कृ+क्तिन्

(ix) **त्वादृशाः**– त्वमिव दृश्यन्ते, इति, युष्मद्+ √दृश्+कञ्।

(x) **जलमुचः**– जलं मुंचन्ति, इति, जल+ √मुच्+क्विप्।

संजीवनी टीका–नेत्रेति। हे मेघ! नेत्रा प्रेरकेण सततगतिना सदागतिना वायुना। 'मातरिश्वा सदागति' इत्यमरः। यद्विमानाग्रभूमीः यस्या अलकाया विमानानां सप्तभूमिकभवनानामग्रभूमीरुपरिभूमीरुपरि–भूमिका नीताः प्रापिताः। त्वमिव दृश्यन्त इति त्वादृशाः। त्वत्सदृशा इत्यर्थः। 'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कंच' इति कं प्रत्ययः। जलमुचो मेघाः। आलेख्यानां सच्चित्राणाम्। 'चित्रं लिखितरूपाढ्यं स्यादालेख्यं तु यत्नतः' इति शब्दार्णवः।

स्वजलकणिकाभिर्जलकणैर्दोषं स्फोटनमुत्पाद्य सद्यः शंकास्पृष्टा इव सापराधत्वाद्भयाविष्ट इव। 'शंका वितर्कभययोः' इति शब्दार्णवः। धूमोद्गारस्य धूमनिर्गमनस्यानुकृतावनुकरणे निपुणाः कुशलाः। जर्जरा विशीर्णाः सन्तः जालमार्गैर्गवाक्षरन्धैर्निष्पतन्ति निष्क्रामन्ति। केनचिदन्तः पुरसंचारवता दूतने गूढ़वृत्त्या रहस्यभूमिं प्रापितास्तत्र स्त्रीणां व्यभिचार–दोषमुत्पाद्य सद्यः साशंकाः क्लृप्तवेषान्तरा जाराः क्षुद्रमार्गैनिष्क्रामन्ति तद्वदिति ध्वनिः। प्रकृतार्थे शंकास्पृष्टा इवेत्युत्प्रेक्षा।।8।।

अवतरणिका– इसी क्रम में विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अलकानगरी की अन्य विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहता है कि–

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजालिंगनोच्छ्वासिताना[1]–
मंगग्लानिं सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः।
त्वत्संरोधापगमविशदैश्चन्द्रपादैर्निशीथे
व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः।।9।।

अन्वय– यत्र निशीथे त्वत् संरोधाय अपगम–विशदैः चन्द्रपादैः, स्फुट–जल–लव–स्यन्दिनः, तन्तु–जाल–अवलम्बाः चन्द्रकान्ताः,प्रियतम–भुज–आलिंगन–उच्छ्–वासितानाम् स्त्रीणाम् सुरत–जनिताम् अंग–ग्लानिम् व्यालुम्पन्ति।।9।।

अनुवाद– जिस अलकापुरी में आधी रात में, तुम्हारे अवरोधों के हट जाने से निर्मल चन्द्रमा की किरणों के छूने से, स्वच्छ जल की बिन्दुओं को स्रवित करने वाली, झालरों में लटकी हुई चन्द्रकान्त मणियाँ, अपने प्रेमियों की भुजाओं के आलिंगन से शिथिल हो जाने वाली, स्त्रियों की रतिक्रीड़ा से उत्पन्न होने वाली थकान को दूर करती हैं।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में मुख्य वाक्य है कि– उस अलका नगरी में झालरों में लटकी हुई चन्द्रकान्त मणियाँ, स्त्रियों की रतिक्रीड़ा से उत्पन्न होने वाली, शारीरिक थकान को दूर करती हैं। वे मणियाँ

---

1. पाठभेद– प्रियतमभुजगोच्छ्वासितलिंगिताना–

कैसी हैं? इस विषय में कहते हैं, **प्रथम,** तो उन मणियों को लटकने वाली झालरों में जड़ा गया है। **द्वितीय,** वे अर्धरात्रि में बादलों की रुकावट के हट जाने से पूर्णतया निर्मल चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श के कारण स्वच्छ जल की बूँदों को भूमिभाग पर टपकाती रहती हैं।

पुनः स्त्रियों के विषय में कहते हैं कि **प्रथम,** तो ये स्त्रियाँ रात्रि पर्यन्त अपने प्रियतमों की भुजाओं के आलिंगन में बद्ध होने से अब शिथिल हो गयी हैं। **द्वितीय,** रतिक्रीड़ा के कारण इन्हें शारीरिक थकान उत्पन्न हो गयी है, जिसे चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श द्वारा चन्द्रकान्त मणियों से टपकने वाली, स्वच्छ जल की बूँदों से दूर किया जा रहा है।

विशेष–(i) अलकानगरी में भवनों में चन्द्रकान्त मणि जटित झालरों का प्रयोग किया जाता है, जिससे उसके समृद्धि तथा ऐश्वर्य की प्रतीति हो रही है।

(ii) बादलों के हट जाने से चन्द्रमा की निर्मल किरणें वातायनों के मार्ग से उन चन्द्रकान्त मणियों पर गिरती हैं, जिससे उनके ठीक नीचे शयन करने वाले, प्रेमीयुगलों के शरीर पर वे स्वच्छ जल की बूँदें गिरती रहती हैं, जिससे स्त्रियों की सुरतव्यापार विषयक थकान दूर हो जाती है।

(iii) कवि मान्यता के अनुसार चन्द्रकान्त मणि की विशेषता है कि वह चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से द्रवित हो उठती हैं। इसप्रकार यहाँ चन्द्रकान्त मणियों का मानवीकरण भी किया गया है।

(iv) अलकापुरी का समृद्धिपूर्ण वर्णन होने से उदात्त अलंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(v) यहाँ प्रयुक्त 'अंगग्लानिम्' से अभिप्राय रतिक्रिया से उत्पन्न होने वाली (सुरतजनितां) 'थकान' से ग्रहण करना चाहिए।

(vi) शीतोपचार द्वारा सुरतव्यापार से उत्पन्न थकान को दूर करने का आयुर्वेद शास्त्र में उल्लेख होने से महाकवि का आयुर्वेद विषयक ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) चन्द्रपादैः– चन्द्रस्य पादाः, तैः।

(ii) **व्यालुम्पन्ति–** वि+आ+√लुप्+लट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

(iii) **सुरतजनिताम्–** सुरतेन जनिता, ताम्, तृतीया तत्पुरुष, √जन्+णिच्+क्त+ टाप्, सुरतक्रिया से उत्पन्न हुई को।

(iv) **त्वत्संरोधापगमविशदैः–** तव संरोधः, तस्य अपगमः, तेन विशदाः, तैः, षष्ठी एवं तृ. तत्पुरुष,तुम्हारी रुकावट के हटने से निर्मल।

(v) **स्फुटजललवस्यन्दिनः–** जलस्य लवाः, स्फुटाः च ते जललवाः, तान् स्यन्दन्ते, इति। √स्यन्द्+णिनि, कर्तरि।

(vi) **तन्तुजालावलम्बाः–**तन्तूनां जालम्, तत् अवलम्बः, येषां ते।

(vii) **प्रियतमभुजोच्छ्वासितालिंगितानाम्–** प्रियतमानां भुजाः, तैः उच्छ्वासितानि तादृशानि आलिंगितानि यासां ताः, तासाम्, बहुव्रीहि।

(viii) **अंगग्लानिम्–** अंगानां ग्लानिः, ताम्, √ग्लै+क्तिन्, भावे।

संजीवनी टीका– **यत्रेति। यत्रालकायां निशीथेऽर्धरात्रौ। 'अर्धरात्र निशीथौ द्वौ' इत्यमरः। त्वत्संरोधस्य मेघावरणस्यापगमेन विशदैर्निर्मलै–श्चन्द्रमरीचिभिः। 'पादा रश्म्यङ्घ्रितुर्यांशाः' इत्यमरः। स्फुटजललवस्य–न्दिन उल्बणाम्बुकणस्राविस्तन्तुजालावलम्बा वितानलम्बिसूत्रपुंजाधाराः। तद्गुणगुम्फिता इत्यर्थः। चन्द्रकान्ताश्चन्द्रकान्तमणयः। प्रियतमानां भुजै–रालिंगनेषूच्छ्वासितानां प्रशिथिलीकृतानाम्। श्रान्त्या जलसेकाय वा शिथिलितालिंगनानामिति यावत्। स्त्रीणां सुरतजनितामंगग्लानिं शरीर–खेदम्। अवयवानां म्लानतामिति यावत्। व्यालुम्पन्त्यपनुदन्ति।।9।।**

अवतरणिका– विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अलकापुरी की विशेषताओं के अन्तर्गत कुबेर की कीर्ति का गान करनें वाले कामुक जनों द्वारा वहाँ बाह्योद्यान के उपयोग के विषय में कहता है कि–

अक्षय्यान्तर्भवननिधयः प्रत्यहं रक्तकण्ठै–

रुद्गायद्भिर्धनपतियशः किन्नरैर्यत्र सार्धम्।
वैभ्राजाख्यं विबुधवनितावारमुख्या सहाया
बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनः निर्विशन्ति।।10।।

अन्वय– यत्र अक्षय्यि–अन्तः–भवन–निधयः, विबुध–वनिता–वार–मुख्याः सहायाः, बद्ध–आलापाः, कामिनः प्रत्यहम् रक्त–कण्ठैः धनपति–यशः उद्गायद्भिः किन्नरैः, सार्धम् 'वैभ्राज'–आख्यम् बहिः उपवनम् निर्विशन्ति।।10।।

अनुवाद– जिस अलकापुरी के भवनों में अनन्त निधियों को रखने वाले, अप्सरारूपी वेश्याओं को साथ लेकर, बातचीत करते हुए कामीजन, रोज़ाना मधुर स्वर वाले, कुबेर की कीर्ति को उच्च स्वर से गाते हुए किन्नरों के साथ, नगर के बाहर स्थित 'वैभ्राज' नामक उद्यान का उपभोग करते हैं।

'चन्द्रिका'– अलका नगरी के भवनों में कुबेर की अनन्त निधियाँ विद्यमान हैं, जिनकी रक्षा अलका के ही यक्षों द्वारा की जाती है, यही कामी यक्ष अप्सराओं के समान सुन्दर वेश्याओं को साथ में लेकर, उन्मुक्तरूप से वार्तालाप करते हुए, रोजाना मधुर एवं ऊँचे स्वर से यक्षों के राजा कुबेर की कीर्ति का गान करने वाले, किन्नरों के साथ बैठकर, अलकानगरी के बाहर स्थित 'वैभ्राज' नाम के इस उद्यान का अपनी इच्छानुसार उपभोग करते हैं।

विशेष–(i) देवों द्वारा चाही गयी स्त्रियाँ वस्तुतः अप्सराएँ होती हैं, यहाँ उसी का उल्लेख 'विबुधवनिता' पद के द्वारा किया गया है।

(ii) यहाँ प्रयुक्त 'वारमुख्याः'[1] पद का अभिप्राय उन गणिकाओं से ग्रहण करना चाहिए, जो नृत्यादि कलाओं में निपुण होती हैं, समाज में आदरणीय ये प्राचीन समय में देवालयों में नृत्यादि प्रस्तुत करती थीं।

---

[1]. वारस्त्री गणिका वेश्या रूपाजीवाऽथ सा जनैः।
सत्कृता वारमुख्या स्यात्।। अमरकोश

(iii) पौराणिक मान्यता के अनुसार 'चित्ररथ' शिल्पी द्वारा बनाए गए, इस उद्यान की रक्षा, शिव का 'वैभ्राज' नामक गण करता था। इसी का अन्य नाम 'चैत्ररथ' उद्यान भी है, इसका उल्लेख पूर्वमेघ[1] में भी किया गया है।

(iv) यहाँ प्रयुक्त 'रक्तकण्ठ' से अभिप्राय किन्नरों के मधुर कण्ठ से ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि अलकानगरी में यक्ष एवं किन्नर दोनों ही निवास करते हैं।

(v) 'किन्नरैः' पद में यहाँ पर 'सहयुक्तेऽप्रधाने' सूत्र से तृतीया विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **प्रत्यहम्**– अहनि अहनि, इति।

(ii) **निर्विशन्ति**– निर्+ √विश्+लट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

(iii) **रक्तकण्ठैः**– रक्तः मधुरः कण्ठः कण्ठस्वरः, येषां ते तैः।

(iv) **धनपतियशः**– धनानां पतिः, तस्य यशः, तत्, ष., तत्पुरुष।

(v) **कामिनः**–कामयन्ते तच्छीला इति, √कमु+णिनि। कामीजन।

(vi) **बद्धालापाः**– बद्धः आलापः, येषां ते, बहुव्रीहि, √बन्ध्+क्त।

(vii) **विबुधवनितावारमुख्यासहायाः**– विबुधानां वनिताः, ता एव वारमुख्याः, ताः सहायाः, येषां ते, बहुव्रीहि समास।

(viii) **उद्गायद्भिः**–उच्चैः गायन्तः, तैः, उत्+ √गै+शतृ, तृ.बहु.।

(ix) **वैभ्राजाख्यम्**– वैभ्राज्यम् इति आख्या, तत्, बहुव्रीहि।

संजीवनी टीका– **अक्षय्येति। यत्रालकायाम्। क्षेतुं शक्याः क्षय्याः। 'क्षज्ज्वय्यौ शक्यार्थे' इति निपातः। ततो नञ् समासः। भवना–नामन्तरन्तर्भवनम्। 'अव्ययविभक्ति–' इत्यादिनाऽव्ययीभावः। अक्षय्या अन्तर्भवने निधयो येषां ते तथोक्ताः। यथेच्छभोगसम्भावनार्थमिदं विशेषणम्। विबुधवनिता अप्सरसस्ता एव वारमुख्या वेश्यास्ता एव सहाया येषां ते तथोक्ताः। 'वारस्त्री गणिका वेश्या रूपाजीवाऽथ सा जनैः। सत्कृता वारमुख्या स्यात्' इत्यमरः।**

---

1. बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या।। पूर्वमेघ–1/7।

बद्धालापाः सम्भावितसंलापाः कामिनः कामुकाः प्रत्यहमहन्यहनि। 'अव्ययं विभक्ति–' इत्यादिना समासः। रक्तो मधुरः कण्ठः कण्ठध्वनिर्येषां ते तैः सुन्दरकण्ठध्वनिभिर्धनपतियशः कुबेरकीर्तिमुदगायद्भिरुच्चैर्गायद्भिः। देवगानस्य गान्धारग्रामत्वात्तारतरं गायद्भिरित्यर्थः। किन्नरैः सार्धं सह। विभ्राजस्येदं वैभ्राजमित्याख्या यस्य तद्वैभ्राजाख्यम्। 'विभ्राजेन गणेन्द्रेण जातं वैभ्राजमाख्यया' इति शम्भुरहस्ये। चैत्ररथस्य नामान्तरमेतत्। बहिरुपवन बाह्योद्यानं निर्विशन्त्यनुभवति।।10।।

अवतरणिका– इसके पश्चात् विरही यक्ष, अलकानगरी की दूसरी विशेषताओं में रात्रि में प्रिय के पास जाने वाली, अभिसारिकाओं के प्रातः सूर्य निकलने पर पता लगने वाले, मार्ग की सूचना का वर्णन करते हुए अपने मित्र मेघ से कहता है कि–

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः
पत्रच्छेदैः कनककमलैः कर्णविभ्रंशिभिश्च।
मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै–
र्नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम्।।11।।

अन्वय– यत्र कामिनीनाम् नैशः मार्गः सवितुः उदये, गति–उत्कम्पात् अलक–पतितैः मन्दार–पुष्पैः, कर्ण–विभ्रंशिभिः पत्रच्छेदैः, कनक–कमलैः मुक्ता–जालैः च, स्तन–परिसर–छिन्न–सूत्रैः, हारैः च सूच्यते ।।11

अनुवाद– जिस अलकापुरी में अभिसारिकाओं का रात्रि का मार्ग, सूर्य के उदित होने पर, चलते समय हिलते के कारण, केशों से गिरे हुए मन्दार के पुष्पों से, कानों से गिरे हुए कर्ण–पल्लवों के टुकड़ों से, स्वर्ण कमलों से, मोतियों की लड़ियों से तथा स्तन–प्रदेश के टूटे हुए धागों वाले हारों द्वारा सूचित हो जाता है।

'चन्द्रिका'– इस अलकानगरी में अभिसारिकाएँ स्वयं को अनेक प्रकार से सजाधजा कर, आभूषणादि को धारण करके, रात्रि में अपने प्रियों से मिलने के लिए अर्थात् अभिसार करने के लिए जाती हैं।

उनका रात्रि का यह मार्ग सूर्य के उदित होने पर, प्रातः लोगों की दृष्टि से बचते बचाते हुए शीघ्रतापूर्वक जाने से हिलने के कारण, उनके शरीरों से गिरी हुए अनेक वस्तुओं द्वारा सरलता से पता चल जाता है।

तत्पश्चात् उन वस्तुओं को महाकवि गिनाते हैं, **प्रथम,** तो घबराहट एवं उत्सुकतावश तीव्र गति से चलने के कारण, उनके केशों में लगाए गए मन्दार के पुष्प मार्ग में गिर जाते हैं। **द्वितीय,** कहीं पर उनके कानों में लगाए गए किसलयों के टुकड़े मार्ग में पड़े हुए दिखायी देते हैं। **तृतीय,** मार्ग के कुछ स्थलों पर हाथों में धारण किए गए स्वर्णकमल ही छूट जाते हैं तो **चतुर्थ,** मोतियों की लडियाँ भी छिन्न–भिन्न होकर गिर जाती हैं तथा **पंचम,** हड़बडाहट में उनके स्तनप्रदेश पर धारण किया गया हार, उसके धागे के टूटने से मार्ग में गिर जाता है। इसप्रकार इन सभी अभिसारिकाओं द्वारा स्वयं को अलंकृत किए जाने वाले, इन उपादानों के मार्ग में गिरने से उनका रात्रि का अभिसरण विषयक मार्ग देखने वालों को सहजरूप से ही पता लग जाता है।

विशेष–(i) यद्यपि सामान्यरूप से 'कामिनी' पद का प्रयोग अत्यन्त सुन्दर तरुणी के लिए किया जाता है, किन्तु यहाँ प्रयुक्त 'कामिनीनाम्' पद का कवि द्वारा साभिप्राय होने से यह अत्यधिक काम से पीड़ित स्त्री अर्थात् अभिसारिका के लिए प्रयोग किया गया है, जो रात्रि में सभी की दृष्टि को बच–बचाकर, चुपके से अपने प्रियतम से मिलने के लिए जाती है।

(ii) यहाँ प्रयुक्त 'गत्युत्कम्पात्' पद से अभिप्राय प्रसाधन सामग्री का प्रयोग करने के बाद, शीघ्रतापूर्वक जा रही अभिसारिका की गति से ग्रहण करना चाहिए, जिसके कारण उसके प्रसाधन के अनेक उपादान अत्यधिक हिलने से मार्ग में गिर जाते हैं, जिनका उसे पता

भी नहीं चल पाता है। उनकी इस क्रिया से अभिसारिकाओं का प्रियतम से मिलन विषयक उत्कण्ठातिशय भी अभिव्यंजित हुआ है।

(iii) अभिसारिकाओं की उन्मत्तावस्था का सुन्दर चित्रण किया गया है, क्योंकि घबराहट तथा प्रिय से मिलने की उत्कण्ठावश उसके आभूषण कब उनके शरीर से गिर गए, उन्हें पता भी नहीं चलता है।

(iv) संस्कृत साहित्य जगत् में अभिसारिका नायिकाओं का प्रचुर स्थलों पर वर्णन किया गया है। काव्यकार कालिदास ने ही अपने कुमारसम्भव एवं रघुवंश महाकाव्यों में इनका पर्याप्त चित्रण किया है।

(v) अभिसारिकाओं के रात्रि के मार्ग की सूचना के लिए, मन्दार पुष्पों आदि कारणों का उल्लेख करने से समुच्चय अलंकार[1] का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(vi) इसीप्रकार उक्त श्लोक में वर्णित मार्ग में गिरी हुई उपर्युक्त वस्तुओं को देखने से अभिसारिकाओं के जाने के मार्ग का अनुमान होने से अनुमान अलंकार[2] भी प्रयुक्त हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **नैशः**– निशि भवः, निशा+अण्।
(ii) **कामिनीनाम्**– अतिशयेन कामः विद्यते यासां ताः, तासाम्।
(iii) **गत्युत्कम्पात्**– गत्या उत्कम्पः, तस्मात्, हेतौ पंचमी।
(iv) **अलकपतितैः**– अलकेभ्यः पतितानि, तैः, पंचमी तत्पुरुष।
(v) **कर्णविभ्रंशिभिः**– कर्णेभ्यो विभ्रश्यन्तीति, तैः,उपपद तत्पुरुष।
(vi) **मदारपुष्पैः**– मन्दाराणां मन्दारस्य वा पुष्पाणि तैः, ष. तत्पु.।
(vii) **पत्रच्छेदैः**– पत्राणां छेदाः, तैः, √छिद्+घञ्, षष्ठी, तत्पु.।
(viii) **कनककमलैः**– कनकस्य कमलानि, तैः, षष्ठी, तत्पुरुष।
(ix) **मुक्ताजालैः**– मुक्तानां जालानि तैः, षष्ठी, तत्पुरुष।

---

1. तत्सिद्धिहेतावेकस्मिन् यत्रान्यत् तत्करं भवेत्।
समुच्चयोऽसौ।। काव्यप्रकाश–10/178।
2. अनुमानं तदुक्तं यत् साध्यसाधयोर्वचः। काव्यप्रकाश–10/182।

(x) **स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैः**– स्तनयोः परिसरः, तस्मिन् छिन्नानि सूत्राणि येषाम्, तैः, सप्तमी, तत्पुरुष। स्तनप्रदेश से टूटे धागों वाले।

(xi) **सूच्यते**– √सूच्+लट्, आत्मनेपद, प्रथमपुरुष, एकवचन।

संजीवनी टीका– **गत्युत्कम्पादिति। यत्रालकायां कामिनीनाम–भिसारिकाणाम्। निशि भवो नैशो मार्गः सवितुरुदये सति गत्वा गमने–नोत्कम्पश्चलनं तस्माद्धेतोरलकेभ्यः पतितैर्मन्दारपुष्पैः सुरतरुकुसुमैः तथा पत्राणां पत्रलतानां छेदैः खण्डैः। पतितैरिति शेषः। तथा कर्णेभ्यो विभ्रंशयन्तीति कर्णविभ्रंशीनि तैः कनकस्य कमलैः। षष्ठ्या विवक्षितार्थ–लाभे सति मयटा विग्रहेऽध्याहारदोषः। एवमन्यत्राप्यनुसन्धेयम्। तथा मुक्ताजालैर्मौक्तिकसरैः। शिरोनिमित्तैरित्यर्थः। तथा स्तनयोः परिसरः प्रदेशस्तत्र छिन्नानि सूत्राणि येषां तैर्हारैश्च सूच्यते ज्ञाप्यते। मार्गपतित–मन्दारकुसुमादिलिंगैरद्ययमभिसारिकाणां पन्था इत्यनुमीयत इत्यर्थः।।11।**

अवतरणिका– अलकापुरी में यक्ष–स्त्रियों की सभी प्रकार की प्रसाधन विषयक सामग्री की आपूर्ति के लिए **कल्पवृक्ष** की उपस्थिति का उल्लेख करते हुए, महाकवि कहते हैं कि–

वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं
पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान्।
लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या–
मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः।।12।।

अन्वय– यस्याम् चित्रम् वासः, नयनयोः विभ्रम–आदेश–दक्षम् मधुः, किसलयैः सह पुष्प–उद्भेदम्, विकल्पान् भूषणानाम्, चरण–कमल–न्यास–योग्यम् च लाक्षा–रागम्, सकलम् अबला–मण्डनम्, एकः कल्पवृक्षः सूते।।12।।

अनुवाद– **जिस अलकापुरी में रंग–बिरंगे, अनेक वर्णों वाले 'वस्त्र', नयनों को विलास की शिक्षा देने में निपुण 'मदिरा', किसलयों के साथ पुष्पों के विकास विषयक 'आभूषणों' के अनेक प्रकार तथा**

चरणरूपी कमलों पर लगाने योग्य 'महावर' आदि, स्त्रियों की सम्पूर्ण प्रसाधन सामग्री को अकेला कल्पवृक्ष ही उत्पन्न करता है।

'चन्द्रिका'– अलका नगरी के विशेषताओं के क्रम में कवि कहते हैं कि यहाँ पर अकेला कल्पवृक्ष ही स्त्रियों की सभी प्रकार की प्रसाधन विषयक सामग्री की आपूर्ति कर देता है, इसके लिए उन्हें किसी प्रकार के प्रयास करने की आवश्यकता नहीं होती है। **जैसे**– वह कल्पवृक्ष इन्हें अनेक प्रकार के रंगबिरंगे वस्त्र, नेत्रों को विलास की शिक्षा प्रदान करने में निपुण मदिरा, कानों में धारण करने के लिए, नवीन पल्लवों वाले पुष्पों का विकास, शरीर के विभिन्न अंगों में धारण करने योग्य अनेक प्रकार के आभूषणों एवं चरणरूपी कमलों में लगाने योग्य महावर को स्वतः ही प्रदान कर देता है।

विशेष–(i) अलका नगरी की स्त्रियों के लिए प्रसाधन सामग्री को उत्पन्न करने का उल्लेख एकमात्र कल्पवृक्ष द्वारा कराकर, कवि ने अद्भुतरस की सृष्टि की है।

(ii) तात्कालिक सामाजिक स्थिति का भी सुन्दर चित्रण किया गया है। उस समय लोगों को रंगबिरंगे वस्त्रों को धारण करना अधिक प्रिय था, वर्तमान में भी इसे अपेक्षाकृत अधिक अच्छा माना जाता है।

(iii) शास्त्रों में संभ्रमवश अपने वस्त्रालंकारादि को अस्त व्यस्तरूप से धारण करना 'विभ्रम' कहा गया है।[1]

(iv) 'मधु' अर्थात् 'मदिरा' को यहाँ अनेक प्रकार के विभ्रमों को सिखाने में दक्ष अर्थात् निपुण कहा गया है, क्योंकि इसे पीने के बाद व्यक्ति स्वतः ही नयनों का घुमाना तथा वाणी व गति का लड़खड़ाना जैसी अनेक प्रकार की चेष्टाएँ करने लगता है।

(v) कालिदास के समय में भी स्त्रियाँ मधुपान करती थीं, इससे स्त्रियों की सामाजिक स्थिति स्पष्ट हुई है।

---

[1] . विविधानामर्थानां वागंगाहार्यसत्वयोगानाम्।
मदरागहर्षजनितो व्यत्यासो विभ्रमा ज्ञेयाः। नाट्यशास्त्र–22 / 17।

(vi) स्त्रियों के लिए सम्पूर्ण प्रसाधन सामग्री अकेला कल्पवृक्ष की प्रदान कर देता है। यह सामग्री शास्त्रों में चार प्रकार की बतायी गयी है– केशों में धारण करने योग्य पुष्पादि, विभिन्न अंगों में धारण करने योग्य आभूषणादि, शरीर पर पहने योग्य रेशमी वस्त्रादि, शरीर पर लगाने योग्य उबटनादि।[1]

(vii) यहाँ प्रयुक्त 'वास' आदि अनेक पदों के 'सूते' इस क्रिया के कर्मरूप में प्रयुक्त होने से तुल्ययोगितालंकार[2] दर्शनीय है।

(viii) टीकाकारों ने यहाँ प्रयुक्त कुछ श्लोकों को भिन्नरूप में रखते हुए व्याख्या की है।

(ix) प्रस्तुत श्लोक को दक्षिणावर्त एवं भरतमल्लिक आदि अनेक टीकाकारों ने प्रक्षिप्त मानकर छोड़ दिया है।

(x) 'किसलयैः सह' में 'सहयुक्तेऽप्रधाने'सूत्र से तृतीया विभक्ति का प्रयोग, 'सह' पद के योग में हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **भूषणानाम्**– √भूष्+ल्युट्, ष.बहुव।

(ii) **सूते**– √सू+लट्, आत्मनेपद, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(iii) **विभ्रमादेशदक्षम्**– विभ्रमाणाम् आदेशः,तस्मिन् दक्षम्, स.त.।

(iv) **पुष्पोद्भेदम्**– पुष्पाणामुद्भेदः, तम्, षष्ठी तत्पुरुष समास।

(v) **चरणकमलन्यासयोग्यम्**–चरणौ कमले इव इति चरणकमले, तयोः न्यासः, तस्मिन् योग्यः, तम्, सप्तमी तत्पुरुष समास।

(vi) **विकल्पः**– विविधं कल्प्यते इति, वि+√क्लृप्+घञ्, प्रकार।

(vii) **लाक्षारागम्**– लाक्षा एव रागः, इति तम्, महावर को।

(viii) **अबलामण्डनम्**– मण्ड्यते अनेन इति, √मण्ड्+ल्युट्, अबलानाम् मण्डनम्, षष्ठी तत्पुरुष समास। स्त्रियों के आभूषण।

---

1. कचधार्यं देहधार्यं परिधेयं विलेपनम्।
चतुर्धा भूषणं प्राहुः स्त्रीणां मन्मथदेशिकम्।। रसाकर।

2. नियतानां सकृद्धर्मः सा पुनस्तुल्ययोगिता। काव्यप्रकाश– 10/158।

संजीवनी टीका– वासश्चित्रमिति। 'कचधार्यं देहधार्यं परिधेयं विलेपनम्। चतुर्थां भूषणं प्राहुः स्त्रीणां मन्मथदैशिकम्।। इति रसाकरे। तदेवैतदाह–वास इति। यस्यामलकायां चित्रं नानावर्णं वासो वसनम्। परिधेयमण्डनमेतत्। नयनयोर्विभ्रमाणामादेश उपदेशे दक्षम्। अनेन विभ्रम द्वारा मधुनो मण्डनत्वनुसंधेयम्। तच्च मण्डनादिवद्देहधार्येऽन्तर्भाव्यम्। मधु मद्यम्। किसलयैः पल्लवैः सह पुष्पोद्भेदम्। उभयं चेत्यर्थः। इदं तु कच–धार्यम्। भूषणानां विकल्पान्विशेषान्। देहधार्यमेतत्। तथा चरणकमलयो–र्न्यासस्य समर्पणस्य योग्यम्। रज्यतेऽनेनेति रागो रंजकद्रव्यम्। लाक्षैव रागस्तं लाक्षारागं च। इदं च अंगरागादिविलेपनमण्डलोपलक्षणार्थम्। सकलं सर्वम्। चतुर्विधमपीत्यर्थः। अबलामण्डनं योषित्प्रसाधनजातमेकः कल्पवृक्ष एव सूते जनयति। न तु नानासाधनसम्पादनप्रयास इत्यर्थः।।12

अवतरणिका– विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अलकानगरी की विशेषताओं के वर्णन क्रम में कामदेव के अस्त्रों का कार्य, स्त्रियों के विभ्रम विलासों द्वारा ही बताते हुए कहता है कि–

मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद्वसन्तं
प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथ षट्पदज्यम्।
सभ्रूभंगप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघै–
स्तस्यारम्भश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्धः।।13।।

अन्वय– यत्र मन्मथः धनपति–सखम् साक्षात् वसन्तम् देवम् मत्वा, भयात् षट्पद–ज्यम् चापम्, प्रायः न वहति, तस्य आरम्भः सभ्रू–भंग–प्रहित–नयनैः कामि–लक्ष्येषु अमोघैः चतुर–वनिता–विभ्रमैः एव सिद्धः।।13।

अनुवाद– जिस अलकापुरी में कामदेव, कुबेर के मित्र भगवान् शंकर को प्रत्यक्षरूप से निवास करते हुए जानकर, भय के कारण भ्रमर रूपी प्रत्यंचा से युक्त, धनुष को प्रायः धारण नहीं करता है, क्योंकि उसका यह कार्य तो कामीजनरूपी लक्ष्यों पर चतुर स्त्रियों के भौंहों को

टेढ़ा करके चलाए जाने वाले, विलासपूर्ण नेत्रों से ही सिद्ध हो जाता है।

'चन्द्रिका'– इस अलका नगरी की महती विशेषता यह भी है कि यहाँ पर कामदेव भ्रमरों की प्रत्यंचा वाले अपने धनुष को, केवल इसलिए धारण नहीं करता है, क्योंकि इस नगरी में कुबेर के मित्र भगवान् महादेव प्रत्यक्षरूप से निवास करते हैं। इसलिए कहीं वे मुझे फिर से भस्म न कर दें, किन्तु फिर भी उसका यह कार्य तो कामीजनों को लक्ष्य करके चलाए गए, चतुर स्त्रियों की विलासपूर्ण नेत्रों के भौहों रूपी बाणों से स्वतः ही कर दिया जाता है।

विशेष–(i) कवि का अभिप्राय है कि कुछ स्थानों पर कामेदव के बाण भले ही व्यर्थ सिद्ध हो जाएँ, किन्तु कामिनियों के कटाक्षरूपी बाणों के तो निष्फल होने की लेशमात्र सम्भावना ही नहीं है।

(ii) पौराणिक मान्यता के अनुसार कुबेर और भगवान् शंकर में परस्पर मित्रता थी। यही कारण है कि यहाँ एवं पूर्व में भी अलका के बाहर स्थित उद्यान में उनके निवास का उल्लेख किया गया है।

(iii) महादेव ने कामदेव को अपने तीसरे नेत्र द्वारा भस्म कर दिया था, यह पुराणों में उल्लेख मिलता है, उसी को दृष्टिगत रखते हुए कामदेव अलकानगरी के वासियों पर अपना शरप्रहार करने से घबराता है।

(iv) सभी प्राणियों के मनों को 'मथ' देने के कारण, कामदेव का एक नाम 'मन्मथ' भी कहा गया है।

(v) पौराणिक मान्यता के अनुसार कामदेव के धनुष का दण्ड इक्षु से, ज्या भ्रमरों से निर्मित है तथा इसपर यह विशिष्ट पुष्पों के बाणों को चलाता है। इसीलिए इसे 'पुष्पधन्वा' भी कहा गया है।

(vi) कामदेव के बाणों के अभाव में अलका नगरी की सुन्दरियों के नयनरूपी बाण अर्थात् कटाक्ष ही इस कार्य को सम्पन्न करते हैं, जिन्हें यहाँ 'अमोघ' बताया गया है।

(vii) प्रस्तुत श्लोक में कामदेव के धनुष धारण करने का सम्बन्ध होने पर भी, उसके असम्बन्ध का कथन होने से अतिशयोक्ति अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।

(viii) इसीप्रकार 'कामिलक्ष्येषु' पद में कामियों में लक्ष्य होने का आरोप किए जाने से रूपक अलंकार का भी प्रयोग हुआ है।

(ix) 'भयात्' पद में हेतौ सूत्र से पंचमी विभक्ति का प्रयोग है।

(x) यहाँ 'देव' पद महादेव के लिए प्रयुक्त हुआ है।

(xi) नृत्य, गीत, वाद्य एवं कामकला आदि कलाओं में निपुण स्त्रियों के लिए यहाँ पर 'चतुर' पद का साभिप्राय प्रयोग हुआ है, जो उनकी समाज में स्थिति को भी अभिव्यंजित कर रहा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **सिद्धः**– √सिध्+क्त, सफल।

(ii) **धनपतिसखम्**– धनानां पतिः, तस्य सखम्, षष्ठी तत्पुरुष।

(iii) **देवम्**–दीव्यति, इति, तम्, भगवान् शंकर को। √दिव्+अच्

(iv) **वसन्तम्**– √वस्+शतृ, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

(v) **कामिलक्ष्येषु**– कामिनः एव लक्ष्यानि, तेषु, कामः अस्ति, एषां ते कामिनः,काम+इनि,कामिन्, लक्षयितुं योग्यानि, इति, √लक्ष्+णिच्+यत्।

(vi) **अमोघैः**– न मोघाः, इति, तैः,नञ् तत्पुरुष समास। सफल।

(vii) **चतुरवनिताविभ्रमैः**– चतुराः च ताः वनिताः, कर्मधारय तासाम्, विभ्रमाः, तैः, षष्ठी तत्पुरुष, वि+ √भ्रम्+घञ्।

(viii) **सभ्रूभंगप्रहितनयनैः**–भ्रुवोः भंगः, षष्ठी तत्पुरुष, तेन सहितं यथा स्यात् तथा, सभ्रूभंगं प्रहितानि नयनानि येषु, तैः बहुव्रीहि समास।

(ix) **साक्षात्**– अक्षेण सहितः इति साऽक्षः, साक्षम् अततीति।

(x) **षट्पदज्यम्**– षट् पदानि येषां ते, एव ज्या यस्य सः, तम्।

(xi) **वहति**–√वह्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, वहन करता है।

संजीवनी टीका– मत्वेति। **यत्रालकायां मन्मथः कामः। धनपतेः कुबेरस्य सखेति धनपतिसखः। 'राजाहः सखिभ्यष्टच्'। तं देवं महादेवं साक्षाद्वसन्तं सखिस्नेहान्निजरूपेण वर्तमानं मत्वा ज्ञात्वा भयाद्दालेक्षण–**

भयात् षट्पदा एव ज्या मौर्वी यस्य तं चापं प्रायः प्राचुर्येण न वहति न बिभर्ति। कथं तर्हि तस्य कार्यसिद्धान्त आह– सभ्रूभंगेति। तस्य मन्मथ–स्यारम्भः कामिजनविजयव्यापारः। सभ्रूभंगं प्रहितानि प्रयुक्तानि नयनानि दृष्टयो येषु तैस्तथोक्तैः कामिन एव लक्ष्याणि तेष्वमोघैः। मन्मथचापोऽपि क्वचिदपि मोघः स्यादिति भावः। चतुराश्च ता वनिताश्च ताश्च तासां विभ्रमैर्विलासैरेव सिद्धो निष्पन्नः। यदनर्थकरं पाक्षिकफलं च तत् प्रयोगाद्वरं निश्चितसाधनप्रयोग इति भावः।।13।।

अवतरणिका– इसके बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अलकानगरी की अन्य विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहता है कि–

पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्र वाहाः
शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात्।
योधाग्रण्यः प्रतिदशमुखं संयुगे तस्थिवांसः
प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणांकैः।।14।।

अन्वय– यत्र वाहाः पत्र–श्यामाः दिनकर–हय–स्पर्धिनः, करिणः शैलोदग्राः प्रभेदात् त्वम् इव वृष्टिमन्तः, योधा–अग्रण्यः, संयुगे प्रतिदश–मुखम् तस्थिवांसः चन्द्रहास–व्रणांकैः प्रत्यादिष्ट–आभरण–रुचयः(सन्ति)

अनुवाद– जिस अलकानगरी में घोड़े, पत्तों के समान गहरे हरे रंग के (श्यामल) **होने से सूर्य के घोड़ों से स्पर्धा करने वाले हैं, पर्वत के समान ऊँचे** हाथी, **मद प्रस्रवित होने से तुम्हारे समान वृष्टि करने वाले हैं एवं युद्ध में रावण के सम्मुख खड़े होने वाले, श्रेष्ठ योद्धा, रावण की चन्द्रहास नामक तलवार के चिह्नों के कारण, आभूषणों की कान्तियों का प्रत्याख्यान करने वाले हैं।**

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में कवि ने अलकानगरी की तीन विशेषताओं का विशेषरूप से उल्लेख किया है। **प्रथम,** यहाँ पर स्थित घोड़े ताजे हरे पत्तों के समान रंग वाले होने से सूर्य के घोड़ों के साथ स्पर्धा करने वाले हैं। **द्वितीय,** इसीप्रकार अलकापुरी के हाथी भी

सामान्य न होकर पर्वतों के समान विशाल आकार वाले, ऊँचे एवं सदा ही मेघ के समान मद की वर्षा करने से उत्कृष्ट कोटि के हैं।

तृतीय, इसके अलावा यहाँ के योद्धा भी सामान्य श्रेणी के न होकर अद्भुत वीर हैं, क्योंकि उन्होंने रावण के सामने भी उसकी तलवारों के प्रहारों को सहन किया है, जिससे होने वाले घावों के चिह्नों को देखते हुए, अब उन्होंने आभूषणों को धारण करने की अपनी इच्छा का भी परित्याग कर दिया है।

विशेष–(i) नूतन पत्तों का रंग हरा होता है, इसके उल्लेख से महाकवि का वनस्पति विज्ञान विषयक ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) इसीप्रकार कवि का अश्वविज्ञान विषयक ज्ञान भी यहाँ पर प्रदर्शित हुआ है, क्योंकि उनकी तीव्र गति एवं उत्कृष्ट लक्षणों आदि के कारण अलकापुरी के घोड़ों की उपमा के लिए सूर्य के घोड़ों का उपमानरूप में प्रयोग किया है।

(iii) महाकवि इस तथ्य से सुपरिचित रहे हैं कि उत्कृष्ट श्रेणी के हाथियों के गण्डस्थलों से सुगन्धित द्रव्य बहता है, जिसे 'मद' कहते हैं। इससे उनके हस्तिविज्ञान विषयक गहन ज्ञान का पता चलता है।

(iv) कवि का अभिप्राय है कि जिसप्रकार मेघ जल की वर्षा करते हैं, उसीप्रकार अलकापुरी में उत्कृष्ट श्रेणी के हाथी सुगन्धित द्रवरूप मद का स्रवण करते रहते हैं।

(v) रावण के लिए यहाँ 'दशमुख' विशेषण का प्रयोग किया गया है। मान्यता है कि उसके दस मुख थे तथा उसकी तलवार का नाम चन्द्रहास' था, जो चन्द्रमा के समान चमक वाली थी।

(vi) पौराणिक आख्यान के अनुसार कुबेर वैश्रवण, वस्तुतः दशमुख रावण का ही भाई था, किन्तु रावण ने आक्रमण करके उसका पुष्पक विमान तथा कोश छीन लिया था। इसी अवसर पर जो युद्ध हुआ, उसमें ही अलकापुरी के योद्धाओं के शरीरों पर चन्द्रहास तलवार के चिह्न बन गये थे, जिनकी ओर यहाँ संकेत किया गया है।

(vii) आचार्य मल्लिनाथ ने प्रस्तुत श्लोक को पूर्वमेघ में उज्जयिनी वर्णन प्रसंग में प्रस्तुत किया है, जबकि पार्श्वाभ्युदय आदि अनेक संस्करणों में यहीं पर प्रयुक्त हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **स्पर्धिनः**– √स्पृध्+णिनि, स्पर्धिन्।

(ii) **दिनकरहयान्**– दिनं करोति, इति, दिनकरः, सूर्यः, तस्य हयाः अश्वाः दिनकरहयाः तान्, दिन+√कृ+ट (अ)–सूर्य ।

(iii) **शैलोदग्राः**– शैलः पर्वतः इव उदग्राः उन्नताः, इति।

(iv) **वृष्टिमन्तः**–वृष्टिः वर्षणम् एषाम्, अस्ति, इति, वर्षणशीलाः।

(v) **प्रभेदात्**– प्रभिद्यते इति, तस्मात्, प्र+√भिद्+घञ्।

(vi) **योधाग्रण्यः**– अग्रं नयति, इति अग्रणीः, मुख्यः, योधानाम् अग्रणीः, ते च बहवः इति, योधाग्रण्यः, सेनामुख्याः, इति। सेनापति।

(vii) **प्रतिदशमुखम्**– दशमुखानि यस्य सः, रावणः। दशमुखम् प्रति इति प्रतिदशमुखम्, दस मुख वाले रावण के समक्ष।

(viii) **तस्थिवांसः**– √स्था+क्वसु, प्रथमा, बहुवचन, ठहर चुके।

(ix) **प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः**– प्रत्यादिष्टा त्यक्ताः आभरणानां रुचिः अभिलाषा, यैः ते, बहुव्रीहि समास। प्रति+आ+√दिश्+क्त।

(x) **चन्द्रहासव्रणांकैः**– चन्द्रहासस्य व्रणानि, तानि अंकाः चिह्नानि तैः, कर्मधारय, अथवा तेषाम् अंकैः किणैः, षष्ठी तत्पुरुष।

सस्कृत टीका– **हे जलद, यत्रालकायां वाहा हयाः पर्णश्यामाः पलाशवर्णाः। अतएव दिनकरहयस्पर्धिनो वर्णतो वेगतश्च सूर्याश्वकल्पाः। तथा शैलोदग्राः शैशवादुन्नताः करिणः प्रभेदान्मदस्रावाद्धेतोः त्वमिव वृष्टिमन्त। योधाग्रण्यः। अग्रं नयन्तीरग्रण्यः। 'सत्सूद्विष–' इत्यादिना क्विप्। 'अग्रगामाभ्यां नयतेः' इति वक्तव्याण्णत्वम्। योधानामग्रण्यो भटश्रेष्ठाः संयुगे युद्धप्रतिदशमुखमभिरावणं तस्थिवांसः स्थितवन्तः। अतएव चन्द्रहासस्य रावणासेर्व्रणानि क्षतान्येवांकाश्चिह्नानि तैः। 'चन्द्रहासो रावणासावसिमात्रेऽपि च क्वचित्' इति शाश्वतः। प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः**

प्रतिषिद्धभूषणकान्तयः। शस्त्रप्रहारा एवं वीराणां भूषणमिति भावः। अत्रापि भाविकालंकारः।।14।।

अवतरणिका– इसप्रकार अलकानगरी के वैशिष्ट्य का विस्तार पूर्वक कथन करने के बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अलकानगरी में स्थित अपने घर की पहचान बताते हुए कहता है कि–

तत्रागारं धनपतिगृहादुत्तरेणास्मदीयं
दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन।
यस्योपान्तं कृतकतनयः कान्तया वर्धितो मे
हस्तप्राप्यस्तबकनमितो बालमन्दारवृक्षः।।15।।

अन्वय– तत्र धनपति–गृहात् उत्तरेण, अस्मदीयम् आगारम्, सुरपति–धनुः चारुणा तोरणेन, दूरात् लक्ष्यम्, यस्य उपान्तम् मे कान्तया कृतक–तनयः वर्धितः, हस्त–प्राप्य–स्तबक–नमितः बाल–मन्दार–वृक्षः (अस्ति)।।15

अनुवाद– उस अलकापुरी में कुबेर के महल के उत्तर की ओर स्थित हमारा घर, इन्द्रधनुष के समान सुन्दर, बाहर के द्वार के कारण दूर से ही दिखायी देने वाला है, जिसके पास में प्रियतमा द्वारा पाला गया, दत्तक पुत्र के समान, हाथों से प्राप्त करने योग्य, गुच्छों द्वारा झुकाया गया, छोटा सा मन्दार वृक्ष है।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में महाकवि ने प्रमुखरूप से यक्ष के घर की तीन पहचान बतायी हैं। **प्रथम,** तो अलकापुरी में मेरा घर यक्षराज कुबेर के महल की उत्तर दिशा में स्थित है। इसलिए तुम्हें अलकापुरी पहुँचने के बाद, उसी दिशा में प्रस्थान करना चाहिए। **द्वितीय,** मेरे घर के बाहर जो द्वार बना हुआ है, वह इन्द्रधनुष के समान सुन्दर होने के कारण, दूर से ही दिखायी देने वाला है। **तृतीय,** इसके अतिरिक्त इसी द्वार के पास में मेरी प्रियतमा द्वारा दत्तक पुत्र के समान स्नेह करते हुए,पालपोस कर बड़ा किया हुआ, हाथों से ही प्राप्त करने योग्य पुष्पों के गुच्छों से लदापदा छोटा सा मन्दार का वृक्ष है।

विशेष–(i) ऐसा प्रतीत होता है कि यक्ष के घर के बाहर तोरण द्वार वस्तुतः रंगबिरंगी चित्रकारी द्वारा बनाया गया था, उसे इन्द्रधनुष के समान बताकर यहाँ उसी ओर संकेत किया गया है।

(ii) सम्भवतः कुबेर ने इसी मन्दार के पुष्पों को पूजा के लिए प्रतिदिन लाने के लिए इस यक्ष को आदेश दिया था, जिस कर्तव्य में लापरवाही करने के कारण, इसे शाप का भागी होकर रामगिरि आश्रमों में निवास करना पड़ा।

(iii) प्रस्तुत श्लोक में प्रयुक्त 'अस्मदीय' पद से यक्ष का यह घर वस्तुतः पैतृक अर्थात् पितृ–पितामह से प्राप्त प्रतीत हो रहा है।

(iv) वस्तुतः प्राचीनकाल में घर के बाहर का द्वार थोड़ा गोलाकार (आर्क) लिए हुए बनाया जाता था तथा उसमें अनेक प्रकार की रंगबिरंगी चित्रकारी भी की जाती थी। सम्भव है कि इनमें रंगबिरंगी मणियों को भी जड़ा जाता हो। इसीलिए इसे यहाँ इन्द्रधनुष के समान गोल एवं रंगबिरंगा कहा गया है।

(v) मन्दार के छोटे से वृक्ष को यहाँ पुत्र के समान स्नेहपूर्वक पाला हुआ कहा गया है। इससे कवि का प्रकृति विषयक गहन प्रेम एवं अन्तरंगता भी अभिव्यंजित हो रही है।

(vi) यक्ष का अभिप्राय है कि उक्त प्रकार की विशेषताओं वाला मेरा घर, तुम दूर से ही पहचान लोगे, इसके लिए तुम्हें अधिक कठिनाई या परिश्रम का सामना करना नहीं पड़ेगा।

(vii) मन्दार वृक्ष पर पुष्पों के गुच्छे इतने अधिक मात्रा में विद्यमान हैं कि उनके भार से वह थोड़ा झुक गया है तथा उन पुष्प गुच्छों को सरलता से तोड़कर प्राप्त किया जा सकता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **अस्मदीयम्**– अस्माकम् इदमिति।

(ii) **धनपतिगृहात्**– धनानां पतिः, तस्य गृहम्, तस्मात्।

(iii) **सुरपतिधनुश्चारुणाम्**– सुराणां पतिः,(इन्द्र) तस्य धनुः, तत् इव चारु, उपमित कर्मधारय समास। इन्द्रधनुष के समान सुन्दर।

(iv) **लक्ष्यम्**— √लक्ष्+णिच्+ण्यत्। **वर्धितः**— √वृध्+णिच्+क्त।

(v) **कृतकतनयः**— कृत एव कृतकः, कृतकश्चासौ तनयश्चेति।

(vi) **हस्तप्राप्यस्तबकनमितः**— हस्तेन प्राप्याः, ते च स्तबकाः, तैः नमितः, **नमितः**— √नम्+णिच्+क्त, **प्राप्य**— प्र+ √आप्+ण्यत्।

(vii) **बालमन्दारवृक्षः**— मन्दारः चासौ वृक्षः, बालश्चासौ इति।

संजीवनी टीका— तत्रेति। तत्रालकायां धनपतिगृहान् कुबेरगृहा–नुत्तरेणोत्तरस्मिन्नदूरदेशे। 'एनबन्धतरस्यामदूरेऽपंचम्याः' इत्येनप् प्रत्ययः। 'एनपा द्वितीया' इति द्वितीया। 'गृहाः पुंसि च भूम्न्येव' इत्यमरः। अथवा 'उत्तरेण' इति नैनप् प्रत्ययान्तं किन्तु 'तोरणेन' इत्यस्य विशेषणं तृती–यान्तम्। धनपतिगृहादुत्तरस्यां दिशि यत्तोरणं बहिर्द्वारं तेन लक्षित–मित्यर्थः। अस्माकमिदमस्मदीयम्। 'वृद्धाच्छः' इति छ प्रत्ययः। आगारं गृहम्। सुरपतिधनुश्चारुणा मणिमयत्वादभ्रंकषत्वच्चेन्द्रचापसुन्दरेण तोरणेन बहिर्द्वारेण। दूराल्लक्ष्यं दृश्यम्। अनेनाभिज्ञानेन दूरत एव ज्ञातुं शक्यमित्यर्थः। अभिज्ञानान्तरमाह–यस्यागारस्योपान्ते प्राकारान्तः पार्श्वदेशे मे मम कान्तया वर्धितः पोषितः कृतकतनयः कृत्रिमसुतः। पुत्रत्वेना–भिमन्यमान इत्यर्थः। हस्तेन प्राप्यैर्हस्तावचेयैः स्तबकैर्गुच्छैर्नमितः। 'स्याद गुच्छकस्तु स्तबकः' इत्यमरः। बालो मन्दारवृक्षोऽस्तीति शेषः।।14।।

अवतरणिका— इसप्रकार विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अलका नगरी में स्थित, अपने घर की दूसरी विशेषताओं में से वहाँ स्थित सुन्दर कृत्रिम बावड़ी (वापी) का वर्णन करते हुए कहता है कि–

वापी चास्मिन्मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा
हैमैश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्यनालैः।
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं सन्निकृष्टं
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः।।16।।

अन्वय— अस्मिन् मरकत–शिला–बद्ध–सोपान–मार्गा च स्निग्ध–वैदूर्य–नालैः हैमैः विकच–कमलैः छन्ना वापी (अस्ति), यस्याः तोये कृत–

वसतयः हंसाः त्वाम् प्रेक्ष्य अपि व्यपगत–शुचः सन्निकृष्टम् मानसम् न अध्यास्यन्ति।।16।।

अनुवाद– इस मेरे घर में मरकतमणि की शिलाओं से बनी हुई, सीढ़ियों के मार्ग वाली, चिकने बिल्लौर मणि के नाल वाले, स्वर्णमय विकसित कमलों से आच्छादित 'बावड़ी' है, जिसके जल में निवास करने वाले, हंस तुम्हें देखकर भी दुःख न मानते हुए, पास में स्थित मानसरोवर को जाने के लिए उत्कण्ठित नहीं होंगे।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में कवि ने यक्ष के घर में स्थित कृत्रिम बावड़ी की प्रमुखरूप से तीन विशेषताओं का उल्लेख किया है। तदनुसार– **प्रथम,** तो इसमें प्रवेश करने के लिए सीढ़ियों को मरकत मणि की बड़ी–बड़ी शिलाओं द्वारा बनाया गया है। **द्वितीय,** इस बावड़ी में स्वर्णमय कमलों का इतनी अधिक संख्या में निर्माण किया गया है, कि उनसे यह ढ़की हुई प्रतीत होती है। साथ ही, इन कमलों की नालों को चिकने बिल्लौर (वैदूर्य) मणि द्वारा निर्मित किया गया है।

इसके अतिरिक्त इस बावड़ी की **तीसरी** और महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि इसमें विहार करने वाले हंस, तुम्हें अर्थात् मेघ को देखकर भी किसी प्रकार के दुःख की अनुभूति नहीं करेंगे तथा मानसरोवर के अत्यधिक समीप स्थित होने पर भी, वहाँ जाने के लिए उत्कण्ठित नहीं होंगे, अपितु इसी बावड़ी में विहरण–क्रिया का आनन्द उठाते रहेंगे।

विशेष–(i) यक्ष के घर में स्थित बावड़ी के मनोरम चित्रण से उसके समृद्धिशाली एवं ऐश्वर्य सम्पन्न होने की अभिव्यक्ति हो रही है।

(ii) प्राचीनकाल में धनाढ़्य लोगों के घरों में इसप्रकार की बावड़ी का निर्माण कराया जाता था, जिसका स्थान वर्तमान समय में 'स्वीमिंग पूल' ने ले लिया है।

(iii) हंसों की विशेषता है कि वे वर्षाऋतु के आने पर मानसरोवर के लिए प्रस्थान कर देते हैं, किन्तु यहाँ पर इसप्रकार की

सम्भावना से इन्कार किया गया है, क्योंकि वर्षा के आने पर भी इस बावड़ी का जल स्वच्छ ही रहता है, गन्दा नहीं होता है।

(iv) प्रस्तुत श्लोक में मेघ के दर्शनरूप कारण के उपस्थित होने पर भी, हंसों के मानसरोवर जाने रूप फल की उत्पत्ति का कथन न करने से विशेषोक्ति अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(v) यक्ष के घर में स्थित बावड़ी के अलौकिक ऐश्वर्य का वर्णन करने के कारण यहाँ उदात्त अलंकार भी प्रयुक्त हुआ है।

(vi) कृत्रिम बावड़ी के निर्माण से तात्कालिक ऐश्वर्यपूर्ण धनाढ्य समाज का चित्र अत्यधिक मनोहारी बन पड़ा है।

(vii) हंसों के मानसरोवर न जाने का उल्लेख करने के कारण महाकवि का प्राणिविज्ञान विषयक ज्ञान भी अभिव्यंजित हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **हैमैः**– हेम्नो विकाराः, इति, तैः।

(ii) **मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गाः**– मरकतानां शिलाः, सोपानानां मार्गः, मरकतशिलाभिः बद्धः सोपानमार्गः, यस्याः सा, बहुव्रीहि समास।

(iii) **स्निग्धवैदूर्यनालैः**– स्निग्धानि वैदूर्याणि नालानि येषां तानि तैः, बहुव्रीहि, विदूरात् प्रभवन्ति, इति, वैदूर्याणां विकाराः इति वैदूर्याणि।

(iv) **विकचकमलैः**– विकचानि च तानि कमलानि, कर्मधारय।

(v) **व्यपगतशुचः**– विशेषेण अपगता इति व्यपगता, तादृशी शुच येषां ते बहुव्रीहि, **व्यपगतः**– वि+अप्+ √गम्+क्त।

(vi) **संनिकृष्टम्**– सं+नि+ √कृष्+क्त, **प्रेक्ष्य**– प्र+ √ईक्ष्+ल्यप्।

(vii) **अध्यास्यन्ति**– आङ्+ √ध्यै+लट्, प्रथम पुरुष, एकवचन।

संजीवनी टीका– **वापीति। अस्मिन्मदीयागारे मरकतशिलाभिर्बद्धः सोपानमार्गो यस्याः सा तथोक्ता। विदूरे भवा वैदूर्याः। 'विदूरांव्यः' व्य प्रत्ययः। वैदूर्याणां विकारा वैदूर्याणि। विकारार्थेऽण्प्रत्ययः। स्निग्धानि वैदूर्याणि नालानि येषां तैर्हैमैः सौवर्णैर्विकचकमलैश्छन्ना वापी च। अस्तीति शेषः। यस्या वाप्यस्तोये कृतवसतयः कृतनिवासा हंसास्त्वां मेघं प्रेक्ष्यापि व्यपगतशुचो वर्षाकालेऽपि व्यपगतकलुषजलत्वाद्वीतदुःखाः सन्तः**

संनिकृष्टं संनिहितम्! सुगममपीत्यर्थः। मानसं मानससरो नाध्यास्यन्ति नोत्कण्ठया स्मरिष्यन्ति। 'आध्यानमुत्कण्ठापूर्वकं स्मरणम्' इति काशिकायाम्।।16।।

अवतरणिका– इसप्रकार विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अलका नगरी में स्थित अपने घर का ही वर्णन करते हुए पुनः कहता है कि–

तस्यास्तीरे रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः
क्रीड़ाशैलः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः
मद्गेहिन्याः प्रिय इति सखे! चेतसा कातरेण
प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि।।17।।

अन्वय– तस्याः तीरे पेशलैः इन्द्र–नीलैः रचित–शिखरः, कनक–कदली–वेष्टन–प्रेक्षणीयः क्रीड़ा–शैलः (अस्ति), सखे! उपान्त–स्फुरित–तडितम् त्वाम् प्रेक्ष्य, मद्गेहिन्याः प्रियः, इति कातरेण चेतसा, तम् एव स्मरामि।।17।।

अनुवाद– उस बावड़ी के तट पर सुन्दर इन्द्रनील मणियों से बनायी गयी चोटियों वाला, सुनहरे केलों से घिरा होने से दर्शनीय क्रीड़ा–पर्वत है, हे मित्र! किनारों पर चमकती हुई बिजली वाले, तुम्हें देखकर, 'यह मेरी पत्नी का प्रिय है', इसलिए व्याकुल मन से उसी क्रीड़ा–पर्वत को मैं स्मरण करता हूँ।

'चन्द्रिका'– यक्ष के घर में स्थित इसी बावड़ी के किनारे पर अत्यधिक आकर्षक इन्द्रनील मणियों द्वारा बनायी गयी चोटियों वाला, स्वर्ण द्वारा निर्मित केले के वृक्षों से चारों ओर से घिरा हुआ, होने के कारण अत्यन्त दर्शनीय क्रीड़ापर्वत भी विद्यमान है। इसी क्रीड़ापर्वत को स्मरण करके यक्ष किंचित् भावुक होते हुए कहता है कि–

हे मित्र! किनारों पर चमकती हुई बिजली वाले, तुम्हें देखकर 'यह मेरी पत्नी का प्रिय है' इसलिए मैं उसी क्रीड़ा–पर्वत को अत्यधिक व्याकुल मन से स्मरण कर रहा हूँ। कहने का तात्पर्य है कि यह क्रीड़ा–पर्वत वस्तुतः यक्ष की पत्नी को अत्यन्त प्रिय था, इसीलिए यक्ष

को भी वह अच्छा लगता था। प्रिया की स्मृति के साथ क्रीड़ा–पर्वत का स्मरण आना, स्वाभाविक ही है। इसके अतिरिक्त मेघ एवं क्रीड़ा-शैल में पर्याप्त साम्य भी है।

जैसे– दोनों ही ऊँचे हैं, दोनों स्वाभाविकरूप से नीलवर्ण हैं। मेघ के किनारों पर विद्युत् चमक रही है, तो क्रीड़ापर्वत के चारों ओर स्वर्णिम केलों का कृत्रिम निकुंज है। इसी साम्य के कारण मेघ को देखकर, यहाँ यक्ष को अपनी प्रियतमा के प्रिय क्रीड़ा–पर्वत का स्मरण हो आया है, जिसे वह अत्यन्त व्याकुल मन से याद कर रहा है।

विशेष–(i) अलकापुरी के वर्णन प्रसंग में महाकवि ने मणियों का विस्तार से वर्णन किया है, पूर्व में मरकत मणि तथा वैदूर्यमणि और प्रस्तुत श्लोक में इन्द्रनील मणि, इससे उनका मणिविषयक गहन ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) इन्द्रनील मणि से यहाँ नीलम नामक मणि से अभिप्राय ग्रहण करना चाहिए। संस्कृत साहित्य में इसका अत्यधिक वर्णन मिलता है। इसकी उपलब्धता राजस्थान की पहाड़ियों में मानी गयी है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक में प्रयुक्त 'कातरेण' पद का मल्लिनाथ ने रसाकर को प्रामाणिक मानते हुए 'आनन्दमिश्रित भय' अर्थ किया है।

(iv) यह शाश्वत सत्य है कि साम्य के आधार पर किसी वस्तु की स्मृति व्यक्ति को सहज ही हो आती है, जो प्रिय होने पर उसे बैचेन भी करती है। यही कारण है कि यहाँ क्रीड़ापर्वत की स्मृति ने यक्ष को व्याकुल भी किया है।

(v) उपर्युक्त श्लोक में मेघ का इन्द्रनील मणि से तथा विद्युत का स्वर्ण कदली से सादृश्य होने से स्मृति आने के कारण स्मरण अलंकार[1] का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **प्रेक्षणीयः**– प्र+ √ईक्ष्+अनीयर्।

(ii) **रचितशिखरः**– रचितानि शिखराणि यस्य सः, बहुव्रीहि।

---

1 . यथाऽनुभवमर्थस्य दृष्टे तत्सदृशे स्मृतिः, स्मरणम्।। काव्यप्रकाश–10 / 199।

(iii) **मद्गेहिन्याः–** मम गेहिनी, तस्याः, गेहम् अस्याः अस्ति, इति, सा तस्याः, गेह+इनि+ङीप्, गेहिनी। मेरी पत्नी की।

(iv) **कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः–** कनकस्य कदल्याः, तासां वेष्टनं तेन प्रेक्षणीयः, तृ. तत्पु.। स्वर्णकदली से आवृत्त होने से दर्शनीय।

(v)उपान्तस्फुरिततडितम्–उपान्तेषु स्फुरिताः तडिताः,यस्याः तम्।

संजीवनी टीका– तस्या इति। तस्या वाप्यास्तीरे पेशलैश्चारुभिः, 'चारौ दक्षे च पेशलः' इत्यमरः। इन्द्रनीलैः रचितशिखरः। इन्द्रनीलमणि–मयशिखर इत्यर्थः। कनककदलीनां वेष्टनेन परिधिना प्रेक्षणीयो दर्शनीयः क्रीड़ाशैलः। अस्तीति शेषः। हे सखे! उपान्तेषु प्रान्तेषु स्फुरितास्तडितो यस्य तत्तथोक्तम्। इदं विशेषणं कदलीसाम्यार्थमुक्तम्। इन्द्रनीलसाम्यं तु मेघस्य स्वाभाविकमित्यनेन सूच्यते। त्वां प्रेक्ष्य मदगेहिन्याः प्रिय इति हेतोः। तस्य शैलस्यं मद्गृहिणीप्रियत्वाद्धेतोरित्यर्थः। कातरेण भीतेन चेतसा। भयं चात्र सानन्दमेव। 'वस्तूनामनुभूतानां तुल्यश्रवणदर्शनात्। श्रवणात् कीर्तनाद्वापि सानन्दा भीर्यथा भवेत्' इति रसाकरे दर्शनात्।

तमेव क्रीड़ाशैलमेव स्मरामि। एककारो विषयान्तरव्यवच्छेदार्थः। सदृशवस्त्वनुभवादिष्टार्थस्मृतिर्जायत इत्यर्थः। अतएवात्र स्मरणाख्यो ऽलंकारः। तदुक्तम्–'सदृशानुभवादन्यस्मृतिः स्मरणमुच्यते' इति। निरुक्तकारस्तु 'त्वां तमेव स्मरामि' इति योजयित्वा मेघे शैलत्वारोप–माचष्टे तदसंगतम्। अद्र्याकारारोपस्य पुरोवर्तिन्यनुभवात्मकत्वेन स्मरति शब्दप्रयोगायोगात् शैलत्वभावनास्मृतिरित्यपि नोपपद्यते। भावनायाः स्मृतित्वे प्रमाणाभावदनुभवायोगात्सादृश्योपन्यासस्य वैयर्थ्याच्च विसदृशे ऽपि शालग्रामे हरिभावनादर्शनादिति।।17।।

अवतरणिका– इसप्रकार अपने घर में स्थित क्रीड़ाशैल के पास के अशोक एवं बकुल के वृक्षों का उल्लेख करते हुए, विरही यक्ष अपने मित्र मेघ से पुनः कहता है कि–

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः
प्रत्यासन्नौ कुरबकवृतेर्माधवीमण्डपस्य।

एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी
कांक्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनाऽस्याः।।18।।

अन्वय– अत्र कुरबक–वृतेः माधवी–मण्डपस्य प्रत्यासन्नौ चल-किसलयः रक्त–अशोकः कान्तः केसरः च, (स्तः, तयोः) एकः मया सह तव सख्याः, वाम–पाद–अभिलाषी, अन्यः दोहद–छद्मना, अस्याः वदन-मदिराम् कांक्षति ।।18।।

अनुवाद– इस क्रीड़ापर्वत पर 'कुरबक' की बाड़ वाले, माधवी लता के कुँजों के अत्यधिक निकट, चंचल पल्लवों वाला, लाल अशोक एवं सुन्दर बकुल का वृक्ष है, उनमें से एक मेरे साथ तुम्हारी सखी (भाभी) के बाएँ पैर के प्रहार का इच्छुक है तथा दूसरा बकुल का वृक्ष दोहद के व्याज से उस मेरी प्रिया के मुख की मदिरा को चाहता है।

'चन्द्रिका'– बावड़ी के समीप स्थित इस क्रीड़ाशैल के ऊपर कुरबक के पुष्पों की बाड़ वाले, लताओं के कुँज के अत्यन्त पास में स्थित चंचल कोमल पत्तों वाला, लाल अशोक एवं दूसरा सुन्दर मौलसरी का वृक्ष है, जिनमें से एक अर्थात् अशोक वृक्ष तुम्हारी सखी के बाएँ पैर के प्रहार का इच्छुक है अर्थात् उसके पादप्रहार से ही यह पुष्पित होता है, जबकि दूसरा सुन्दर बकुल का वृक्ष 'दोहद' के बहाने उसी मेरी प्रियतमा के मुख की मदिरा की कुल्ली की अभिलाषा करने वाला है।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने प्राचीन कविप्रसिद्धि[1] का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार लाल अशोक का वृक्ष सुन्दरियों के बाएँ पैर के प्रहार से विकसित होता है तथा बकुल का वृक्ष उनके मुख की मदिरा की कुल्लियों से पुष्पित होता है। इस क्रिया को 'दोहद' कहते हैं।

(ii) महाकवि का वनस्पति विज्ञान विषयक गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है तथा यहाँ कवि प्रसिद्धि को भी मान्य किया है।

---

[1]. पादाघातादशोको विकसित बकुलं योषितामास्यमद्यैः। साहित्यदर्पण– 7/24 ।

(iii) कवि प्रसिद्धि के अनुसार वसन्तऋतु में विकसित होने वाला, गुलाबी रंग का कुरबक नामक वृक्ष सुन्दर युवतियों के आलिंगन से ही खिलता है।

(iv) इसीप्रकार प्रकृति का मानवीकरण करते हुए मानव एवं प्रकृति के अन्तरंग सम्बन्धों को भी स्थापित किया गया है।

(v) क्रीड़ाशैल पर ही माधवी लता के कुँजों की बात भी यहाँ की गयी है, जो वस्तुतः वसन्तऋतु में उत्पन्न होती है। इसी को आसत्ती या अतिमुक्त लता भी कहते हैं।

(vi) 'चलकिसलय' पद का यहाँ सप्रयोजन प्रयोग हुआ है, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि यह अशोक, यक्ष की प्रियतमा को चंचल पल्लवरूपी हाथों द्वारा पादप्रहार के लिए आमन्त्रित कर रहा है।

(vii) प्रेमी जनों द्वारा घरों में लगाया जाने वाला, 'रक्ताशोक' वस्तुतः कामोद्दीपक माना गया है, इसलिए इसका भी कवि ने यहाँ साभिप्राय प्रयोग किया है।

(viii) ऐसी मान्यता है कि अशोक वृक्ष के दो प्रकारों में श्वेत पुष्प वाला सिद्धि–प्राप्ति के लिए तथा लाल पुष्प वाला कामोद्दीपन के लिए होता है, जिसे लोग अपने घरों में लगाते हैं।

(ix) 'दोहद' वस्तुतः गर्भिणी स्त्री की वस्तु आदि खाने की अभिलाषा को कहते हैं, किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में उन क्रियाओं को भी 'दोहद' संज्ञा प्रदान की गयी है, जिससे वृक्षादि पुष्पित होते हैं। मल्लिनाथ ने इसे **द्रव्य–क्रिया** कहा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i)**कान्तः**– √कमु कान्तौ+क्त, सुन्दर।

(ii) **कुरबकवृत्तेः**–कुरबकाः एव वृत्तिः, यस्य सः, तस्य, बहुव्रीहि।

(iii) **कांक्षति**– √काङ्क्ष्+लट्+प्रथमपुरुष, एकवचन, चाहता है।

(iv) **माधवीमण्डपस्य**– माधवीनां मण्डपः, तस्य, षष्ठी तत्पुरुष।

(v) **प्रत्यासनौ**– प्रति+आङ्+ √सद्+क्त, प्रथमा वि., द्विवचन।

(vi) **चलकिसलयः**– चलानि किसलयानि यस्य सः, बहुव्रीहि।

(vii) **वामपादाभिलाषी**– वामः चासौ पादः, तमभिलषति, इति।

(viii) **अभिलाषी**– अभि+ √लष्+णिनि, चाहने वाला।

(ix) **दोहदच्छद्मना**– दोहदस्य छद्मः, तेन षष्ठी तत्पुरुष।

(x) **वदनमदिराम्**– वदनस्य मदिरा, षष्ठी तत्पुरुष, ताम्।

संजीवनी टीका– रक्तेति। अत्र क्रीड़ाशैले कुरबका एव वृत्तिरावरणं यस्य तस्य। मधौ वसन्ते भवा माध्यव्यस्तासां मण्डपस्तस्यातिमुक्तलतागृहस्य। 'अतिमुक्तः पुण्ड्रकः स्यसाद्वासन्ती माधवी लता' इत्यमरः। प्रत्यासनौ सन्निकृष्टौ चलकिसलयश्चंचलपल्लवः। अनेन वृक्षस्य पादताडनेषु प्रांजलित्वं व्यज्यते। रक्ताशोकः। रक्तविशेषणं तस्य स्मरोद्दीपकत्वादुक्तम्। 'प्रसूनकैरशोकस्तु श्वेतो रक्त इति द्विधा। बहु सिद्धिकरः श्वेतो रक्तोत्र स्मरवर्धनः' इत्यशोककल्पे दर्शनात्। कान्तः कमनीयः केसरो वकुलश्च। 'अथ केसरे। ककुलो बकुलः' इत्यमरः। स्त इति शेषः। एकस्ययोरन्यतरः। प्राथमिकत्वादशोक इत्यर्थः। मया सह तव सख्याः। स्वप्रियाया इत्यर्थः। वामपादाभिलाषी।

दोहदच्छद्मनेत्यत्रापि सम्बन्धनीयम्। स चाहं च। अभिलाषिणावित्यर्थः। अन्यः केसरः। दोहदं वृक्षादीनां प्रसवकारणं संस्कारद्रव्यम्। 'तरुगुल्मलतादीनामकाले कुशलैः कृतम्। पुष्पाद्युत्पादकं द्रव्यं दोहदं स्यात्तु तत्क्रिया' इति शब्दार्णवः। तस्य छद्मना व्याजेन। 'कपटोऽस्त्री व्यादम्भोपधयश्छद्मकैतवे' इत्यमरः। अस्यास्तव संख्या वदनमदिरां गण्डूषमद्यं कांक्षति। मया सहेत्यत्रापि सम्बन्धनीयम्। अशोकबकुलयोः स्त्रीपादताडनगण्डूषमदिरे दोहदमिति प्रसिद्धिः। 'स्त्रीणां स्पर्शात्प्रियंगुर्विकसति बकुलः सीधुगण्डूषसेकात्पादाघातादशोकस्तिलककुरबकौ वीक्षणालिंगनाभ्याम्। मन्दारो नर्मवाक्यात् पटुमृदुसहनाच्चम्पको वक्त्रवाताच्चूतो गीतान्नमेरु विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकारः।।18।।

अवतरणिका– इसप्रकार अपने घर का वर्णन करने के क्रम में ही विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से इन्हीं दोनों वृक्षों के बीच में बने हुए, मोर के बैठने के छतरीनुमा स्थान के विषय में कहता है कि–

तन्मध्ये च स्फटिकफलका कांचनी वासयष्टि–
र्मूले बद्धा मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः।
तालैः शिंजावलयसुभगैर्नर्तितः कान्तया मे
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः।।19।।

अन्वय– तत् मध्ये च अनति–प्रौढ़–वंश–प्रकाशैः मणिभिः, मूले बद्धा, स्फटिक–फलका, कांचनी वास–यष्टिः, शिंजा–वलय–सुभगैः, तालैः मे कान्तया नर्तितः, वः सुहृद्, नीलकण्ठः दिवस–विगमे याम् अध्यास्ते।।19।।

अनुवाद– **उन दोनों वृक्षों के बीच में कोमल बाँसों के समान, कान्ति वाली, मणियों से जड़ में बँधा हुआ, बैठने का स्फटिक मणि के फलक वाला, स्वर्णमय छतरी का स्थान है, जिराके ऊपर झनझनाते हुए कंगनों से मनोहर तालियों से, मेरी प्रियतमा द्वारा नचाया गया, तुम्हारा मित्र मोर दिन के समाप्त होने पर बैठता है।**

'चन्द्रिका'– यक्ष कहता है कि उक्त दोनों, रक्ताशोक एवं बकुल वृक्षों के बीच में एक स्वर्णमय छतरी जैसा स्थान भी बनाया गया है, जिसके ऊपर मेरी प्रियतमा द्वारा, छन–छन की ध्वनि करते हुए कंगनों वाली मनोरम तालियों से नृत्य कराया गया, तुम्हारा मित्र मोर रोज़ाना, दिन के समाप्त होने पर विश्राम के लिए बैठता है।

उस स्वर्णिम छतरी की विशेषता है कि वह इसप्रकार की मणियों से जड़ में बाँधकर बनायी गयी है, जिनकी कान्ति कोमल बाँसों के समान हरी है अर्थात् ये मरकत मणियाँ हैं तथा उसका फलक स्फटिकमणि के द्वारा निर्मित है और इसके छाते को स्वर्ण द्वारा बनाया गया है।

विशेष–(i) यक्ष के अभूतपूर्व ऐश्वर्य की प्रतीति हो रही है।

(ii) तात्कालिक सामाजिक चित्रण भी हुआ है, क्योंकि कवि के समय में घरों में मोरों को पालने की प्रथा थी और स्त्रियाँ उन्हें तालियाँ बजाकर नृत्य कराते हुए अपना मनोरंजन करती थीं।

(iii) महाकवि ने प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करने का अद्भुत प्रयास किया है, उनका गहन प्रकृति प्रेम भी अभिव्यक्त हुआ है।

(iv) 'वासयष्टि' पद से यहाँ धूप एवं वर्षा को रोकने के लिए छतरी जैसे किसी बैठने के स्थान की कल्पना की जा सकती है, जिसका निर्माण स्वर्ण से किया गया था।

(v) इस वासयष्टि की दृढ़ता के लिए इसकी जड़ में मरकत मणियों को लगाया गया था और फलक का निर्माण शीतल होने के कारण स्फटिक मणि द्वारा किया गया था।

(vi) यहाँ पर मोर को मेघ का मित्र कहा गया है, क्योंकि मेघों के उमड़ने–घुमड़ने पर मोर आनन्दविभोर होकर नृत्य करने लगते हैं, जिससे कवि का प्राणिविज्ञान विषयक ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(vii) यक्ष के घर के ऐश्वर्य का वर्णन होने से उदात्तालंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(viii) इसीप्रकार 'अनतिप्रौढ़वंशप्रकाशैः' पद में लुप्तोपमालंकार का प्रयोग भी हुआ है।

(ix) 'शिंजावलय' पद से संगीतात्मकता की प्रतीति हो रही है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **तन्मध्ये**– तयोः मध्यं, तस्मिन्,

(ii) **वासयष्टिः**– वासस्य यष्टिः, **बद्धा**– √बन्ध्+क्त+टाप्।

(iii) **नीलकण्ठः**– नीलः कण्ठः यस्य सः, बहुव्रीहि समास।

(iv) **दिवसविगमे**– दिवसस्य विगमः, तस्मिन्, वि+ √गम्+अप्।

(v) **अध्यास्ते**– अधि+ √आस्+लट्, आत्मने, प्र. पु., एकवचन।

(vi) **शिंजा**– √शिंज्+अङ्+टाप्, **नर्तित**– √नृत्+णिच्+क्त।

(vii) **अनतिप्रौढ़वंशप्रकाशैः**– न अतिप्रौढ़ाः इति, अनतिप्रौढ़ाश्च ते वंशाः, तेषां प्रकाशः इव प्रकाशो येषां ते, तैः बहुव्रीहि।

(viii) **स्फटिकफलका**– स्फटिकं फलकं यस्याः सा, बहुव्रीहि।

(ix) **शिंजावलयसुभगैः**– शिंजाप्रधानानि वलयानि इति, शिंजा–वलयैः सुभगाः तैः, तृतीया तत्पु., छन–छन करते हुए कंगनों से सुन्दर।

संजीवनी टीका– तन्मध्य इति। किं चेति चार्थः। तन्मध्ये तयोर्वृक्षोर्मध्येऽनतिप्रौढानामनतिकठोराणां वंशानां प्रकाश इव प्रकाशो येषां तैस्तरुणवेणुसच्छायैर्मणिभिर्मरकतशिलाभिर्मूले बद्धा। कृतवेदिकेत्यर्थः। स्फटिकं स्फटिकमयं फलकं पीठं यस्याः सा कांचनस्य विकारः कांचनी सौवर्णी वासयष्टिर्निवासदण्डः अस्तीति शेषः। शिंजा भूषणध्वनिः 'भूषणानां तु शिंजितम्' इत्यमरः। भिड़ादित्वादङ्। शिंजिधातुरयं ताल–व्यादिर्न तु दन्त्यादिः। शिंजाप्राधानानि वलयानि तैः सुलभा रम्यास्तै–स्तालैः करतलवासनैर्मे मम कान्तया नर्तितो वो युष्माकं सुहृत्सखा नीलकण्ठो मयूरः। 'मयूरो बर्हिणो बर्ही नीलकण्ठो भुजंगभुक्' इत्यमरः।

दिवसविगमे सायंकाले यां यष्टिकामेऽध्यास्ते। यष्ट्यामास्त इत्यर्थः। 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इति कर्मत्वाद् द्वितीया। 'तत्रागारम्' इत्यारम्भ पंचसु श्लोकेषु समृद्धवस्तुवर्णनादुदात्तालंकारः। तदुक्तम्– 'तदुदात्तं भवेद्यत्र समृद्धं वस्तु वर्ण्यते' इति। न चैषा स्वभावोक्तिर्भाविकं वा, तत्र यथास्थितवस्तुवर्णनात्। अत्र तु 'कविप्रतिभोत्थापितसम्भाव्य–मानैश्चर्यशालिवस्तुवर्णनादारोपितविषयत्वमिति ताभ्यामस्य भेदः इत्य–लंकारसर्वस्वकारः।।19।।

अवतरणिका– इसप्रकार अपने घर की पहचान बताने के क्रम में ही विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से फिर से कहता है कि–

एभिः साधो! हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथा
द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शंखपद्मौ च दृष्ट्वा।
क्षामच्छायं भवनमधुना मद्वियोगेन नूनं
सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम्।।20।

अन्वय– हे साधो! हृदय–निहितैः एभिः लक्षणैः द्वार–उपान्ते लिखित–वपुषौ, शंख–पद्मौ च दृष्ट्वा, नूनम् अधुना मद् वियोगेन क्षाम–छायम् भवनम् लक्षयेथाः, सूर्यापाये कमलम् स्वाम् अभिख्याम् न पुष्यति खलु।।20।।

अनुवाद– हे सज्जन मेघ! हृदय में धारण किए गए, इन पहले बताए गए, लक्षणों से और द्वार के पार्श्वभागों में चित्रित आकृति वाली, 'शंख' एवं 'पद्म' निधियों को देखकर, तुम मेरे वियोग के कारण नष्ट हुई शोभा वाले, मेरे घर को अवश्य पहचान लोगे, क्योंकि सूर्य के अस्त होने पर, कमल भी अपनी शोभा को धारण नहीं करता है।

'चन्द्रिका'– यक्ष का अभिप्राय है कि हे मेघ! अपने घर के सम्बन्ध में मैंने जिन–जिन लक्षणों को तुम्हें बताया है, उन्हें तुमने निश्चय ही अपने हृदय में धारण कर लिया होगा, जिससे अलकापुरी में पहुँचने पर तुम अवश्य ही मेरे घर को पहचान लोगे, किन्तु इसी क्रम में वह उसे अपने घर की अन्य महत्त्वपूर्ण पहचान, द्वार के दोनों पार्श्वभागों में चित्रित की गयी **शंख** और **कमल** की आकृति वाली निधियों के विषय में भी कहता है।

साथ ही, यक्ष कहता है कि मेरी अनुपस्थिति में मेरे वियोग के कारण, इस घर की शोभा निश्चय ही नष्ट हो गयी होगी, इससे भी तुम्हें मेरे घर को पहचानने में कोई परेशानी नहीं होगी। इसके कारण का उल्लेख करते हुए वह कहता है कि जिसप्रकार सूर्य के अस्त होने पर कमल शोभा को धारण नहीं करता है, ठीक वैसे ही मेरे वियोग में मेरा घर भी मलिन शोभा वाला हो गया होगा, ऐसा मैं मानता हूँ।

विशेष–(i) काव्यलिंग अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(ii) महाकवि ने यक्ष के घर का भी मानवीकरण किया है।

(iii) घर के द्वार के दोनों ओर शंख एवं पद्म निधियों के चित्रण का उल्लेख करके कवि ने तात्कालिक सामाजिक मान्यताओं की ओर संकेत किया है। आज भी द्वार के दोनों ओर **स्वस्तिक चिह्न** अंकित करने का विधान हमारे समाज में प्रायः देखा जाता है।

(iv)कवि का वास्तुविज्ञान विषयक ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(v) यहाँ प्रयुक्त 'साधो' पद से मेघ की सज्जनता एवं निपुणता[1] दोनों ही गुणों की अभिव्यक्ति हो रही है। इससे मेघ का व्यक्तित्व भी प्रदर्शित हुआ है, क्योंकि कवि पूर्वमेघ में इसे 'कुलीन' भी कह चुका है।

(vi) प्रस्तुत श्लोक में मेघ की 'सावधानता' भी अभिव्यक्त हुई है, क्योंकि उसने यक्ष द्वारा बताए गए अपने घर के सभी चिह्नों को अपने हृदय में सावधानीपूर्वक धारण कर लिया है।

(vii) भारतीय मान्यता के अनुसार शंख और कमल में 'श्री' का वास होने से दोनों को ही मांगलिक कहा गया है।

(viii) मल्लिनाथ ने शंख तथा पद्म दोनों को कुबेर की निधियों के रूप में स्वीकार किया है। निधियों की संख्या महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील एवं खर्वरूप में कुल नौ[2] मानी गयी है।

(ix) सूर्य की अनुपस्थिति में जैसे कमल विकसित नहीं होता है, वैसे ही अपने स्वामी यक्ष के वियोग में उसका घर भी निश्चय ही मलिन कान्ति वाला हो गया होगा, ऐसा अभिप्राय ग्रहण करने से दृष्टान्त अलंकार का सुन्दर प्रयोग दर्शनीय है।

(x) 'द्वारोपान्ते' पद में द्विवचन की विवक्षा को ही ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि एक वचन वस्तुतः छन्द की दृष्टि से प्रयुक्त हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **लक्षणैः**– √लक्ष्+ल्युट्, तैः।

(ii) **हृदयनिहितैः**– हृदये निहितानि तैः, नि+√धा+क्त, निहित।

(iii) **द्वारोपान्ते**– द्वारयोः उपान्तः, तस्मिन्, द्वार के दोनों ओर।

(iv) **लिखितवपुषौ**– लिखिते वपुषां ययोः तौ, बहुव्रीहि।

(v) **शंखपद्मौ**– शंखश्च पद्मश्च, तौ, द्वन्द्व समास।

---

[1]. साध्नोति परकार्याणि इति साधुः।

[2]. महापद्मश्च पद्मश्च शंखो मकरकच्छपौ।
मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधियो नव।।

(vi) **क्षामच्छायम्**– क्षामा छाया यस्य तत्, √क्षै+क्त+टाप्।

(vii) **लक्षयेथाः**– √लक्ष्+विधिलिङ्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(viii) **पुष्यति**– √पुष्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, बढ़ाता है।

(ix) **सूर्यापाये**– सूर्यस्य अपायः, तस्मिन्, षष्ठी तत्पुरुष।

(x) **अभिख्याम्**– अभि+ √ख्या+अङ्+टाप्, द्वितीया, एकवचन।

संजीवनी टीका– एभिरिति। हे साधो! निपुण! 'साधु समर्थो निपुणो वा' इति काशिकायाम्। ह दयनिहितैः अविस्मृतैरित्यर्थः। एभिः पूर्वोक्तैर्लक्षणैस्तोरणादिभिरभिज्ञानैर्द्वारोपान्ते। एकवचनमविवक्षितम्। द्वार-पार्श्वयोरित्यर्थः। लिखिते वपुषी आकृती ययोस्तौ तथोक्तौ शंखपद्मौ नाम निधिविशेषौ। 'निधिर्ना शेवधिर्भेदाः पद्मशंखादयो निधेः' इत्यमरः। दृष्ट्वा च नूनं सत्यमधुनेदानीम्। 'अधुना' इति निपातः। मद्वियोगेन मम प्रवासेन क्षामच्छायं मन्दच्छायमुत्सवोपरमात् क्षीणकान्ति भवनं मद्गृहं लक्षयेथा निश्चिनुयाः, तथाहि, सूर्यापाते सति कमलं पद्मं स्वामात्मीयामभिख्यां शोभाम् 'अभिख्या नामशोभयोः' इत्यमरः। न पुष्यति नोपचिनोति खलु। सूर्यविरहितं पद्ममिव पतिविरहितं गृहं न शोभत इत्यर्थः।।20।।

अवतरणिका– इसप्रकार अपने घर की पहचान का वर्णन करने के बाद, विरही यक्ष अपने मित्र मेघ से यहाँ स्थित क्रीड़ापर्वत की चोटी पर बैठकर, अपनी मद्दिम कान्तिरूपी बिजली को घर के भीतर डालने का परामर्श देते हुए कहता है कि–

गत्वा सद्यः कलभतनुतां शीघ्रसंपातहेतोः
क्रीड़ाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णः।
अर्हस्यन्तर्भवनपतितां कर्तुमल्पाल्पभासं
खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम्।।21।।

अन्वय– शीघ्र–संपात–हेतोः सद्यः कलभ–तनुताम् गत्वा, प्रथम–कथिते रम्य–सानौ क्रीड़ा–शैले, निषण्णः (त्वम्) अल्प–अल्प–भासम् खद्योत–आली विलसित–निभाम् विद्युत्–उन्मेष–दृष्टिम् अन्तर्भवन–पतिताम् कर्तुम् अर्हसि ।।21।।

अनुवाद– हे मेघ! शीघ्र प्रवेश करने के लिए तुम, तत्काल हाथी के बच्चे के समान छोटे शरीर को प्राप्त करके, पूर्व में कहे गए, सुन्दर शिखरों वाले, क्रीड़ा–पर्वत पर बैठे हुए, अपने मन्द–मन्द प्रकाश वाली, जुगनुओं की पंक्ति के समान कान्ति वाली, विद्युत् की चमकरूपी अपनी दृष्टि को भवन के भीतर डालने में समर्थ हो।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में कवि ने मेघ को तीन बातों के विषय में परामर्श दिया है। **प्रथम** तो तुम अपने विशाल आकार का परित्याग करके, हाथी के बच्चे के समान छोटे आकार को धारण करना, जिससे तुम्हें घर में प्रवेश करने में सुविधा रहे तथा तुम्हारे विशाल आकार से मेरी प्रिया कहीं भयभीत न हो जाए। **द्वितीय,** उसके बाद तुम मेरे घर के बाहर स्थित क्रीड़ाशैल के मनोरम शिखर पर विराजमान होना, क्योंकि यहाँ पर स्थित होकर तुम मेरे घर में अपनी दृष्टि डालकर, मेरे विरह के कारण प्रिया की दयनीय स्थिति को सरलता से देख सकोगे। **तृतीय,** इस अवसर पर तुम्हें चकाचौंध करने वाली, तीव्र प्रकाशयुक्त विद्युत् को प्रकाशित नहीं करना है, अपितु जुगनुओं की पंक्ति के मद्दिम प्रकाश के समान, मन्द–मन्द बिजलीरूपी अपने नेत्रों से ही मेरे घर में विद्यमान मेरी प्रिया को देखना है।

विशेष–(i) महाकवि की सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टि अभिव्यक्त हुई है, क्योंकि प्रस्तुत सत्परामर्श में उनके द्वारा छोटी से छोटी बात का भी विशेषरूप से ध्यान रखा गया है।

(ii) हाथी के छोटे बच्चे (कलभ) के आकार को धारण करने का उल्लेख कवि ने साभिप्राय किया है, क्योंकि ऐसा करने से यक्षिणी प्रथम तो भयभीत नहीं होगी और दूसरे बच्चे तो निर्विघ्नरूप से घर में प्रवेश कर ही सकते हैं, उन्हें कोई रोकता टोकता भी नहीं है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक में 'कलभतनुताम्' में लुप्तोपमा 'खद्योतालीविलसितनिभाम्' पद में उपमा एवं 'विद्युदुन्मेषदृष्टिम्' शब्द में रूपक अलंकार का सुन्दर तथा स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।

(iv) इसके अतिरिक्त उक्त तीनों अलंकारों का अंगांगिभाव होने से संकर अलंकार भी दर्शनीय है।

(v) इसीप्रकार जुगनुओं के मद्दिम प्रकाश तथा हाथी के कलभ की तनुता एवं इनकी मनोरमता से परिचित होने से कवि का प्राणिविज्ञान विषयक ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **निषण्णः**– नि+ √सद्+क्त।

(ii) **कलभतनुताम्**– कलभस्य इव तनुः यस्य सः, बहुव्रीहि।

(iii) **शीघ्रसम्पातहेतोः**– शीघ्रं सम्पातः, तस्य हेतोः। ष.तत्पु.।

(iv) **विद्युदुन्मेषदृष्टिम्**– विद्युतः उन्मेषः, सा एव दृष्टिः, ताम्।

(v) **रम्यसानौ**– रम्यः सानुः यस्य सः, तस्मिन्, बहुव्रीहि।

(vi) **अल्पाल्पभासम्**– अल्पा चासौ अल्पा, अल्पाल्पाः भाः यस्याः सा, अतिशयेन अल्पप्रकाशः, इत्यर्थः, बहुव्रीहि।

(vii) **खद्योतालीविलसितनिभाम्**– खद्योतानाम् आली, तेषाम् आकाशे द्योतन्ते, इति खद्योताः, तेषाम्, खद्योतः, जुगनू, जीव विशेषः।

(viii) **अन्तर्भवनपतिताम्**– भवनस्य अन्तः, इति, तस्मिन् पतिता या दृष्टिः ताम्, अव्ययीभाव।

(ix) **अर्हसि**– √अर्ह+लट्, मध्यमपुरुष, एक वचन, समर्थ हो।

संजीवनी टीका– निजगृहनिश्चयान्तरं कृत्यमाह गत्वेति। हे मेघ! शीघ्रसम्पात एव हेतुस्तस्य। 'सम्पातः पतने वेगे प्रवेशे वेदसंविदे' इति शब्दार्णवे। सद्यः सपदि कलभस्य करिपोतस्य तनुरिव तनुर्यस्य तस्य भावस्तामल्पशरीरतां गत्वा प्राप्य प्रथमकथिते 'तस्यास्तीरे' इत्यादिना पूर्वोद्दिष्टं रम्यसानौ। निषीदनयोग्य इत्यर्थः। क्रीड़ाशैले निषण्ण उपविष्टः सन्। अल्पाल्प भाः प्रकाशो यस्यास्ताम्। 'प्रकारे गुणवचस्य' इति द्विरुक्तिः। सद्योतानामाली तस्या विलसितेन स्फुरितेन निभां समानां विद्युदुन्मेषः विद्युत्प्रकाशः स एव दृष्टिस्तां भवनस्यान्तः अन्तर्भवनं तत्र पतितां प्रविष्टां कर्तुमर्हसि, यथा कश्चित्किंचिदन्विष्यन् क्वचिदुन्नते

स्थित्वा शनैः शनैरतितरां द्राघीयसीं दृष्टिमिष्टदेशे पातयति तद्वति–त्यर्थः।।21।।

अवतरणिका– इसप्रकार क्रीड़ाशैल पर बैठकर, घर में विद्युत् रूपी मधुर दृष्टि डालने की बात करने के बाद, विरही यक्ष, मित्र मेघ से अपनी प्रियतमा के वैशिष्ट्य के विषय में कहता है कि–

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः।।22।।

अन्वय– तन्वी, श्यामा, शिखरि–दशना, पक्व–बिम्ब–अधरोष्ठी, मध्ये क्षामा, चकित–हरिणी–प्रेक्षणा, निम्न–नाभिः, श्रोणी–भारात् अलस–गमना, स्तनाभ्याम् स्तोकनम्रा, युवति–विषये धातुः आद्या सृष्टिः इव या तत्र स्यात्।।22।।

अनुवाद– दुबले अंगों वाली, नवयौवना, नुकीले दाँतों वाली, पके हुए बिम्बाफल के समान अधरोष्ठ वाली, पतली कमर वाली, डरी हुई हरिणी के समान चंचल चितवन वाली, गहरी नाभि वाली, नितम्बों के भार के कारण मन्द गति वाली, स्तनों की स्थूलता के कारण आगे की ओर थोड़ा झुकी हुई, युवतियों के सम्बन्ध में मानो विधाता की प्रथम सृष्टि, जो स्त्री वहाँ पर (मेरे घर में) हो, (उसे मेरा दूसरा प्राण ही समझना।)

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में कवि ने यक्ष के वियोग में दयनीय दशा वाली, यक्षिणी का अत्यन्त स्वाभाविक एवं हृदयद्रावक चित्रण किया है, जिसके कारण नवयौवना उसके सभी अंग दुर्बल हो गए हैं, किन्तु फिर भी सौन्दर्य के प्रतीक उसके नुकीले दाँत हैं, उसके अधरोष्ठ पके हुए बिम्बाफल के समान लाल, अतः चित्ताकर्षक हैं, उसका कटिभाग अत्यन्त तनु है, उसकी चितवन डरी हुई हरिणी के समान अत्यन्त चंचल है। उसकी नाभि अत्यधिक गहरी है, नितम्बों के

भार के कारण वह मन्द गति से चलती है और स्थूल स्तनों के कारण वह किंचित् आगे की ओर झुकी हुई है।

इसप्रकार यक्षिणी की सौन्दर्य विषयक सभी विशेषताओं का कथन करने के बाद, अन्त में यक्ष कहता है कि मेरे विचार से तो **मेरी ही दूसरी प्राणस्वरूपा** उस प्रिया को वस्तुतः विधाता ने युवतियों को बनाने के क्रम में **सर्वप्रथम** बनाया होगा, तभी तो उसका एक–एक अंग भलीप्रकार चिन्तनपूर्वक अत्यधिक आकर्षक और सुन्दर बनाया गया है।

विशेष–(i) 'श्यामा' पद यहाँ विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है। भट्टिकाव्य के टीकाकार ने इसकी व्याख्या इसप्रकार की है–

या शीते सुखोष्णासर्वांगी ग्रीष्मे या सुखशीतला।
तप्तकांचनवर्णाभा सा स्त्री श्यामेति कथ्यते। भट्टि–5/18।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने कामशास्त्रीय एवं सामुद्रिक शास्त्र की दृष्टि से सुन्दरतम यक्षिणी के प्रशंसनीय अंगों की प्रस्तुति की है।

(iii) उक्त लक्षणों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास के इस काव्य में यक्षिणी, पद्मिनी[1] नायिका है।

(iv) कामसूत्र के अनुसार सौन्दर्य की प्रतीक गहरी नाभि वाली, स्त्रियों में काम का आधिक्य[2] होता है।

(v) प्रस्तुत श्लोक में काव्यकार कालिदास अपने पूर्ववर्ती नाटककार कालिदास से प्रभावित रहे हैं, क्योंकि वहाँ भी उन्होंने अपनी नायिका शकुन्तला को विधाता की प्रथम सृष्टि बताया है।

(vi) अधर को नीचे का तथा ओष्ठ को ऊपर का ओष्ठ माना गया है। कामशास्त्र की दृष्टि के स्त्री के अधर का पान किया जाता

---

1. भवति कमलनेत्रा नासिका क्षुद्ररन्ध्रा, अविरलकुचयुग्मा चारुकेशी कृशांगी।
मृदुवचनसुशीला गीतवाद्यानुरक्ता, सकलतनुसुवेशा पद्मिनी पद्मगन्धा।।

2. नवनारीणां नाभिगाम्भीर्यान्मदनातिरेकः।

है, ओष्ठ का नहीं, किन्तु कवि ने यहाँ पर उक्त दोनों अर्थात् अधरोष्ठ को ही पके हुए बिम्बाफल के समान लाल कहा है।

(vii) वस्तुतः कवि का उद्देश्य यहाँ अधरोष्ठ की स्वाभाविक लालिमा की अधिकता बताकर, उसके सुन्दरतातिरेक को अभिव्यक्ति प्रदान की है, क्योंकि स्त्री के अधरोष्ठ का लाल होना, उसकी सुन्दरता का प्रतीक माना गया है।

(viii) इसीप्रकार स्त्री का तन्वंगी होना भी उसके सौन्दर्य एवं आकर्षण का प्रतीक माना जाता है।

(ix) नुकीले दाँतों (शिखरीदशना) वाली स्त्री को सामुद्रिक शास्त्र में सौभाग्यशालिनी माना गया है।

(x) इसीप्रकार चंचल एवं आकर्षक नेत्रों वाली स्त्री सुन्दरता की दृष्टि से प्रशंसनीय मानी गयी है, कवि ने भयभीत हरिणी के चंचल नेत्रों से उपमित करके, सहृदय को यक्षिणी के आकर्षक एवं सुन्दर नेत्रों का साक्षात् कराया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **तन्वी**– तनु+ङीष्, कृशांगी।

(ii) **शिखरिदशना**– शिखरिणः दशनाः यस्याः सा, बहुव्रीहि।

(iii) **पक्वबिम्बाधरोष्ठी**– पक्वं च तत् बिम्बम्, अधरश्चासौ ओष्ठः, पक्वबिम्बम् इव अधरौष्ठः, यस्याः सा, बहुव्रीहि।

(iv) **स्यात्**– √अस्+विधिलिङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन, होवे।

(v) **निम्ननाभिः**– निम्ना नाभिः यस्याः सा, बहुव्रीहि।

(vi) **श्रोणीभारात्**– श्रोण्याः भारः, तस्मात्, षष्ठी तत्पुरुष।

(vii) **चकितहरिणीप्रेक्षणा**– चकिता चासौ हरिणी, तस्याः प्रेक्षणमिव प्रेक्षणं, यस्याः सा, प्र+ √ईक्ष्+ल्युट्,

(viii) **स्तोकनम्रा**–स्तोकं नम्रा, √नम्+रः+टाप्, थोड़ा झुकी हुई।

(ix) **युवतिविषये**– युवतीनां विषयः, तस्मिन्, युवन्+तिः,

(x) **धातुः**– दधाति, इति धाता, तस्य, √धा+तृच्, विधाता की।

(xi) **सृष्टिः**– √सृज्+क्तिन्, निर्मिति।

संजीवनी टीका– सम्प्रति दृष्टिपातफलास्याभिधानं श्लोकद्वयेनाह– तन्वीति। तन्वी कृशांगी, न तु पीवरी। 'श्लक्ष्णं दभ्रं कृशं तनु इत्यमरः। 'वोतो गुणवचनात्' इति ङीप्। श्यामा युवतिः। 'श्यामा यौवनमध्यस्था' इत्युत्पलमालायाम्। शिखराण्येषां सन्तीति शिखरिणः कोटिमन्तः। 'शिखरं शैलवृक्षाप्रकक्षापुलककोटिषु इति विश्वः। शिखरिणो दशना दन्ता यस्याः सा। एतेनास्या भाग्यवत्त्वं पत्यायुष्करत्वं च सूच्यते। तदुक्तं सामुद्रिके–'स्निग्धाः समानरूपा सुपङ्क्तयः शिखरिणः श्लिष्टाः। दन्ता भवन्ति यासां तासां पादे जगत्सर्वम्।। 'ताम्बूलरसरक्तेऽपि स्फुटभासः समोदयाः। दन्ताः शिखरिणो यस्या दीर्घं जीवति तत्प्रियः।। इति। पक्वं परिगतं बिम्बं बिम्बिकाफलमिवाधरोष्ठो यस्याः सा 'पक्वबिम्बाधरोष्ठी'। 'शाकपार्थिवादित्वान्मध्यमपदलोपी समासः' इति वामनः। 'नासिकोदरोष्ठ–' इत्यादिना ङीष्। मध्ये क्षामा कृशोदरीत्यर्थः चकितहरिण्याः प्रेक्षणानीव प्रेक्षणानि दृष्टयो यस्याः सा तथोक्ता। एतेनास्याः पद्मिनीत्वं व्यज्यते।

तदुक्तं रतिरहस्ये पद्मिनीलक्षणप्रस्तावे– 'चकितमृगदृशाभे प्रान्तरक्ते च नेत्रे' इति। निम्नाभिर्गम्भीरनाभिः। अनेन नारीणां नाभिगाम्भीर्यान्मदनातिरेक इति कामसूत्रार्थः सूच्यते। श्रोणीभारादलसगमना मन्दगामिनी, न तु जघनदोषात्। स्तनाभ्यां स्तोकनम्रेषदवनता, न तु वपुर्दोषात्। युवतय एव विषयस्तस्मिन् युवतिविषये। युवतीरधिकृत्येत्यर्थः। धातुर्ब्रह्मण आद्या सृष्टिः प्रथमशिल्पमिव स्थितेत्युत्प्रेक्षा। प्रथमनिर्मिता युवतिरियमेवेत्यर्थः। प्रायेण शिल्पिनां प्रथमनिर्माणे प्रयत्नातिशयवशाच्छिल्पनिर्माणसौष्ठवं दृश्यत इत्याद्यविशेषणम्। 'तथा चास्मिन्प्रपंचे न कुत्राप्येवंविधं रमणीयं रमणीरत्नमस्तीति भावः। तदेवं भूता या स्त्री यत्रान्तर्भवने स्यात्। तत्र निवसेदित्यर्थः। तामित्युत्तरश्लोकेन सम्बन्धः।।22।।

अवतरणिका– इसप्रकार विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अपनी प्रियतमा के सौन्दर्य के विषय में वर्णन करने के बाद, उसकी विरहिणी कारुणिक दशा का उल्लेख करते हुए कहता है कि–

तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।
गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वाऽन्यरूपाम्।।23।

अन्वय– मयि सहचरे दूरीभूते चक्रवाकीम् इव एकाम् परिमित–कथाम्, ताम् मे द्वितीयम् जीवितम् जानीथाः, गाढोत्कण्ठाम् बालाम् गुरुषु एषु दिवसेषु गच्छत्सु, शिशिर–मथिताम् पद्मिनीम् वा अन्य–रूपाम् जाताम् मन्ये ।।23।

अनुवाद– **हे मेघ! मुझ सहचर के दूर होने पर चकवी के समान अकेली, अल्पभाषिणी, उस स्त्री को मेरा दूसरा जीवन ही समझना, प्रगाढ़ उत्कण्ठा वाली, वह युवति वियोग के कारण लम्बे दिनों के व्यतीत हो जाने पर, पाले से पीड़ित कमलिनी के समान, अन्य रूप वाली हो गयी होगी, ऐसा मैं मानता हूँ।**

'चन्द्रिका'– इसप्रकार यक्षिणी के अनिन्द्य सौन्दर्य का चित्रा–त्मक वर्णन करने के बाद, महाकवि उसकी वियोगावस्था को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

दुर्भाग्यवश अपने प्रियतम से अलग रहने वाली चक्रवाकी के समान वह मेरी प्रिया, तुम्हें अकेली ही दिखायी देगी। मेरे वियोगकाल में उसके पास कोई दूसरा नहीं होगा। इसके अलावा मेरी अनुपस्थिति में कम बोलने वाली वह मेरी प्रिया, वस्तुतः मेरा दूसरा प्राण ही है। अत्यन्त प्रबल वियोग विषयक उत्कण्ठा से पीड़ित हुई वह, विरह के कारण लम्बे समय से अलग रहने से पाले से पीड़ित, पूर्णरूप से मुरझायी हुई कमलिनी के समान अत्यधिक दयनीय स्थिति को प्राप्त हो गयी होगी, ऐसा मैं समझता हूँ।

विशेष–(i) वियोग की अवस्था में यक्षिणी की उपमा पाले से पीड़ित कमलिनी से दी गयी है, जो अत्यधिक मनोहारिणी बन पड़ी है।

इससे महाकवि का वनस्पति विज्ञान विषयक गहन ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) यक्षिणी को अपना ही दूसरा प्राण कहने से उसके प्रति यक्ष का गहन अनुराग भी अभिव्यंजित हो रहा है।

(iii) इसीप्रकार अकेली यक्षिणी की उपमा चकवी से देने के कारण उसका यक्ष के प्रति गहन प्रेम भी प्रदर्शित हुआ है, क्योंकि चकवी के विषय में प्रसिद्ध है कि वह रात्रि होते ही अपने प्रियतम चक्रवाक से अलग होकर वियोग के दुःख को रात्रिपर्यन्त चिल्लाते हुए ही प्रकट करती है। इससे कवि का पक्षिविज्ञान विषयक गहन ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(iv) कुछ विद्वानों के अनुसार यह है कि चकवा–चकवी के इस रात्रि विषयक वियोग का कारण, वस्तुतः सीता वियोग से पीड़ित श्रीराम के उपहास के परिणामस्वरूप दिया गया अभिशाप है।

(v) यक्षिणी की उपमा चकवी से देने का महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है, क्योंकि कवि सहृदयों को शापरूपी रात्रि के व्यतीत होने पर, इन दोनों के पुनर्मिलन का सन्देश देना चाहता है।

(vi) 'परिमितकथाम्' पद से यक्षिणी का पातिव्रत्य भी ध्वनित हो रहा है, क्योंकि पतिव्रता, सती साध्वी स्त्री पति के वियोग में अपने सभी श्रृंगारों का परित्याग करके, जीवन धारण करने मात्र के लिए भोजन करती है और अत्यन्त कम बोलती है।

(vii) प्रस्तुत यक्षिणी प्रोषितभर्तृका नायिका के रूप में चित्रित की गयी है, जिसके लिए याज्ञवल्क्य का कथन उल्लेखनीय है–

क्रीड़ां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम्।
हास्यं परगृहे यानं त्यज्येत् प्रोषितभर्तृका।।

(viii) यहाँ प्रयुक्त 'गाढ़ोत्कण्ठा' से अभिप्राय प्रेमी से मिलने की उस प्रबल वेदना से ग्रहण करना चाहिए, जिसके कारण दोनों ही प्रेमियों के शरीर निरन्तर दुर्बल होते रहते हैं।

(ix) 'बालां' पद से यहाँ पर यक्षिणी का कम आयु वाली होने से सद्यःप्रणीता होना भी द्योतित हो रहा है।

(x) प्रस्तुत श्लोक वस्तुतः ध्वनिकाव्य का उत्कृष्ट उदाहरण कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें साभिप्राय प्रयुक्त प्रत्येक पद से, कोई न कोई विशिष्ट 'ध्वनि' निकल रही है।

(xi) शिशिर ऋतु में हिम अर्थात् पाला पड़ने से कमलिनी अत्यधिक मलिन (मुरझाना) हो जाती है।

(xii) यहाँ प्रयुक्त 'अन्यरूपाम्' से अभिप्राय है कि यक्षिणी अपने प्रियतम यक्ष के वियोग में श्रृंगारादि न करने तथा निरन्तर प्रियतम का चिन्तन करने के कारण, कुछ अन्य ही रूप वाली अत्यधिक दुर्बल हो गयी होगी, जिसे पहचानना भी तुम्हारे लिए कठिन होगा।

(xiii) प्रस्तुत श्लोक के प्रथम चरण में यक्षिणी तथा यक्ष के जीवन का भेद होने पर भी, उनमें अभेदरूप अध्यवसाय का उल्लेख करने से **अतिशयोक्ति अलंकार** का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(xiv) जबकि श्लोक के द्वितीय चरण में 'शिशिरमथितां पद्मि-नीव' में **पूर्णोपमालंकार** प्रयुक्त हुआ है। इसीप्रकार इन दोनों अलंकारों की निरपेक्ष स्थिति होने से **संसृष्टि अलंकार** भी अवलोकनीय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i)**गच्छत्सु**– √गम्+शतृ, भावे सप्तमी।

(ii) **दूरीभूते**– अदूरं दूरं भूतः, सम्पद्यते, तथाभूतः, तस्मिन्।

(iii) **सहचरे**– सह चरतीति, तस्मिन्, सह+ √चर्+ट, मित्र में।

(iv) **चक्रवाकीम्**– चक्रवाक+ङीष्, स्त्रीलिंग पक्षी विशेष को।

(v) **परिमितकथाम्**– परिमिता कथा यस्याः, सा ताम्, बहुव्रीहि।

(vi) **जानीथाः**– √ज्ञा+विधिलिङ्,मध्यमपुरुष, एकवचन, जानना।

(vii) **गाढ़ोत्कण्ठाम्**– गाढा उत्कण्ठा यस्याः ताम्, बहुव्रीहि।

(viii) **शिशिरमथिताम्**–शिशिरेण मथिता ताम्, √मंथ्+क्त+टाप्।

(ix) **अन्यरूपाम्**– अन्यत् रूपं यस्याः सा, ताम्, बहुव्रीहि।

(x) **मन्ये**– √मन्+लट्, उत्तमपुरुष, एक वचन, मानता हूँ।

(xi) जाताम्– √जन्+क्त+टाप्, उत्पन्न हुई को।

संजीवनी टीका– तामिति। सहचरे सहचारिणी। अनेन वियोगासहिष्णुत्वं व्यज्यते। मयि दूरीभूते दूरस्थिते सहचरे चक्रवाके दूरीभूते सति चक्रवाकीं चक्रवाकवधूमिव। 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' इति ङीप्। परिमितकथां परिमितभाषिणीम्। एकामेकाकिनी स्थितां तामन्तर्भवनगतां मे द्वितीयं जीवितं जानीथाः। जीविततुल्यां मत्प्रेयसीमवगच्छेरित्यर्थः। 'तन्वी' इत्यादिपूर्वलक्षणैरिति शेषः। लक्षणानामन्यथाभावभ्रममाशंक्याह-गाढेति। गाढोत्कण्ठां प्रबलविरहवेदनाम् 'रागे त्वलब्धविषये वेदना महती तु या। संशोषणी तु गात्राणां तामुत्कण्ठां विदुर्बुधाः।' इत्यभिधानात्। बालां गुरुषु विरहमहत्स्वेषु वर्तमानेषु दिवसेषु गच्छत्सु सत्सु शिशिरेण शिशिरकालेन मथितां पद्मिनीं वा पद्मिनीमिव। 'इववद्वा यथाशब्दा' इति दण्डी। अन्यरूपां पूर्वविपरीताकारां जातां मन्ये। हिमाहतपद्मिनीव विरहेणान्यादृशी जातेति तर्कयामीत्यर्थः। एतावता नेयमन्येति भ्रमितव्यमिति भावः।। 23।।

अवतरणिका– इसप्रकार विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अपनी प्रियतमा की विरहिणी एवं कारुणिक दशा का चित्रात्मक शैली में वर्णन करते हुए फिर से कहता है कि–

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम्।
हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा–
दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति।।24।।

अन्वय– प्रबल–रुदित–उच्छून–नेत्रम् निःश्वासानाम् अशिशिरतया भिन्न–वर्ण–अधरोष्ठम्, हस्त–न्यस्तम्, लम्ब–अलकत्वात्, असकलव्यक्तिः, तस्याः प्रियायाः मुखम् त्वत् अनुसरण–क्लिष्ट–कान्तेः नूनम् इन्दोः दैन्यम् बिभर्ति।।24।।

अनुवाद– अत्यधिक रोने से सूजे हुए नेत्रों वाला, निश्वासों की गर्मी से कान्तिहीन अधरोष्ठ वाला, हाथ पर रखा हुआ, लटकते हुए

बालों के कारण पूरी तरह दिखायी न देने वाला, मेरी प्रिया का वह मुख, तुम्हारे आवरण से क्षीण हुई कान्ति वाले, निश्चितरूप से चन्द्रमा की दीनता को धारण कर रहा होगा।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक के प्रथम तीन चरणों में कवि ने वियोगिनी यक्षिणी के मुख की दयनीय दशा का उल्लेख करने के बाद, अन्तिम चरण में उसकी उपमा इसप्रकार के चन्द्रमा की दीन स्थिति से दी है, जो बादलों के आवरण में छिपकर, अत्यन्त क्षीण कान्ति वाला हो गया हो। सर्वप्रथम उसके मुख की विशेषता के सम्बन्ध में कहते हैं कि– प्रियतम के वियोग में यक्षिणी प्रतिक्षण रोती ही रहती है, इसलिए उसके नेत्र अत्यधिक सूज गए होंगे, लम्बे विरह के कारण दीर्घ एवं उष्ण निःश्वासों को ग्रहण करने के कारण, उसके अधरोष्ठ अत्यन्त कान्तिहीन हो गए होंगे। चिन्ता के कारण उसने अपने मुख को हाथ पर रखा हुआ होगा, शृंगार के अभाव में बालों के खुला होने से एवं उनसे ढ़का होने के कारण उसका पूरा मुख भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा होगा।

विशेष–(i) 'अधरोष्ठ' से अभिप्राय यहाँ केवल 'अधर' से नहीं, अपितु ऊपर स्थित 'ओष्ठ' से भी ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि उष्ण श्वास से दोनों का ही मलिन होना स्वाभाविक है। यद्यपि अधर, ओष्ठ की अपेक्षा अधिक मलिन होता है।

(ii) कवि की चित्रात्मक शैली दर्शनीय है, क्योंकि चिन्तित व्यक्ति मुख की ठोड़ी को अपने हाथ पर रखकर, एकटक दृष्टि से किसी भी एक स्थान पर निहारता रहता है, इस अवस्था में उसे स्वयं अपना भी भान नहीं रहता।

(iii) स्त्री का स्वभाव है कि वह प्रियतम के वियोग जैसी किसी भी प्रकार की आपत्ति आने पर रोती रहती है, जबकि पुरुष कठोर होने से अपेक्षाकृत उसे दृढ़ होकर सहन कर लेता है। यदि

उसके आँसू नेत्रों से निकलना भी चाहते हैं, तो वह उन्हें अन्दर ही रोक लेता है। दूसरे शब्दों में, अपने आँसुओं को पी जाता है।

(iv) प्रस्तुत श्लोक में अधरोष्ठ में पुनरुक्ति का आभास होने के कारण 'पुनरुक्तवदाभास' अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(v) इसीप्रकार श्लोक के उत्तरार्द्ध में प्रिया का मुख चन्द्रमा की दीनता को भला कैसे धारण कर सकता है, इसलिए अर्थ में बाधा आने पर इस अर्थ की उपमा में पर्यवसित होने से **निदर्शनालंकार** का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(vi) किसी भी कारण से हुए अन्तःताप से व्यक्ति जब श्वास लेता है तो वह अपेक्षाकृत अधिक उष्ण होती है, जिसके कारण उसके अधरोष्ठ सूखकर मलिन कान्ति वाले हो जाते हैं।

(vii) यक्ष का अभिप्राय है कि यद्यपि मैंने तुमसे अपनी प्रियतमा के सौन्दर्य का विस्तार से वर्णन पहले किया है, किन्तु वियोग में उसकी दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी होगी, जिसे सम्भवतः एकबार तो तुम पहचान भी नहीं सकोगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **बिभर्ति**– √भृ+लट्, प्र.पु., ए.व.।

(ii) **अशिशिरतया**– न शिशिराः, तेषां भावः, अशिशिरता, तया।

(iii) **दैन्यम्**– दीनस्य भावः, तत्, दीन+ष्यञ्, दीनता का भाव।

(iv) **भिन्नवर्णाधरोष्ठम्**– भिन्नो वर्णो यस्य सः, अधरश्चासौ ओष्ठः, अधरोष्ठः, यस्य तत्, बहुव्रीहि। बदले हुए रंग वाले अधरोष्ठ।

(v) **लम्बालकत्वात्**– लम्बाः अलकाः यस्मिन् तत्, बहुव्रीहि। तस्य भावः तस्मात्, केशों के लम्बे होने से ।

(vi) **असकलव्यक्तिः**– न सकला, इति असकला व्यक्तिः, यस्य तस्य, बहुव्रीहि। वि+ √अंज्+क्तिन्, पूर्णरूप से दिखायी न देने वाला।

(vii) **त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेः**– तव अनुसरणम्, इति, तेन क्लिष्टाः कान्तिः,यस्य,तस्य तुम्हारे अनुसरण से क्लिष्ट कान्ति वाले के।

(viii) **प्रबलरुदितोच्छूननेत्रम्**— प्रबलं च तत् रुदितम्, तेन उच्छूने नेत्रे यस्य तत्, बहुव्रीहि। प्रकृष्टं बलं यस्मिन् तत्, √रुद्+क्त।

संजीवनी टीका– नूनमिति। प्रबलरुदितेनोच्छूने उच्छ्वसिते नेत्रे यस्य तत्। उच्छूनेति श्वयतेः कर्तरि क्तः। 'ओदितश्च' इति निष्ठा–नत्वम्। 'वचिस्वपि–' इत्यादिना संप्रसारणम्। 'संप्रसारणाच्च' इति पूर्वरूपत्वम्। 'हलः' इति निष्ठानत्वम्। 'वचिस्वपि–' इत्यादिना संप्रसा–रणम्। 'संप्रसारणाच्च' इति पूर्वरूपत्वम्। 'हलः' इति दीर्घः। 'च्छ्वोः शूडनुनासिके च' इत्यूठादेशे कृते रूपसिद्धिरति वर्तमानसामीप्यप्रक्रिया प्रामादिकीत्युत्पेक्ष्या तथा सति धातोरिकारस्य गत्यभावादूठादेशे च्छवोरन्त्यत्वेन विशेषणाच्चेति। एतेन विषादो व्यज्यते। निःश्वासानाम–शिशिरतयाऽन्तस्तापपोषणत्वेन भिन्नवर्णोविच्छायोऽधरोष्ठो यस्य तत्। हस्ते न्यस्तं हस्तन्यस्तम्। एतेन चिन्ता व्यज्यते। लम्बालकत्वासंस्कारा–भावाल्लम्बमानकुन्तलत्वादसकलव्यक्त्यसंपूर्णाभिव्यक्तिः तस्याः प्रियाया मुखं त्वदनुसरणेन त्वदुपरोधेन। मेघानुसरणेनेति यावत्। क्लिष्टः कान्तेः क्षीणकान्तेरिन्दोर्दैन्यं शोच्यतां बिभर्ति। नूनमिति वितर्के। 'नूनं तर्केऽर्थ निश्चय' इत्यमरः। पूर्ववत्तथापि न भ्रमितव्यमिति भावः।।23।।

अवतरणिका–इसके बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अपनी प्रियतमा की विरहिणी दशा में मन बहलाने के लिए, उसके द्वारा किए जाने वाले, उपक्रमों का उल्लेख करते हुए कहता है कि–

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती।
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पंजरस्थां
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति।।25।

अन्वय– सा बलि–व्याकुला वा विरह–तनुः, भाव–गम्यम्, मत् सादृश्यम्, लिखन्ती वा, मधुर–वचनाम् पंजरस्थाम् सारिकाम्, रसिके! कच्चित् भर्तुः स्मरसि? त्वं हि तस्य प्रिया इति, पृच्छन्ती वा, ते आलोके पुरा निपतति।।25।।

अनुवाद– हे मेघ! वह मेरी प्रिया, पूजा में लगी हुई या फिर विरह के कारण दुर्बल, कल्पना से ही जानी गयी, मेरी आकृति को चित्रित करती हुई अथवा मधुर बोलने वाली, पिंजरे में बन्द मैना से हे रसीली! क्या तुम्हें कभी स्वामी की याद आती है? क्योंकि तुम तो उनकी प्रिय हो, इसप्रकार पूछती हुई तुम्हारी दृष्टि में शीघ्र ही पड़ेगी।

'चन्द्रिका'– मेघ का आशय है कि मेरी प्रिया यक्षिणी मेरे वियोग में या तो ईश्वर से मेरी कुशलता की प्रार्थना करती हुई पूजा–कार्य में निमग्न होगी या फिर विरह के कारण अत्यधिक दुर्बल हुई, मात्र कल्पना से ही जानने योग्य, मेरी आकृति को चित्रित कर रही होगी अथवा फिर मधुरभाषिणी वह, पिंजरे में बन्द पालतू मैना से इस प्रकार प्रश्न पूछ रही होगी कि–

'हे रसिके! तुम्हारे स्वामी को गए हुए इतने दिन हो गए हैं, क्या तुम्हें कभी उनकी याद भी आती है या नहीं, क्योंकि तुम तो उन्हें अत्यधिक प्रिय थी?

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने वियोग की स्थिति का अत्यधिक स्वाभाविक चित्रण किया है, क्योंकि प्रियतम के वियोगकाल में स्त्रियों के ये ही मन बहलाने के एकमात्र साधन होते हैं।

(ii) यहाँ प्रयुक्त 'आलोके' पद के दो अर्थ हैं, **प्रथम,** प्रकाश में **द्वितीय,** दृष्टि में। मेघ का बिजलीरूपी प्रकाश ही वस्तुतः उसकी दृष्टि है। इसलिए प्रस्तुत स्थल पर 'जुगनू के समान बिजलीरूपी मद्दिम प्रकाश' अर्थ करना ही उचित होगा।

(iii) 'बलि' वस्तुतः देवताओं के लिए पूजा में चढ़ायी गयी पूजन–सामग्री को कहते हैं। यक्षिणी शापवश अलग हुए, अपने प्रियतम की कुशलता के लिए अथवा सकुशल वापस लौटने के लिए अर्घ्यादि से देवों को प्रसन्न करने हेतु उनकी पूजा में लगी रहती है।

(iv) 'भावगम्यम्' से अभिप्राय यहाँ पर यक्ष द्वारा एकपत्नी व्रत का पालन करने के कारण उत्पन्न होने वाली अत्यधिक दुर्बलता के

अनुमान से ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि यक्ष की दुर्बलता को तो वह देख नहीं पा रही है, केवल अनुमान से ही उसको चित्रित कर रही है।

(v) वस्तुतः संस्कृत साहित्य में वियोगियों के लिए मनोविनोद के अनेक साधनों में चित्ररचना करना, पुनः उस चित्र के साथ अपने तन–मन की बातें करना प्रमुख साधन हैं, कवि ने यक्षिणी में यहाँ इसी का उल्लेख किया है।

(vi) 'लिखन्ती' पद में वर्तमानकालिक शतृ प्रत्यय के प्रयोग से यक्षिणी का चित्ररचना करना अभिव्यंजित हो रहा है, न कि चित्ररचना करके उसे निहारना या बातें करना।

(vii) इससे यह भी ध्वनित हो रहा है कि पिछले आठ महिनों के वियोग के अन्तराल में प्रथम दिन से प्रयासरत होने पर भी प्रियतमा बार–बार मेरा स्मरण आने तथा उससे अश्रुओं के आने जाने आदि के कारण, आज तक उस चित्र को पूरा करने में समर्थ ही नहीं हो पायी होगी, अभी भी वह उसे बना ही रही होगी।

(viii) यहाँ कवि ने यक्षिणी को मैना से बाते करते हुए वर्णित किया है, क्योंकि पुरुष तोते की अपेक्षा, नारी मैना अधिक भावुक होने से उसके हृदय की पीड़ा को अधिक ठीक से समझ सकेगी।

(ix) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने वियोग में यक्षिणी की तीन मार्मिक सम्भावनाओं का उल्लेख किया है, जिससे उनकी कल्पना–शीलता भी अभिव्यंजित हुई है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **आलोके**–आङ्+ √लोक्+घञ्।

(ii) **भावगम्यम्**– भावेन गम्यम्, तृ.तत्पु., √गम्+यत्, गम्यम्।

(iii) **बलिव्याकुला**– बलिषु व्याकुला, सप्तमी तत्पुरुष।

(iv) **विरहतनुः**– विरहेण तनुः, तृतीया तत्पुरुष।

(v) **मत्सादृश्यम्**– सदृश्यस्य भावः, मम सादृश्यं तत्, ष. तत्पु.।

(vi) **लिखन्ती**– √लिख+शतृ+ङीप् प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

(vii) **मधुरवचनाम्**–मधुराणि वचनानि यस्याः सा,ताम्, बहुव्रीहि।

(viii) **पंजरस्थाम्**– पंजरे तिष्ठति, इति, पंजरस्था, ताम्।

(ix) **रसिके**– रसोऽस्ति यस्याः सा, रसिका, सम्बुद्धौ।

(x) **स्मरसि**– √स्मृ+लट्, मध्यम पुरुष, ए.व., स्मरण करती हो।

(xi) **पृच्छन्ती**– √पृच्छ्+शतृ, ङीप्, प्रथमा, एकवचन।

(xii) **निपतति**– नि+ √पत्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, पड़ेगी।

संजीवनी टीका– सर्वविरहिणीसाधारणानि लक्षणानि संभावना-योत्प्रेक्ष्याणीत्याह 'आलोके' इत्यादिभिस्त्रिभिः आलोकेति। हे मेघ! सा मत्प्रिया बलिषु नित्येषु प्रोषितागमनार्थेषु च देवताराधनेषु व्याकुला व्यापृता या विरहेण तनु कृशं भावगम्यम्। तत्कार्श्यस्यादृष्टचरत्वात् सम्प्रति सम्भावनयीत्प्रेक्ष्यमित्यर्थः। मत्सादृश्यं मदाकारसाम्यम्। यद्यपि सादृश्यं नाम प्रसिद्धवस्त्वन्तरगतमाकारसाम्यं तथापि प्रतिकृतित्वेन विवक्षितमितरथालेख्यत्वासम्भवात्। 'अक्षय्यकोशे आलेख्येऽपि च सादृश्यम्' इत्यभिधानाच्च। लिखन्ती क्वचित्फलकादौ विन्यस्यन्ती वा चित्रदर्शनस्य विरहिणीविनोदोपायत्वादिति भावः। एतंच कामशास्त्र-संवादेन सम्यग्विवेचितमस्माभी रघुवंशसंजीविन्याम् 'सादृश्यप्रतिकृतिदर्शनैः प्रियायाः' इत्यत्र।

मधुरवचनां मंजुभाषिणीम्। अतएव पंजरस्थाम्। हिंस्रेभ्यः कृत-संरक्षणामित्यर्थः। सारिकां स्त्रीपक्षिविशेषाम्। हे रसिके! भर्तुः स्वामिनः स्मरसि कच्चित्? 'कच्चित्कामप्रवेदने' इत्यमरः। भर्तारं स्मरसि किमित्यर्थः। 'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' इति कर्मणि षष्ठी। स्मरणे कारणमाह– हि यस्मात् कारणात् त्वं तस्य भर्तुः। प्रीणातीति प्रिया। 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' कप्रत्ययः। अतः प्रेमास्पदत्वात् स्मर्तुमर्हसीति भावः। इत्येवं पृच्छन्ती वा। वा शब्दो विकल्पे। 'उपमायां विकल्पे वा' इत्यमरः। ते तवालोके दृष्टिपथे पुरा निपतति। सद्यो निपतिष्यतीत्यर्थः। 'स्यात्प्रबन्धे पुरातीते निकटागामिके पुरा' इत्यमरः। 'यावत्पुरानिपातयो-र्लट्' इति लट्।।24।।

अवतरणिका– इसके बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अपनी विरहिणी प्रियतमा की अन्य सम्भावित दयनीय दशा का उल्लेख करते हुए कहता है कि–

उत्संगे वा मलिनवसने सौम्य! निक्षिप्य वीणां
मद्गोत्रांकं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा।
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचिद्
भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती।।26।।

अन्वय– सौम्य! वा मलिन–वसने उत्संगे, वीणाम् निक्षिप्य, मत् गोत्रांकम् विरचित–पदम् गेयम् उद्गातुकामा, नयन–सलिलैः आर्द्राम् तन्त्रीम्, कथंचित् सारयित्वा, भूयः भूयः स्वयम् कृताम् अपि मूर्च्छनाम् विस्मरन्ती, (सा ते आलोके पुरा निपतति)।।26।।

अनुवाद– हे सौम्य! अथवा मैले वस्त्रों वाली अपनी गोद में वीणा को रखकर, मेरे नाम के चिह्न वाले एवं स्वयं रचे गए पदों वाले, गीत को उच्च स्वर में गाने की इच्छा वाली, आँसुओं से भीगे हुए, वीणा के तारों को किसी प्रकार पोंछकर, बार–बार स्वयं बनायी गयी भी मूर्च्छना को भूलती हुई (वह मेरी प्रिया शीघ्र ही तुम्हारी दृष्टि में पड़ेगी।)

'चन्द्रिका'– इस वियोगावस्था में यक्षिणी क्या कर रही होगी, इस सम्बन्ध में सम्भावना करते हुए यक्ष कहता है कि– हे मेरे सज्जन मित्र मेघ! अथवा मैले वस्त्रों को पहनने वाली, वह मेरी प्रिया अपनी मैली–कुचैली गोद में वीणा को रखकर, मेरे नाम के पदों वाले स्वयं ही रचे गए गीत को, उच्च स्वर से गाने की इच्छा से उसे संगीत के साथ गाने का प्रयास कर रही होगी, तभी मेरी स्मृति आने के कारण, उसके अश्रुओं की धारा प्रवाहित हो जाती होगी। इसके बाद जैसे तैसे वह अश्रुओं से गीले वीणा के तारों को किसी प्रकार पोंछकर, बार–बार स्वयं ही बनायी मूर्च्छना अर्थात् स्वरों के उतार–चढ़ाव को भूल जाती

होगी, इसप्रकार की दयनीय स्थिति वाली मेरी प्रिया को तुम मेरे उस घर में देखोगे।

विशेष–(i) यक्षिणी का गोद में वीणा को रखना, यक्ष के नाम वाले गीत की संरचना करना, पुनः उस गीत को उच्च स्वर से गाने का प्रयास एवं 'मूर्च्छना' का विस्मरण होना आदि क्रियाओं के उल्लेख से महाकवि का संगीत विषयक गहन ज्ञान अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) साथ ही, यक्षिणी की कारुणिक दशा के वर्णन से करुण रस की मनोहारिणी सृष्टि भी हुई है।

(iii) यक्षिणी वस्तुतः यहाँ प्रोषितभर्तृका नायिका के रूप में चित्रित की गयी है तथा शास्त्रीय एवं सामाजिक दोनों ही दृष्टियों से उसके लिए श्रृंगारादि क्रियाओं का निषेध किया गया है, इसलिए कवि ने उसे यहाँ 'मलिनवसना' कहा है।

(iv) प्रस्तुत श्लोक में यक्षिणी का पतिव्रता एवं सतीसाध्वी होना भी ध्वनित हो रहा है, क्योंकि ऐश्वर्य सम्पन्न होते हुए भी उसे यहाँ मलिन वस्त्रों को धारण करने वाली बताया है।

(v) यहाँ काव्यकार कालिदास वस्तुतः नाटककार कालिदास से भी प्रभावित प्रतीत हो रहे हैं, क्योंकि नाटककार ने भी वियोगिनी शकुन्तला को मलिन वस्त्रों को धारण करने वाली कहा है।[1]

(vi) शास्त्रीय व्यवस्था के अनुसार देवयोनि में उत्पन्न यक्ष, किन्नरादि के लिए गान्धार ग्राम, जबकि मनुष्यों के लिए षड्ज एवं मध्यम ग्राम गाने का निर्देश दिया गया है। इसीलिए यहाँ पर यक्षिणी को गान्धार ग्राम गाने की इच्छा वाला कहा गया है।

(vii) संगीतशास्त्र में स्वर के भेदों को 'ग्राम' कहते हैं, जो षड्ज, मध्यम तथा गान्धार भेद से तीन प्रकार के होते हैं। इसीप्रकार स्वरों के आरोह एवं अवरोह को 'मूर्च्छना'[2] संज्ञा प्रदान की गयी है, जो

---

1. वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः। शाकुन्तलम्–7/21।
2. क्रमयुक्ताः स्वराः सप्त मूर्च्छना परिकीर्तिता। नाट्यशास्त्र।

सप्त स्वरों एवं तीन ग्रामों के मिलाने पर कुल (7×3=21) इक्कीस प्रकार की हो जाती है।

(viii) प्रिय के वियोग में उसके नाम के चिह्नों वाले, गीत को संगीत के साथ गाने की इच्छा से प्रियतम का स्मरण आने के कारण यक्षिणी के नेत्रों में अश्रुधारा का प्रवाहित होना अत्यन्त स्वाभाविक एवं स्त्री मनोविज्ञान पर आधारित कहा जा सकता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **उत्संगे**– उत्+√संज्+घञ्,स.ए.।

(ii) **निक्षिप्य**– नि+√क्षिप्+क्त्वा(ल्यप) **गेयम्**–गातुं योग्यं, तत्।

(iii) उद्गातुकामा– उद्गातुम्, कामः, यस्याः सा, बहुव्रीहि।

(iv) मलिनवसने– मलिनं वसनं यस्मिन् सः, तस्मिन् बहुव्रीहि।

(v) मद्गोत्रांकम्– मम गोत्रम्, नामेति, मद्गोत्रं, तदेवांकः चिह्नः, यस्मिन् तत्, बहुव्रीहि। मेरे नाम से अंकित को।

(vi) नयनसलिलैः– नयनयोः सलिलानि, तैः, षष्ठी तत्पुरुष।

(vii) विस्मरन्ती– वि+√स्मृ+शतृ+ङीप्, प्रथमा, एकवचन।

(viii) विरचितपदम्– विरचितानि पदानि, यस्य तत्, बहुव्रीहि।

(ix) सारयित्वा– √सृ+णिच्+क्त्वा, पोंछकर, ठीक करके।

संजीवनी टीका– उत्संग इति। हे सौम्य! साधो, मलिनवसने 'प्रोषिते मलिना कृशा' इति शास्त्रादित्यर्थः। उत्संगे क्रोड़े वीणां निक्षिप्य। मम गोत्रं नामंकश्चिह्नं यस्मिंस्तन्मदगोत्रांकं मन्नामांकं यथा तथा। 'गोत्रं नाम्नि कुलेऽपि च' इत्यमरः। न विरचितानि पदानि यस्य तत्तथोक्तं गेयं गानाहं प्रबन्धादि। 'गीतम्' इति पाठे स एवार्थः। उदगातुमुच्चैर्गातुं कामो यस्याः सा। 'तुं काममनसोरपि' इति मकारलोपः। देवयोनित्वाद गान्धार–ग्रामं गातुकामेत्यर्थः। तदुक्तम्–'षड्जमध्यमनामानौ ग्रामौ गायन्ति मानवाः। न तु गान्धारनामानं स लभ्यो देवयोनिभिः।' इति,

तथा नयनसलिलैः प्रियतमस्मृतिजनितैरश्रुभिरार्द्रां तन्त्रीं कथंञ्चित् कृच्छ्रेण सारयित्वा। आर्द्रत्वापहरणाय करेण प्रमृज्यान्यथा क्वणनासम्भ–वादिति भावः। भूयो भूयः पुनः पुनः स्वयमात्मनाकृतामपि। विस्मरणा–

नर्हामपीत्यर्थः। मूर्च्छनां स्वरारोहावरोहक्रमम्। 'स्वराणां स्थापनाः सान्ता मूर्च्छनाः सप्त सप्त हि' इति संगीतरत्नाकरे। विस्मरन्तो वा। 'आलोके ते निपतति' इति पूर्वेणान्वयः। विस्मरणं चात्र दयितगुणस्मृतिजनितमूर्च्छा-वशादेव। तथा च रसरत्नाकरे-'वियोगयोगारिष्टगुणानां कीर्तनात्स्मृतेः। साक्षात्कारोऽथवा मूर्च्छा दशधा जायते तथा'। इति मत्सादृशमित्यादिना मनः संगानुवृत्तिः सूचिता।।26।।

अवतरणिका- इसके बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से विरहिणी प्रियतमा की दशा का उल्लेख करते हुए, उसके पीड़ित मन को बहलाने के दूसरे उपायों के विषय में कहता है कि-

शेषान्मासान्विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा
विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्तपुष्पैः।
मत्संगं[1] वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती
प्रायेणैते रमणविरहेष्वंगनानां विनोदाः।।27।।

अन्वय- वा विरह-दिवस-स्थापितस्य अवधेः शेषान् मासान् देहली-दत्त-पुष्पैः गणनया भुवि विन्यस्यन्ती, हृदय-निहित-आरम्भम् मत्-संगम् वा आस्वादयन्ती, (सा ते आलोके पुरा निपतति) प्रायेण अंगनानाम् रमण-विरहेषु, एते विनोदाः (भवन्ति)।।27।।

अनुवाद- अथवा हे मेघ! विरह के दिन से निश्चित की गयी, शाप की अवधि के शेष महीनों को देहली पर रखे गए, पुष्पों द्वारा गणना हेतु भूमि पर रखती हुई अथवा मन में कल्पना द्वारा आरम्भ किए गए, मेरे साथ सम्भोग के आनन्द का आस्वादन करती हुई, (वह मेरी प्रिया शीघ्र ही तुम्हारी दृष्टि में पड़ेगी) क्योंकि अंगनाओं के प्रियतमों के वियोग के दिनों में, ये ही मन को बहलाने के उपाय होते हैं।

'चन्द्रिका'- अथवा वह मेरी विरहिणी प्रिया मुझे मिले हुए शाप के दिन से, जिस विरह की अवधि आरम्भ हुई है, उसके शेष महीनों

---

1 . पाठभेद- संभोगं।

को गिनने के लिए, घर की देहलीज़ पर रखे गए, पुष्पों को गणना के माध्यम से पुनः भूमि पर रखते हुए, स्वयं को बहलाने एवं ढ़ाढ़स बँधाने का प्रयास कर रही होगी अथवा फिर वह मन ही मन कल्पना के द्वारा आरम्भ किए गए मेरे साथ सम्भोग का आनन्द प्राप्त करती होगी।

इसप्रकार उक्त दो सम्भावनाओं का उल्लेख करने के बाद, यक्ष इनके कारण के विषय में कहता है कि– मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूँ कि प्रियतम के वियोग के दिनों में वस्तुतः ये ही स्त्रियों के मनों को बहलाने के उपाय होते हैं। इसलिए मुझे पूरा विश्वास है कि मेरी प्रिया को तुम इसीप्रकार के किसी कार्य में संलग्न देखोगे।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में यक्ष का अपनी प्रिया के प्रति प्रगाढ़ प्रेम एवं आत्मविश्वास की अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) अमरकोश के अनुसार द्वार का आधार, जो काष्ठ से निर्मित होता है, देहली या देहलीज़ कहा जाता है।

(iii) प्रिय के विदेश जाने पर देहलीज़ पूजन की प्राचीन सामाजिक व्यवस्था की ओर संकेत किया गया है, जिसे प्रिय के सकुशल वापस लौटने की दृष्टि से किया जाता था।

(iv) वियोगावस्था में प्रियतम के आने तक के शेष दिनों को देहलीज़ पर पुष्प रखकर, गिनने के मन बहलाने के मनोरम उपाय का उल्लेख, कवि के मृदुल हृदय के प्रतीकरूप में देखा जा सकता है।

(v) प्रस्तुत श्लोक में पूर्व में कहे गए विशेष कथन का, अन्तिम चतुर्थ चरण में कहे गए सामान्य कथन से समर्थन करने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(vi) वियोगी प्रेमियों के मनोविज्ञान को सूक्ष्मरूप में प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि वियोगावस्था में कल्पना में तो दोनों परस्पर सहवास कर ही सकते हैं, उसमें तो किसी प्रकार की बाधा नहीं हो सकती है। इसीलिए यक्षिणी यहाँ अपनी कल्पना में ही प्रिय के साथ आलिंगन आदि के साथ रतिसुख का आनन्द प्राप्त कर रही है।

(vii) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने काम की 'संकल्प' नामक तीसरी अवस्था का उल्लेख किया है।

(viii) यह श्लोक पूर्व में प्रयुक्त दो श्लोकों के क्रम में ही प्रस्तुत किया गया है, इसीलिए वाक्यार्थ को व्यवस्थित करने के लिए 'इसप्रकार की क्रियाओं में लिप्त मेरी प्रिया तुम्हारी दृष्टि में पड़ेगी' इसप्रकार के वाक्य का यहाँ भी आक्षेप किया गया है।

(ix) साहित्यदर्पणकार (6/314) ने गत दो श्लोकों के साथ इस श्लोक का सम्बन्ध होने से, इसे काव्य का 'सान्दानितक' नाम भेद स्वीकार किया है।

(x) विकल्प अलंकार का प्रयोग भी अवलोकनीय है।

(xi) साथ ही, अर्थान्तरन्यास एवं विकल्प अलंकार का अंगांगिभाव होने से संकर अलंकार भी दर्शनीय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **शेषम्**– √शिष्+घञ्, द्वि.वि.बहुव.।

(ii) **विनस्यन्ती**– वि+नि+ √अस्+शतृ+ङीप्, प्रथमा, एकवचन।

(iii) **आस्वादयन्ती**– आ+ √स्वाद्+णिच्+शतृ+ङीप्, प्र., ए.व.।

(iv) **विनोदाः**– वि+ √नुद्+घञ्, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन।

(v) **विरहदिवसस्थापितस्य**– विरहस्य दिवसः, तस्मिन् स्थापितः तस्य, विरह के दिन से ही स्थापित किए गए का। √स्था+णिच्+क्त।

(vi) **देहलीदत्तपुष्पैः**– देहल्यां दत्तानि तानि च पुष्पाणि तैः।

(vii) **हृदयनिहितारम्भम्**– हृदये निहितः, तादृशः आरम्भः, यस्य तम्, बहुव्रीहि, निहितः– नि+ √धा+क्त, हृदय की कल्पना से आरम्भ।

(viii) **अंगनानाम्**– प्रशस्तानि अंगानि यासां ताः, तासाम्।

(ix) **रमणविहरेषु**– रमणस्य विरहाः, तेषु, षष्ठी तत्पुरुष।

संजीवनी टीका– **शेषानिति। अथवा विरहस्य दिवसस्तस्मात स्थापितस्य तत आरभ्य निश्चितस्यावधेरन्तस्य शेषान् गतावशिष्टान मासान् देहलीदत्तपुष्पैः। देहली द्वारस्याधारदारु। 'गृहावग्रहणी देहली' इत्यमरः। तत्र दत्तानि राशीकृतत्वेन निहितानि यानि पुष्पाणि तैर्गणनया**

एको द्वावित्यादिसंख्यानेन भूतले विन्यस्यन्ती वा। पुष्पविन्यासैर्मासान् गणयन्ती वेत्यर्थः। यद्वा हृदये निहितो मनसि संकल्पित आरम्भ उपक्रमो यस्य तम्।

अथवा हृदयनिहिता आरम्भाश्चुम्बनादयो व्यापारा यस्मिंस्तं मत्संगं मत्संभोगरतिमास्वादयन्ती वा। 'आलोके ते निपतति' इति पूर्वेण सम्बन्धः। ननु कथमयं निश्चय इत्याशंकामर्थान्तरन्यासेन परिहरति। प्रायेण बाहुल्येनांगनानां रमणविरहेष्वेते पूर्वोक्ता विनोदाः कालयापनोपायाः। एतेन संकल्पावस्थोक्ता। तदुक्तम्– 'संकल्पो नाथविषये मनोरथ उदाहृतः' इति। त्रिभिः कुलकम्।।27।।

अवतरणिका– इसके बाद विरही यक्ष, सन्देश से पूर्व महल के वातायन में बैठकर, अपनी प्रिया की दयनीय दशा को देखने की बात का परामर्श देते हुए, अपने मित्र मेघ से कहता है कि–

सव्यापारामहनि न तथा पीडयेन्मद्वियोगः,
शंके रात्रौ गुरुतरशुचं निर्विनोदां सखीं ते।
मत्सन्देशैः सुखयितुमलं पश्य साध्वीं निशीथे,
तामुन्निद्रामवनिशयनां सौधवातायनस्थः।।28।।

अन्वय– अहनि सव्यापाराम् ते सखीम् मत् वियोगः तथा न पीडयेत्, रात्रौ निर्विनोदाम् गुरुतर–शुचम् शंके, निशीथे, उन्निद्राम् अवनि–शयनाम् साध्वीम् ताम् मत्–सन्देशैः अलम् सुखयितुम्, सौध–वातायनस्थः पश्य।।28।।

अनुवाद– हे मित्र! दिन में कामों में लगी हुई तुम्हारी सखी (भाभी) को मेरा वियोग, सम्भवतः उतना पीड़ित नहीं करता होगा, किन्तु रात्रि में विनोदरहित होने से मैं उसके अत्यन्त वेदनायुक्त होने की आशंका करता हूँ। इसलिए आधी रात में जगी हुई, भूमि पर लेटी हुई, साध्वी उस मेरी प्रिया को मेरे सन्देशों से पर्याप्तरूप से आनन्दित करने के लिए तुम, सर्वप्रथम महल के वातायन में बैठकर देखना।

'चन्द्रिका'– कवि का अभिप्राय है कि हे मित्र! मैं ऐसा विचार करता हूँ कि वह तुम्हारी सखी मेरे वियोग में दिन में तो उतनी अधिक पीड़ित नहीं होती होगी, क्योंकि उसका दिन तो घर के अनेक कामों में लगे रहने तथा पूर्व में बताए गए मन बहलाने के साधनों से किसी प्रकार कट जाता होगा, किन्तु रात्रि में तुम्हारी भाभी दूसरे मन बहलाने के साधनों के अभाव में निश्चय ही, अत्यधिक पीड़ा का अनुभव करती होगी। इसलिए आधी रात में जब पृथ्वी पर सोयी हुई उस पतिव्रता की नींद टूट जाए, तो इसी अवसर पर तुम मेरी प्रिया को मेरे द्वारा दिए गए सन्देशों को सुनाकर आनन्दित करने का प्रयास करना तथा इसके लिए तुम्हें मेरे घर की खिड़की में बैठकर पहले थोड़ी देर तक उसके जागने की प्रतीक्षा करते हुए, उसे देखना होगा।

विशेष–(i) दिन में विभिन्न कार्यों से अभिप्राय यहाँ पर देव पूजन, प्रिय के चित्र का लेखन, प्रिय से सम्बन्धित गीत गायन, पुष्पों द्वारा अवधि गणना तथा मैना से वार्तालाप आदि पूर्व में उल्लिखित मन को बहलाने के साधनों से ही ग्रहण करना चाहिए।

(ii) पति के वियोग में यहाँ पर कवि ने उसका शय्या त्याग कराकर **भूमिशयन** का उल्लेख करके, सहृदय को प्रभावित करने वाले, यक्षिणी के उत्कृष्ट पातिव्रत सम्पन्न सुन्दर चरित्र का चित्रण किया है।

(iii) वियोग की स्थिति में यदि प्रिय का समाचार प्राप्त हो जाए, तो उसी सुख एवं आनन्द को अभिव्यक्त करने के लिए, कवि द्वारा यहाँ पर 'सुखयितुम्' पद का प्रयोग किया गया है।

(iv) कुछ टीकाकारों ने रात्रि के समय पतिव्रता के पास अन्य पुरुष के जाने को लेकर, दोष की कल्पना की है, किन्तु यक्ष का दूत होने के कारण, विरहिणी यक्षिणी के पति का सन्देश देने मात्र से इसप्रकार की परिकल्पना उचित प्रतीत नहीं होती है।

(v) प्रस्तुत श्लोक में महाकवि ने काम की दस अवस्थाओं में से चतुर्थ 'जागरण' नामक अवस्था का मनोरम चित्रण किया है।

(vi) यहाँ प्रयुक्त 'सौध' पद से यक्ष का घर चूने से पुता हुआ अथवा श्वेत पत्थर से निर्मित महल के आकार का प्रतीत हो रहा है।

(vii) इसके अलावा यहाँ प्रयुक्त 'वातायन' से अभिप्राय खिड़की से ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि घर में वात अर्थात् वायु का अयन अर्थात् आवागमन इसी खिड़की से होता है।

(viii) प्राचीन महलों के वास्तुशिल्प की शैली में खिड़कियों को थोड़ा बाहर की ओर निकली हुई बनाया जाता था, जिससे उनमें आसानी से बैठा भी जा सके। यहाँ कवि ने इसी ओर संकेत किया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **वियोगः**– वि+ √युज्+घञ्।

(ii) **पीडयेत्**– √पीड्+विधिलिङ्, प्रथमपुरुष, एक वचन।

(iii) **सव्यापाराम्**– व्यापारैः सहिता, ताम्, बहुव्रीहि समास।

(iv) **निर्विनोदाम्**– निर्गतः विनोदः यस्याः सा ताम्, बहुव्रीहि।

(v) **गुरुतरशुचम्**– गुरुतरा शुच्, यस्याः सा, ताम् बहुव्रीहि।

(vi) **शंके**– √शङ्क+लट्, आत्मने, उत्तमपुरुष, एकवचन।

(vii) **उन्निद्राम्**– उद्‌गता निद्रा यस्याः सा, ताम्, बहुव्रीहि।

(viii) **अवनिशयनाम्**– अवनिः एव शयनं यस्याः सा, ताम्।

(ix) **मत्संदेशैः**– मम सन्देशः, तैः, सम्+ √दिश्+घञ्।

(x) **सुखयितुम्**– सुख+णिच्+तुमुन् सुखी करने के लिए।

(xi) पश्य– √दृश्+लोट्, मध्यम पुरुष, एकवचन।

संजीवनी टीका– सव्यापारामिति। हे सखे! अहनि दिवसे सव्यापारां पूर्वोक्त–बलिचित्रलेखनादिव्यापारवर्तीं ते सखीं स्वप्रियां मद्वि–योगो मद्विरहस्तथा तेन प्रकारेण। 'प्रकारवचने थाल्' इति थाल्प्रत्ययः। न पीड़येत्। यथा रात्राविति शेषः। किन्तु रात्रौ निर्विनोदां निर्व्यापारां ते सखीं गुरुतरां शुग्यस्यास्तां गुरुतरशुचिमतिदुर्भरदुःखां शंके तर्कयामि। 'शंका वितर्कभययोः' इति शब्दार्णवे। अतो निशीथेऽर्धरात्रौ उन्निद्रामु–त्सृष्टनिद्राम्। अवनिरेव शयनं शय्या यस्यास्ताम्।

नियमार्थं स्थण्डिलशायिनीम्। साध्वीं पतिव्रताम्। 'साध्वी पतिव्रता' इत्यमरः। अतो नान्यथा शंकितव्यमिति भावः। तां त्वत्सखीं मत् संदेशैर्मद्वार्ताभिरलं पर्याप्तं सुखयितुमानन्दयितुं सौधवातायनस्थः सन्पश्य। 'सखी धात्री च पितरौ मित्रदूतशुकादयः। सुखयन्तीष्टकथनसुखोपायै-र्वियोगिनी।' इति रत्नाकरे। दूतश्चायं मेघ इति भावः। अनेन जागरा-वस्थोक्ता।।28।।

अवतरणिका– इसके बाद विरही यक्ष, मित्र मेघ से अपनी विरहिणी प्रियतमा की शारीरिक एवं मानसिक अत्यन्त कारुणिक दशा का उल्लेख करते हुए कहता है कि–

आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वां
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः।
नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या
तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम्।।29।।

अन्वय– आधिक्षामाम् तनुम्, विरह–शयने सन्निषण्ण–एक-पार्श्वाम्, प्राची–मूले हिमांशोः कला–मात्र–शेषाम् इव, या रात्रिः मया सार्धम् इच्छा–रतैः क्षणः इव नीता, विरह–महतीम् ताम् एव उष्णैः अश्रुभिः यापयन्तीम् (तां प्रियां शीघ्रमेव दृक्ष्यसि)।।29।।

अनुवाद– मानसिक व्यथा से क्षीण हुई, विरह की शय्या पर एक ही करवट में लेटी हुई, पूर्व दिशा के क्षितिज में कलामात्र अवशिष्ट चन्द्रमा की मूर्ति के समान, जो रात्रि मेरे साथ स्वच्छन्दता पूर्वक रति–क्रीड़ाओं द्वारा क्षणभर के समान व्यतीत की गयी थी, विरह के कारण विशाल उन्हीं रात्रियों को गर्म अश्रुओं से व्यतीत करती हुई (उस मेरी प्रिया को शीघ्र ही तुम देखोगे)।

'चन्द्रिका'– अपने पति को कुबेर द्वारा दिए गए शाप से उत्पन्न, दीर्घकालिक मानसिक कष्ट के कारण अत्यधिक दुर्बल हुई यक्षिणी विरह की शय्या पर एक ही करवट से लेटी हुई, हे मित्र मेघ! तुम्हें पूर्व दिशा के क्षितिज में क्षणभर के लिए दिखायी देने वाली

चन्द्रमा की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी एक कला के समान दिखायी देगी अर्थात् मेरे वियोग में इतनी अधिक दुर्बल हो गयी होगी।

इसके अतिरिक्त उस मेरी प्रिया ने पूर्व के संयोगकाल में, जो रात्रियाँ मेरे साथ स्वच्छन्दतापूर्वक रतिक्रियाओं को सम्पन्न करते हुए क्षणभर के समान व्यतीत की थीं, विरह के कारण अत्यधिक लम्बी उन्हीं रातों को सम्प्रति वियोगकाल में वह, उष्ण आँसुओं के साथ बिता रही होगी। इसप्रकार की विशेषताओं वाली वह प्रिया तुम्हें शय्या पर पड़ी हुई दिखायी देगी, ऐसा मैं मानता हूँ।

विशेष–(i) कष्ट दो प्रकार के होते हैं। **प्रथम**, मानसिक कष्ट (आधि) **द्वितीय**, शारीरिक कष्ट ज्वरादि (व्याधि)। कवि ने यहाँ यक्षिणी में प्रथम अर्थात् मनोव्यथा की कष्टकारी स्थिति का उल्लेख किया है। उक्त दोनों ही कष्टों में व्यक्ति दुबला होता चला जाता है।

(ii) शारीरिक निर्बलता की अधिकता के कारण यहाँ कवि ने उसे एक करवट से ही पड़े–पड़े रात्रि को व्यतीत करने वाली कहा है, क्योंकि यक्षिणी वस्तुतः अपनी शारीरिक दुर्बलता की अधिकता के कारण दूसरी करवट बदलने में समर्थ ही नहीं है।

(iii) यक्षिणी के दूसरी करवट न बदलने में कुछ विद्वानों ने अन्य कल्पना भी की है– क्योंकि वह अपने प्रियतम के चिन्तन में इतनी अधिक डूब जाती है, जिससे अपने शारीरिक कष्ट को भूलकर वह दूसरी करवट ही नहीं ले पाती है, किन्तु इनमें प्रथम सम्भावना अधिक दयनीय होने से हृदयद्रावक है, अतः वही उपयुक्त प्रतीत होती है।

(iv) कवि ने यहाँ विरहिणी यक्षिणी की उपमा पूर्व दिशा के क्षितिज पर क्षणभर के लिए उदित हुई, कलामात्र अवशिष्ट चन्द्रमा से दी है, जो उसकी दयनीय शारीरिक स्थिति अर्थात् निर्बलता, तनुता आधिक्य के साथ लावण्य को अभिव्यंजित करने में सहायक रही है।

(v) प्रस्तुत उपमा द्वारा कवि का सौर विज्ञान या ज्योतिष विज्ञान विषयक गहन ज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है।

(vi) कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की चन्द्रकला की विशेषता है कि पूर्व दिशा में क्षणभर के लिए पतली सी क्षितिज[1] पर ही दृष्टिगोचर होती है। कवि की प्रस्तुत उपमा द्वारा विरहिणी यक्षिणी का दुर्बलता-तिशय अभिव्यंजित हो रहा है।

(vii) प्रस्तुत श्लोक में उपमालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(viii) यह शाश्वत एवं मनोवैज्ञानिक सत्य है कि प्रेमीजनों के संयोगकाल में दिन और रात दोनों ही क्षण के समान प्रतीत होते हैं, जबकि वे ही वियोग के समय में इतने लम्बे हो जाते हैं कि काटे नहीं कट पाते हैं। इस समय यक्ष–दम्पति की भी यही स्थिति है।

(ix) उपर्युक्त श्लोक में कवि ने विरह की 'कार्श्यावस्था' नामक पंचम स्थिति का सुन्दर चित्रण किया है।

(x) काव्यकार कालिदास की उपमाओं की विशेषता रही है कि उनकी उपमाएँ लिंगसाम्य आदि के कारण अर्थाभिव्यक्ति में पूर्णतया सहायक एवं सहृदयाह्लादिनी रही हैं। सम्भवतः इसीलिए समालोचकों ने उनकी प्रशंसा में 'उपमा कालिदास्य' जैसे विरुद का प्रयोग किया है। प्रस्तुत श्लोक इसका सुन्दर निदर्शन है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **प्राचीमूले**– प्राच्याः मूलम्, तस्मिन्।

(ii) **आधिक्षामाम्**– आधिना क्षामा, ताम्, आ+ √धा+कि, आधि।

(iii) **विरहशयने**– विरहे शयनं, तस्मिन्, सप्तमी तत्पुरुष।

(iv) **सन्निषण्णैकपार्श्वाम्**– सन्निषण्णम् एवं पार्श्वं यस्याः, सा, ताम्, सम्यक् निषण्णम्, इति, सम्+नि+ √सद्+क्त, सन्निषण्णम्।

(v)**कलामात्रशेषाम्**–कला एव,कलामात्रम् शेषः, यस्याः साः,ताम्।

(vi) **इच्छारतैः**– इच्छया कृतानि रतानि तैः, **रतः**– √रम्+क्त

---

[1]. पृथ्वी की आठों दिशाओं में दूर, जहाँ पर पृथ्वी और आकाश दोनों मिले हुए दिखायी देते हैं, विद्वानों द्वारा उन्हें 'क्षितिज' संज्ञा प्रदान की गयी है।

(vii) विरहमहतीम्– विरहेण महती, ताम्, महत्+ङीप्, द्वि.ए.व।

(viii) यापयन्तीम्– √या+णिच्+शतृ+ङीप्, द्वितीया, एकवचन।

संजीवनी टीका– पुनस्तामेव विशिनष्टि 'आधिक्षामाम् इत्यादि–भिश्चतुर्भि' आधिक्षामामिति। आधिना मनोव्यथया। क्षामां कृशाम्। 'पुंस्याधिर्मानसी व्यथा' इत्यमरः। क्षायतेः। कर्तरि क्तः। 'क्षायो मः' इति निष्ठा तकारस्य मकारः। विरहे शयनं तस्मिन्विरहशयने। पल्लवादिरचित इत्यर्थः। सन्निषण्णमेकं पार्श्वं यस्यास्तां हिमांशोस्तुनं मूर्तिमिव स्थिताम्। तथा या रात्रिर्मया सार्धमिच्छया कृतानि रतानि तैः। शाकपार्थिवादित्वा–न्मध्यमपदलोपी समासः। क्षण इव नीता यापिता तां तज्जातीयामेव रात्रिं विरहेण महतीं महत्त्वेन प्रतीयमानामुष्णैरश्रुभिर्यापयन्तीम्। यातेर्ण्यन्ता–च्छतृप्रत्ययः। 'अर्तिह्री' इत्यादिनां पुमागमः। स एव कालः सुखिनामल्पः प्रतीयते। दुःखिनां तु विपरीत इति भावः। एतेन कार्श्यावस्थोक्ता।।29।।

अवतरणिका–इसके बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अपनी विरहिणी प्रियतमा की वियोगावस्था की अन्य दयनीय दशा का उल्लेख करते हुए कहता है कि–

पादानिन्दोरमृतशिशिरांजालमार्गप्रविष्टान्
पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं सन्निवृत्तं तथैव।
चक्षुःखेदात् सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिश्छादयन्तीं,
साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम्।।30।।

अन्वय– जाल–मार्ग–प्रविष्टान्, अमृत–शिशिरान्, इन्दोः पादान्, पूर्व–प्रीत्या अभिमुखम् . गतम्, तथैव सन्निवृत्तम् चक्षुः खेदात् सलिल–गुरुभिः पक्ष्मभिः छादयन्तीम्, साभ्रे अह्नि न प्रबुद्धाम् न सुप्ताम् स्थल–कमलिनीम् इव (सा प्रिया तव दृष्टौ पतिष्यति)।।30।।

अनुवाद– वातायनों की जालियों के मार्ग में प्रविष्ट, अमृत के समान शीतल, चन्द्रमा की किरणों के समक्ष, पूर्व के प्रेम के कारण गयी हुई, किन्तु शीघ्र ही वापस लौटी हुई दृष्टि को, दुःख के कारण अश्रुओं से भारी पलकों से ढ़कती हुई, मेघों से आच्छादित दिन में न

खिली हुई एवं न ही मुरझायी हुई स्थल की कमलिनी के समान (वह मेरी प्रिया शीघ्र ही तुम्हारी दृष्टि में पड़ेगी)।

'चन्द्रिका'– हे मित्र मेघ! जब तुम मेरे घर के वातायन पर स्थित होकर, अन्दर मन्द विद्युत्‌रूपी दृष्टि से देखोगे तो तुम्हें मेरी प्रिया, वातायनों की जालियों के मार्ग से प्रवेश करने वाली, अमृत के समान शीतल चन्द्रमा की किरणों के प्रति, पूर्व में संयोगावस्था के परिचय एवं प्रेम के कारण उनकी ओर प्रेषित दृष्टि वाली, किन्तु अगले ही क्षण निराशभाव से लौटकर आने वाली दृष्टि से युक्त दिखायी देगी, साथ ही, इस समय उसकी स्थिति तुम्हें इसप्रकार की स्थल कमलिनी के समान प्रतीत होगी, जो मेघों से ढ़के हुए दिन में न तो पूरी तरह खिली होती है और न ही पूर्णरूप से मुरझा ही पाती है।

विशेष–(i) यक्षिणी की वियोगावस्था को मेघों से आच्छादित दिन की कमलिनी के साथ उपमा के माध्यम से कवि ने उसकी दयनीय स्थिति का चित्र ही साक्षात्‌रूप से सहृदय के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है। कवि की कल्पनाशीलता एवं सटीक उपमाप्रयोग दर्शनीय है।

(ii) कवि प्रसिद्धि के अनुसार चन्द्रमा की किरणों को यहाँ पर शीतल तथा अमृतमयी वर्णित किया है। संयोगावस्था में यही चन्द्रमा प्रेमीजनों को असीम आनन्द प्रदान करता है, जबकि वियोगावस्था में यही अंगारवर्षी हो जाता है। इसीलिए यक्षिणी ने यहाँ पर अपनी दृष्टि को अगले ही क्षण उस ओर से हटा लिया है।

(iii) वस्तुतः यक्षिणी ने संयोगावस्था के अपने अनुभव के आधार पर ही अत्यन्त उत्साह तथा आशा के साथ चन्द्रमा की किरणों के प्रति अपनी दृष्टि का संप्रेषण किया था, जहाँ से उसे निराशा ही हाथ लगी है।

(iv) प्रस्तुत उपमा में कवि ने कमलिनी को प्रिया तथा सूर्य को प्रियतम के रूप में वर्णित किया है। इसीलिए उसका मुख पूर्णरूप से दृष्टिगोचर न होने से वह पूरी तरह विकसित नहीं हो पाती है।

(v) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने विरह की 'विषयद्वेष' नामक षष्ठ अवस्था का मार्मिक चित्रण किया है।

(vi) यहाँ प्रयुक्त 'अमृतशिशिरान्' में लुप्तोपमा तथा 'स्थल–कमलिनी इव' में श्रौती उपमा का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(vii) प्रस्तुत श्लोक में कमलिनी की सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्थिति का वर्णन करने के कारण महाकवि का वनस्पति विज्ञान विषयक गहन ज्ञान भी अभिव्यंजित हो रहा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **सुप्ताम्**– √स्वप्+क्त+टाप्।

(ii) **जालमार्गप्रविष्टान्**– जालानां मार्गाः तेभ्यः प्रविष्टः, तान् ।

(iii) **अमृतशिशिरान्**– अमृतम् इव शिशिराः, तान् ।

(iv) **अभिमुखम्**– मुखं प्रति इति, **गतम्**– √गम्+क्त।

(v) **सन्निवृत्तम्**– सम्+नि+ √वृत्+क्त, वापस आयी हुई।

(vi) **प्रबुद्धाम्**– प्र+ √बुध्+क्त +टाप्, जागी हुई को।

(vii) **छादयन्तीम्**– √छद्+णिच्+शतृ+टाप्, ढ़कती हुई।

(viii) **स्थलकमलिनीम्**– स्थले स्थलस्य वा कमलिनी ताम्।

(ix) **पूर्वप्रीत्या**– पूर्वा चासौ प्रीतिः तया, √प्रीञ्+क्तिन्।

(x) **खेदात्**– √खिद्+घञ्, पंचमी, एक वचन, दुःख के कारण।

(xi) **सुप्ताम्**– √स्वप्+क्त+टाप् सोयी हुई को।

संजीवनी टीका– पादानिति। जालमार्गप्रविष्टान् गवाक्षविवर–गतानमृतशिशिरानिन्दोः पादान् रश्मीन् पूर्वप्रीत्या पूर्वस्नेहेन। पूर्ववदा–नन्दकरा भविष्यन्तीति बुद्ध्येति भावः। अभिमुखं यथा तथा गतं तथैव सन्निवृत्तं यथागतं तथैव प्रतिनिवृत्तम्। तदा तेषामतीव दुःसहत्वादिति भावः। चक्षुर्दृष्टिं खेदात्सलिलगुरुभिरश्रुदुर्भरैः पक्ष्मभिश्छादयन्तीम्। अतएव साभ्रे दुर्दिनेऽह्नि दिवसे न प्रबुद्धां मेघावरणादविकसितां न सुप्तामहरि–त्यमुकुलिताम्। उभयत्रापि नञर्थस्य न शब्दस्य सुप्सुपेति समासः। स्थलकमलिनीमिव स्थिताम्। एतेन विषयद्वेषाख्या षष्ठी दशासूचिता।।30

अवतरणिका– इसके बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अपनी प्रियतमा की विरहिणी दशा का अत्यन्त कारुणिक चित्रण करते हुए फिर से कहता है कि–

निःश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्तीं
शुद्धस्नानात् परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम्।
मत्सम्भोगः कथमुपनयेत् स्वप्नजोऽपीति निद्रा–
माकाङ्क्षन्तीं नयनसलिलोत्पीड़रुद्धावकाशाम्।।31।।

अन्वय– शुद्ध–स्नानात् परुषम्, नूनम् आगण्डलम्बम् अलकम्, अधर–किसलय–क्लेशिना निःश्वासेन विक्षिपन्तीम्, स्वप्नजः अपि मत् सम्भोगः कथम् उपनयेत्, इति, नयन–सलिल–उत्पीड–रुद्ध–अवकाशाम् निद्राम् आकाङ्क्षन्तीम् (सा मम प्रिया शीघ्रमेव तव दृष्टौ निपतिष्यति)।।31।।

अनुवाद– शुद्ध स्नान के कारण रूखे, (परुष) **निश्चय ही, कपोलों तक लटकने वाले बालों को, नूतन पल्लव के समान ओष्ठ को, संतप्त करने वाले, निःश्वासों से हिलाती हुई एवं स्वप्न में ही मेरा सम्भोग किसी प्रकार प्राप्त हो जाए, इसप्रकार नेत्रों के अश्रु–प्रवाह से रोके गए स्थान वाली, निद्रा की इच्छा करती हुई** (वह मेरी प्रिया शीघ्र ही तुम्हारी दृष्टि में पड़ेगी)।

'चन्द्रिका'– हे मित्र मेघ! मेरे घर में दृष्टि डालने पर, वहाँ तेलादि से रहित स्नान के कारण रुखे तथा शृंगार के अभाव में गालों तक लटकने वाले, केशों वाली, मेरी प्रिया तुम्हें दिखायी देगी, जिसके बाल, अधरोष्ठों को तपा देने वाले उसके गर्म निःश्वासों से थोड़ा हिल रहे होंगे तथा तह किसी प्रकार स्वप्न में ही मेरा सम्भोग प्राप्त हो जाए, इस भावना से अपने नेत्रों में उमड़ रहे अश्रुओं को रोकने वाली तथा निद्रा के आने की अभिलाषा से युक्त होगी।

विशेष–(i) यहाँ प्रयुक्त शुद्ध स्नान से अभिप्राय उबटन, तेल आदि के प्रयोग के अभाव में किए गए स्नान से ग्रहण करना चाहिए।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने प्रोषितभर्तृका नायिका का सुन्दर एवं हृदयहारी, मनोरम चित्रण किया है।

(iii)केशों के बाँधने आदि संस्कार के अभाव में उनका कपोलों पर लटकना स्वाभाविक है, कवि की चित्रात्मक शैली दर्शनीय है।

(iv) कुछ विद्वानों ने शुद्ध स्नान से अभिप्राय मासिक धर्म के बाद किए जाने वाले, स्नान से ग्रहण किया है, जो प्रकरण के अनुसार संगत प्रतीत नहीं होता है।

(v) इसीप्रकार यहाँ प्रयुक्त 'मत्संभोग' से अभिप्राय मिलन के अभाव में स्वप्न में दिखायी देने वाली रतिक्रिया से ग्रहण करना चाहिए, केवल कल्पना में की गयी सम्भोग–क्रिया से नहीं।

(vi) वस्तुतः निद्रा के आने पर ही स्वप्न का आगमन सम्भव है, इसीलिए यक्षिणी यहाँ पर वेदना से नेत्रों में प्रवाहित होने वाले, अश्रुओं को रोकने का प्रयास कर रही है।

(vii) प्रस्तुत श्लोक में काव्यकार अपने पूर्ववर्ती नाटककार से प्रभावित प्रतीत होता है, क्योंकि उन्होंने भी अश्रुओं की उपस्थिति में स्वप्न न आने की बात का उल्लेख किया है।[1]

(viii) मुख से निकला हुआ गर्म श्वास ऊपर के ओष्ठ की अपेक्षा अधर को अधिक म्लान करता है। इसी दृष्टि से कवि ने यहाँ 'अधरकिसलयक्लेशिना' विशेषण का प्रयोग किया है।

(ix) 'अधरकिसलयक्लेशिना' पद में लुप्तोपमालंकार का स्वाभाविक सौन्दर्य दर्शनीय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i)उपनमेत्–उप+ √नम्+लिङ्,प्र.पु.ए.।

(ii) शुद्धस्नानात्– शुद्धं च तत् स्नानं, तस्मात्, कर्मधारय।

(iii) आगण्डलम्बम्– आ गण्डाभ्यामिति आगण्डम्, आगण्डं लम्बः, तम्, केवल समास। कपोलों तक लटके हुए।

---

1 . शाकुन्तलम्– 6/22। विक्रमोर्वशीयम्– 2/10 ।

(iv) **अधरकिसलयक्लेशिना**– अधरं किसलम् इव, तत् क्लिश्नाति इति तेन, अधरकिसलय–√क्लिश्+णिनि, तृतीया, एकवचन।

(v) **विक्षिपन्तीम्**– वि+ √क्षिप्+शतृ+ङीप्, द्वितीया, एकवचन।

(vi) **स्वप्नजः**–स्वप्ने जातः, इति। स्वप्न+ √जनी प्रादुर्भावे+ड।

(vii) **उपनमेत्**– उप+ √नम्+विधिलिङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(viii) **आकाङ्क्षन्तीम्**– आ+ √कांक्ष्+शतृ+ङीप्, द्वितीया, ए.व.।

(ix) **नयनसलिलोत्पीड़रुद्धावकाशाम्**– नयनयोः सलिलानि, तेषां उत्पीडः, तेन रुद्धः अवकाशः, यस्याः ताम्, बहुव्रीहि, उत्+ √पीड्+घञ्।

संजीवनी टीका– **निःश्वासेति। शुद्धस्नानात्तैलादिरहितस्नानात् परुषं कठिनस्पर्शं नूनमागण्डलम्बम्। सुप्सुपेति समासः। अलकं चूर्णकुन्तलान्। जातावेकवचनम्। अधरकिसलयं क्लेशयति क्लिश्नातीति वा तेन तथोक्तेन। उष्णेनेत्यर्थः। क्लिश्यतेर्ण्यन्तात् क्लिश्नातेरण्यन्ताद्वा ताच्छील्ये णिनिः। निःश्वासेन विक्षिपन्तीं चालयन्तीम्। तथा स्वप्नजोऽपि स्वप्नावस्थाजन्योऽपि साक्षात् संभोगासम्भवादिति भावः। मत्संभोगःकथं केनापि प्रकारेणोपनयेदागच्छेत्। इत्याशयेनेति शेषः। इति नैवोक्तार्थ-त्वादप्रयोगः। 'प्रयोगे चापौनरुक्त्वम्' इत्यालंकारिकाः। प्रार्थनायां लिङ्। नयनसलिलोत्पीडेनाश्रुप्रवृत्त्या रुद्धावकाशाक्रान्तस्थानाम्। दुर्लभामित्यर्थः। निद्रामाकाङ्क्षन्तीम्। स्वप्नहेतुत्वादिति भावः। अत्राश्रुविसर्जनेन लज्जा-त्यागो व्यज्यते।।31।।**

अवतरणिका–इसके बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अपनी प्रियतमा की विरहदशा का कारुणिक वर्णन करते हुए पुनः कहता है कि–

आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा
शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम्।
स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत् सारयन्तीं
गण्डाभोगात् कठिनविषमामेकवेणीं करेण।।32।।

अन्वय–आद्ये विरह–दिवसे दाम हित्वा, या शिखा बद्धा, शापस्य अन्ते विगलित–शुचा मया उद्वेष्टनीयाम्, स्पर्श–क्लिष्टाम्, कठिन–विषमाम् एकं–वेणीम् ताम् अयमित–नखेन करेण गण्ड–आभोगात् असकृत् सारयन्तीम् (सा साध्वी शीघ्रमेव तव दृष्टौ निपतिष्यति।)।।32।।

अनुवाद– **विरह के प्रथम दिन पुष्पमाला का परित्याग करके, जो वेणी बाँधी गयी थी, शाप का अन्त होने पर, शोकरहित मेरे द्वारा खोली गयी, स्पर्श करने में कष्ट प्रदान करने वाली, कठोर एवं उलझी हुई एक चोटीरूप उसे, बिना कटे हुए नाखूनों वाले हाथ से, कपोल प्रदेश से बार–बार हटाती हुई** (वह पतिव्रता शीघ्र ही तुम्हारी दृष्टि में पड़ेगी)।

'चन्द्रिका'– हे मेघ! मेरी प्रिया ने उस एक चोटी को इतनी दीर्घकालीन अवधि के बाद, आज भी उसी रूप में इस आशा से धारण किया होगा कि शाप की समाप्ति होने पर शोक से रहित हुआ मैं ही अपने हाथों से इसे खोलूँगा। इसी क्रम में चोटी की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि– **प्रथम**, जिस चोटी की पुष्पमाला को पहले दिन ही त्याग दिया गया था। **द्वितीय**, इतने दिनों तक शृंगार आदि न किए जाने से जो चोटी स्पर्श में कष्टदायी अर्थात् कठोर तथा उलझी हुई हो गयी होगी। **तृतीय**, एक वेणीरूप में विद्यमान, जिसे मेरी प्रिया बिना काटे गए नाखूनों वाले अपने हाथ से अपने गालों से बार–बार हटा रही होगी। इसप्रकार की विशेषताओं वाली मेरी प्रिया को हे मेघ! तुम मेरे घर में देखोगे।

विशेष–(i) प्राचीन भारतीय परम्परा का उल्लेख किया गया है, जिसके अनुसार पति के विदेश जाने पर पत्नी अपनी चोटी का शृंगार करना बन्द कर देती थी अर्थात् पुष्पादि का प्रयोग बालों में नहीं करती थी तथा विदेश जाने से पहले स्वयं पति ही उसकी एक वेणी को कस कर बाँध देता था। इससे तात्कालिक स्त्रियों की समाज में स्थिति का चित्र भी प्रस्तुत किया गया है।

(ii) यक्षिणी का चित्रण कवि ने प्रोषितभर्तृका नायिका के रूप में किया है। हारीत स्मृति इस विषय में प्रमाणरूप में प्रस्तुत की जा सकती है– **'न प्रोषिते तु संस्कुर्यान्न वेणीं च प्रमोचयेत्।'** हारीतस्मृति।

(iii) प्रस्तुत श्लोक में भी कवि नाटककार कालिदास से प्रभावित प्रतीत होता है, क्योंकि शाकुन्तलम् में भी उन्होंने नायिका शकुन्तला को 'एकवेणीधरा' चित्रित किया है।[1]

(iv) कठोर तथा उलझी हुई वेणी को अपने हाथों से बार–बार हटाने के कारण चिन्ता में डूबी हुई, व्याकुल यक्षिणी की 'चिन्तविभ्रम' नामक वियोगावस्था का उल्लेख किया गया है।

(v) यक्षिणी की वियोगावस्था का स्वाभाविक चित्रण करने के कारण स्वाभावोक्ति अलंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) हित्वा– √हा+क्त्वा, छोड़कर।

(ii) **विरहदिवसे–** विरहस्य दिवसः, तस्मिन्, षष्ठी तत्पुरुष।

(iii) **एकवेणीम्–** एका चासौ वेणी, ताम्, कर्मधारय।

(iv) **कठिनविषमाम्–** कठिना चासौ विषमा, कर्मधारय।

(v) **सारयन्तीम्–** √सृ+णिच्+शतृ+ङीप्, द्वितीया, एकवचन।

(vi) **आद्ये–** प्रथमे, आदौ भवः, इति तस्मिन्, आदि+यत्।

(vii) **बद्धा–** √बन्ध्+क्त+टाप्, **असकृत्–** न सकृत् इति।

(viii) **विगलितशुचा–** विगलिता शुक् यस्याः सा, तया।

(ix) **उद्वेष्टनीयाम्–** उद्गतं वेष्टनं यस्याः, सा, उद्वेष्टना, उत्+ √विष्ट्+अनीयर्+टाप्, द्वितीया, एकवचन, खोली जानी वाली को।

(x) **स्पर्शक्लिष्टाम्–** स्पर्शे क्लिष्टा, ताम्, स्पर्श में कष्टकारी।

(xi) **अयमितनखेन–** अकर्तितेन नखेन, दीर्घनखेन वा। न यमिताः इति अयमिता, नखाः यस्य सः, तेन, नञ्+ √यम्+णिच्+क्त।

संजीवनी टीका– आद्य इति। आद्ये विरहदिवसे दाम मालां हित्वा त्यक्त्वा या शिखा बद्धा ग्रथिता शापस्यान्ते विगलितशुचा वीत–

---

[1] वसने परिधूसरे वसाना धृतैकवेणिः। शाकुन्तलम्– 7/21।

शोकेन मयोद्वेष्टनीयां मोचनीयां स्पर्शक्लिष्टाम्। स्पर्शे सति मूलकेशेषु सव्यथामित्यर्थः। कठिना च सा विषमा निम्नोन्नता च ताम् खंजकुब्जा-दिवदन्यतमस्य प्राधान्यविवक्षया 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' इति समासः। एकवेणीमेकीभूतवेणीम्। 'पूर्वकाल'–इत्यादिना तत्पुरुषः। तां शिखाम्। अयमिता अकर्तितोपान्ता नखा यस्य तेन करेण गण्डाभोगात् कपोलविस्तारादसकृन्मुहुर्मुहुः सारयन्तीमपसारयन्तीम्। 'तां पश्य' इति पूर्वेण सम्बन्धः। असकृत्सारणाच्चित्तविभ्रमदशा सूचिता।।32।।

अवतरणिका– इसके बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अपनी प्रियतमा की विरहदशा का कारुणिक वर्णन करते हुए, फिर से कहता है कि–

सा संन्यस्ताभरणमबला पेशलं धारयन्ती
शय्योत्संगे निहितमसकृद् दुःखदुःखेन गात्रम्।
त्वामप्यस्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं,
प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा।।33।।

अन्वय– अबला संन्यस्ता–आभरणम् असकृत् दुःख–दुःखेन शय्या–उत्संगे निहितम्, पेशलम् गात्रम् धारयन्ती, सा त्वाम् अपि नव–जल–मयम् अस्रम् अवश्यम् मोचयिष्यति, प्रायः आर्द्र–अन्तरात्मा सर्वः करुणा–वृत्तिः भवति।।33।।

अनुवाद– निर्बल एवं आभूषणों से रहित, बार–बार कठिनाई से शय्या पर रखे हुए, कोमल शरीर को धारण करती हुई, वह मेरी प्रिया, तुम्हें भी नूतन जल के रूप में अश्रुओं को बहाने के लिए, अवश्य ही बाध्य कर देगी, क्योंकि प्रायः कोमल हृदय वाले सभी लोग दयालु स्वभाव के ही होते हैं।

'चन्द्रिका'– यक्ष कहता है कि वह मेरी प्रिया, मेरे वियोग में दुर्बल हो गयी होगी तथा उसने अपने आभूषणों का भी परित्याग कर दिया होगा। यक्षिणी की शारीरिक निर्बलता के आधिक्य का उल्लेख

करते हुए महाकवि कहते हैं कि– अपने कोमल शरीर को वह अत्यन्त कठिनाई के साथ किसी प्रकार शय्या पर रखकर, धारण किए हुए होगी। उसकी इस हृदयद्रावक दयनीय स्थिति को देखकर हे मेघ! निश्चय ही तुम भी नए जल के रूप में अश्रुओं को बहाने के लिए बाध्य हो जाओगे। प्रस्तुत कथन में हेतु को प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं कि– क्योंकि संसार में प्रायः देखा जाता है कि जो लोग मृदुल हृदय वाले होते हैं, वे सभी दयावान् भी अवश्य होते हैं।

विशेष–(i) कालिदास के समय में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का सुन्दर चित्रण किया गया है, क्योंकि उनके लिए पति की अनुपस्थिति में आभूषणों को धारण करने का निषेध किया गया है।

(ii) यद्यपि मल्लिनाथ ने आभूषण धारण न करने में यक्षिणी की कृशता को कारण माना है, क्योंकि अंगों के दुर्बल होने से उन्हें वह धारण ही नहीं कर पा रही है, जो संगत प्रतीत नहीं होता है।

(iii) मेघ को यहाँ मानवीय संवेदनाओं से युक्त पूर्णतया दयालु स्वभाव[1] का चित्रित किया गया है, क्योंकि दूसरे के दुःख को देखकर दयालु एवं कोमल हृदय ही अपने आँसुओं को रोक नहीं पाता है।

(iv) मेघ के नवीन जलों में अश्रुओं की महाकवि की परिकल्पना अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है।

(v) प्रस्तुत श्लोक में पूर्व में कहे गए विशेष कथन का, अन्तिम चतुर्थ चरण में कहे गए सामान्य कथन से समर्थन करने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

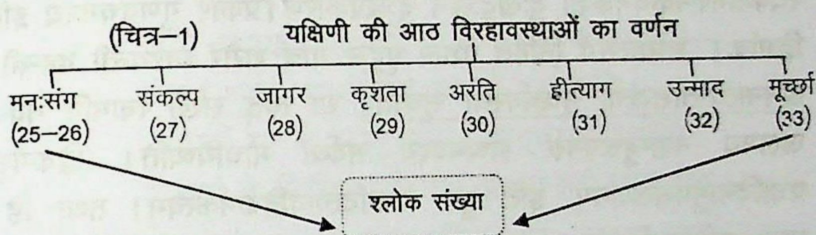
(vi) श्लोक संख्या 27 से 33 तक में कवि ने विरह की दस अवस्थाओं[2] में से आठ अवस्थाओं का सुन्दर एवं मनमोहक चित्र प्रस्तुत

---

[1]. आर्द्राऽन्तरात्मा।

[2]. दृङ्मनः संगसंकल्पा जागरः कृशताऽरतिः।
ह्रीत्यागोन्मादमूर्च्छान्ता इत्यनंगदशा दश।।

किया है। यहाँ केवल प्रथम **'नयन प्रीति'** तथा अन्तिम **'मरण'** अवस्थाओं का ही त्याग किया गया है। इन आठ अवस्थाओं को श्लोकों के क्रम से इसप्रकार भी संक्षेप में समझा जा सकता है–



(vii) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने 'दुःखदुःखेन गात्रं धारयन्ती' इत्यादि वाक्यांश में अशक्त होने के कारण नायिका की 'मूर्च्छा' नामक कामदशा का वर्णन किया है।

(viii) यक्षिणी की विरहिणी दशा का विस्तार से वर्णन करने का कवि का उद्देश्य यही है कि 'दयार्द्र होकर मेघ सन्देश लेकर जल्दी से अलकानगरी जाएगा, जिसे सुनकर यक्षिणी आश्वस्त होकर अपने जीवन को धारण कर पाएगी।'

(ix)श्लोक के अन्तिम चरण से दयालु मानव स्वभाव के विषय में कवि का गहन अनुभव भी अभिव्यक्त हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **असकृत्**– न सकृत्, इति।

(ii) **अबला**– न विद्यमानम् बलं यस्याः सा, बहुव्रीहि समास।

(iii) **संन्यस्ताभरणम्**– संन्यस्तानि आभरणानि येन तत् । आभ्रियते अनेन इति आभरणम्। **आभरणम्**– आङ् +√भृ+ल्युट्।

(iv) **शय्योत्संगे**– शय्यायाः उत्संगः, तस्मिन्, षष्ठी तत्पुरुष।

(v) **निहितम्**– नि+ √धा+क्त, **उत्संगः**– उद्+ √संज्+घञ्।

(vi) **धारयन्ती**– √धृ+णिच्+शतृ+ङीप्, धारण करने वाली।

(vii) **नवजलमयम्**– नवं च तत् जलम्, कर्मधारय।

(viii) **मोचयिष्यति**– √मुच्+णिच्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(ix) **भवति**– √भू+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन। होता है।

(x) **करुणावृत्तिः**– करुणामयी वृत्तिः यस्य सः, बहुव्रीहि।

(xi) **आर्द्राऽन्तरात्मा**– आर्द्रः अन्तरात्मा यस्य सः, बहुव्रीहि।

संजीवनी टीका– सेति। अबला दुर्बला संन्यस्ताभरणं कृशत्वात्त्यक्ताभरणकृदनेकशो दुःखदुःखेन दुःखप्रकारेण।'प्रकारे गुणवचनस्य इति द्विर्भावः।' शय्योत्संगे निहितं पेशलं मृदुलं गात्रं शरीरं धारयन्ती वहन्ती। अनेनात्यन्ताशक्त्या मूर्च्छावस्था सूच्यते। सा त्वत् सखी त्वामपि नवजलमयं नवाम्बुरूपमस्रं बाष्पमवश्यं सर्वथा मोचयिष्यति। 'द्विकर्मसु पचादिनामुपसंख्यानम्' इति मुचेः पचादित्वादद्विकर्मकत्वम्। तथा हि। प्रायः प्रायेणार्द्रान्तरात्मा मृदुहृदयः। मेघस्तु द्रवान्तः शरीरः। सर्वः करुणा करुणामयी वृत्तिरन्तःकरणवृत्तिर्यस्य स करुणावृत्तिर्भवति। अस्मिन्नवसरे सर्वथा त्वया शीघ्रं गन्तव्यमनन्तरदशापरिहारायेति संदर्भाभिप्रायः।

ननु किमिदमादिमां चक्षुः प्रीतिमुपेक्ष्यावस्थान्तराण्येव तत्र भवान् कविरादृतवान्। उच्यते 'सम्भोगो विप्रलम्भश्च द्विधा श्रृंगार उच्यते। संयुक्तयोस्तु संभोगो विप्रलम्भो वियुक्तयोः। पूर्वानुरागमानाख्यप्रवासकरुणात्मना। विप्रलम्भश्चतुर्धा च प्रवासस्तत्र च त्रिधा। कार्यतः संभ्रमाच्छापादस्मिन् काव्ये तु शापजः। प्रागसंगतयोर्यूनोः सति पूर्वानुरंजने। चक्षुः प्रीत्यादयोऽवस्था दश स्युस्तत्क्रमो यथा। दृङ्मनः संगसंकल्पा जागरः कृशता रतिः। ह्रीत्यागोन्मादमूर्च्छान्ता इत्यनंगदशा दश। पूर्वसंगतयोरेव प्रवास इति करणात्।

न तत्रापूर्ववच्चक्षुः प्रीतिरुत्पत्तिमर्हति। हृत्संगस्य तु सिद्धस्याप्यविच्छेदोऽत्र वर्ण्यते। अन्यथा पूर्ववद्वाच्या इति तावद् व्यवस्थितेः। वैयर्थ्यादादिमां हित्वा वैरस्यादन्तिमां तथा। चक्षुः प्रीतिरिति प्रोक्तं निरुत्तरकृताननम्। चक्षुःप्रीतिर्भवेच्चित्रेष्वदृष्टचरदर्शनात्। यथा मालविकारूपमग्निमित्रस्य पश्यतः। प्रेषितानां च भर्तृणां क्व दृष्टादृष्टपूर्वता। अथवाऽत्रापि संदेहे स्वकलत्राणि पृच्छतु। किं भर्तृप्रत्यभिज्ञा स्यात् किं वैदेशिकभावना। प्रवासादागते स्वस्मिन्नित्यलं कलहैर्वृथा।' इति।।33।।

अवतरणिका–इसके बाद विरही यक्ष, अपनी प्रियतमा के अपने प्रति गहन प्रेम के विषय में आश्वस्त करते हुए, अपने मित्र मेघ से पुनः कहता है कि–

जाने सख्यास्तव मयि मनः सम्भृतस्नेहमस्मा–
दित्थं भूतां प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि।
वाचालं मां न खलु सुभगं मन्यभावः करोति
प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद् भ्रातरुक्तं मया यत्।।34।।

अन्वय– तव सख्याः मनः, मयि सम्भृत–स्नेहम्, जाने, अस्मात् अहम् ताम् प्रथम–विरहे इत्थम् भूताम् तर्कयामि सुभगम् मन्यभावः माम् वाचालम् न करोति खलु, हे भ्रातः! मया यत् उक्तम्, (तत्) निखिलम् अचिराद् ते प्रत्यक्षम् (भविष्यति)।।34।।

अनुवाद– हे मेघ! तुम्हारी सखी का मन मेरे प्रति प्रेम से आप्यायित है, मैं ऐसा मानता हूँ, इसीलिए उसे मैं प्रथम वियोग में दुर्बल हो गयी होगी, ऐसा सोचता हूँ, ध्यान रहे अपने को सौभाग्य शाली समझने का अभिमान मुझे वाचाल नहीं बना रहा है, हे भाई! मैंने जो कुछ भी तुमसे कहा है, वह सब शीघ्र ही तुम्हें प्रत्यक्ष हो जाएगा।

'चन्द्रिका'– यक्ष, अपने मित्र मेघ को सम्बोधित करके कहता है कि हे मित्र, मेघ! वस्तुस्थिति यह है कि तुम्हारी भाभी का मन मेरे प्रति प्रेम से पूर्णरूप से भरा हुआ है। इस तथ्य से परिचित होने के कारण ही मैं तुम्हें इस दीर्घकालीन एवं प्रथम बार प्राप्त हुई वियोगावस्था में उसकी इसप्रकार की दयनीय एवं दुर्बल दशा का वर्णन कर रहा हूँ।

ऐसा नहीं है कि स्वयं को सौभाग्यशाली समझने का अहंकार ही मुझे तुम्हें यह सब कुछ कहने के लिए प्रेरित कर रहा है। यदि तुम्हें मेरी बात पर विश्वास नहीं हो रहा है, तो कोई बात नहीं है, क्योंकि जब तुम मेरा सन्देश लेकर अलकानगरी जाओगे, तो मुझे विश्वास है कि तुम्हें वह मेरी प्रिया ठीक उसी अवस्था वाली देखने को

मिलेगी, जैसी मैने वर्णित की है। इसप्रकार स्वयं अपने नेत्रों से देखने के बाद तुम्हें मेरी बात पर विश्वास स्वतः ही हो जाएगा।

विशेष–(i) पत्नी के प्रति पति के गहन विश्वास के आधार पर ही उक्त बातें कही गयी हैं, क्योंकि यक्ष को यक्षिणी के अपने प्रति एकनिष्ठ प्रेम के सम्बन्ध में पूरा विश्वास है, गृहस्थ का मूल आधार ही वस्तुतः पति–पत्नी का परस्पर दृढ़ विश्वास होता है, यहाँ पर यह भी अभिव्यंजित हो रहा है।

(ii) यक्ष–यक्षिणी के परस्पर आदर्शप्रेम की अभिव्यक्ति हुई है।

(iii) अलकानगरी में यक्षिणी की विरहिणी दशा के कथन क्रम में यक्ष के मन में विचार आया कि मैं अपनी प्रिया यक्षिणी के विषय में मेघ से कहीं अधिक ही तो नहीं कह गया हूँ? इसलिए कहीं यह मुझे वाचाल तो नहीं समझ लेगा। इसी शंका को दृष्टि में रखते हुए उक्त श्लोक का कथन किया गया है।

(iv) यक्ष ने प्रेम के विषय में स्वयं को सौभाग्यशाली कहा है, क्योंकि अपने जीवन में केवल वे ही लोग सौभाग्यशाली होते हैं, जिन्हें पत्नी से एकनिष्ठ प्रेम की प्राप्ति होती है।

(v) प्रस्तुत श्लोक में तृतीय चरण के अर्थ के प्रति चतुर्थ चरण के अर्थ को प्रस्तुत करने के कारण यहाँ 'वाक्यार्थ हेतुता' नामक काव्यलिंग अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(vi) यक्ष की उक्ति में 'प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्' की भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i)**उक्तम्**– √वच्+क्त, प्रथमा, एकव.।

(ii) **सम्भृतस्नेहम्**– सम्भृतः स्नेहः यस्मिन् तत्, बहुव्रीहि। **सम्भृतः**– सम्+ √भृ+क्त, **स्नेहः**– √स्निह्+घञ्, प्रेम से भरा हुआ।

(iii) **जाने**– √ज्ञा+लट्, आत्मने, उत्तमपुरुष, एकवचन।

(iv) **प्रथमविरहे**– प्रथमः, चासौ विरहः, तस्मिन्, कर्मधारय।

(v) **इत्थंभूताम्**–अनेन प्रकारेण इति इत्थम्, √भू+क्त+टाप्, भूता।

(vi) तर्कयामि– √तर्क्+लट्, उत्तमपुरुष, एकवचन, सोचता हूँ।

(vii) सुभगम्मन्यभावः–आत्मानं सुभगं मन्यते, इति, तस्य भावः।

(viii) वाचालम्– √वाच्+आलच्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

(ix) प्रत्यक्षम्– अक्षम् प्रतिगतम्, इति, प्रति+अक्षि+टच्

संजीवनी टीका– नन्वीदृशीं दशामापन्नेति कथं त्वया निश्चि–तमत आह– जान इति। हे मेघ! तव सख्या मनो मयि संभृतस्नेहं संचितानुरागं जाने। अस्मात् स्नेहज्ञानकारणात् प्रथमविरहे। प्रथमग्रहणं दुःखातिशयद्योतनार्थम्। तां त्वत्सखीमित्थंभूतां पूर्वोक्तावस्थामापन्नां तर्कयामि। ननु सुभगमानिनामेष स्वभावो यदात्मनि स्त्रीणामनुरागप्रकटनं तत्राह– वाचालमिति। सुभगमात्मानं मन्यत इति सुभगंमन्यः।

'आत्ममाने खश्च' इति खश्प्रत्ययः। 'अरुर्द्विषद–' इत्यादिना मुमागमः। तस्य भावः सुभगंमन्यभावः सुभगमानित्वं मां वाचालं बहुभाषिणं न करोति खलु। सौन्दर्याभिमानितां न प्रकटयामीत्यर्थः। 'स्याज्जल्पाकस्तु वाचालो वाचाटो बहुगर्ह्यवाक्' इत्यमरः। 'आलजांटचौ बहुभाषिणि इत्यालच् प्रत्ययः। किन्तु हे भ्रातः! मयोक्तं यत् आधिक्षामाम् इत्यादि तन्निखिलं सर्वमचिराच्छीघ्रमेव ते तव प्रत्यक्षम्। भविष्यतीति शेषः।।34।।

अवतरणिका–इसके बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से, उसे प्रथम बार देखने वाली यक्षिणी के नेत्र की शोभा का आलंकारिक वर्णन करते हुए पुनः कहता है कि–

रुद्धापांगप्रसरमलकैरंजनस्नेहशून्यं
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम्।
त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शंके मृगाक्ष्याः
मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति।।35।।

अन्वय–अलकैः रुद्ध–अपांग–प्रसरम्, अंजन–स्नेह–शून्यम्, अपि च मधुनः प्रत्यादेशात्, विस्मृत–भ्रू–विलासम्, त्वयि आसन्ने, उपरि–स्पन्दि मृगाक्ष्याः नयनम्, मीन–क्षोभात् चल–कुवलय–श्रीतुलाम् एष्यति, इति, शंके।।35।।

अनुवाद–**अलकों द्वारा रोके गए, अपांग भाग वाले, काजल की चिकनाई से रहित एवं मदिरा के त्याग से भूले हुए भौंहों के विलास वाले, तुम्हारे पास आने पर, ऊपर की ओर हिलने वाला, मृगनयनी का नेत्र, मछली के हिलने–डुलने से चंचल कमल की शोभा को प्राप्त करेगा, ऐसी मैं शंका करता हूँ।**

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में कवि ने विरहिणी यक्षिणी के नेत्रों की कुल छः विशेषताओं का उल्लेख किया है, जिसे हम इसप्रकार समझ सकते हैं– (1) केशों का प्रसाधन न करने से जिन नेत्रों के अपांग भाग को अलकों द्वारा रोक दिया गया है। (2) जिनमें वियोगा–वस्था के कारण काजल की चिकनाई का उपयोग नहीं किया गया है। (3) इसीप्रकार वियोगावस्था होने से मदिरा का त्याग करने के कारण, जो नेत्र भौंहों के विलास को भूल गए हैं।(4) तुम्हारे समीप आने के कारण शुभ सूचना देने के लिए शकुन की दृष्टि से जो नेत्र ऊपर की ओर फड़कने लगे हैं। (5) हरिण के नेत्र के समान सौन्दर्य सम्पन्न, वे नेत्र वस्तुतः फड़कने की स्थिति में इसप्रकार की समतारूप शोभा को धारण करेंगे जैसे– (6) मछली की हलचल के कारण चंचल दिखने वाला कमल हो।

विशेष–(i) मेघ के दूतरूप में पास आने पर, उसे देखने के लिए यक्षिणी के नेत्र के विषय में कवि की सुन्दर कल्पना देखने योग्य है। साथ ही, इसे अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए उन्होंने मनोहारिणी उपमा का भी सुन्दर प्रयोग किया है।

(ii) इस वियोगावस्था में यक्ष की कुशलक्षेम की सूचना देने के लिए समीप में आए हुए दूतरूप मेघ की उपस्थिति से यक्षिणी के नयन के फड़कने का उल्लेख होने से कवि का शकुनों में दृढ़ विश्वास अभिव्यंजित हुआ है।

(iii) कवि की चित्रात्मक शैली दर्शनीय है, जिसके कारण सहृदय के समक्ष विरहिणी यक्षिणी का साक्षात् चित्र प्रस्तुत हो गया है।

(iv) इस श्लोक में प्रयुक्त 'स्नेह' पद का चिकनाई के स्थान पर 'मैत्री' अर्थ भी किया जा सकता है, उस स्थिति में इसका अर्थ होगा कि–'जिन नेत्रों ने अंजन के साथ मैत्री का परित्याग कर दिया है।' अर्थात् आँखों में अंजन का लगाना बन्द कर दिया है।

(v) वियोगावस्था में प्रोषितभर्तृका नायिका के लिए केशों में शृंगार, नेत्रों में अंजन का प्रयोग तथा मदिरा के पान का निषेध किया गया है, इस विषय में पूर्व में भी उल्लेख किया गया है।

(vi) नेत्रों के ऊपर स्थित भौहों के परिचालन को 'भ्रूविलास' कहा जाता है, मदिरा के अभाव में, उन्होंने इन विलासों को भुला दिया है। यहाँ कवि का यही अभिप्राय है।

(vii) यद्यपि कवि ने यहाँ दाएँ अथवा बाएँ 'नयन' के विषय में कथन नहीं किया है, किन्तु फिर भी 'स्पन्दन' से अभिप्राय यहाँ बाएँ नेत्र के स्पन्दन से ही ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि शकुन शास्त्र के अनुसार स्त्री के बाएँ नेत्र के फड़कने से शुभ की प्राप्ति का विधान है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **आसन्ने**–आ+√सद्+क्त, स.ए.व।

(ii)**रुद्धापांगप्रसरम्**–रुद्धः अपांगयोः प्रसरः,यस्य तत्, √रुध्+क्त।

(iii) **अंजनस्नेहशून्यम्**– अंजनेन स्नेहः, तेन शून्यम्, तृ.तत्पुरुष।

(iv) **आसन्ने**– आ+ √सद्+क्त, सप्तमी, ए.व.। समीप होने पर।

(v) **प्रत्यादेशात्**– प्रति+आङ्+ √दिश्+घञ्, पंचमी, ए.वचन।

(vi) **उपरिस्पन्दि**– उपरि+ √स्पन्द्+णिनि, उपपद तत्पुरुष।

(vii) **शंके**– √शंक्+लट्, उ. पु., एकवचन, शंका करता हूँ।

(viii) **एष्यति**–√इण्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, प्राप्त करेगा।

(ix) **मीनक्षोभात्**– मीनस्य क्षोभः, तस्मात्, षष्ठी तत्पुरुष।

(x) **मृगाक्ष्याः**– मृगस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः तस्याः।

(xi) **चलकुवलयश्रीतुलाम्**– चलं च तत् कुवलयं, तस्य श्रीः, तस्याः तुला, ताम्, चंचल नील कमल की शोभा की उपमा को।

संजीवनी टीका– रुद्धेति। अलकैः रुद्धा अपांगयोः प्रसरा यस्य तत्तथोक्तम्। अंजनेन स्नेहः स्नैग्ध्यं तेन शून्यम्। स्निग्धांजनरहितमित्यर्थः। अपि च किंच मधुनो मद्यस्य प्रत्यादेशान्निराकरणात्। परित्यागादित्यर्थः। 'प्रत्यादेशो निराकृतिः' इत्यमरः। विस्मृतो भ्रूविलासो भ्रूभंगो येन तत्। नयनस्य रुद्धापांगप्रसरत्वादिकं विरहसमुत्पन्नमिति भावः। त्वय्यासन्ने सति स्वकुशलवार्ताशंसिनीति शेषः। उपर्यूर्ध्वभागे स्पन्दते स्फुरतीत्युपरिस्पन्दि। तथा च निमित्तनिदाने' 'स्पन्दान्मूर्ध्निच्छत्रलाभं भाले पट्टं शुभ्रं भ्रुवि। इष्टप्राप्ति दृशोरूर्ध्वमपांगे हानिमादिशेत्। इति। मृगाक्ष्यास्तत् सख्या नयनम्। वाममिति शेषः। 'वागभागस्तु नारीणां पुंसां श्रेष्ठस्तु दक्षिणः। दाने देवादिपूजायां स्पन्देऽलंकरणेपि च।' इति स्त्रीणां वामभागप्राशस्त्यात् मीनक्षोभान्मीनचलनाच्चलस्य कुवलयस्य श्रियाः शोभायास्तुलां सादृश्यमेष्यतीति शंके तर्कयामि।।35।।

अवतरणिका–इसप्रकार स्पन्दन करते हुए नेत्र के सौन्दर्य का उल्लेख करने के बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से उसके वहाँ पहुँचने पर, अपनी प्रिया की वाम जंघा के फड़कने से होने वाले, शुभ शकुन के विषय में भी कहता है कि–

वामश्चास्याः कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै–
र्मुक्ताजालं चिरपरिचितं त्याजितो दैवगत्या।
संभोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां
यास्यत्यूरुः सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम्।।36।।

अन्वय– मदीयैः कररुह–पदैः मुच्यमानः, दैवगत्या चिर–परिचितम् मुक्ताजालम् त्याजितः, संभोगान्ते मम हस्त–संवाहनानाम् समुचितः, सरस–कदली–स्तम्भ–गौरः अस्याः वामः ऊरुः च चलत्वम् यास्यति।।36।।

अनुवाद– मेरे नाखूनों के चिह्नों का परित्याग करती हुई, दुर्भाग्यवश, चिरपरिचित मोतियों की लड़ियों का त्याग करने वाली,

सम्भोग के अन्त में मेरे हाथों के मर्दन के योग्य, सरस कदली के तने के समान गौर वर्ण, इस मेरी प्रिया की वाम जँघा भी फड़क उठेगी।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक की प्रथम तीन पंक्तियों में कवि ने यक्षिणी की जंघाओं के वैशिष्ट्य का चित्रण किया है, जबकि मुख्य वाक्य अन्तिम चरण में इस जंघा के फड़कने रूप शुभशकुन का कथन किया गया है। (1) वियोगावस्था के कारण जिस जंघा ने मेरे नाखूनों के चिह्नों का परित्याग कर दिया है। (2) बुरा समय आने के कारण दुर्भाग्य से जिस जंघा ने अनेक दिनों से परिचित मोतियों की लड़ियों को धारण करना भी छोड़ दिया है। (3) जिस जंघा को सम्भोग के अन्त में मेरे द्वारा हाथों से धीमे–धीमे दबाकर, उनकी थकान को दूर किया जाता था। (4) जो जंघाएँ केले के तने के समान चिकनी तथा गौरवर्ण हैं। इसप्रकार की विशेषताओं की वे जंघाएँ तुम्हारे वहाँ पहुँचने के बाद, उसे शुभ संकेत देने के लिए फड़क उठेंगी।

विशेष–(i) कामशास्त्र के अनुसार सम्भोग से पूर्व नायिका को उत्तेजित करने के लिए, उसके विविध अंगों पर नखक्षत करने का प्रावधान है, यहाँ उसी ओर संकेत किया गया है, क्योंकि वियोगावस्था में ये जंघाएँ नखक्षत के चिह्नों से रहित बतायी गयी हैं।

(ii) रतिरहस्य में नखक्षत के निम्न स्थानों का उल्लेख किया गया है– **'कण्ठकक्षकुचपार्श्वभुजोरः श्रोणिसक्थिषु नखास्पादमाहुः।'**

(iii) इसीप्रकार कामशास्त्र में सम्भोग के अन्त में रतिजन्य थकान को दूर करने के लिए नायक द्वारा नायिका के पैर दबाने, जँघाओं का मर्दन करके तथा पंखा डुलाने का विधान किया गया है।

(iv) जँघाओं की शीतलता एवं चिक्कणता की उपमा सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में प्रायः कदली के तने से दी गयी है, किन्तु काव्यकार कालिदास ने यहाँ इसे गौरवर्ण के लिए भी उपयुक्त माना है, क्योंकि केले के तने को यदि ऊपर से थोड़ा छील दिया जाए, तो

अन्दर से वह उसी प्रकार का गौरवर्ण वाला दिखायी देगा, इसलिए यह उपमा भी यहाँ भावाभिव्यक्ति में सहयोगी कही जा सकती है।

(v) यहाँ प्रयुक्त 'सरसकदलीस्तम्भगौरः' पद के स्थान पर अनेक पाठभेद माने गए हैं, किन्तु उन सभी का अभिप्राय प्रायः यही रहा है। दूसरे शब्दों में, उनमें अर्थ की भिन्नता का अभाव ही है।

(vi) इसीप्रकार 'सरसकदलीस्तम्भगौरः' पद में उपमालंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(vii) यक्ष का अभिप्राय है कि 'हे मेघ! जब तुम मेरी प्रिया यक्षिणी के पास मेरा सन्देश लेकर अलकापुरी पहुँचोगे तो उसकी सरस केले के स्तम्भ के समान गौरवर्ण वाम जंघा फड़क उठेगी।'

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **चलत्वम्**– चलस्य भावः, इति।

(ii) **कररुहपदैः**– करे रोहन्ति, इति, कररुहाणां पदैः।

(iii) **मदीयैः**– मम इमानि इति मदीयानि, तैः, मेरे।

(iv) **दैवगत्या**– दैवस्य गत्या, इति षष्ठी तत्पुरुष।

(v) **चिरपरिचितम्**– चिरः परिचितः, तम्, सुप्सुपा समास।

(vi)**मुच्यमानः**– √मुच्+शानच्, **चिरपरिचितम्**–चिरः परिचितः तं।

(vii) **मुक्ताजालम्**– मुक्तानां जालम्, मोतियों का समूह।

(viii) **त्याजितः**– √त्यज्+णिच्+क्त, त्यागा हुआ।

(ix) **यास्यति**– √या+लृट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, जाएगा।

(x) **सम्भोगान्ते**– संभोगस्य अन्तः, तस्मिन्, षष्ठी तत्पुरुष।

(xi) **हस्तसंवाहनानाम्**– हस्ताभ्यां संवाहनानि तेषाम्, संवाहनम् – सम्+ √वह्+णिच्+ल्युट्, भलीप्रकार दबाना, धीमे–धीमे सहलाना।

संजीवनी टीका– वाम इति। मदीयैः कररुहपदैर्नखपदैः 'पुनर्भवः कररुहो नखोऽस्त्री नखरोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। मुच्यमानः परिहीयमानः नखांकरहित इत्यर्थः। ऊर्ध्वोर्नखपदास्पदत्वं तु रहिरहस्ये– 'कण्ठकक्ष–कुचपार्श्वभुजोरः श्रोणिसक्थिसु नखास्पदमाहुः' इति। चिरपरिचितं चिराभ्यस्तं मुक्ताजालं मौक्तिकसरमयं कटिभूषणं दैवगत्या दैववशेन

त्याजितः। सम्प्रति नखपदोष्माभावेन शीतोपचारस्य तस्य वैयर्थ्यादिति भावः। त्यजतेर्ण्यन्तात् कर्मणि क्तः। 'द्विकर्मसु पचादीनां चोपसंख्यानमिष्यते' इति पचादित्वाद् द्विकर्मकत्वम्। संभोगान्ते मम हस्तसंवाहनानां हस्तेन मर्दनानाम्। 'संवाहनं मर्दनं स्यात्' इत्यमरः। समुचितो योग्यः। सरसो रसो रसार्द्रः परिपक्वो न शुष्कश्च स एव विवक्षितः। तत्रैव पाण्डिमसम्भवात्। स चासौ कदलीस्तम्भश्च स इव गौरः पाण्डुरः। 'गौरः शरीरे सिद्धार्थे शुक्ले पीतेऽरुणेऽपि च' इति मालतीमालायाम्। अस्याः प्रियाया वाम ऊरुश्चलत्वं स्पन्दनं यास्यति प्राप्स्यति। 'उरोः स्पन्दाद्रति विद्यादूर्वोः प्राप्ति सुवाससः' इति निमित्तनिदाने।।36।।

अवतरणिका– इसके बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से इस समय किए जा रहे यक्षिणी के शयनादि का उल्लेख करते हुए, मेघ को थोड़ी प्रतीक्षा करने के लिए कहता है कि–

तस्मिन्काले जलद! यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्या–
दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व।
मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथंचित्
सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम्।।37।।

अन्वय– जलद! तस्मिन् काले सा, लब्ध–निद्रा–सुखा स्यात्, यदि एनाम् अन्वास्य स्तनित–विमुखः, याम–मात्रम् सहस्व, अस्याः मयि प्रणयिनि कथंचित् स्वप्न–लब्धे गाढ–उपगूढम्, सद्यः कण्ठ–च्युत–भुज–लता–ग्रन्थिः, मा भूत्।।37।।

अनुवाद– हे मेघ! यदि वह उस समय निद्रा का सुख प्राप्त कर रही हो, तो उसके पीछे बैठकर, गर्जन से रहित होकर, प्रहर मात्र तक प्रतीक्षा करना, क्योंकि ऐसा न हो कि इसका मुझ प्रिय के किसी भी तरह स्वप्न में किया गया प्रगाढ़ आलिंगन, शीघ्र ही कण्ठ से च्युत लता के समान भुजाओं के बन्धन वाला हो जाए।

'चन्द्रिका'–यक्ष कहता है कि जब तुम अलकानगरी पहुँचकर वातायान से मेरे घर के अन्दर दृष्टिपात करोगे तो यदि उस समय मेरी

प्रिया निद्रा का सुख प्राप्त कर रही हो, तो उसे जगाना मत, अपितु गर्जन से पूर्णरूप से रहित होकर, वहीं पर बैठकर एक प्रहर मात्र पर्यन्त प्रतीक्षा करना। अपने इस कथन के प्रति यक्ष हेतु का उल्लेख करते हुए कहता है कि– क्योंकि सम्भव है वह सोते समय मेरे साथ संभोग के सुख को प्राप्त कर रही हो, तुम्हारे बीच में जगाने के कारण उसका यह आनन्द भंग हो जाएगा। इसी कथ्य को आलंकारिक भाषा में कहते हैं कि– 'ऐसा न हो कि वह मेरी प्रिया मेरे साथ में किसी प्रकार संयोग से प्राप्त होने वाली निद्रा के कारण प्रगाढ़ आलिंगन बद्ध हो, तुम्हारे जगाने के कारण उसका कण्ठ, शिथिल हुए लता जैसी भुजाओं के बन्धन वाला न हो जाए।'

विशेष–(i) कुछ टीकाकारों के मत में यहाँ पर पद्मिनी नायिका के वर्णन के कारण, उसके शयन का समय 'याम' मात्र होने से एक याम पर्यन्त प्रतीक्षा करने के लिए कहा गया है।

(ii) जबकि आचार्य मल्लिनाथ ने प्रचण्ड शक्ति सम्पन्न पुरुष की संभोग की अवधि एक याम पर्यन्त स्वीकार करते हुए, इसका अर्थ निद्रा के कारण स्वप्न में प्राप्त होने वाले संभोग में व्यवधान न पड़े,इस अर्थ को ग्रहण करके, यक्षिणी को निद्रा से जगाने का निषेध माना है।

(iii) सामान्यरूप से यक्षिणी को निद्रा नहीं आती है, किन्तु यदि किसी प्रकार प्रयत्नपूर्वक वह आ भी जाए, इस भाव की अभि–व्यक्ति के लिए कवि ने यहाँ 'कथंचित्' पद का प्रयोग किया है।

(iv) पूर्व के श्लोकों में कवि ने निद्रा के अभाव का कथन किया है तथा प्रस्तुत स्थल पर निद्रा की बात कही है, इससे विरोध की कल्पना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वियोगावस्था की 'प्रजागर' नामक सप्तम अवस्था में प्रहर मात्र (तीन घण्टे) की निद्रा की सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता है।

(v) प्रस्तुत श्लोक में प्रयुक्त 'भुजलता' में लुप्तोपमालंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।

(vi) इसीप्रकार 'याममात्रं सहस्व' के प्रति उत्तरार्द्ध के वाक्यार्थ को हेतुरूप में प्रयुक्त किया गया है, इसलिए काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग भी हुआ है।

(vii) यहाँ पर कवि ने मेघ से याममात्र प्रतीक्षा करने के लिए कहा है और एक रात्रि तीन प्रहर की मानी गयी है। इस दृष्टि से याम से अभिप्राय यहाँ पर तीन घण्टे से ग्रहण करना चाहिए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **जलद**– जलं ददाति इति।

(ii) **लब्धनिद्रासुखा**– निद्रायाः सुखम्, लब्धं निद्रासुखं यया सा।

(iii) **स्यात्**– √अस्+ विधिलिङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन। होवे।

(iv) **अन्वास्य**– अनु+√आस्+क्त्वा (ल्यप्) पीछे बैठकर।

(v) **स्तनितविमुखः**– स्तनितात् विमुखः, पंचमी तत्पुरुष।

(vi) **सहस्व**– √सह्+लोट्, आत्मने, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(vii) **स्वप्नलब्धे**– स्वप्ने लब्धः, तस्मिन्, √स्वप्+नन्, स्वप्न।

(viii) **गाढ़ोपगूढ़म्**– गाढं च तत् उपगूढ़म्, √गाह्+क्त, गाढम्।

(ix) **कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि**– कण्ठात् च्युतः, सद्यः कण्ठच्युतः, भुजौ लते इव तयोः ग्रन्थिः, सद्यः कण्ठच्युतः भुजलताग्रन्थिः यस्य तत्।

(x) **भूत**– √भू+लुङ्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन, होवे।

संजीवनी टीका– तस्मिन्निति। हे जलद! तस्मिन् काले त्वदुपसर्पणकाले सा मत्प्रिया लब्धं निद्रासुखं यया तादृशी स्याद्यदि स्याच्चेत्। एनां निद्राणामन्वास्य। पश्चादासित्वेत्यर्थः। उपसर्गवशात् सकर्मकत्वम्। स्तनितविमुखो गर्जितपराङ्मुखो निःशब्दः सन्। अन्यथा निद्राभंग स्यादिति भावः। याममात्रं प्रहरमात्रम् 'द्वौयामप्रहरो समौ' इत्यमरः। सहस्व प्रतीक्षस्व। प्रार्थनायां लोट्। शक्तयोरेकतारसुरतस्य रतियामावधिकत्वात् स्वप्नेऽपि तथा भवितव्यमित्यभिप्रायः। तथा च रतिसर्वस्वे–'एकवारावधिर्यामो रतस्य परमो मतः। चण्डशक्तिमतोर्यूनोरद्भुतक्रमवर्तिनोः'।। इति।

यामसहनस्य प्रयोजनमाह— मा भूदिति। अस्याः प्रियायाः प्रणयिनि प्रेयसि मयि कथंचित्कृच्छ्रेण स्वप्नलब्धे सति गाढ़ालिंगनम्। नपुंसके भावे क्तः। सद्यस्तत्क्षणं कण्ठाच्च्युतः स्रस्तो भुजलतयोर्ग्रन्थिर्बन्धो यस्य तन्मा भून्मास्तु। कथंचिल्लब्धस्यालिंगनस्य सद्यो विघातो मा भूदित्यर्थः। न चात्र निद्रोक्तिः 'तामुन्निद्राम्' इति पूर्वोक्तेन निद्राच्छेदेन विरुध्यते, पुनः सप्तम्याद्यवस्थासु पाक्षिकनिद्रासंभवात्। तथा च रस-रत्नाकरे— 'आसक्तौ रोदनं निद्रा निर्लज्जानर्थवागभ्रमः। सप्तमादिषु जायन्ते दशाभेदेषु वासुके' इति।।37।।

अवतरणिका—इसके बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से एक प्रहर पर्यन्त प्रतीक्षा करने के बाद, उसे निद्रा से अत्यन्त प्रेमपूर्वक उठाकर, अपने द्वारा दिए गए सन्देश को, गम्भीर वाणी में कहने की बात का उल्लेख करते हुए कहता है कि—

तामुत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन,
प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम्।
विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे
वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः।।38।।

अन्वय— स्व—जल—कणिका—शीतलेन अनिलेन, ताम् उत्थाप्य, अभिनवैः मालतीनाम् जालकैः समम् प्रत्याश्वस्ताम्, त्वत् सनाथे गवाक्षे स्तिमित—नयनाम् मानिनीम् विद्युत्—गर्भः, धीरः (सन्,त्वम्) स्तनित—वचनैः वक्तुम् प्रक्रमेथाः।।38।।

अनुवाद— हे मेघ! अपने जल की बिन्दुओं से शीतल वायु द्वारा उसे जगाकर, नूतन चमेली की कलियों के साथ आश्वस्त हुई, तुमसे युक्त खिड़की पर निश्चल नेत्रों वाली, उस मनस्विनी को, बिजली को गर्भ में ही धारण करके, धीर बने हुए तुम, गर्जनरूपी वचनों से बोलना आरम्भ करना।

'चन्द्रिका'— विरही यक्ष कहता है कि हे मेघ! एक प्रहर तक यदि मेरी प्रिया की निद्रा भंग न हो तो तुम सर्वप्रथम उसे नई ताजी

चमेली की कलियों की सुगन्ध से युक्त, अपने जल की शीतल बूँदों के द्वारा ठंड़ी हुई वायु से अत्यन्त कोमलतापूर्वक शनैः–शनैः जगाना। तुम्हारे द्वारा ऐसा करने से वह मेरी प्रिया तुम्हें वातायन पर विराजमान देखकर, विस्मित हुई निश्चलदृष्टि से तुम्हें देखती रह जाएगी।

ध्यान रहे कि इस अवसर पर तुम्हें अपनी चमकने वाली विद्युत् को गर्भ में ही छिपाकर रखना चाहिए, क्योंकि ऐसा न हो कि इससे उसकी आँखें चकाचौंध हो जाएँ और वह घबरा जाए और इससे वह तुम्हें देख नहीं पाएगी, जो उचित नहीं होगा, क्योंकि सन्देश वाहक का मुख भी सन्देश सुनने वाले व्यक्ति को दिखायी देना आवश्यक होता है। इसका यही कारण है कि सन्देश के अनेक भावों को तो व्यक्ति की मुख–भंगिमाएँ ही कहने में सक्षम होती हैं।

विशेष–(i) मेघ की वाणी तो केवल उसका गर्जन ही है, कवि ने यहाँ उसी के माध्यम से सन्देश को कहने की बात कही है।

(ii) यहाँ प्रयुक्त 'स्तिमितनयनाम्' पद के माध्यम से कवि ने यक्षिणी द्वारा विस्मयपूर्वक 'कलभ' रूपधारी मेघ को देखने की अभि–व्यंजना की है।

(iii) इसीप्रकार 'विद्युत्गर्भः' द्वारा इस अवसर पर बिजली को अपने गर्भ में धारण करने एवं उसे न चमकाने के लिए कहा गया है।

(iv) किन्तु कुछ टीकाकारों ने यहाँ 'विद्युत्गर्भः' का अर्थ स्त्री को साथ में लेकर किया है, क्योंकि विद्युत् वस्तुतः मेघ की पत्नी है तथा अकेले पुरुष रूप मेघ का परस्त्री यक्षिणी के पास जाना सामाजिक मर्यादा के विपरीत है, इसलिए मेघ को अपनी विद्युत्रूपी पत्नी को साथ में रखना चााहिए, जिससे लोकमर्यादा भी बनी रहे।

(v) प्रस्तुत श्लोक में 'जालकैः समम्' पद में सहोक्ति अलंकार[1] का सौन्दर्य दर्शनीय है।

---

[1] . सा सहोक्तिः सहार्थस्य बलादेकं द्विवाचकम्। काव्यप्रकाश–10 / 170 ।

(vi) इसीप्रकार मेघ के 'स्तनित' में 'वचन' का आरोप प्रस्तुत कथन में सहयोगी होने के कारण 'परिणाम अलंकार' का सौन्दर्य भी उल्लेखनीय कहा जा सकता है।

(vii) प्राचीनकाल में सेवक अपने स्वामी को, उनके पैर दबाकर, पंखा डुलाकर, उनकी स्तुति करके, मधुर गीतों को गाकर एवं वाद्यों को बजाकर निद्रा से उठाते थे, यहाँ कवि ने उसी ओर संकेत किया है। आचार्य भोज का कथन[1] इसकी पुष्टि में प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) मानिनीम्–मनोऽस्याः अस्ति, इति।

(ii) प्रक्रमेथाः– प्र+ √क्रमु+विधिलिङ्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(iii) स्वजलकणिकाशीतलेन– स्वं च तत् जलम्, तस्य कणिकाः ताभिः शीतलः तेन, अपने जल बिन्दुओं से शीतल होने से।

(iv) उत्थाप्य– उत्+ √स्था+णिच्+क्त्वा (ल्यप्) उठाकर।

(v) प्रत्याश्वस्ताम्– प्रति+आ+ √श्वस्+क्त+टाप्, द्वि, ए.व.।

(vi) स्तिमितनयनाम्–स्तिमिते नयने यस्याः सा, ताम्, बहुव्रीहि।

(vii) विद्युद्गर्भः– विद्युत्गर्भः, यस्य सः, बहुव्रीहि समास।

(viii) स्तनितवचनैः– स्तनितानि एव वचनानि तैः, कर्मधारय।

संजीवनी टीका– तामिति। तां प्रियां स्वस्य जलकणिकाभिर्जलबिन्दुभिः शीतलेनानिलेनात्थाप्य प्रबोध्य। एतेन तस्याः प्रभुत्वाद व्यजनानिलसमाधिर्व्यज्यते। यथाह भोजराजः– 'मृदुभिर्मदनैः पादे शीतलैर्व्यजनैस्तनौ। श्रुतौ च मधुरैर्गीतैर्निद्रातो बोधयेत् प्रभुम्।।' इति। अभिनवैर्नूतनैर्मालतीनां जालकैः समं जातीमुकुलैः सह। 'सुमना मालती जातिः' इति। 'साकं सत्रा समं सह' इति। 'क्षारको जालकं क्लीबे कलिका कोरकः पुमान्' इति चामरः। प्रत्याश्वस्तां सुस्थिताम्। अन्यच्च पुनरुच्छ्वासिताम्। श्वसेः कर्तरि क्तः। 'आदितश्च' इति चकारादिद

1. मृदुभिर्मर्दनैः पादे शीतलैर्व्यजनैः तनौ।
श्रुतौ च मधुरैर्गीतैर्निद्रातो बोधयेत्प्रभुम्।।

प्रतिषेधः। एतेनास्याः सौकुमार्यं गम्यते। त्वत्सहिते। 'सनाथं प्रभुमित्याहुः सहिते चित्ततापिनि' इति शब्दार्णवः।

गवाक्षे स्तिमितनयनां कोऽसाविति विस्मयान्निश्चलनेत्रां मानिनीं मनस्विनीम् अनौचित्यासहिष्णुमित्यर्थः। विद्युदगर्भोऽन्तःस्थो यस्य स विद्युद्गर्भः। अन्तर्लीनविद्युत्क इत्यर्थः। 'गर्भोऽपवारकेऽन्तःस्थे कुक्षिस्थे चार्भके मतः' इति शब्दार्णवः। दृष्टिप्रतिघातेन वक्तुर्मुखावलोकनप्रतिबन्धकत्वान्न विद्युता द्योतितव्यामिति भावः। धीरो दृढः सन्। अन्यथा स्खलवादित्वेनानाश्वासनप्रसंगादिति भावः। स्तनितवचनैः स्तनितान्येव वचनानि तैर्वक्तुं प्रक्रमेथा उपक्रमस्व। विध्यर्थे लिङ्। 'प्रोपाभ्याम्' इत्यात्मनेपदम्।।38।।

अवतरणिका– इसके बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अपने सन्देश के विषय में कहता है कि–

भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहं,
तत्सन्देशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम्।
यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि।।39।।

अन्वय– अविधवे! माम् भर्तुः प्रियम् मित्रम् हृदय–निहितैः तत् सन्देशैः, त्वत् समीपम् आगतम्, अम्बुवाहम् विद्धि, यः मन्द्र–स्निग्धैः ध्वनिभिः, अबला–वेणि–मोक्ष–उत्सुकानि पथि श्राम्यताम्, प्रोषितानाम् वृन्दानि त्वरयति।।39।।

अनुवाद– हे अविधवे! मुझे अपने पति का प्रिय मित्र तथा हृदय में रखे हुए, उनके सन्देशों के साथ, तुम्हारे समीप आया हुआ, मेघ जानो, जो मेघ अपने गम्भीर तथा मधुर गर्जनों से विरहिणी स्त्रियों की वेणियों (चोटियों) को खोलने के लिए उत्कण्ठित एवं मार्ग में थके हुए प्रवासियों के समूह को प्रेरित करता है।

'चन्द्रिका'– प्रस्तुत श्लोक में कवि ने सन्देश देने से पूर्व यक्षिणी को मेघ का परिचय कराया है। तदनुसार– मेघ, विरही यक्षिणी

को (1) सर्वप्रथम अविधवे! अर्थात् सौभाग्यवती सम्बोधित करके कहता है कि– (2) वस्तुतः मैं अन्य कोई नहीं, अपितु तुम्हारे पति का मित्र ही हूँ। (3) साथ ही, मैंने अपने हृदय में तुम्हारे पति द्वारा दिए गए सन्देशों को अत्यन्त यत्नपूर्वक धारण किया हुआ है, जिन्हें मैं तुम्हें देने के लिए यहाँ तुम्हारे पास रामगिरि आश्रमों से आया हूँ।

इसी क्रम में अपने स्वभाव तथा वैशिष्ट्य का उल्लेख करते हुए मेघ कहता है कि–(4) मेरी विशेषता यह है कि मैं अपने गम्भीर तथा मधुर गर्जनों के माध्यम से विरहिणी स्त्रियों की चोटियों को खोलने के लिए उत्कण्ठित तथा मार्ग में थके हुए विदेशों में गए हुए प्रेमियों को अपने–अपने घर की ओर शीघ्र जाने के लिए प्रेरित भी करता हूँ।

विशेष–(i) कवि ने यहाँ मेघ का परिचय प्रदान करते हुए, जहाँ एक ओर उसे मेघ का सन्देश वाहक मित्र बताया, वहीं दूसरी ओर दो प्रेमियों को मिलाने वाले मृदुल एवं परोपकारी स्वभाव का भी कहा है, इससे मेघ का उज्ज्वल चरित्र उद्घाटित हुआ है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक के आरम्भ में ही अविधवे! सम्बोधन द्वारा कवि ने सर्वप्रथम यक्ष के जीवित होने तथा यक्षिणी के सौभाग्यवती होने की सूचना दी है, क्योंकि यक्षिणी को तो उसके जीवित होने के समाचार भी अभी तक प्राप्त नहीं थे।

(iii) साथ ही, वह जीवित होने के कारण ही तुम्हारे जीवन को धारण कराने के लिए, अपने सन्देश को मेरे माध्यम से भेज रहा है। उसी का सन्देश मेरे हृदय में विद्यमान है, जिसको तुम्हें मेरे ऊपर संदेह न करके, अत्यन्त ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए।

(iv) कुछ टीकाकारों ने यहाँ प्रयुक्त अविधवे! पद को अनुचित तथा अनिष्टकारक माना है, किन्तु इसके साभिप्राय अर्थात् सौभाग्य-शालिनी होने से अनिष्ट विषयक आशंका का निवारण सहजरूप से हो जाता है।

(v) यह शाश्वत सत्य है कि वर्षा ऋतु में विदेश में धनादि कमाने के लिए गए हुए, लोग मेघों की घटाओं को देखकर, शीघ्र ही घर पहुँचकर अपनी प्रियतमाओं से मिलने के लिए उत्कण्ठित हो जाते हैं। इस दृष्टि से मेघ को स्त्रियों का उपकारक कहा गया है।

(vi) कहने का तात्पर्य यह है कि मैं कोई सामान्य मेघ नहीं हूँ, अपितु तुम्हारे पति का मित्र हूँ तथा मेरे हृदय में केवल जल ही विद्यमान नहीं है, अपितु तुम्हारे पति यक्ष द्वारा दिया हुआ सन्देश भी है, जिसे देने के लिए मैं तुम्हारे पास तुम्हारे पति यक्ष द्वारा भेजा गया हूँ।

(vii) अविधवे' पद के साभिप्राय प्रयुक्त होने से परिकर[1] अलंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **निहितः**– नि+ √धा+क्त।

(ii) **अविधवे**– विगतः धवः पतिः यस्याः सा, विधवा, न विधवा इति अविधवा, नञ् तत्पुरुष, सम्बोधने एकवचन। हे सौभाग्यवती!

(iii) **हृदयनिहितैः**– हृदये निहिताः तैः, सप्तमी तत्पुरुष।

(iv) **तत्संदेशैः**–तस्य संदेशाः, तैः, ष.,तत्पु.। सम्+ √दिश्+घञ्।

(v) **त्वत्समीपम्**– तव समीपः, तम् षष्ठी तत्पुरुष, तुम्हारे पास।

(vi) **श्राम्यताम्**– √श्रम्+शतृ+षष्ठी, बहुवचन। थके हुए का।

(vii) **त्वरयति**– √त्वर्+णिच्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(viii) **मन्दस्निग्धैः**– मन्द्राः स्निग्धाश्च इति, तैः कर्मधारय।

(ix) **प्रोषितानाम्**– प्र+ √वस्+क्त, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन।

(x) **विद्धि**– √विद्+लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

(xi) **अबलावेणिमोक्षोत्सुकानि**– अबलानां वेणयः, तासां मोक्षः, तस्मिन् उत्सुकानि, **अबला**– अविद्यमानं बलः यासां ताः इति अबलाः।

संजीवनी टीका– **सम्प्रति दूतस्य श्रोतृजनाभिमुखीकरणचातुरी–मुपदिशति– भर्तुरिति। विधवा गतभर्तृका न भवतीत्यविधवा सभर्तृका। हे अविधवे! अनेन भर्तृजीवनसूचनादनिष्टागमशंकां वारयति। मां भर्तुस्तव**

---

[1]. विशेषणैर्यत्साकूतैरुक्तिः परिकरस्तु सः। काव्यप्रकाश–10 / 183।

पत्युः प्रियसुहृदम्। तत्रापि हृदयनिहितैर्मनसि स्थापितैस्तस्य भर्तुः संदेशैस्त्वत् समीपमागतम् भर्तृसंदेशकथनार्थमागममित्यर्थः। अम्बुवाहं मेघं विद्धि जानीहि।

न केवलमहं वार्ताहरः किन्तु घटकोऽपीत्याशयेनाह– य इति। योऽम्बुवाहो मेघोऽबलानां स्त्रीणां वेणयस्तासां मोक्षे मोचने उत्सुकानि पथि श्राम्यतां श्रान्तिमापन्नानां प्रोषितानां प्रवासिनाम् पान्थानामित्यर्थः। मन्द्रस्निग्धैः गम्भीरश्राव्यध्वनिभिर्गर्जितैः करणैः वृन्दानि संघान् त्वरयति। पान्थोपकारिणो मे किमु वक्तव्यं सुहृदुपकारित्वमिति भावः।।39।।

अवतरणिका– इसके बाद विरही यक्ष, उसे देखकर यक्षिणी की प्रतिक्रिया तथा सन्देश की महिमा के विषय में अपने मित्र मेघ से कहता है कि–

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा
त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य सम्भाव्य चैव।
श्रोष्यत्यस्मात् परमवहिता सौम्य! सीमन्तिनीनां
कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः संगमात् किंचिदूनः।।40।।

अन्वय– इति, आख्याते, मैथिली पवन–तनयम् इव, उन्मुखी, उत्कण्ठा–उच्छ्वसित–हृदया सा, त्वाम् वीक्ष्य, सम्भाव्य च, अस्मात् परम् अवहिता श्रोष्यति एव, सौम्य! सीमन्तिनीनाम् सुहृत्–उपनतः कान्त–उदन्तः संगमात् किंचित् ऊनः (भवति)।।40।।

अनुवाद– हे मेघ! इसप्रकार कहे जाने पर, जिसप्रकार सीता ने हनुमान् जी को देखा था, वैसे ही ऊपर की ओर मुख किए हुए, उत्कण्ठा से व्याकुल चित्त वाली, वह भी तुम्हें देखकर आदरपूर्वक आगे के समाचार को सावधान होकर ही सुनेगी, क्योंकि हे सौम्य! मित्र द्वारा लाया गया पति का सन्देश, स्त्रियों के लिए, प्रिय के मिलन से कुछ ही कम होता है।

'चन्द्रिका'–हे मित्र मेघ! जब तुम मेरी प्रिया को अपना परिचय इसप्रकार दोगे तो इसे सुनने के बाद, निश्चय ही वह ठीक उसीप्रकार

ऊपर की ओर मुख करके अर्थात् उत्सुक होकर तुम्हें देखेगी, जिस प्रकार माता सीता ने श्रीराम के कुशल समाचार लाने वाले पवनपुत्र हनुमान् को ऊपर की ओर मुख करके उत्कण्ठापूर्वक देखा था।

इसी क्रम में यक्ष फिर से मेघ को कहता है कि– वह मेरी प्रिया केवल तुम्हारी ओर देखेगी ही नहीं, अपितु उत्सुकता से व्याकुल चित्त वाली होकर, तुम्हें अत्यधिक आदर प्रदान करते हुए, सावधानी पूर्वक मेरे द्वारा दिए गए सन्देश को वह सुनेगी भी।

इसके बाद, यक्ष अपने उक्त कथ्य की पुष्टि में फिर से लोक प्रचलित सिद्धान्त के विषय में कहता है कि– हे सौम्य! वस्तुस्थिति तो यह है कि स्त्रियों के लिए अपने पति के मित्र द्वारा लाया गया पति का सन्देश, अपने प्रियतम के मिलन से कुछ ही कम आनन्द प्रदान करने वाला होता है।

विशेष–(i) वियोगावस्था में प्रियतम के समाचार को उसके मिलन की अपेक्षा कुछ ही कम बताया गया है, जिसे सामाजिक मान्यता एवं शाश्वत सत्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

(ii) यक्षिणी की उत्कण्ठा से अभिप्राय, यहाँ दीर्घकालिक विरह की अग्नि में जलने के बाद, पति की कुशलता के समाचार को पाकर निश्चय ही, उसकी यक्ष विषयक दूसरे समाचारों को जानने की उत्सुकता बढ़ जाएगी, इससे ग्रहण करना चाहिए।

(iii) इसीप्रकार सीता के लिए 'मैथिली' विशेषण का प्रयोग भी कवि ने यहाँ साभिप्राय किया है। **प्रथम**, तो वह मेघदूत की कथा के लिए रामायण के दूत के रूप में हनुमान् द्वारा लंका में स्थित अशोक वाटिका में स्थित सीता को दिए गए सन्देश के प्रसंग से पर्याप्तरूप से प्रभावित रहा है। **द्वितीय**, राजा जनक द्वारा किए गए, यज्ञ के बाद ही मिथिला की भूमि को जोतते समय सीता की प्राप्ति भूमि से ही हुई थी, इसीलिए उनका नाम 'मैथिली' रखा गया।

(iv) यह मिथिला प्रदेश वर्तमान समय में 'जनकपुर' एवं 'दरभंगा' आदि अनेक नामों से जाना जाता है।

(v) प्रस्तुत श्लोक में पूर्व में कहे गए विशेष कथन का, अन्तिम चतुर्थ चरण में कहे गए सामान्य कथन से समर्थन करने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(vi) इसीप्रकार 'मैथिलीव' पद में उपमालंकार का सौन्दर्य भी विद्यमान है।

(vii) इसके अतिरिक्त यक्षिणी की उपमा सीता से देने के कारण सीता के समान उसका भी पातिव्रत्य अभिव्यंजित हो रहा है।

(viii) रामायण की कथा के अनुसार हनुमान् के पिता पवन तथा माता अंजनी थी, इसीलिए इन्हें पवनपुत्र एवं अंजनासुत संज्ञा दी गयी है। इन्होंने एक सौ योजन लम्बे समुद्र को लाँघकर लंका में जाकर सीता का पता लगाया था तथा अपने प्रभु श्रीराम की अँगूठी पहचान के रूप में सीता को अशोक वाटिका में जाकर दी थी।

(ix) प्रस्तुत श्लोक के आधार पर ही कुछ विद्वान् मेघदूत की कथा के मूलस्रोत के रूप में, दूत हनुमान् तथा सीता के अशोक वाटिका विषयक वाल्मीकि रामायण के प्रसंग को स्वीकार करते हैं।

(x) सिर पर केशों के मध्य में स्थित एक रेखा को **सीमन्त** कहते हैं, जिसके कारण स्त्रियों का **सीमन्तिनी** अथवा सुहागिन कहा जाता है, इसे स्त्रियाँ सिन्दूर आदि पवित्र लाल सुगन्धित चूर्ण लगाकर भरती हैं, जिसे देशज भाषा में **माँग भरना** भी कहते हैं। यह स्त्रियों के लिए सौभाग्य की सूचक मानी गयी है।

(xi) इसीप्रकार 'सीमन्तिनीनां' पद के प्रयोग से कवि ने अप्रत्यक्षरूप से यह भी सूचना दी है कि हे सुन्दरि! तुम्हारा पति यक्ष जीवित है, इसलिए तुम अपनी माँग को रोजाना भर सकती हो, क्योंकि सामाजिक व्यवस्था के अनुसार विधवा स्त्री को माँग अर्थात् सीमन्त में

सिन्दूर लगाने का अधिकार नहीं होता है, किन्तु सधवा के लिए इसे प्रतिदिन लगाना अनिवार्य है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **मैथिली**– मिथिलायां भवा, इति।

(ii) **आख्याते**–आङ्+ √ख्या+क्त, सप्तमी, एकवचन, कहने पर।

(iii) **पवनतनयम्**– पवनस्य तनयः, तम्, षष्ठी तत्पुरुष।

(iv)**उन्मुखी**–उन्नतं मुखं यस्याः सा, बहुव्रीहि,ऊपर मुख वाली।

(v) **अवहिता**– अव+ √धा+क्त+टाप्, सावधान होकर।

(vi) **उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया**– उच्छ्वसितं हृदयं यस्याः सा, उत्कण्ठया उच्छ्वसितहृदया, **उच्छ्वसित**– उद्+ √श्वस्+क्त।

(vii) **श्रोष्यति**– √श्रु+लृट्, प्रथम पुरुष, एकवचन, सुनेगा।

(viii) **सीमन्तिनीनाम्**– सीम्नः अन्तः इति, सीमन्तः, सीमन्तः अन्ति आसां ताः, सीमन्तिन्यः, तासाम्, सीमन्त+इनि+ङीप्।

(ix) **सुहृदुपगतः**– सुदृदाः उपगतः, तृतीया तत्पुरुष। सुहृदः शोभनं हृदयं यस्य सः, बहुव्रीहि समास। मित्र द्वारा लाया गया।

(x) **कान्तोदन्तः**–कान्तस्य उदन्तः, अथवा कान्तश्चासौ उदन्तः।

(xi) **संगमात्**– संगमनम्, इति, संगमः तस्मात्, मिलन से।

संजीवनी टीका– इतीति। इत्येवमाख्याते सति पवनतनयं हनूमन्तं मैथिलीव सीतेव या मत्प्रिया। उन्मुख्युत्कण्ठ्यौत्सुक्येनोच्छ्वसि–तहृदया विकसितचित्ता सती त्वां वीक्ष्य सम्भाव्य सत्कृत्य च। अस्माद्भ–र्तृमैत्रीज्ञापनात्परं सर्वं श्रोतव्यम्। अवहिताऽप्रमत्ता सती श्रोष्यत्येव। अत्र सीताहनुमदुपमानादस्याः पातिव्रत्यं मेघस्य दूतः स्त्रियां भवेत्' इति।

ननु वार्तामात्रश्रवणादस्याः को लाभ इत्याशंक्यार्थान्तरमुपन्य–स्थित– हे सौम्य! साधो! सीमन्तिनीनां वधूनाम् 'नारी सीमन्तनी वधूः' इत्यमरः। सुहृदा सुहृन्मुखेनोपगतः प्राप्तः सन्। सुहृत्पदं विप्रलम्भ–शंकानिवारणार्थम्। कान्तस्योदन्तो वार्ता कान्तोदन्तः। 'वार्ता प्रवृत्ति–र्वृत्तान्त उदन्तः स्यात्' इत्यमरः। संगमात् कान्तसम्पर्कात्किंचिदूनं ईषदूनस्तद्वदेवानन्दकारीत्यर्थः।।40।।

अवतरणिका– अपने मित्र मेघ को सन्देश देने के क्रम में ही विरही यक्ष, सर्वप्रथम अपने कुशल समाचार, अपनी प्रिया यक्षिणी को देते हुए कहता है कि–

तामायुष्मन्! मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं
ब्रूया एवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः।
अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव।।41।।

अन्वय– आयुष्मन्! मम वचनात् आत्मनः च उपकर्तुम्, ताम् एवम् ब्रूयाः– अबले! तव वियुक्तः सहचरः, रामगिरि–आश्रमस्थः अव्यापन्नः, त्वाम् कुशलम् पृच्छति, सुलभ–विपदाम् प्राणिनाम्, एतत् एव पूर्वाभाष्यम्।।41।।

अनुवाद– हे आयुष्मन्! मेरे वचन से तथा स्वयं को उपकृत करने के लिए, तुम उससे इसप्रकार कहना कि– 'हे अबले! तुम्हारा बिछुड़ा हुआ पति रामगिरि आश्रम में जीवित रहता हुआ, तुम्हारी कुशलता को पूछ रहा है', क्योंकि विपत्तियों में पड़ने वाले लोगों से सर्वप्रथम यही पूछना चाहिए।

'चन्द्रिका'– कवि का अभिप्राय है कि मेरी प्रिया यक्षिणी से मिलने के बाद, मेरे कथनानुसार सर्वप्रथम तुम्हें उसको मेरी कुशलता का समाचार देना चाहिए तथा मैं रामगिरि आश्रमों में जीवित रूप में रह रहा हूँ, यह बताना है। साथ ही, उसे यह भी कहना है कि प्राणों को किसी प्रकार सम्भाले हुए, तुम्हारा प्रिय तुम्हारे कुशल समाचारों के विषय में भी जानने के लिए उत्सुक है। अन्त में अपने उक्त कथ्य की पुष्टि में यक्ष कहता है कि जो लोग आपत्तिग्रस्त होते हैं, उनसे सर्वप्रथम उनके कुशलता विषयक समाचारों को जानने की ही दीर्घकालीन भारतीय परम्परा समाज के लोगों द्वारा बनायी गयी है।

विशेष–(i) कवि ने यहाँ 'आयुष्मन्' पद का प्रयोग साभिप्राय किया है, जो प्रायः आयु में छोटों के लिए किया जाता है, क्योंकि

उसने यहाँ मेघ को अपने से आयु में छोटा मानकर ही दूतरूप में भेजने का निश्चय किया है।

(ii) इसीलिए प्रस्तुत काव्य में अनेक स्थलों पर कवि ने यक्षिणी के लिए उसकी 'सखी' अर्थात् भाभी पद का प्रयोग कराया है। अधिक आयु वाला मानने पर, तो वह 'जेठ' की श्रेणी में आएगा, जिसके साथ भारतीय लोकपरम्परा बात करने की भी अनुमति प्रदान नहीं करती है।

(iii) उल्लेखनीय यह भी है कि कवि ने यहाँ सन्देश ले जाने से मेघ के लिए स्वयं को उपकृत करने की बात भी कही है, क्योंकि ऐसा करने से उसने जहाँ एक ओर यक्ष एवं यक्षिणी दोनों का ही उपकार किया है, वहीं दूसरी ओर इसके बदले मेघ को भी पुण्य तथा कीर्ति की प्राप्ति हुई है। अतः इस दृष्टि से इस पुनीत कार्य को करके वह स्वयं भी उपकृत हुआ है।

(iv) आचार्य मल्लिनाथ ने 'आयुष्मन्' पद में 'प्रशस्य' अर्थ में 'मतुप्' प्रत्यय के प्रयोग को स्वीकार किया है।

(v) प्रस्तुत श्लोक में पूर्व में कहे गए विशेष कथन का, अन्तिम चतुर्थ चरण में कहे गए सामान्य कथन से समर्थन करने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(vi) इसके अतिरिक्त यहाँ प्रयुक्त 'आत्मनः' पद में आत्मा का उपकार करने की दृष्टि से कर्म होने से द्वितीया विभक्ति प्राप्त थी, किन्तु कर्म के सम्बन्ध मात्र की विवक्षा होने से यहाँ षष्ठी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

(vii) यहाँ प्रयुक्त 'अव्यापन्नः' पद का यक्ष के मृत प्रायः होने पर भी, उसके जीवित होने की सूचना देने के लिए ग्रहण करना अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

(viii) इसीप्रकार 'सुलभविपदाम्' पद का प्रयोग भी यहाँ साभिप्राय किया गया है, क्योंकि यह शाश्वत सत्य है कि इस संसार में

लोगों को विपत्तियाँ अत्यन्त सरलता से प्राप्त होती रहती हैं, जबकि उन्हें सम्पत्तियाँ इतनी आसानी से नहीं मिलती हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **उपकर्तुम्**– उप+ √कृ+तुमुन्।

(ii) **आयुष्मन्**–आयुः अस्य अस्ति, इति, आयुष्+मतुप, सम्बुद्धौ।

(iii) **ब्रूयाः**– √ब्रू+विधिलिङ्, मध्यमपुरुष, एकवचन, कहना।

(iv) **सहचरः**– सह चरति, इति, सह+ √चर्+ट, प्रिय मित्र।

(v) **वियुक्तः**– वि+ √युज्+क्त, **आभाष्यम्**–आ+ √भाष्+ण्यत्।

(vi) **रामगिर्याश्रमस्थः**– रामगिरेः आश्रमाः, तेषु तिष्ठति, इति।

(vii)**अव्यापन्नः**– न व्यापन्नः, इति, नञ्+वि+आ+ √पद्+क्त।

(viii) **पृच्छति**– √प्रच्छ्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, पूछता है।

(ix) **सुलभविपदाम्**– सुलभाः विपदः, येषां ते, तेषाम्।

(x) **पूर्वाभाष्यम्**– पूर्वम् आभाष्यम्, अवश्यम् आभाषितुं योग्यम्।

संजीवनी टीका– तामिति। हे आयुष्मन्! प्रशंसायां मतुप्। परोपकारश्लाघ्यजीवितेत्यर्थः। मम वचनं प्रार्थनावचनं तस्मात्चात्मनः स्वस्योपकर्तुं च परोपकारेणात्मानं कृतार्थयितुमित्यर्थः। उपकारक्रियां प्रति कर्मत्वेऽपि तस्योपकरोतीत्यादिवत् सम्बन्धमात्रविवक्षायामात्मन इति षष्ठी न विरुध्यते। यथाह भारविः–'सा लक्ष्मीरुपकुरुते यथा परेषाम्' इति। तथा श्रीहर्षश्च– 'साधूनामुपकर्तुं लक्ष्मीं द्रष्टुं विहायसा गन्तुम्। न कुतूहलिकस्य मनश्चरितं च महात्मनां श्रोतुम्।' इति तथा च 'क्वचिद द्वितीयादर्शनात् सर्वत्र न तथा' इति नाथवचनमनाथवचनमेव। तां प्रियामेवं ब्रूयाः। त्वमिति शेषः। किमित्याह– हे अबले! तव सहचरो भर्ता रामगिरेश्चित्रकूटस्याश्रमेषु तिष्ठतीति रामगिर्याश्रमस्थः सन्नव्यापन्नः। न मृत इत्यर्थः। अमरणे हेतुमाह– वियुक्तो वियोगप्राप्तो दुःखी एवंविधः संस्त्वां कुशलं पृच्छति। दुह्यादित्वापृच्छतेर्द्विकर्मकत्वम्। तथाहि। सुलभ–विपदामयत्नसिद्धविपत्तीनां प्राणिनामेतदेव कुशलमेव पूर्वाभाष्यमेतदेव प्रथममवश्यं प्रष्टव्यम् 'कृत्याश्च' इत्यावश्यकार्थे ण्यत्प्रत्ययः।।41।।

अवतरणिका– इसके बाद विरही यक्ष अपने मित्र मेघ से अपने सन्देश के विषय में कहता है कि–

अंगेनांगं प्रतनु तनुना गाढ़तप्तेन तप्तं
सास्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन।
उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती
संकल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः।।42।।

अन्वय– वैरिणा विधिना, रुद्धमार्गः, दूरवर्ती(तव सहचरः), तनुना, गाढ़–तप्तेन, सास्रेण, उत्कण्ठितेन, सम्–अधिकतर–उच्छ्वासिना, अंगेन प्रतनु, तप्तम्, अश्रु–द्रुतम्, अविरत–उत्कण्ठम्, उष्णोच्छ्वासम् (तव) अंगम्, तैः संकल्पैः विशति ।।42।।

अनुवाद– हे सुन्दरि! वैरी भाग्य द्वारा रोके गए मार्ग वाला, दूर रहने वाला, दुर्बल, अत्यन्त संतप्त, अश्रुओं से युक्त, उत्कण्ठित, लम्बे श्वास ग्रहण करने वाले शरीर से, (यह तुम्हारा प्रिय) **अत्यधिक कृश, तपे हुए, आँसुओं से आर्द्र, निरन्तर उत्कण्ठित तथा गर्म निःश्वास वाले, तुम्हारे शरीर के साथ उन–उन मनोरथों से मिलता है।**

'चन्द्रिका'– यहाँ पर कवि ने विरही यक्ष की दयनीय स्थिति का सुन्दर चित्र सहृदय के समक्ष साक्षात्‌रूप से प्रस्तुत करते हुए उसकी छोटी से छोटी बात का उल्लेख करते हुए कहा है कि– हे सौन्दर्य सम्पन्न प्रियतमे! (1) तुम्हारे पति का मार्ग वैरी भाग्य अर्थात् विपरीत भाग्य द्वारा रोका हुआ है, अन्यथा वह तुमसे इतना अधिक प्रेम करता है, कि क्षण भर के लिए भी तुमसे दूर नहीं रह सकता है। (2) इसके अतिरिक्त वह तुमसे इतना अधिक दूर रह रहा है कि महिमा के समाप्त होने से तुम्हारे पास आने में भी पूर्णतया असमर्थ है।

(3) तुम्हारे वियोग में वह अत्यधिक दुर्बल हो गया है। (4) तुमसे अलग होकर तुम्हारा पति अत्यधिक सन्तप्त है, दुःखी है, ऐसा नहीं है कि वहाँ पर वह आनन्द से सुखपूर्वक रह रहा हो। (5) तुम्हारे

वियोग में उसके नेत्रों से हमेशा ही आँसू निकलते रहते हैं, तुमसे अलग होने की वेदना के कारण वह हमेशा रुदन करता रहता है।

(6) उसका मन हमेशा ही तुमसे मिलने के लिए, तुम्हारे कुशल समाचार जानने के लिए उत्कण्ठित अर्थात् उत्सुक रहता है। (7) विरहाग्नि में जलता हुआ सन्तप्त वह, हमेशा ही लम्बे–लम्बे श्वास लेता रहता है, जो उसकी अन्तःपीड़ा अर्थात् वेदना को प्रदर्शित करते हैं।

इसप्रकार की विशेषताओं वाले अपने शरीर द्वारा यह तुम्हारा प्रेमी यक्ष वियोग के सन्ताप से अत्यधिक दुर्बल शरीर वाले, सन्तप्त, आँसुओं से पूरी तरह भीगे हुए, निरन्तर अपने प्रेमी यक्ष की कुशल समाचारों को जानने के लिए उत्कण्ठित, गर्म निःश्वास वाले तुम्हारे शरीर के साथ उन–उन अपने मनोरथों से मिलने का निरन्तर प्रयास करता रहता है।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में काव्यकार कालिदास का भाग्य-वादी दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है।

(ii) यहाँ पर महाकवि ने मनोरथों से मिलन की बात, परस्पर एकाकार करने के लिए कही है, जो प्रत्येक प्रेमी संयोग की अवस्था में प्रगाढ़ आलिंगन बद्ध होकर मिलने का प्रयास करता है।

(iii) इस श्लोक में कवि ने यक्ष तथा यक्षिणी दोनों की ही विरहावस्था का मार्मिक एवं हृदयद्रावक चित्रण किया है, क्योंकि इन दोनों की ही शारीरिक एवं मानसिक पीड़ा समान हैं।

(iv) यक्षिणी के शरीर के लिए 'प्रतनु' पद का साभिप्राय प्रयोग यक्ष के शरीर की अपेक्षा उसके शरीर की दुर्बलता अधिक बताने के लिए किया गया है, क्योंकि पहले ही 'तन्वी' यक्षिणी अब वियोग में अपेक्षाकृत अधिक दुर्बल हो गयी है।

(v) कवि का अभिप्राय है कि ये दोनों ही विरह के कारण अत्यधिक निर्बल हो गए हैं, अत्यधिक संताप से पीड़ित हैं, एक दूसरे की चिन्ता में आँसू बहाते रहते हैं। परस्पर मिलने के लिए अत्यन्त

उत्सुक हैं, व्याकुल हैं, उष्ण एवं दीर्घनिःश्वास लेकर ही अपने कष्ट को, वेदना को किंचित् कम कर पा रहे हैं।

(vi) अन्तिम चरण में प्रयुक्त मनोरथों से ही परस्पर शरीरों का मिलन हो पा रहा है, कथन वस्तुतः अपेक्षाकृत अधिक सहृदय संवेद्य कहा जा सकता है, जो यक्ष की मनोवेदना को सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान करने वाला है, क्योंकि संयोगकाल में की गयी शृंगारिक चेष्टाएँ, अब वियोग स्मृति मात्र में आने से जीवन का अवलम्ब रह गयी हैं।

(vii) प्रस्तुत श्लोक में दो वस्तुओं यक्ष तथा यक्षिणी का योग्य रूप से सम्बन्ध वर्णित होने के कारण 'सम' अलंकार[1] का सौन्दर्य भी दर्शनीय बन पड़ा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **प्रतनु**– प्रकृष्टं तनु, तत्।

(ii) **वैरिणा**– वैरम् अस्यास्ति, इति, वैरी, तेन, वैर+इनि।

(iii) **रुद्धमार्गः**– रुद्धः मार्गः यस्य सः, बहुव्रीहि, √रुध्+क्त।

(iv) **गाढतप्तेन**– गाढं तप्तं, तेन, सुप्सुपा समास।

(v) **दूरवर्ती**– दूरे वर्तते, इति, दूर+√वृत्+णिनि, प्रथमा, ए.व.।

(vi) **सास्रेण**– अस्रेण सहितं, तेन बहुव्रीहि, आँसुओं के साथ।

(vii) **उत्कण्ठितेन**– उत्+√कण्ठ्+क्त, तृतीया, एकवचन।

(viii) **समधिकतरोच्छ्वासिना**– समधिकतरं यथा स्यात्, तथा, उच्छ्वसिति इति, उपपद तत्पु. समधिकतर+उत्+√श्वस्+णिनि, तृ.ए.व।

(ix) **अश्रुद्रुतम्**– अश्रुणा द्रुतमिति, आँसुओं से भीगा हुआ।

(x) **अविरतोत्कण्ठम्**– न विरता इति अविरता, अविरता उत्कण्ठा, यस्य तत्, बहुव्रीहि, निरन्तर उत्कण्ठित।

(xi) **विशति**– √विश्+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, मिलता है।

संजीवनी टीका– अंगेनेति। किं च दूरवर्ती दूरस्थः। **न चागन्तुं शक्यत इत्याह– वैरिणा विरोधिना विधिना दैवेन रुद्धमार्गः प्रतिबद्धवर्त्मा** स ते सहचरः तनुना कृशेन गाढ़तप्तेनात्यन्तसन्तप्तेन सास्रेण साश्रुणा।

---

1 समं योग्यतया योगो यदि सम्भावितः क्वचित्। काव्यप्रकाश– 10/193।

उत्कण्ठा वेदनाऽस्य जातोत्कण्ठितं तेनोत्कण्ठितेन। 'तदस्य संजातम्- इत्यादिना इतच्प्रत्ययः। उत्कण्ठतेर्वा कर्तरि क्तः। समधिकतरमतिप्रबल- मुच्छ्वसितीति समधिकतरोच्छ्वासितेन। दीर्घनिःश्वासिनेत्यर्थः।

ताच्छील्ये णिनिः। अंगेन स्वशरीरेण प्रतनु कृशं तप्तं वियोग- दुःखेन सन्तप्तमस्रद्रुतमश्रुक्लिन्नम्। 'अश्रु नेत्राम्बु रोदनं चास्रमश्रु च इत्यमरः। अविरतोत्कण्ठमविच्छिन्नवेदनमुष्णोच्छ्वासं तीव्रनिःश्वासम्। 'तिग्मं तीक्ष्णं खरं तीव्रं चण्डमुष्णं पटु स्मृतम्' इति हलायुधः। अंगं त्वदीयं शरीरं तैः स्वसंवेद्यैः संकल्पैर्मनोरथैर्विशति। एकीकरोतीत्यर्थः। अत्र समानुरागित्वद्योतनाय नायकेन नायिकायाः समानावस्थत्व- मुक्तम्।।42।।

अवतरणिका– इसके बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से प्रिया को दिए जाने वाले, अपने सन्देश के विषय में पुनः कहता है कि–

शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तात्,
कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात्।
सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृश्य–
स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह।।43।।

अन्वय– यः ते सखीनाम् पुरस्तात् शब्द–आख्येयम्, अपि यत् आनन–स्पर्श–लोभात् कथयितुम् कर्णे लोलः अभूत् किल, श्रवण–विषयम् अतिक्रान्तः लोचनाभ्याम् अदृश्यः सः त्वाम् उत्कण्ठा–विरचित–पदम् इदम् मत्–मुखेन आह।।43।।

अनुवाद– हे सुन्दरि! जो तुम्हारा प्रिय, सखियों के समक्ष, कहने योग्य शब्द को भी, तुम्हारे मुख के स्पर्श के लोभ से कान में कहने के लिए उत्कण्ठित रहता था, कानों की पहुँच से दूर विद्यमान एवं दिखायी न देने वाला, वह उत्कण्ठा से विरचित शब्दों वाले, इस सन्देश को मेरे मुख के माध्यम से तुम्हें कह रहा है।

'चन्द्रिका'– हे सौन्दर्यसम्पन्ने! जो तुम्हारा प्रिय यक्ष, तुम्हारी सखियों के समक्ष स्पष्टरूप से कहने योग्य बातों को भी तुम्हारे कपोलों

के स्पर्शसुख को प्राप्त करने के लिए, तुम्हारे कान में कहने के लिए हमेशा ही उत्सुक रहता था, इसप्रकार का तुम्हारे कानों की पहुँच से बहुत दूर पड़ा हुआ एवं नेत्रों की पहुँच से भी बहुत दूर, वही तुम्हारा प्रिय यक्ष, अत्यधिक उत्कण्ठापूर्वक रचे गए, शब्दों वाले इस सन्देश को मेरे अर्थात् मुझ मेघ के मुख के माध्यम से तुम्हें कह रहा है।

विशेष–(i) मेघ का अभिप्राय यही है कि– जो सन्देश मैं तुम्हें सुनाने जा रहा हूँ, उसमें मुख मेरा अवश्य है, किन्तु शब्द तुम्हारे अपने कान्त यक्ष के ही हैं।

(ii) यहाँ प्रयुक्त 'आननस्पर्शलोभात्' का सामान्य अर्थ मुख के स्पर्श के लोभ से होगा, किन्तु इसके माध्यम से यक्षिणी के मुख का चुम्बन करने की अभिलाषा के कारण, उसके प्रति अतिशय प्रेम की भी अभिव्यंजना हो रही है।

(iii) इसीप्रकार यहाँ प्रयुक्त 'उत्कण्ठाविरचितपदाम्' से अभिप्राय, यक्ष के कवि ने होते हुए भी तुम्हारे वियोग की वेदनातिरेक ने मानो उसे कवि बना दिया है, इसीलिए उसने पद्यमय रचना के माध्यम से तुम्हें अपना सन्देश भिजवाया है, यह ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि हृदय की विकलता ही व्यक्ति को कवि बना देती है, जैसा कि महाकवि वाल्मीकि के साथ भी हुआ था।

(iv) मेघ की भूमिका मात्र दूत की ही है, सन्देश में कहे गए सभी शब्द तथा उनमें निहितभाव सभी यक्ष के हैं, यही अभिप्राय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **अदृश्यः**– न दृश्यः, इति नञ्।

(ii)**शब्दाख्येयम्**–शब्देन आख्यातुं योग्यम्,इति, आ+√ख्या+यत्।

(iii) **आननस्पर्शलोभात्**– आननस्य स्पर्शः, तस्य लोभात्, हेतौ।

(iv) **कथयितुम्**– √कथ्+णिच्+तुमुन्, कहने के लिए।

(v) **अभूत्**– √भू+लुङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन, हुआ, था ।

(vi) **श्रवणविषयम्**– श्रवणयोः विषयः, तम्, श्रवण– √श्रु+ल्युट्।

(vii) **उत्कण्ठाविरचितपदम्**– उत्कण्ठया विरचितानि पदानि यस्य, तत् बहुव्रीहि, **उत्कण्ठा**– उत्+कण्ठ+अ+टाप्, उत्सुकता।

(viii) आह– √ब्रू+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन, कहता है।

संजीवनी टीका– सम्प्रति स्वावस्थानिवेदनाय प्रस्तौति शब्दाख्येयमिति। हे अबले! यस्ते प्रियः सखीनां पुरस्तादग्रे आननस्पर्शे त्वन्मुखसम्पर्के लोभाद् गार्ध्यात्। अधरपानलोभादित्यर्थः। शब्दाख्येयं शब्देन रवेणाख्येयमुच्चैर्वाच्यमपि यत्तत्। वचनायपीति शेषः। कर्णे कथयितुं लोलो लालसोऽभूत् किल। 'लोलुपो लोलुभो लोलो लालसो लम्पटोऽपि च' इति यादवः। श्रवणविषयं कर्णपथमतिक्रान्तः तथा लोचनाभ्यामदृश्यः। अतिदूरत्वात् प्रष्टुं श्रोतुं च न शक्य इति भावः। स ते प्रियः। त्वामु– त्कण्ठया विरचितानि पदानि सुप्तिङन्तशब्दा वाच्यानि वा यस्य तत्त– थोक्तम्। 'पदं शब्दे च वाक्ये च' इति विश्वः। इदं वक्ष्यमाणं 'श्यामास्वंगम्' इत्यादिकं मन्मुखेनाह मद्व्यवधानेन स एव ब्रूत इत्यर्थः।।43।।

अवतरणिका– इसके पश्चात् महाकवि, यक्ष के अत्यन्त कारुणिक सन्देश को मेघ के माध्यम से कहते हैं कि–

श्यामास्वंगं चकितहरिणी प्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्,
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि! सादृश्यमस्ति।44

अन्वय– श्यामासु अंगम् चकित–हरिणी प्रेक्षणे, दृष्टिपातम्, शशिनि वक्त्रच्छायाम्, शिखिनाम् बर्ह–भारेषु केशान्, प्रतनुषु नदी–वीचिषु, भ्रू–विलासान्, उत्पश्यामि, हन्त, चण्डि! क्वचित् अपि एकस्मिन् ते सादृश्यम् न अस्ति।।44।

अनुवाद– हे प्रिये! मैं प्रियंगु लताओं में तुम्हारे शरीर की, डरी हुई हरिणियों की चितवन में तुम्हारे दृष्टिपातों की, चन्द्रमा में तुम्हारे मुख की आभा की, मयूरों के पंखों के भार में तुम्हारे केशों की, नदियों

की अत्यधिक पतली तरंगों में तुम्हारे भ्रू-भंगों की कल्पना कर लेता हूँ, किन्तु हे चण्डि! अत्यन्त कष्ट है कि किसी एक वस्तु में तुम्हारा सादृश्य विद्यमान नहीं है।

'चन्द्रिका'– कवि का अभिप्राय है कि अपनी प्रिया यक्षिणी से दूर रामगिरि के आश्रमों में रहते हुए यक्ष, (1) जब भी अपनी प्रियतमा के प्रतनु शरीर के सौन्दर्य का दर्शन करना चाहता है, तो उसके लिए वह प्रियंगु लताओं को देखता है। (2) इसीप्रकार जब वह उसके नेत्रों की चितवन का अवलोकन करने का आकांक्षी होता है तो वह डरी हुई हरिणियों के नेत्रों के सौन्दर्य को देख लेता है। (3) इसके अतिरिक्त जब वह अपनी प्रिया के मुख के सौन्दर्य को देखने की अभिलाषा करता है, तो चन्द्रमा को देख लेता है। (4) तथा प्रिया केशों के सौन्दर्य को देखने के लिए वह मोरों के पंखों के समूह का अवलोकन करके संतोष करता है।(5) जबकि यक्षिणी के भ्रूभंगों को देखने का आकांक्षी होकर यक्ष रामगिरि की नदियों की पतली तरंगों को देख कर संतुष्ट हो जाता है।

इन चार बातों का उल्लेख करने के बाद अन्त में यक्ष, अपनी प्रिया यक्षिणी को सम्बोधित करके कहता है कि– हे प्रणय में कुपित होने वाली! प्रिये, तुम से दूर यहाँ पर ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जिसमें तुम्हारे अंगों के समान सम्पूर्ण सौन्दर्य विद्यमान हो। यह मेरे लिए अत्यधिक दुःख और कष्ट का विषय है।

विशेष–(i) यक्षिणी के विभिन्न अंगों के सौन्दर्य का साम्य किसी भी एक स्थान पर न मिलने से उसका अप्रतिम सौन्दर्य अभि-व्यंजित हो रहा है।

(ii) चन्द्रमा में दिखायी देने वाला कलंक, कवियों द्वारा 'शश' अर्थात् खरगोश कहा गया है, इसीलिए इसका अन्य नाम 'शशी' भी कहा गया है।

(iii) प्रियंगु लताओं को यहाँ कवि ने 'श्यामा' कहा है, जो अत्यधिक सुकुमार होती है। यक्षिणी के शरीर की कोमलता एवं सुकुमारता के आधिक्य की अभिव्यक्ति के लिए इसका प्रयोग किया गया है।

(iv) इसीप्रकार यक्षिणी की चितवन के सादृश्य के लिए कवि को घबराई हुई हरिणी की चितवन अधिक उपयुक्त प्रतीत हुई है। संस्कृत साहित्य में इसका अनेकशः प्रयोग हुआ है।

(v) जबकि यक्षिणी के केशों की सुन्दरता, घनता के साम्य के लिए कवि को मोरों के पंखों का समूह अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ है, क्योंकि मोरों के पंख ही अत्यधिक कोमल, घने, लम्बे तथा चिकने होते हैं।

(vi) इसी प्रकार की बातें यहाँ चन्द्रमा, नदी की छोटी–छोटी तरंगों आदि के विषय में कवि द्वारा कही गयी हैं।

(vii)कोप करने वाली स्त्री को साहित्य में 'चण्डि' या 'भामिनी' आदि कहा जाता है। इस पद का प्रयोग करने में कवि का आशय है कि जब मैं तुम्हारे अंगों के सौन्दर्य को दूसरी वस्तुओं में देखने का प्रयत्न करता हूँ, तो निश्चय ही, तुम मेरे प्रति कुपित हो जाओगी, क्योंकि स्त्रियों का स्वभाव होता है कि वे अपने पति द्वारा दूसरी स्त्री की ओर देखने पर ईर्ष्यावश कुपित हो जाती हैं।

(viii) प्रस्तुत श्लोक की संरचना कवि द्वारा कामी मनोविज्ञान के आधार पर की गयी है, क्योंकि विरह की अवस्था में कामी लोग प्रिया के विभिन्न अंगों के सौन्दर्य विषयक सादृश्य को संसार की दूसरी–दूसरी वस्तुओं में देखकर अपने मन को बहलाने का प्रयास करते हैं।

(ix) प्रस्तुत श्लोक में यक्षिणी के अंगों के सौन्दर्य की स्मृति आने के कारण स्मरण अलंकार[1] का सुन्दर प्रयोग भी दर्शनीय है।

---

[1] . यथाऽनुभवमर्थस्य दृष्टे तत्सदृशे स्मृतिः, स्मरणम्। काव्यप्रकाश– 10 / 199।

(ix) प्रस्तुत श्लोक में कवि द्वारा **विरहविनोद की प्रथम अवस्था** अर्थात् 'प्रियजन के समान अन्य वस्तु को देखने' का विस्तार के साथ उल्लेख किया गया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **अस्ति**– √अस्+लट्, प्र.पु., ए.व.।

(ii) **चकितहरिणीप्रेक्षणे**– चकिताः च ताः हरिण्यः, तासां प्रेक्षणे।

(iii) **दृष्टिपातम्**– दृष्टेः पातः, तम्, √दृश्+क्तिन्, √पत्+घञ्।

(iv) **शशिनि**– शशोऽस्यास्तीति, शशी, तस्मिन्, शशन्+इनि।

(v) **वक्त्रच्छायाम्**– वक्त्रस्य छाया, ताम्, षष्ठी तत्पुरुष।

(vi) **शिखिनाम्**– शिखा अस्य अस्ति, इति तेषाम्, शिखा+इनि।

(vii)**बर्हभारेषु**–बर्हाणां भारः, तेषु, षष्ठी तत्पुरुष। पंखसमूहों में।

(viii) **नदीवीचिषु**– नदीनां वीचयः, तासु, षष्ठी तत्पुरुष।

(ix) **भ्रूविलासान्**–भ्रूवो विलासः, तान्, भ्रूभंगिमाओं को। ष.तत्पु.।

(x) **उत्पश्यामि**– उत्+ √दृश्+लट्, उत्तमपुरुष, एकवचन।

(xi) **चण्डि**– √चण्ड् कोपे+अच्+ङीष्, सम्बुद्धौ एकवचन।

संजीवनी टीका– **सादृश्यप्रतिकृतिस्वप्नदर्शनतदंगस्पृष्टस्पर्शाख्यानि चत्वारि विरहिणां विनोदस्थानानि। तथा चोक्तं गुणपताकायाम्– 'वियोगावस्थासु प्रियजनसदृशानुभवनं ततश्चित्रं कर्म स्वप्नसमये दर्शनमपि। तदंगस्पृष्टानामुपनतवतां दर्शनमपि प्रतीकारोऽनंगव्यवस्थितमनसां कोऽपि गदितः।' इति। तत्र सदृशवस्तु दर्शयन्नाह– श्यामास्विति। श्यामासु प्रियंगुलतासु। 'श्यामा तु महिलाह्वया। लता गोवन्दनी गुन्द्रा प्रियंगु फलिनी फली।।' इत्यमरः। अंग शरीरमुत्पश्यामि। सौकुमार्यादिसाम्यादंगमिति तर्कयामीत्यर्थः। तथा चकितहरिणीनां प्रेक्षणे दृष्टिपातं शशिनि चन्द्रे वक्त्रच्छायां मुखकान्तिं तथा शिखिनां बर्हिणां बर्हभारेषु केशान्। प्रतनुषु स्वल्पासु नदीनां वीचिषु। अत्र वीचीनां विशेषणोपादानेनानुक्तगुणग्रहदोषः।**

भ्रूसाम्यनिर्वाहाय महत्त्वदोषनिराकरणार्थत्वात्तस्य। यदुक्तं रसरत्नाकरे– 'ध्वन्युत्पादे गुणोत्कर्षे भागोक्तौ दोषवारणे। विशेषणाद्विशेष्यस्य

नास्त्यनुक्तगुणग्रहः। इति गुणो विशेषणम्। भ्रूविलासान् इत्यत्र 'भ्रूपताकाः' इति पाठे भ्रुवः पताका इवेत्युपमितसमासः। उत्पश्यामीति सर्वत्र सम्बध्यते। तथापि नास्ति मनोनिर्वृत्तिरित्याशयेनाह हन्तेति। हन्त विषादे। 'हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः' इत्यमरः। हे चण्डि! कोपने,'चण्डोऽत्यन्तकोपनः'इत्यमरः। गौरादित्वात् ङीप्। उपमानकथन-मात्रे न कोपिततव्यमिति भावः। क्वचिदपिव कस्मिन्नप्येकस्मिन् वस्तुनि ते तव सादृश्यं नास्ति। अतो न निर्वृणोमीत्यर्थः। अनेनास्याः सौन्दर्य-मनुपममिति व्यज्यते।।44।।

अवतरणिका– इसके बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से प्रिया को दिए जाने वाले, सन्देश में अपनी कारुणिक दशा के सम्बन्ध में कहता है कि–

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया–
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः।।45।।

अन्वय– प्रणय–कुपिताम् त्वाम् धातु–रागैः शिलायाम् आलिख्य, यावत् आत्मानम् ते चरण–पतितम् कर्तुम् इच्छामि, तावत् मुहुः उपचितैः अस्रैः मे दृष्टिः आलुप्यते, क्रूरः कृतान्तः तस्मिन् अपि नौ संगमम् न सहते।।45।।

अनुवाद– हे प्रिये! गेरु के रंग से पत्थर पर, प्रणय में कुपित तुम्हें चित्रित करके, ज्यों ही मैं स्वयं को तुम्हारे चरणों में गिरा हुआ बनाना चाहता हूँ, वैसे ही बार–बार उमड़ते हुए, अश्रुओं से मेरे नेत्र अवरुद्ध हो जाते हैं, क्योंकि क्रूर भाग्य उस चित्र में भी हम दोनों के मिलन को सहन नहीं कर पा रहा है।

'चन्द्रिका'– यहाँ पर कवि ने प्रिया से बहुत दूर स्थित, यक्ष को अपनी विरहाग्नि को शान्त करने के प्रथम उपाय के रूप में प्रिया का चित्र बनाने के बाद, उसके चरणों में गिरा हुआ स्वयं का चित्र बनाने

के प्रयास वाला वर्णित किया है, किन्तु सफलता न मिलने पर अपनी पीड़ा को वर्णित करते हुए यक्ष अपनी प्रिया को सम्बोधित करके कहता है कि–

हे प्रिये! जब मैं प्रणय के कारण कुपित हुई तुम्हें यहाँ रामगिरि आश्रम में उपलब्ध होने वाले गेरु रंग से, पत्थर की शिला के ऊपर चित्रित करने के बाद, क्षमा–प्रार्थना करने के लिए अपने आपको तुम्हारे चरणों में चित्रित करना चाहता हूँ। उसी क्षण तुम्हारी स्मृति आने से भावुकतावश मेरी आँखें अश्रुओं के प्रवाह से परिपूरित हो जाती हैं और मैं वह चित्र बना ही नहीं पाता हूँ। इतना कहने के बाद यक्ष पुनः कहता है कि– यह कितनी वेदना का विषय है कि निर्दयी भाग्य, हम दोनों के प्रति इतना अधिक कठोर हो गया है कि वह चित्र में भी हम दोनों के मिलन को सहन नहीं कर पा रहा है।

विशेष–(i) महाकवि का चित्रकला विषयक गहन ज्ञान एवं स्वयं की अभिरुचि अभिव्यक्त हुई है। साथ ही, यक्ष का हृदयस्पर्शी दयनीय चित्र भी प्रस्तुत किया गया है।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में महाकवि ने विरहविनोद की **'प्रतिकृति'** अर्थात् 'चित्रकर्म निर्मिति' नामक द्वितीय अवस्था का मनभावन चित्रण किया है। चरम कारुणिक दृश्य की प्रस्तुति हुई है।

(iii) महाकवि का भाग्यवादी दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है तथा चित्रात्मक शैली भी दर्शनीय है।

(iv) अत्यधिक प्रसन्न होने पर प्रिय को किंचित् परेशान करने का आनन्द उठाने के लिए प्रियतमा द्वारा बिना किसी कारण के कुपित होने को साहित्यिक भाषा में 'प्रणयकोप' की संज्ञा दी गयी है, यहाँ कवि ने उसी ओर संकेत किया है, इस रूप में नायिका पहले से भी अधिक सुन्दर प्रतीत होती है।

(v) नायिका के इस प्रणयकोप को दूर करने के लिए नायक उसके चरणों में गिरकर क्षमायाचना करता है, जिससे नायिका को

अन्दर ही अन्दर असीम आनन्द की अनुभूति होती है। यक्ष स्वयं को इसी रूप में यहाँ पर चित्रित करना चाहता था, किन्तु नेत्रों में अश्रु आने से इस कार्य में वह सफल नहीं हो सका है।

(vi)नाटककार कालिदास ने शाकुन्तलम् (6/22)तथा विक्रमोर्वशीयम् (2/10) दोनों ही कृतियों में इसीप्रकार की 'चित्रनिर्माण तथा अश्रुओं के आने से चित्र का दिखायी न देना' रूप कल्पना को निबद्ध किया है। अतः काव्यकार उनसे प्रभावित प्रतीत होते हैं।

(vii) लाल गेरु मिट्टी द्वारा रामगिरि में शिलाओं पर चित्र-निर्माण से इस पर्वत की मिट्टी का गेरुएँ रंग वाली होना भी अभिव्यंजित हो रहा है।

(viii) प्रस्तुत 'चित्रनिर्मिति' के माध्यम से यक्ष के संयोगावस्था के समय की मधुर घटनारूप अन्य अर्थ की प्रतीति होने से अर्थापत्ति अलंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(ix) वस्तुतः यक्ष प्रियतमा के विरह की अग्नि में जल रहा है, जिसे दूर करने के लिए वह चित्र बनाता है, किन्तु उसमें भी असफल होने पर निराश हुआ वह, इसमें भी अपने दुर्भाग्य को ही दोषी मानते हुए अपनी प्रियतमा को हृदयद्रावक सन्देश दे रहा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **संगमं**– सम्+ √गम्+अप्।
(ii) **सहते**– √सह्+लट्+आत्मने, प्रथमपुरुष, एकवचन।
(iii) **कृतान्तः**– कृतः अन्तः येन सः, बहुव्रीहि समास।
(iv) **उपचितैः**– उप+ √चि+क्त, तृतीया विभक्ति, बहुवचन।
(v) **दृष्टिः**– √दृश्+क्तिन्, **कर्तुम्**–√कृ+तुमुन्, करने के लिए।
(vi) **चरणपतितम्**– चरणयोः पतितः, तम्, **पतितः**–√पत्+क्त।
(vii) **आलिख्य**– आ+ √लिख्+क्त्वा (ल्यप्) ठीक से लिखकर।
(viii) **प्रणयकुपिताम्**– प्रणयेन कुपिता, ताम्, √कुप्+क्त+टाप्।
(ix) **धातुरागैः**– धातवः एव रागाः, तैः, कर्मधारय। √रंज्+घञ्

संजीवनी टीका– सम्प्रति प्रतिकृतिदर्शनमाह– त्वामीति। प्रिये! प्रणयेन प्रेमातिशयेन कुपितां कुपितावस्थायुक्तां त्वाम्। त्वत्प्रतिकृति–मित्यर्थः। धातवो गैरिकादयः। 'धातुर्वातादिशब्दादिगरिकादिष्वजादिषु' इति यादवः। त एव रागा रंजकद्रव्याणि। 'चित्रादिरंजकद्रव्ये लाक्षादौ प्रणयेच्छयोः। सारंगादौ च रागः स्यादारुण्ये रंजने पुमान्' इति शब्दा–र्णवः। तैर्धातुरागैः। शिलायां शिलापट्टे आलिख्य निर्मायात्मानं माम्। मत्प्रतिकृतिमित्यर्थः। ते तव। चित्रागतताया इत्यर्थः।

चरणपतितं कर्तुं तथा लिखितं यावदिच्छामि तावदिच्छा–समकालमेव मुहुरुपचितैः प्रवृद्धैरस्रैरश्रुभिः कर्तृभिः। 'अस्रमश्रुणि शोणिते' इति विश्वः। मे मम दृष्टिरालुप्यते। आव्रियत इत्यर्थः। ततो दृष्टि–प्रतिबन्धनाल्लेखनं प्रतिबध्यत इति भावः। क्रूरो धातुकः। 'नृशंसो धातुकः क्रूरः' इत्यमरः। कृतान्ता दैवम्। 'कृतान्तो यमसिद्धान्तदैवाकुशलकर्मसु' इत्यमरः। तस्मिन्नपि चित्रेऽपि। नौ आवयोः। 'युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थी–द्वितीयास्थयोर्वानावौ' इति नावादेशः। संगमं सहवासं न सहते। संगम–लेखनमप्यावयोरसहमानं दैवमावयोः साक्षात् संगमं न सहत इति किमु वक्तव्यमित्यपि शब्दार्थः।।45।।

अवतरणिका– इसके बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से प्रिया को दिए जाने वाले, अपने सन्देश में अपनी अन्य कारुणिक दशा के सम्बन्ध में कहता है कि–

मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो–
र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसंदर्शनेषु
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां
मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति।।46।।

अन्वय– स्वप्न–संदर्शनेषु मया कथम् अपि लब्धायाः, ते निर्दय–आश्लेष–हेतोः,आकाश–प्रणिहित–भुजम् माम् पश्यन्तीनाम्, स्थली –देवतानाम्, मुक्ता–स्थूलाः अश्रु–लेशाः, तरु–किसलयेषु बहुशः न पतन्ति, (इति) न खलु।।46।।

अनुवाद– **हे प्रिये, स्वप्न के संदर्शनों में मेरे द्वारा जैसे, तैसे अत्यन्त कठिनाईपूर्वक प्राप्त हुए, तुम्हारे प्रगाढ़ आलिंगन के लिए आकाश में हाथों को फैलाए हुए, मुझे देखती हुईं, वनदेवियों की मोतियों के समान अश्रुओं की बूँदें, वृक्ष के कोमल पत्तों पर अनेक बार नहीं गिरती हैं, ऐसा नहीं है** (अर्थात् गिरती ही हैं)।

'चन्द्रिका'– कवि का अभिप्राय है कि विरही यक्ष को प्रथम तो निद्रा आती नहीं है और यदि वह किसी प्रकार रात्रि में सो भी जाता है, और उसे सौभाग्यवश स्वप्न में प्रियतमा के दर्शन हो जाते हैं, जिसे देखकर वह उसके प्रगाढ़ आलिंगन हेतु आकाश में अपने दोनों हाथों को फैला देता है। इसप्रकार सोते हुए, हाथों को फैलाए हुए, मुझे देखकर वनदेवियाँ दयार्द्र होकर, मोतियों के समान कोमल एवं सुन्दर अपनी आँसुओं की बूँदों को वृक्षों के पल्लवों पर ओस के बहाने से गिरा देती हैं।

विशेष–(i) अपने वचन में दृढ़ निश्चय की प्रतीति कराने के लिए 'नञ्' के दो बार प्रयोग का शास्त्रीय विधान है, जिसका कवि ने यहाँ प्रयोग किया है। **जैसे**– तुम वहाँ नहीं जाओगे, ऐसा नहीं है अर्थात् अवश्य ही वहाँ जाओगे।

(ii) प्रस्तुत श्लोक में महाकवि ने **विरह–विनोद की स्वप्नदर्शन नामक तृतीय अवस्था** का मनभावन चित्रण किया है तथा उनकी चित्रात्मक शैली भी दर्शनीय है।

(iii) यहाँ पर कवि का स्वप्नविज्ञान विषयक सूक्ष्मज्ञान भी अभिव्यक्त हुआ है, क्योंकि व्यक्ति दिन में जो भी चिन्तन करता है, वही उसे स्वप्न में प्रत्यक्षरूप से दिखायी देता है, यही स्वप्न विषयक सिद्धान्त है। अतः यक्ष की प्रियतमा से मिलन की इच्छा ही स्वप्न में फलित होती है, तभी तो वह अपने दोनों हाथों को फैलाकर, उसका प्रगाढ़ आलिंगन करना चाहता है।

(iv) यहाँ पर प्रयुक्त 'मुक्तास्थूला' पद में लुप्तोपमालंकार का स्वाभाविक सौन्दर्य दर्शनीय है।

(v) प्रस्तुत श्लोक में देवियों के अश्रुओं का तरुओं के किसलयों पर गिरने का उल्लेख, कवि ने साभिप्राय कराया है, क्योंकि देवों का अश्रुपात पृथ्वी पर होना अनिष्ट अर्थात् मृत्यु का सूचक माना गया है।

(vi) अपने कथ्य में दृढ़ता के अभिप्राय को संधारित करने के लिए यहाँ पर 'नञ्' का दो बार प्रयोग किया गया है अर्थात् देवियों के अश्रुओं की बूँदें किसलयों पर नहीं गिरती हैं, ऐसा नहीं है अर्थात् अवश्य ही गिरती हैं, इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है।

(vii) यहाँ वनदेवताओं की अपेक्षा वनदेवियाँ अर्थ करना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि पुरुष की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक कोमल हृदय वाली मानी गयी हैं। अतः उनका अश्रुमोचन अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक है।

(viii) कुछ विद्वानों ने इसके बाद प्रस्तुत श्लोक को प्रयुक्त माना है, जबकि अन्य इसे प्रक्षिप्त मानते हैं–

धारासिक्तस्थलसुरभिणस्त्वन्मुखस्यास्य बाले
दूरीभूतं प्रतनुमपि मां पंचबाणः क्षिणोति।
धर्मान्तेऽस्मिन्विगणय कथं वासराणि व्रजेयु–
र्दिक्संसक्तप्रविततघनव्यस्तसूर्यातपानि।।[1]

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **लब्धायाः**– √लभ्+क्त+टाप्।

(ii) **पतन्ति**– √पत्+लट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन, गिरती हैं।

(iii) **स्वप्नसंदर्शनेषु**– स्वप्नानां संदर्शनानि, तेषु षष्ठी तत्पुरुष।

---

[1]. **अनुवाद**– हे प्रिये, कामदेव के बाणों द्वारा की गयी वर्षा से गीली पृथ्वी के समान सुगन्धित, तुम्हारे मुख से दूर, दुर्बल हुए मुझे, अपेक्षाकृत अधिक कृश बना रहा है। इस ताप के अन्त में दिशाओं में फैले हुए, सघन मेघों द्वारा सूर्य की धूप को आच्छादित करने वाले, दिन कैसे व्यतीत होंगे, इसपर तुम विशेषरूप से चिन्तन करो।

(iv) **निर्दयाश्लेषहेतोः**— निर्दयः आश्लेषः, स एव हेतुः, निर्गता दया यस्मात्, सः, बहुव्रीहि। आश्लेष— आ+ √श्लिष्+घञ्, आलिंगन।

(v) **पश्यन्तीनाम्**— √दृश्+शतृ+ङीप्, षष्ठी बहुवचन।

(vi) **आकाशप्रणिहितभुजम्**— आकाशे प्रणिहितौ भुजौ येन तम्।

(vii) **स्थलीदेवतानाम्**—स्थलीनां देवताः, तासाम् षष्ठी तत्पुरुष।

(viii) **मुक्तास्थूलाः**—मुक्ता इव स्थूला, उपमित तत्पुरुष समास।

(ix) **अश्रुलेशाः**— अश्रूणां लेशाः, षष्ठी तत्पुरुष।

(x) **तरुकिसलयेषु**— तरूणां किसलयानि, तेषु, षष्ठी तत्पुरुष।

संजीवनी टीका— अधुना स्वप्नदर्शनमाह— मामिति। सुप्तस्य विज्ञानं स्वप्नः। 'स्वप्न सुप्तस्य विज्ञानम्' इति विश्वः। सन्दर्शनं संवित्। 'दर्शनं समये शास्त्रे दृष्टौ स्वप्नेऽक्षिणि संविदि।' इति शब्दार्णवः। स्वप्नसंदर्शनानि स्वप्नज्ञानानि। चूतवृक्षादिवत् सामान्यविशेषभावेन सह प्रयोगः। तेषु मया कथमपि महता प्रयत्नेन लब्धया गृहीतायाः दृष्टाया इति यावत्। ते तव निर्दयाश्लेषो गाढ़ालिंगनं स एव हेतुस्तस्य। निर्दयाश्लेषार्थमित्यर्थः। 'षष्ठी हेतुप्रयोगे' इति षष्ठी।

आकाशे निर्विषये प्रणिहितभुजं प्रसारितबाहुं मां पश्यन्तीनां स्थलीदेवतानां मुक्ता मौक्तिकानीव स्थूला अश्रुलेशा बाष्पबिन्दवस्तरु-किसलयेषु। अनेन चेलांचलेनाश्रुधारणसमाधिर्ध्वन्यते। बहुशो न पतन्तीति न, किन्तु पतन्त्येवेत्यर्थः। निश्चये नञ् द्वयप्रयोगः। तथा चालंकारिक-सूत्रम्— 'स्मृतिनिश्चयसिद्धार्थे। नञ्द्वयप्रयोगः सिद्ध' इति। 'महात्मगुरु-देवनामश्रुपातः क्षितौ यदि। देशभ्रंशो महद्‌दुःखं मरणं च भवेद् ध्रुवम्।' इति क्षितौ देवताश्रुपातनिषेधदर्शनाद्यक्षस्य मरणाभावसूचनार्थं तरु-किसलयेषु पतन्तीत्युक्तम्।।46।।

अवतरणिका— इसके बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से प्रिया को दिए जाने वाले, अपने सन्देश में अपनी कारुणिक दशा के विषय में फिर से अन्य बात को कहता है कि—

भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान् देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः।
आलिंग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः,
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदंगमेभिस्तवेति।।47।।

अन्वय– देव–दारु–द्रुमाणाम् किसलय–पुटान्, सद्यः भित्त्वा, तत् क्षीर–स्रुति–सुरभयः, ये तुषार–अद्रि–वाताः, दक्षिणेन प्रवृत्ताः, हे गुणवति! पूर्वम् एभिः तव अंगम् स्पृष्टम् भवेत्, यदि किल इति, ते मया आलिंग्यन्ते।।47।।

अनुवाद– हिमालय पर्वत की, देवदारु के वृक्षों के नूतन पल्लवों के सम्पुट को शीघ्र ही फाड़कर, उनके रस के बहने से उठने वाली सुगन्धित, जो वायु दक्षिण की ओर चलती हैं, हे गुणशालिनि! इन वायुओं द्वारा पूर्व में सम्भवतः तुम्हारे अंगों का स्पर्श किया गया होगा, इसलिए मेरे द्वारा इनका आलिंगन किया जाता है।

'चन्द्रिका'– यक्ष द्वारा उत्तर दिशा से आने वाली, वायुओं का आलिंगन केवल इसलिए विशेषरूप से किया जाता है, क्योंकि वह सोचता है कि– क्योंकि हिमालय पर्वत से आयीं ये वायु, निश्चय ही, तुम्हारे अंगों के स्पर्श से सुगन्धित तथा वहाँ पर स्थित देवदारु के वृक्षों के नए–नए पत्तों को शीघ्र ही फाड़कर उनसे निकलने वाले दूध से सुवासित होंगी। इसीलिए हे गुणवति! प्रिये, इस बहाने मुझे भी तुम्हारे अंगों के स्पर्श का आनन्द प्राप्त हो जाएगा।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में महाकवि ने विरह–विनोद की 'प्रिया के अंगों के स्पर्श की गयी वस्तु का स्पर्श करना' नामक **चतुर्थ अवस्था** का मनभावन चित्रण किया है।

(ii) इस वर्णन से प्रतीत होता है कि महाकवि ने हिमालय पर्वत का भ्रमण किया था तथा वहाँ पर प्रवाहित होने वाली शीतल वायु को देवदारु के कोमल पत्तों को विदीर्ण करके, उनसे निकलने

वाले दूध से सुगन्धित होते हुए स्वयं अनुभव किया था। कवि का यायावरीय व्यक्तित्त्व भी अभिव्यंजित हो रहा है।

(iii) सुगन्धित एवं शीतल मन्द पवन को कामोद्दीपक माना गया है, कवि ने यहाँ इस ओर भी संकेत किया है, जिससे यक्ष की विकलता भी ध्वनित हुई है।

(iv) मेघदूत की 'निरुक्त' नामक टीका में विद्वान् लेखक ने वायु को स्पृश्य तथा अमूर्त मानते हुए, उसके आलिंगन का निषेध किया है। अतः यहाँ प्रयुक्त 'आलिंग्यन्ते' पद को यक्ष के उन्मत्त प्रलाप का द्योतक माना है।

(v) यक्ष द्वारा हिमालय की वायु के आलिंगन का हेतु प्रस्तुत करने के कारण, यहाँ काव्यलिंग अलंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

(vi) इसीप्रकार के भावों की अभिव्यक्ति वाल्मीकि रामायण में भी की गयी है।[1]

(vii) इसके अलावा यक्षिणी को यहाँ 'गुणवती' कहा गया है, फिर भी अपने शरीर का स्पर्शसुख वह वायु को भला कैसे दे सकती है? इसमें दोष की परिकल्पना उचित नहीं है, क्योंकि वायु तो अमूर्त है, मूर्त नहीं, यदि वह मूर्त को यह सुख प्रदान करती तो ही दोष ही दोष की सम्भावना की जा सकती थी।

(viii) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने 'भवेत्, किल तथा यदि' इन तीन सम्भावना वाचक पदों का प्रयोग, सम्भावना की अतिशयता की अभिव्यक्ति के लिए किया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) भित्वा– √भिद्+क्त्वा, भेदकर।

(ii) **देवदारुद्रुमाणाम्**– देवदारवश्च ते द्रुमाश्च तेषाम् कर्मधारय।

(iii) **किसलयानिपुटान्**– किसलयानि पुटा इव, तान्, उप.कर्म.।

---

1. वाहि वात! यतः कान्ता, तां स्पृष्ट्वा मामपि स्पृशेः।
बह्वेतत्कामयमानस्य शक्यमेतेन जीवितम्।। किष्किन्धाकाण्ड–1/53 ।

(iv) **तत्क्षीरस्रुतिसुरभयः**– तेषां क्षीरम्, तस्य स्रुतयः, ताभिः सुरभयः, देवदारु वृक्षों के दूध के बहने से सुगन्धित।

(v) **तुषाराद्रिवाताः**–तुषारस्य अद्रिः, तस्य वाताः, षष्ठी तत्पुरुष।

(vi) **आलिंग्यते**–आ+ √लिंग्, लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(vii) **भवेत्**– √भू+विधिलिङ्, संभावनायां प्रथमपुरुष, एकवचन।

(viii) **गुणवति**– गुण+मतुप्, ङीप्, सम्बुद्धौ, एकवचनम्।

(ix) **प्रवृत्ताः**– प्र+ √वृत्+क्त, प्र.ए.व.। **स्पृष्टम्**– √स्पृश्+क्त।

संजीवनी टीका– इदानीं तदंगस्पृष्टवस्तु दर्शनमाह– भित्वेति। देवदारुद्रुमाणां किसलयपुटान् पल्लवपुटान् सद्यो भित्वा। ये तत् क्षीरस्रुतिसुरभयस्तेषां देवदारुद्रुमाणां क्षीरस्रुतिभिः क्षीरनिष्यन्दः सुरभयः सुगन्धयः तुषाराद्रिवातत्वे लिंगमिदम्। ये वाता दक्षिणेन दक्षिणमार्गेण। तृतीयाविधाने प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानात् तृतीया, समेन यातीति वत्। तत्रापि करणत्वस्य प्रतीयमानत्वात् 'कर्तृकरणयोरेव तृतीया' इति भाष्यकारः। प्रवृत्ताश्चलिताः। हे गुणवति! सौशील्यसौकुमार्यादिगुण–सम्पन्ने। ते तुषाराद्रिवाताः पूर्वं प्रागेभिर्वातैस्तैस्तवांगं स्पृष्टं भवेद्यदि किलेति सम्भावितमेतदिति बुद्ध्येत्यर्थः। 'वार्तासम्भाव्ययोः किल' इत्यमरः। मयाऽऽलिंग्यन्ते आश्लिष्यन्ते। अत्र वायूनां स्पृश्यत्वे ऽप्यमूर्तत्वेनालिंगना–योगादालिंग्यन्त इत्यभिधानं यक्षस्योन्मत्तत्वात् प्रलपितमित्यदोष इति वदन्निरुक्तकारः स्वयमेवोन्मुखप्रलापीत्युपेक्षणीयः।।47।।

अवतरणिका– इसके बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से प्रिया को दिए जाने वाले, अपने सन्देश में अपनी विरह विषयक मानसिक पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए ही फिर से कहता है कि–

संक्षिप्येत् क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा
सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात्।
इत्थं चेतश्चटुलनयने! दुर्लभप्रार्थनं मे
गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः।।48।।

अन्वय– दीर्घयामा त्रियामा, क्षणः इव कथम् संक्षिप्येत्? अहः अपि सर्वा–अवस्थासु मन्द–मन्द–आतपम् कथम् स्यात्? हे चटुल-नयने! इत्थम् दुर्लभ–प्रार्थनम्, मे चेतः, गाढ़–उष्माभिः, त्वत् वियोग-व्यथाभिः अशरणम् कृतम् ।।48।।

अनुवाद– लम्बे प्रहरों वाली रात्रि, क्षणभर के समान भला छोटी कैसे हो सकती है? और दिन भी सभी स्थितियों में मन्द–मन्द सन्ताप वाला होना कैसे सम्भव है? हे चंचल नेत्रों वाली! इसप्रकार दुर्लभ अभिलाषा वाला मेरा मन, अत्यधिक तीव्र संताप वाली, तुम्हारी विरह-वेदनाओं से अशरण कर दिया गया है।

'चन्द्रिका'– यक्ष का अभिप्राय है कि विरह की इस अवस्था में एक–एक क्षण वर्षों के समान व्यतीत हो रहा है तथा मेघ को सन्देश प्रदान करने के अवसर पर रात्रियाँ ग्रीष्मकालीन होने से छोटी ही हैं, किन्तु ये ही रात्रियाँ उसे पौषमाह की दीर्घकालीन रात्रियों के समान लम्बी प्रतीत हो रही हैं। उसकी आकांक्षा है कि काश! ये रात्रियाँ किसी भी प्रकार से छोटी हो जाएँ, यह तो बात हुई रात्रियों की।

इसीप्रकार वह दिनों के विषय में भी कहता है कि **प्रथम**, तो तुम्हारे विरह की अग्नि से संतप्त हृदय अत्यधिक पीड़ित है और ऊपर से दिन की गर्मी से शरीर पर पड़ने वाला ताप, ये दोनों ही मिलकर मुझे प्रतिदिन अत्यधिक पीड़ित करते रहते हैं।

इसीलिए वह चाहता है कि ग्रीष्मकालीन ये दिन कम आतपों वाले हो जाएँ और रात्रियाँ भी अपेक्षाकृत अधिक छोटी हो जाएँ, यद्यपि वह जानता है कि मेरी ये दोनों ही अभिलाषाएँ सर्वथा दुर्लभ हैं, इसीलिए इस स्थिति में वह अपने मन को अत्यधिक तीव्रताप वाली यक्षिणी की विरह वेदनाओं के समक्ष अनाथ बताता है, क्योंकि इन दोनों पर ही उसका कोई वश नही है।

विशेष–(i) यह शाश्वत तथ्य है कि विरहावस्था में व्यक्ति का एक पल भी वर्षों के समान प्रतीत होते हुए असह्य होता है।

(ii) रात्रि को यहाँ कवि ने **त्रियामा** कहा है, क्योंकि रात्रि के तीन–तीन घण्टों वाले तीन प्रहर होते हैं, जबकि दिन में पाँच प्रहर होते हैं।

(iii) इसीप्रकार यहाँ प्रयुक्त 'सर्वावस्थासु' पद का अभिप्राय यहाँ पर प्रातः, मध्याह्न तथा सायं इन तीन कालों या वसन्त, ग्रीष्म एवं वर्षा इन तीनों ऋतुओं से ग्रहण किया जा सकता है। इनमें भी प्रथम अर्थ अधिक सटीक प्रतीत होता है।

(iv) वस्तुतः यक्ष ने यहाँ पर ग्रीष्मकालीन ऋतु में तीनों कालों के ताप की, किसी भी प्रकार से न्यून होने की कामना की है, जो किसी भी प्रकार पूरा होना सम्भव नहीं है, इसीलिए उसने स्वयं को यहाँ 'अनाथ' कहा है। यक्षिणी को अपनी पीड़ा का कथन करके सम्भवतः वह थोड़ा राहत का अनुभव करना चाहता है, क्योंकि यह शाश्वत सत्य है कि अपने दुःख को प्रिय से कहने के बाद वह हलका होकर सह्य हो जाता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i)**अशरणम्**–अविद्यमानं शरणं यस्य,तत्

(ii) **दीर्घयामा**– दीर्घाः यामाः यस्यां सा, बहुव्रीहि समास।

(iii) **त्रियामा**– त्रयः, यामाः यस्यां सा, बहुव्रीहि समास।

(iv) **मन्दमन्दातपम्**– मन्दामन्दः आतपो यस्मिन् तत्, बहुव्रीहि।

(v) **संक्षिप्येत्**– सम्+ √क्षिप्+विधिलिङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

(vi) **चटुलनयने**– चटुले नयने यस्याः, सा, बहुव्रीहि, सम्बुद्धौ।

(vii) **दुर्लभप्रार्थनम्**– दुर्लभाः प्रार्थना, यस्य तत्, बहुव्रीहि।

(viii) **गाढ़ोष्माभिः**– गाढः उष्मा यस्यां सा, ताभिः, बहुव्रीहि।

(ix) **त्वद्वियोगव्यथाभिः**– तव वियोगः, त्वद्वियोगः, तस्य व्यथाः, ताभिः, षष्ठी तत्पुरुष, **अशरणम्**–अविद्यमानं शरणं यस्य तत्। नञ् बहु.।

संजीवनी टीका– संक्षिप्येतेति। दीर्घा यामाः प्रहरा यस्यां सा दीर्घयामा। विरहवेदना तथा प्रतीयमानेत्यर्थः। त्रियामा रात्रिः। 'आद्यन्ता–योरर्धयाममयोर्दिनव्यवहारात् त्रियामा' इति क्षीरस्वामी। क्षण इव कथं

केन प्रकारेण संक्षिप्येत लघुक्रियेत। अहरपि सर्वावस्थासु। सर्वकालेष्वित्यर्थः। मन्दमन्दो मन्दप्रकारः। 'प्रकारेगुणवचनस्य' द्विरुक्तिः। कर्मधारयवदुत्तरेषु इति कर्मधारयवद्भावात् सुपो लुक्। मन्दमन्दातपमत्यल्पसंतापं कथं स्यात्। न स्यादेव। हे चटुलनयने! चंचलाक्षि, इत्थमनेन प्रकारेण दुर्लभप्रार्थनाप्राप्यमनोरथं मे मम चेतो गाढ़ोष्माभिरतितीव्रीभवस्त्वद्वियोगव्यथाभिरशरणमनाथं कृतम्।।48।।

अवतरणिका– इसप्रकार अपनी कारुणिक दशा के सम्बन्ध में उल्लेख करने के बाद, विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ को दिए जाने वाले सन्देश में प्रिया को आश्वस्त करते हुए कहता है कि–

नन्वात्मानं बहुविगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि! त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम्।
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा,
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।।49।।

अन्वय– ननु, बहु–विगणयन् (अहम) आत्मानम्, आत्मना एव अवलम्बे, तत् कल्याणि! त्वम् अपि नितराम् कातरत्वम् मा गमः, कस्य अत्यन्तम् सुखम् वा एकान्ततः दुःखम् उपनतम्? दशा चक्र–नेमि–क्रमेण नीचैः च उपरि गच्छति।।49।।

अनुवाद– हे प्रिये! अत्यधिक विचार करता हुआ मैं, अपने आप को, अपने आप से ही सहारा दे लेता हूँ, इसलिए सौभाग्यशालिनि! तुम भी अत्यन्त व्याकुल होकर दीनता को प्राप्त मत होना, क्योंकि अत्यन्त सुख अथवा निरन्तर एकमात्र दुःख भला किसे प्राप्त हुआ है? क्योंकि लोगों की सुख–दुःख की दशा तो पहिए के समान ऊपर, नीचे चलती ही रहती है।

'चन्द्रिका'– यक्ष कहता है कि अपनी और तुम्हारी स्थिति पर जब मैं सूक्ष्मदृष्टि से गहन चिन्तन करता हूँ तो इसी निर्णय पर पहुँचता हूँ कि शाप की अवधि पूर्ण होने से पहले हम दोनों के परस्पर मिलने का कोई भी उपाय हमारे पास नहीं है। इसलिए मैं स्वयं ही

अपने आपको ढ़ाढ़स दे लेता हूँ। इसीप्रकार हे सौभाग्यशालिनि! तुम भी इस विषय को लेकर बहुत अधिक व्याकुल मत होना।

तत्पश्चात् अपने उक्त कथ्य की पुष्टि में यक्ष शाश्वत एवं लोकसम्मत सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए कहता है कि– वस्तुस्थिति तो यह है कि इस संसार में सुख, दुःख का चक्र निरन्तर घूमता रहता है अर्थात् यहाँ पर स्थित प्राणियों को न तो हमेशा सुखों की प्राप्ति होती है और न ही हमेशा उसे दुःख ही मिलते हैं। इसलिए दुर्भाग्य से प्राप्त हुए इस वियोगरूपी असह्य दुःख को अपने प्राणों की रक्षा करते हुए हमें येन केन प्रकारेण अवश्य सहन करना चाहिए।

विशेष–(i) यहाँ प्रयुक्त 'बहु विगणयन्' से अत्यधिक गहन चिन्तनपूर्वक अभिप्राय ग्रहण करना चाहिए।

(ii) जब व्यक्ति सभी ओर से निराश हो जाता है और उसके समक्ष कोई उपाय नहीं बचता है, तो ही वह अपने से, अपने को सहारा देता है, वही स्थिति यहाँ यक्ष की चित्रित की गयी है। इससे व्यक्ति का मनोबल बढ़ता है और वह किसी भी विपत्ति का दृढ़ता से सामना करने योग्य हो जाता है।

(iii) वस्तुस्थिति यह है कि बुरे दिनों में अपने अच्छे दिनों की स्मृति को यदि सहारा बनाया जाए, तो बुरे दिन भी धीरे–धीरे कट ही जाते हैं, अन्यथा निराश होकर व्यक्ति का प्राणान्त ही हो जाए।

(iv) दूसरे शब्दों में, हमेशा ही ये बुरे दिन नहीं रहेंगे, कभी तो इनका भी अन्त होगा, सुख के दिन आएँगे, यही चिन्तन, कठिन एवं बुरे दिनों को बिताने का बहुत बड़ा अवलम्ब होता है। यही भावना कवि द्वारा अभिव्यक्त की गयी है।

(v) प्रस्तुत श्लोक में पूर्व में कहे गए विशेष कथन का, अन्तिम चतुर्थ चरण में कहे गए सामान्य कथन से समर्थन करने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(vi) 'काल' अर्थात् समय की उपमा भी चक्र से ही दी जाती है। उसी आधार पर यहाँ सुख–दुःख को चक्र की परिधि के समान कभी ऊपर तो कभी नीचे जाने वाली कहा है, क्योंकि मनुष्य के जीवन में यह चक्र हमेशा ही गतिमान् रहता है।

(vii) नाटककार कालिदास (शाकुन्तलम्–4/2), महाकवि भास (स्वप्नवासवदत्तम्) तथा महाकवि अश्वघोष (बुद्धचरितम्–11/43) ने सुखदुःख के विषय में इसी तरह के भावों को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

(viii) कुछ विद्वानों ने इसके बाद निम्न दो श्लोकों को प्रयुक्त माना है, जबकि अन्य इन्हें प्रक्षिप्त मानते हैं–

स्निग्धः सख्यः कथमपि दिवा तां न मोक्ष्यन्ति तन्वी–
मेकाप्रख्या भवति हि जगत्यंगनानां प्रवृत्तिः।
स त्वां रात्रौ जलद शयनासन्नवातायनस्थः
कान्तां सुप्ते सति परिजने वीतनिद्रामुपेयाः।।[1]

इसी क्रम में दूसरा श्लोक इसप्रकार है–

अन्वेष्टव्यामवनिशयने सन्निकीर्णैकपार्श्वां
तत्पर्यन्तप्रगलितलवैश्छिन्नहारैरिवास्रैः।
भूयो भूयः कठिनविषमां सारयन्ती कपोला–
दामोक्तव्यामयमितनखेनैक वेणी करेण।।[2]

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) नितराम्– नि+तरप्+आम्।

(ii) **विगणयन्–** वि+ √गण्+णिच्+शतृ, प्रथमा, एकवचन।

(iii) **अवलम्बे–** अव+ √लम्ब्, लट्, उत्तमपुरुष, एकवचन।

---

[1]. **अनुवाद**–दिन में प्रेम करने वाली सखियाँ उस तन्वंगी यक्षिणी को किसी भी प्रकार से अकेला नहीं छोड़ती होंगी, क्योंकि इस संसार में स्त्रियों की प्रवृत्ति एक समान ही होती है। इसलिए हे मेघ! तुम शय्या के पास वाली खिड़की पर बैठकर, सेविकाओं के सो जाने पर खुली हुई निद्रा वाली, मेरी प्रिया के पास जाना।।

[2]. **अनुवाद**– पृथ्वीरूपी शय्या पर एक ही करवट में पड़ी हुई, पास में बिखरे हुए, मोतियों के हार के समान, आँसुओं से ही जानने योग्य, बिना कटे हुए नाखूनों वाले, हाथों से कठोर तथा उलझी हुई, एक चोटी को अपने कपोलों से बार–बार हटाती हुई, उस मेरी प्रिया को देखोगे।।2।।

(iv) **कल्याणि**– कल्याण+ङीप्, सम्बुद्धौ, एकवचनम्।

(v) **कातरत्वम्**– कातरायाः भावः, कातर+त्व, √कु+तृ+अच्।

(vi) **गमः**– √गम्+लुङ्, मध्यमपुरुष, एकवचन, गच्छ।

(vii) **चक्रनेमिक्रमेण**– चक्रस्य नेमिः, तस्याः क्रमेण, ष. तत्पुरुष।

(viii) **एकान्ततः**–एकान्त+तसिल्, **उपनतम्**– उप+ √नम्+क्त।

संजीवनी टीका– न च मदीयदुर्दशाश्रवणाद भेतव्यमित्याह– नन्विति। नन्वित्यामन्त्रणे। 'प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणे ननु।' इत्यमरः। ननु प्रिये! बहु विगणयन् 'शापान्ते सत्येवमेवं करिष्यामि' इत्यावर्तयन्नात्मानमात्मनैव। 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इति तृतीया। अवलम्बे धारयामि। यथाकथंचिज्जीवामीत्यर्थः। 'वह्वादिभ्यश्च' इति ङीष्। त्वमपि नितरामत्यन्तं कातरत्वं भीरुत्वं मा गमः गच्छ। 'गमेर्माङि लुङ 'न माङ्योगे' इत्यडागमाभावः। तादृक् सुखिनोरावयोरीदृशे दुःखे कथनं बिभेमीत्याशंक्याह कस्येति। कस्य जनस्यात्यन्तं सुखमुपनतं प्राप्तमेकान्ततो नियमेन दुःखं वोपनतम्? किंतु दशावस्था चक्रस्य रथांगस्य नेमिस्तदन्तः। 'चक्रं रथांगं तस्यान्ते नेमिः स्त्री स्यात् प्रधिः पुमान्' इत्यमरः। तस्याः क्रमेण परिपाट्य। 'क्रमः शक्तौ परिपाट्याम्' इति विश्वः। नीचैरध उपरि च गच्छति प्रवर्तते।जन्तो सुखदुःखं पर्यवर्तते इत्यर्थः।।49।।

अवतरणिका– इसके बाद विरही यक्ष, अपने सन्देश में अपनी प्रिया को आश्वस्त करते हुए ही फिर से कहता है कि–

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्गपाणौ
शेषान्मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा
पश्चादावां विरहगणितं तं तमात्माभिलाषं
निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु।।50।।

अन्वय– शार्गपाणौ भुजग–शयनात् उत्थिते मे शापान्तः, शेषान् चतुरः मासान् लोचने मीलयित्वा गमय, पश्चात् आवाम्, विरह–गणितम् तम्–तम् आत्माभिलाषम् परिणत–शरत् चन्द्रिकासु क्षपासु निर्वेक्ष्यावः।50।

अनुवाद– हे प्रिये! भगवान् विष्णु के शेषशय्या से उठने पर, मेरे शाप का अन्त हो जाएगा, इसलिए तुम शेष चार माह को आँखें मूँदकर व्यतीत कर लो, उसके बाद हम वियोग में चिन्तन की गयी उस–उस अभिलाषा का शरदृतु की पूर्ण चाँदनी से युक्त रात्रियों में भोग करेंगे।

'चन्द्रिका'– हे प्रियतमे! जब शार्ङ्गपाणि अर्थात् भगवान् विष्णु अपनी शेषशय्या से उठेंगे, उसी अवसर पर मेरे शाप का अन्त भी हो जाएगा, इसलिए तब तक की शेष चार माह की अवधि को तुम आँखें मूँदकर सहन कर लो। इसके पश्चात् जब हमारे इस शाप का अन्त हो जाएगा, तो हम दोनों इस वियोगकाल में चिन्तन की गयी, अपनी उन–उन सभी अभिलाषाओं को शरदृतु की चाँदनी रात में पूरा करेंगे, जो हमने इस समय सोची हैं।

विशेष–(i) शाप की शेष अवधि को यहाँ केवल चार माह बताया गया है।

(ii) यहाँ पर कामी मनोविज्ञान को प्रदर्शित किया गया है।

(iii) 'शार्ङ्ग' भगवान् विष्णु के धनुष का नाम होने से उनके लिए यहाँ 'शार्ङ्गपाणौ' विशेषण का प्रयोग किया गया है। शार्ङ्ग नामक धनुष है हाथ में जिसके वह, अर्थात् भगवान् विष्णु।

(iv) ज्योतिषीय मान्यता के अनुसार आषाढ़ शुक्ल एकादशी को भगवान् विष्णु अपनी शेषशय्या पर शयन करते हैं तथा कार्तिक शुक्ल एकादशी को वे उठते हैं अर्थात् जागते हैं, जिसे **देवोत्थानी एकादशी** के नाम से भी जाना जाता है। इसप्रकार चार माह पर्यन्त उनका शयनकाल माना गया है, इस अवधि में सभी शुभकार्य निषेध माने गए हैं।

(v) कुछ टीकाकारों का मानना है कि आषाढ़ के प्रथम दिन से जब यक्ष की भेंट मेघ से हुई है तथा जब इसके शाप का अन्त होगा, तब तक की अवधि कुल मिलाकर, चार माह दस दिन होते हैं,

फिर कवि ने यहाँ इसे चार माह क्यों कहा? इसका उत्तर यही है कि क्योंकि दस दिन का समय तो मेघ अलकापुरी तक जाने में भी लगाएगा, इसी दृष्टि से इसे मानना चाहिए।

(vi) इसप्रकार जब वह यक्षिणी को यह सन्देश सुनाएगा, तब तक ये अतिरिक्त दस दिन बीत चुके होंगे, इसलिए सामान्य कथन की दृष्टि से ही यहाँ चार माह की अवधि शेष कही गयी है।

(vii) 'आँखें मूँदकर बिता देना', लोक कहावत है, कवि ने उसी को दृष्टिगत रखते हुए यहाँ 'लोचने मीलयित्वा' पदों का प्रयोग किया है, जो उनकी लोक परम्पराओं से सम्मति का प्रतीक भी कहा जा सकता है। इससे कवि का व्यक्तित्व भी अभिव्यक्त हुआ है।

(viii) सामान्यरूप से देखने में आता है कि व्यक्ति अपने विरहकाल में अनेक प्रकार की बातों का चिन्तन करता है, जिन्हें मिलने पर वह पूरा करने का विचार करता है। यहाँ प्रयुक्त 'विरहगणितम्' पद से कवि ने उसी ओर संकेत किया है।

(ix) इसके अलावा कार्तिक मास में ही कवि ने यहाँ पर शरद्ऋतु का प्रादुर्भाव मान लिया है, इसलिए उक्त कथन में विरोध की सम्भावना उचित नहीं है।

(x) प्रस्तुत श्लोक में उदात्तालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(xi) कुछ टीकाकारों ने यहाँ वर्षा के चार मास की कल्पना करके विरोध की आशंका की है, जबकि आचार्य मल्लिनाथ ने इसका अभिप्राय शेष चार मास अवशिष्ट मानकर इसका निराकरण किया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **आवाम्**– त्वम् च अहम् च।

(ii) **शार्ङ्गपाणौ**– शार्ङ्गः पाणौ यस्य सः, बहुव्रीहि। विष्णु।

(iii) **भुजगशयनात्**– भुजगः एव शयनं तस्मात्, तत्पुरुष। भुजग– भुजः कुटिलः सन् गच्छतीति, √भुज्+गम्+ड, √शी+ल्युट्।

(iv) **मीलयित्वा**– √मिल्+णिच्+क्त्वा, बन्द करके।

(v) **गमय**– √गम्+णिच्+ लोट्, मध्यम पुरुष, एकवचन।

(vi) **विरहगणितम्**– विरहे गणितम्, सप्तमी तत्पुरुष।

(vii) **आत्माभिलाषम्**– आत्मनः अभिलाषः तम्, षष्ठी तत्पुरुष।

(viii) **परिणतशरच्चन्द्रिकासु**– शरदः चन्द्रिकाः, परिणताः शरदः चन्द्रिकाः, यासु तासु, बहुव्रीहि। **परिणत**– परि+ √नम्+क्त,

(ix) **निर्वेक्ष्यावः**– निर्+ √विश्+लृट्, उत्तमपुरुष, द्विवचन।

संजीवनी टीका– न च निरवधिकमेतद् दुःखमित्याह– शापान्त इति। शार्गंनाम् धनुः पाणौ स्थितं यस्य स तस्मिन् शार्गंपाणौ विष्णौ 'सप्तमी विशेषणे' इत्यादिना बहुव्रीहिः। 'प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठा सप्तम्यौ भवतः' इति वक्तव्यात्पाणिशब्दस्योत्तरनिपातः। भुजगः शेष एव शयनं तस्मादुत्थिते सति मे शापान्तः शापावसानम्। भविष्यतीति शेषः। शेषानवशिष्टांश्चतुरो मासान् मेघदर्शनप्रभृति हरिबोधनदिनान्तमित्यर्थः। दशदिवसाधिक्यं त्वत्र न विवक्षितमित्युक्तमेव। लोचने मीलयित्वा निमील्य गमय। धैर्येणातिवाहयेत्यर्थः। पश्चादनन्तरं त्वं चावाम्। 'त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्' इत्येकशेषः। 'त्यदादीनां मिथो द्वन्द्वे यत्परं तच्छिष्यते' इत्यस्मदः शेषः। विरहे गणितमेवमेवं करिष्यामीति मनस्यावर्तितम्। तं तम्। वीप्सायां द्विरुक्तिः आत्मनोरावयोरभिलाषं मनोरथम्।

परिणताः शरच्चन्द्रिका यासां तासु क्षपासु रात्रिषु निर्वेक्ष्यावो, भोक्ष्यावहे। विशतेर्लृट्। 'निर्वेशोभूतिभोगयोः' इत्यमरः। 'अत्र कैश्चित् नभो नभस्योरेव वार्षिकत्वातकथयामासाढादिचतुष्टयस्य वार्षिकत्वमुक्तमिति चोदयित्वा ऋतुत्रयपक्षाश्रयणादविरोधः' इति मर्महारि तत् सर्वमसंगतम्। अत्र गतशेषाश्चत्वारो मासा इत्युक्तं कविना न तु ते वार्षिका इति तस्मादनुक्तोपालम्भ एव। यच्च नाथेनोक्तम् 'कथमाषाढादिचतुष्टयात्परं शरत्कालः' इति तथाप्याकार्तिकसमाप्तेः शरत्कालानुवृत्तेः परिणतशरच्चन्द्रिकास्वित्युक्तम्। न तु सदैव शरत्प्रादुर्भाव उक्त इत्यविरोध एव।।50।।

अवतरणिका– इसके बाद विरही यक्ष, अपने सन्देश में प्रिया को विश्वास दिलाने हेतु प्रामाणिकता के लिए, मेघ से कुछ पूर्व में घटित गोपनीय घटना के विषय में कहता है कि–

भूयश्चाह त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे
निद्रां गत्वा किमपि रुदती सस्वनं विप्रबुद्धा।
सान्तर्हासं कथितमसकृत् पृच्छतश्च त्वया मे,
दृष्टः स्वप्ने कितव! रमयन् कामापि त्वं मयेति।।51।

अन्वय– (हे अबले!) भूयः च (सः) आह– (प्रिये!) पुरा शयने मे कण्ठ–लग्ना अपि त्वम् निद्राम् गत्वा, किम् अपि सस्वनम् रुदती, विप्रबुद्धा, च असकृत् मे पृच्छतः, त्वया स–अन्तर्हासम् कथितम्– कितव! मया स्वप्ने त्वम् काम् अपि रमयन्, मया दृष्टः, इति।।51।।

अनुवाद– हे अबले! तुम्हारे पति ने फिर से कहा है कि– हे प्रिये! पूर्व में मेरे कण्ठ से लगकर सोयी हुई भी तुम, किसी कारणवश जोर से चिल्लाकर रोती हुई जाग गयी थी और मेरे द्वारा बार–बार पूछे जाने पर, तुमने मन ही मन हँसते हुए ऐसा कहा था कि– 'हे धूर्त! मैंने स्वप्न में तुम्हें किसी भी अन्य स्त्री के साथ रमण करते हुए देखा है।'

'चन्द्रिका'– मेघ, विरहिणी यक्षिणी से कहता है कि हे अबले! तुम्हारे पति यक्ष ने विश्वास दिलाने के लिए मुझे आप दोनों के बीच में घटी हुई अत्यन्त गोपनीय घटना के विषय में भी कहा है, जिसे केवल तुम ही जानती हो। अब मैं वह तुम्हें सुनाता हूँ। तदनुसार–

हे प्रिये! एक बार तुम मेरे साथ शय्या पर मेरे कण्ठ से लगकर सोयी हुई थी, तभी किसी कारण से चिल्लाकर रोती हुई तुम जाग गयी, तुम्हारे रोने का कारण मेरे द्वारा बार–बार पूछे जाने पर, तुमने अपने मन ही मन हँसते हुए मुझे कहा था कि–

'हे धूर्त! मैंने तुम्हें किसी दूसरी स्त्री के साथ स्वप्न में रमण करते हुए देखा है।'

विशेष–(i) यह शाश्वत सत्य है कि एकनिष्ठ प्रेम प्रियतम को अन्य स्त्री के साथ स्वप्न में भी सहन करने में असमर्थ होता है, इसी तथ्य को अत्यन्त सुन्दर रूप में कवि द्वारा यहाँ प्रदर्शित किया गया है।

(ii) 'कण्ठलग्ना' पद से यक्ष एवं यक्षिणी दोनों का धनिष्ठ प्रेम अभिव्यक्त हुआ है, किन्तु फिर भी स्वप्न में अन्य स्त्री के साथ रमण करते हुए दिखायी देना, स्त्री का पति के ऊपर प्रति क्षण अन्य स्त्री के साथ रमण करने के विषय में सन्देह व्यक्त करता है।

(iii) स्वप्न को आधार बनाकर ही यहाँ कवि ने यक्ष के लिए 'कितव' सम्बोधन का प्रयोग भी कराया है। यद्यपि यक्ष उज्ज्वल चरित्र वाला है, वह इसप्रकार का लम्पट व्यक्ति नहीं है, इसकी पुष्टि राम गिरि आश्रम के आठ माह के अब तक के प्रवास से भी हो जाती है, जिसे उसने केवल अपनी प्रियतमा की यादों के सहारे ही व्यतीत किया है।

(iv) महाकवि ने स्त्री के स्वभाव का सटीक चित्रण किया है, क्योंकि अत्यन्त सुन्दर स्त्री भी, अपने पति के चरित्र को हमेशा सन्देह की दृष्टि से ही देखती है, फिर भले ही वह स्वप्न में ही क्यों न हो।

(v) यक्ष ने यह विचार करके ही इस गोपनीय घटना को मेघ से कहा है कि कहीं सन्देश ले जाने वाले, मेघ के प्रति यक्षिणी को किसी प्रकार से अविश्वास न हो जाए। इसलिए पहचान हेतु इसप्रकार की घटना निशानी के रूप में सुनाना या भेजना उचित रहेगा।

(vi) उक्त घटना से यक्षिणी को स्वयं के मूर्खतापूर्ण व्यवहार पर लज्जित होते हुए हँसी आने के कारण कवि ने यहाँ 'सान्तर्हासम्' विशेषण का प्रयोग किया है। यक्ष के प्रति यक्षिणी के अत्यधिक घनिष्ठ प्रेम के साथ, उसका शंकालु स्वभाव भी अभिव्यक्त हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **रुदती**– √रुद्+शतृ+ङीप्।

(ii) **शयने**– शेते अस्मिन् इति, √शी+ल्युट्, शय्या पर।

(iii) **कण्ठलग्ना**– कण्ठे लग्ना, सप्तमी तत्पुरुष, गले से लगी।

(iv) **सस्वनम्**–स्वनेन सहितं यथा स्यात् तथा, शब्द करते हुए।

(v) **विप्रबुद्धा**– वि+प्र+ √बुध्+क्त, टाप्, **दृष्टः**– √दृश्+क्त।

(vi) **सान्तर्हासम्**– अन्तर्हासेन सह यथा स्यात् तथा।

(vii) **पृच्छतः**– √पृच्छ्+शतृ+षष्ठी,बहुव्रीहि। **स्वप्ने**– √स्वप्+नन्।

(viii) **रमयन्**– √रम्+णिच्+शतृ+प्रथमा,ए.व.। रमण करते हुए।

संजीवनी टीका– सम्प्रति तस्या मेघवंचकत्वशंकानिरासायाति–गूढ़मभिधेयमुपदिशति–भूय इति। हे अबले! भूयः पुनरप्याह। त्वद्भर्ता मन्मुखेनेति शेषः। मेघवचनमेतत्। किमित्यत आह–पुरा पूर्वम्। पुराशब्द–श्चिरातीते। 'स्यात्प्रबन्धे चिरातीते निकटागामिके पुरा' इत्यमरः। शयने मे कण्ठलग्नापि त्वम्। गते बद्धस्य कथमपि गमनं न सम्भवेदिति भावः। निद्रां गत्वा किमपि। केन वा निमित्तेनेत्यर्थः। सस्वनं सशब्दम्। उच्चै–रित्यर्थः। रुदती सती विप्रबुद्धा आसीरिति शेषः। असकृद् बहुशः पृच्छतः। रोदनहेतुमिति शेषः। मे मम हे कितव! त्वं कामपि रमयन्मया स्वप्ने दृष्ट इति त्वया सान्तर्हासं समन्दहासं यथा तथा कथितं चेति। त्वद्भर्ता भूयश्चाहेति योजना।।51।।

अवतरणिका– इसके बाद विरही यक्ष, प्रिया को आश्वस्त करते हुए, विश्वास दिलाने हेतु पूर्वघटित गोपनीय घटना का उल्लेख करने के बाद फिर से कहता है कि–

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
मा कौलीनादसितनयने! मय्यविश्वासिनी भूः।
स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा–
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति।।52।।

अन्वय– असितनयने! एतस्मात् अभिज्ञान–दानात्, माम् कुशलिनम् विदित्वा, कौलीनात् मयि अविश्वासिनी मा भूः, विरहे स्नेहान् किम् अपि ध्वंसिनः आहुः, तु ते अभोगात् इष्टे वस्तुनि, उपचित–रसाः, प्रेम–राशी–भवन्ति।।52।।

अनुवाद– हे काले नेत्रों वाली! इस पहचान चिह्न के देने से मेरे कुशल समाचार जानकर, लोकापवाद के कारण मेरे प्रति अविश्वास वाली मत हो जाना, क्योंकि लोग तो वियोग में प्रेम को कुछ कम हो जाने वाला कहते हैं, जबकि वे ही स्नेहभाव, भोगों के अभाव में अभिलषित वस्तु के प्रति बढ़े हुए, प्रेमरस वाले होकर, प्रेमपुँज बन जाते हैं।

'चन्द्रिका'– अपने जीवन की विशेष घटनारूप पहचान चिह्न को यक्षिणी के समक्ष सुनाकर, यक्ष कहता है कि निश्चय ही इस पहचान चिह्न द्वारा तुम्हें मेरे कुशल होने का विश्वास हो गया होगा, हे काले नेत्रों वाली! लोगों के कहने में आकर तुम मेरे प्रति अविश्वासिनी नहीं हो जाना, क्योंकि लोग तो वियोग की अवस्था में प्रेम को कम होने वाला मानते हैं, जबकि वस्तुस्थिति यह है कि वियोग की अवस्थाओं में, भोगों के अभाव में स्नेहभाव से चाही गयी, वस्तु के प्रति पहले से भी अधिक प्रेमरस वाले होकर मानो प्रेम के पुँज ही हो जाते हैं।

विशेष–(i) कवि ने नायिका के लिए 'असितनयन' विशेषण का प्रयोग किया है, जो उसके नेत्रों के सौन्दर्य को उद्घाटित करता है, क्योंकि 'काले नेत्र' स्त्री के सौन्दर्य के प्रतीक माने गए हैं।

(ii) महाकवि ने अपनी प्रेमविषयक मान्यता की सुन्दर प्रस्तुति की है, क्योंकि एकनिष्ठ प्रेम की विशेषता है कि वह वियोगावस्था में भी कम न होकर पहले से अधिक बढ़ जाता है, जिसे यहाँ एकत्र होकर पुँजरूप होने वाला बताया गया है।

(iii) 'लोकापवाद' से अभिप्राय यहाँ यक्ष के सम्बन्ध में लोगों में प्रचलित दो प्रकार की मान्यताओं से ग्रहण करना चाहिए। **प्रथम** के अनुसार यक्ष तो अब जीवित ही नहीं होगा, इतने दिनों बाद मर गया होगा। यदि जीवित होता तो निश्चय ही वापस आता। **द्वितीय,** वह यक्ष तो किसी दूसरी स्त्री में आसक्त हो गया होगा, इसीलिए तुम्हारे पास अभी तक नहीं आया है।

(iv) उक्त दोनों ही लोकापवादों पर यक्ष ने अपनी प्रियतमा से विश्वास करने का निषेध किया है। तदनुसार– **प्रथम,** तो तुम मेरे मरने की आशंका बिल्कुल नहीं करना। **द्वितीय,** मैं किसी अन्य स्त्री के प्रेमपाश में भी नहीं बँधा हूँ, मेरा तुम्हारे प्रति एकनिष्ठ प्रेम आज भी बना हुआ है। मैं तो यहाँ तुम्हारी पुरानी यादों के सहारे ही जीवित हूँ।

(v) यक्ष का अभिप्राय यही है कि अपनी प्रिया के पास न जाने का एकमात्र कारण वर्षभर की अवधि वाला उसका शाप ही है, अन्य कुछ नहीं। इस अवधि के पूरा होने पर वह स्वतः ही महिमा प्राप्त होने पर, यक्षिणी के पास आ जाएगा, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है।

(vi) प्रस्तुत श्लोक में पूर्व में कहे गए विशेष कथन का, अन्तिम चतुर्थ चरण में कहे गए सामान्य कथन से समर्थन करने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(vii) तात्कालिक समाज का सुन्दर चित्रण किया गया है, क्योंकि घटना विशेष के घटित होने पर लोग व्यर्थ ही अनेक प्रकार के अनुमान लगाकर लोगों को भ्रमित तथा बदनाम करते रहते हैं।

(viii) महाकवि का आशय यह है कि सौन्दर्य पर आश्रित प्रेम ही वासनामय होने से क्षणिक होता है, किन्तु आन्तरिक प्रेम कभी भी क्षीण नहीं होता है। वह तो वियोगावस्था में भी हृदय को प्रकाशित करता रहता है और उसमें निरन्तर वृद्धि होती रहती है।

(ix) प्रस्तुत श्लोक तक यक्ष का सन्देश समाप्त हो जाता है। इसप्रकार कवि ने 44 श्लोक से लेकर 52 श्लोक पर्यन्त कुल नौ श्लोकों में विरही यक्ष का सन्देश मेघ के माध्यम से दिलाया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **विदित्वा**– √विद्+क्त्वा, जानकर।

(ii) **प्रेमराशीभवन्ति**– प्रेम्णां राशयः, अप्रेमराशयः, प्रेमराशयः यथा सम्पद्यन्ते, तथा भवन्ति, इति प्रेमराशि+च्वि+ √भू+लट्, प्र.पु., बहुवचन।

(iii) **असितनयने**– असिते नयने यस्याः सा, बहुव्रीहि। सम्बुद्धौ।

(iv)**अभिज्ञानदानात्**–अभिज्ञायते दानं,तस्मात् अभि+ √ज्ञा+ल्युट्।

(v)**कुशलिनम्**–कुशलम् अस्यास्तीति कुशली, तम्, कुशल+इनि।

(vi) **कौलीनात्**– कुलेः भवम् इति कौलीनम्, तस्मात्।

(vii) **अविश्वासिनी**– न विश्वासः, इति, अविश्वासः अस्ति अस्याः सा, अविश्वास+इनि+ङीप्, प्रथमा, ए.व.। नञ्+वि+ √श्वस्+घञ्।

(viii) **ध्वंसिनः**– ध्वंसन्तीति तच्छीलाः, √ध्वंस्+णिनि, द्वि. बहुव.।

(ix) **अभोगात्**– न भोगः इति अभोगः, तस्मात्, नञ् तत्पुरुष।

(x)**उपचितरसाः**–उपचितः रसः तेषु ते बहुव्रीहि, उप+ √चि+क्त।

संजीवनी टीका– एतस्मादिदिति। एतस्मात्पूर्वोक्तात्। अभिज्ञायते-ऽनेनेत्यभिज्ञानं लक्षणं तस्य दानात् प्रापणान्मां कुशलिनं क्षेमवन्तं विदित्वा ज्ञात्वा। हे असितनयने! कुले जनसमूहे भवात्कौलीनाल्लोकप्रवादात्। एतावता कालेन परासर्नो चेदागच्छतीति जनप्रवादादित्यर्थः। 'स्यात्कौलीनं लोकवादेयुद्धेपश्वहिपक्षिणाम्' इत्यमरः। मयि विषयेऽविश्वासिनी मरणशंकिनी मा भूर्न भव। भवतेर्लुङ्। 'न माङ्योगे' इत्यडागम-निषेधः। न च दीर्घकालविप्रकर्षात् पूर्वस्नेहनिवृत्तिः शंक्येत्याह-स्नेहनिति। किमपि किंचिन्निमित्तम्। न विद्यते इति शेषः।

स्नेहान्प्रीतिर्विरहे सत्यन्योन्यविप्रकर्षे सति ध्वंसिनो विनश्व-रानाहुः। तत्तथा न भवतीत्यभिप्रायः। किन्तु ते स्नेहा अभोगाद विरहे भोगाभावाद्धेतोः। प्रसज्यप्रतिषेधेऽपि नञ् समास इष्यते। इष्टे वस्तुनि विषये। उपचितो रसः स्वादो येषु ते उपचितरसाः सन्तः। प्रवृद्धतृष्णा इत्यर्थः। 'रसो गन्धे रसः स्वादे तिक्तादौ विषरागयोः' इति विश्वः। प्रेमराशीभवन्ति। वियोगासहिष्णुत्वमापद्यन्त इत्यर्थः। स्नेहप्रेम्णोरवस्था-भेदाद्भेदे। तदुक्तम्– 'आलोकनाभिलाषौ रागस्नेहौ ततः प्रेमा रतिश्रृंगारौ योगे वियोगतो विप्रलम्भश्च।।' इति। तदेव स्फुटीकृतं रसरत्नाकरे 'प्रेक्षा दिदृक्षा रम्येषु तच्चिन्ता त्वभिलाषकः। रागस्तत्संगबुद्धिः स्यात् स्नेहस्तत् प्रवणक्रिया।। तद्वियोगासहं प्रेम रतिस्तत्सहवर्तनम्। श्रृंगारस्तत्समं क्रीड़ा संयोगः सप्तधा क्रमात्। इति।।52।।

अवतरणिका– इसप्रकार प्रिया को सन्देश देने के बाद लौटकर अपने को आश्वस्त कराने की बात करते हुए, स्वयं के जीवनधारण कराने के लिए भी यक्ष, अपने मित्र मेघ से कहता है कि–

आश्वास्यैवं प्रथमविरहोदग्रशोकां सखीं ते
शैलादाशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्तः।
साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि
प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः।।53।।

अन्वय– प्रथम–विरह–उदग्र–शोकाम्, ते सखीम्, एवम् आश्वास्य, त्रिनयन–वृष–उत्खात–कूटात् शैलात्, आशु निवृत्तः, साभिज्ञान–प्रहित–कुशलैः तद्–वचोभिः, प्रातः कुन्द–प्रसव–शिथिलम्, मम अपि जीवितम्, धारयेथाः।।53।।

अनुवाद– प्रथम विरह के कारण भयंकर पीड़ा वाली, अपनी सखी (भाभी) **को इसप्रकार आश्वस्त करके, महादेव के नन्दी बैल द्वारा खोदे गए शिखरों वाले, कैलाश पर्वत से शीघ्र ही लौटकर, पहचान चिह्न के साथ भेजे गए तुम, कुशल समाचारों सें युक्त, उस प्रिया के वचनों से प्रातःकालीन कुन्द पुष्प के समान शिथिल पड़े हुए, मेरे जीवन को भी धारण कराना।**

'चन्द्रिका'– अपना सन्देश मेघ को देने के बाद, यक्ष उससे पुनः कहता है कि– अपने जीवन में प्रथम प्राप्त हुए मेरे विरह के कारण अत्यधिक पीड़ा को सहन करने वाली, अपनी भाभी को इस प्रकार आश्वासन प्रदान करने के बाद, तुम मेरी प्रियतमा द्वारा दिए गए पहचान चिह्न को साथ लेकर, भगवान् शंकर के नन्दी बैल द्वारा खोदे गए शिखरों वाले, उस कैलास पर्वत से शीघ्र लौटकर, यहाँ मेरे पास रामगिरि आश्रमों में अवश्य आना, जिससे कुशल समाचारों से युक्त जीवनसंगिनी के उन वचनों को तुम्हारे माध्यम से सुनकर, मैं भी प्रातः कालीन कुन्द के पुष्प के समान शिथिल हुए, अपने विरही जीवन को धारण करने में समर्थ हो सकूँ।

विशेष–(i) विरही एवं नीरस जीवन की उपमा के लिए प्रातः कालीन कुन्द के पुष्प की उपमा अत्यन्त हृदयहारिणी बन पड़ी है। अतः उपमालंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

(ii) यक्ष का आशय है कि यक्षिणी और मेरे जीवन का यह **पहला ही विरह** है, जो हम दोनों के लिए ही अत्यधिक कष्टकर है, क्योंकि यह शाश्वत सत्य है कि कोई भी कष्ट जब प्रथम बार सहन करना पड़ता है, तो निश्चय ही असह्य होता है, दोबारा उसी कष्ट के आने पर वह उसप्रकार का कष्टकर नहीं होता है।

(iii) इसके अतिरिक्त विरही यक्ष ने, अपने मित्र मेघ से प्रस्तुत श्लोक में यह भी आशा की है कि वह कैलास पर्वत से लौटकर, यहाँ एक बार अवश्य आए और मुझे प्रियतमा का कुशल समाचार भी मेरे समान ही अभिज्ञान के साथ प्रदान करे। तभी मेरे इस मृत्प्राय शिथिल जीवन को सम्बल प्राप्त हो सकेगा।

(iv) कुन्द अर्थात् चमेली का पुष्प कवि को अत्यधिक प्रिय रहा है, प्रस्तुत काव्य में अनेक स्थलों पर इसका उपमानरूप में प्रयोग किया गया है। इसकी यह विशेषता होती है कि यह रात्रि में ही खिलता है तथा सुबह होते ही अपनी डण्ठल से नीचे पृथ्वी पर गिरने के थोड़ी देर बाद ही मुरझा जाता है।

(v) कुछ विद्वानों ने इस श्लोक को प्रक्षिप्त माना है, किन्तु प्रसंग की दृष्टि से इसे तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि **प्रथम** तो मल्लिनाथ ने इसपर टीका का प्रणयन किया है। द्वितीय, कोई भी व्यक्ति सन्देश देने के बाद, सामने वाले के उत्तर की आशा तो प्रमाण के साथ निश्चितरूप से करेगा ही, जो यहाँ यक्ष द्वारा भी किया गया है।

(vi) इसके अतिरिक्त जब मेघ वापस आकर उसकी प्रिया के सन्देशरूप वचनों को यक्ष को सुनाएगा, तभी तो वह आश्वस्त होकर

फिर से जी उठेगा, इसी से तो कवि के काव्य की संरचना का मुख्य उद्देश्य भी पूरा हो सकेगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **तद्वचोभिः**– तस्याः वचोभिः।

(ii) **प्रथमविरहोदग्रशोकाम्**– प्रथमश्च असौ विरहः, तेन उदग्रः, शोकः, यस्याः सा ताम्, बहुव्रीहि। पहले विरह से तीव्र दुःख वाली।

(iii)**आश्वास्य**–आ+ √श्वस्+णिच्+क्त्वा(ल्यप्) आश्वस्त करके।

(iv) **धारयेथाः**–√धृ+णिच्+विधिलिङ्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(v) **तद्वचोभिः**– तस्याः वचोभिः, षष्ठी तत्पुरुष समास।

(vi) **कुन्दप्रसवशिथिलम्**– कुन्दस्य प्रसवः, तद्वत् शिथिलम्।

(vii) **साभिज्ञानप्रतिहतकुशलैः**– अभिज्ञानेन सहितम्, इति साभिज्ञानम्, यथा स्यात् तथा प्रहितं कुशलं येषु तैः, बहुव्रीहि।

(viii) **त्रिनयनवृषोत्खातकूटात्**– त्रीनि नयनानि यस्य सः, तस्य वृषः, तेन उत्खाताः कूटाः, यस्य, तस्मात्, उत्खात्–उत्+ √खन्+क्त।

संजीवनी टीका– इत्थं स्वकुशलं सन्दिश्य तत्कुशलसन्देशनय–नमिदानीं याचते– आश्वास्येति। प्रथम विरहेणोदग्रशोकां तीव्रदुःखां ते सखीमेवं पूर्वोक्तरीत्या आश्वास्योपजीव्य त्रिनयनस्य त्र्यम्बकस्य वृषेण वृषभेणोत्खाता अवदारिताः। कूटाः शिखराणि यस्य तस्मात्। 'कूटोऽस्त्री शिखरं श्रृंगम्' इत्यमरः। शैलात्कैलाशादाशु निवृत्तः सन्प्रत्यावृत्तः सन् साभिज्ञानं सलक्षणं यथा तथा प्रहितं प्रेषितं कुशलं येषु तैस्तस्यास्त्वत् सख्या वचोभिर्ममापि प्रातः कुन्दप्रसवमिव शिथिलं दुर्बलं जीवितं धारयेथाः स्थापय। प्रार्थनायां लिङ्।। 53।।

अवतरणिका– इसके बाद विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ से अनुरोधपूर्वक, अपना सन्देश स्वीकार करने के विषय में प्रश्न करते हुए जिज्ञासा के साथ कहता है कि–

कच्चित्सौम्य! व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे
प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां कल्पयामि
निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः

प्रयुक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव।।54।।

अन्वय–सौम्य! मे इदम् बन्धु–कृत्यम् त्वया व्यवसितम् कच्चित्? प्रत्यादेशात् भवतः धीरताम् न कल्पयामि खलु याचितः, निःशब्दः अपि चातकेभ्यः जलम् प्रदिशसि, हि प्रणयिषु ईप्सितार्थ–क्रिया एव सताम् प्रयुक्तम्।।54।।

अनुवाद– हे सौम्य! मेरे इस बन्धु–कार्य को करने का तुमने निश्चय कर लिया है ना? क्योंकि मेरी प्रार्थना को ठुकरा देने पर, मैं तुम्हारी गम्भीरता की कल्पना नहीं करता हूँ। तुम तो प्रार्थना किए जाने पर, चुपचाप रहकर भी चातकों को जल देते ही हो, वस्तुतः याचकों के अभिलषित कार्यों को पूर्ण करना ही सज्जनों का उत्तर होता है।

'चन्द्रिका'– हे सज्जन मेघ! क्या तुमने अपने इस बन्धु के कार्य को करने का निर्णय कर लिया है? इसमें किसीप्रकार का कोई सन्देह तो नहीं है, क्योंकि यदि तुम मेरी इस प्रार्थना को ठुकरा देते हो, तो मैं तुम्हारी गम्भीरता की कल्पना नहीं करता हूँ। वस्तुतः कोई भी गम्भीर व्यक्ति मुझ जैसे आपत्तिग्रस्त व्यक्ति की सहायता के लिए मना नहीं करेगा। इसके अतिरिक्त तुम तो गम्भीर होने के साथ–साथ परोपकारी स्वभाव के भी हो, क्योंकि चातकों द्वारा जल प्रदान करने की प्रार्थना किए जाने पर, तुम तो हमेशा ही उन्हें जल प्रदान करते हो। इसका कारण यही है कि सज्जन लोग अपनी वाणी से कुछ न कहकर, याचकों के अभिलषित कार्यों को पूरा करके ही उन्हें अपना स्वीकृति सूचक उत्तर प्रदान करते हैं।

विशेष–(i) यक्ष का आशय है कि मेघ के सज्जन होने के कारण उसका मौन ही वस्तुतः उसके कार्य को स्वीकृति प्रदान करना है अर्थात् उस मेघ ने यक्ष का सन्देश लेकर अलकापुरी जाने का निर्णय कर लिया है, इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है।

(ii) मेघ की गम्भीरता ही उसकी उत्कृष्टता है, इसलिए यदि वह बिना कोई उत्तर दिए यक्ष के कार्य को सम्पन्न कर देता है, तो

इसमें उसके लिए कोई बड़ी बात नहीं है, क्योंकि चातकों के माँगने पर बिना कोई उत्तर दिए, वह उन्हें जल प्रदान करता ही है।

(iii) प्रस्तुत श्लोक में यक्ष ने क्षणभर के लिए मेघ द्वारा अपनी प्रार्थना को ठुकराए जाने की सम्भावना की है, किन्तु मेघ के पुराने एवं दीर्घकालीन सज्जन चरित्र को देखते हुए तत्काल अगले ही क्षण, अपनी ही बात का उसने निषेध भी किया है।

(iv) यहाँ प्रयुक्त 'प्रत्यादेशात्' पद का विभिन्न टीकाकारों ने अलग–अलग अर्थ किया है, जबकि कुछ टीकाकारों ने इसे 'प्रत्या–देष्टुम्' एवं 'प्रत्यादशम्' पाठ के रूप में भी स्वीकार किया है।

(v) प्रस्तुत श्लोक में पूर्व में कहे गए विशेष कथन का, अन्तिम चतुर्थ चरण में कहे गए सामान्य कथन से समर्थन करने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(vi) सज्जनों के स्वभाव के उल्लेख से काव्यकार कालिदास का सज्जन व्यक्तित्व भी अभिव्यंजित हुआ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **प्रत्युक्तम्**– प्रति+ √वच्+क्त।

(ii) **बन्धुकृत्यम्**– बन्धोः कृत्यम्, षष्ठी तत्पुरुष, मित्र का कार्य।

(iii) **व्यवसितम्**– वि+अव+ √सो+क्त, निश्चय कर लिया है।

(iv) **प्रत्यादेशात्**– प्रति+आङ्+ √दिश्+घञ्, पंचमी, एकवचन।

(v) **धीरताम्**– धीरस्य भावः, धीरता, ताम्, धीर+तल्+टाप्।

(vi) **कल्पयामि**– √क्लृप्+लट्, उत्तम पुरुष, एकवचन।

(vii) **याचितः**– √याच्+क्त, **कच्चित्**– प्रश्नसूचक अव्यय।

(viii) **निःशब्दः**– निर्गतः शब्दो यस्मात् सः, बहुव्रीहि।

(ix) **प्रदिशसि**– प्र+ √दिश्+लट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(x) **इप्सितार्थक्रिया**– ईप्सितः चासौ अर्थः, तस्य क्रिया।

संजीवनी टीका– सम्प्रति मेघस्य प्रार्थनांगीकारं प्रश्नपूर्वकं कल्पयति– कच्चिदिति। हे सौम्य! साधो, इदं मे बन्धुकृत्यं बन्धुकार्यम्। देवदत्तस्य गुरुकुलमितिवत् प्रयोगः। व्यवसितं कच्चित् करिष्यामीति निश्चितं किम्।'कच्चित्कामवेदने' इत्यमरः। अभिप्रायज्ञापनं कामप्रवेदनम्। न च ते तूष्णीम्भावादनंगीकारं शंके यतस्ते स एवोचित इत्याह–

प्रत्यादेशात् 'करिष्यामि' इति प्रतिवचनात्। 'उक्तिराभाषणं वाक्यमादेशो वचनं वच' इति शब्दार्णवः। भवतस्तव धीरतां गम्भीरत्वं न कल्पयामि न समर्थये खलु।

तर्हि कथमंगीकारज्ञानं तत्राह– याचितः सन्निःशब्दोऽपि निर्गर्जितोऽपि। अप्रतिजानानोऽपीत्यर्थः। चातकेभ्यो जलं प्रदिशसि ददासि युक्तं चैतदित्याह हि यस्मात् सतां सत्पुरुषाणां प्रणयिषु याचकेषु विषये ईप्सितार्थक्रियैवापेक्षितार्थसम्पादनमेव प्रत्युक्तं प्रतिवचनम्। क्रिया केवलमुत्तरमित्यर्थः। 'गर्जति शरदि न वर्षति वर्षासु निःस्वनो मेघः। नीचो वदति न कुरुते, न वदति सुजनः करोत्येव' इति भावः।।54।।

अवतरणिका– काव्य के अन्त में विरही यक्ष, अपने मित्र मेघ के लिए शुभकामनाएँ प्रदान करते हुए कहता है कि–

एतत्कृत्वा प्रियमनुचितप्रार्थनावर्तिनो मे
सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या।
इष्टान् देशान् जलद! विचर प्रावृषा संभृतश्री–
र्मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः।। 55।।

अन्वय– जलद! सौहार्दात् वा, विधुरः इति, मयि अनुक्रोश–बुद्ध्या वा, अनुचित–प्रार्थना–वर्तिनः, मे एतत् प्रियम् कृत्वा, प्रावृषा संभृत–श्रीः, (त्वम्) इष्टान् देशान् विचर, एवम् च क्षणम् अपि ते, विद्युता विप्रयोगः मा भूत्।। 56।।

अनुवाद– हे जल प्रदान करने वाले मेघ! मित्रता के कारण अथवा बेचारा बिछुड़ा हुआ है, इस विचार से मेरे प्रति दयाभाव के कारण, अनुचित प्रार्थना वाले, मेरे इस प्रिय कार्य को करके, वर्षा में बढ़ी हुई शोभा वाले, तुम अपने अभिलषित देशों में विचरण करना और मेरे समान तुम्हारा क्षणभर के लिए भी बिजली से वियोग न होवे।

'चन्द्रिका'– हे सभी लोगों को जल प्रदान करने वाले, सज्जन मेघ! मेरे साथ हुई इस मित्रता के कारण अथवा यह बेचारा अपनी प्रियतमा से लम्बे समय से बिछुड़ा हुआ है, इस बात को दृष्टि में रखकर, मेरे प्रति दयार्द्र होकर, मेरे द्वारा की गयी इस अनुचित प्रार्थना

को भी पूरा करके, वर्षा ऋतु में बढ़ी हुई शोभा से सम्पन्न तुम, अपने अभिलषित प्रदेशों में विचरण करना और मेरी तुम्हारे प्रति यही शुभकामना है कि तुम्हारा क्षण भर के लिए भी, मेरे समान अपनी प्रिया विद्युत् के साथ वियोग न हो, तुम दोनों हमेशा साथ–साथ ही रहो।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में लिंगसाम्य के कारण मेघ तथा विद्युत् में क्रमशः नायक–नायिका के व्यवहार का आरोप होने के कारण समासोक्ति अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है।

(ii) उपर्युक्त श्लोक में कवि ने काव्य के अन्त में मंगल कामनारूप आशीर्वाद का प्रयोग करके, प्राचीन शास्त्रीय परम्परा का निर्वहण किया है।

(iii) साथ ही, श्लोक में प्रयुक्त 'सम्भृतश्रीः' पद को प्रयुक्त करके 'मंगलादीनि मंगलमध्यानि मंगलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते' इत्यादि वाक्यों के अनुसार अन्त में भी किए जा सकने वाले मंगला–चरण का प्रयोग भी किया है।

(iv) प्रस्तुत श्लोक में मेघ ने स्वयं को अनुचित प्रार्थना करने वाला इस दृष्टि से कहा है, क्योंकि कहाँ तो उच्चकुल में उत्पन्न महान् मेघ और कहाँ मैं वन में दर–दर भटकता हुआ, अपनी ही महिमा से पूर्णतया रहित, सामान्य एवं तुच्छ सा प्राणी। इसलिए तुम्हारे प्रति मेरी यह प्रार्थना वस्तुतः अनुचित ही है।

(v) दैनिक लोकव्यवहार में वस्तुस्थिति तो यही है कि आयु अथवा सामर्थ्य में बड़े लोगों से छोटे प्राणियों द्वारा किसी भी प्रकार की सेवा लिया जाना अनुचित माना गया है?

(vi) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने विद्युत् को मेघ की पत्नी कहा है तथा कभी भी मेघ के साथ उसका वियोग न होने की मंगल कामना, इस काव्य के नायक यक्ष द्वारा करायी गयी है, क्योंकि यक्ष प्रिया से अलग होने के कष्ट से भलीभाँति परिचित है। वह नहीं चाहता कि इसप्रकार का कष्ट कभी भी किसी दूसरे को प्राप्त होवे।

(vii) कुछ विद्वानों की मान्यता है कि महाकवि ने प्रस्तुत श्लोक के साथ ही इस काव्य को समाप्त कर दिया है, किन्तु कुछ

लोगों ने अपनी मति के अनुसार कुछ दूसरे श्लोकों को भी जोड़ दिया है, जिन्हें यहाँ प्रक्षिप्त संज्ञा दी गयी है।

(viii) किन्तु हमारे विचार में अग्रिम श्लोक को प्रस्तुत काव्य का ही अंश मानना उचित है, क्योंकि इस श्लोक में कवि ने इस काव्य के फल का भी कथन किया है, जो युक्तिसंगत प्रतीत होता है, क्योंकि यक्ष–यक्षिणी के परस्पर मिलन से ही इस काव्य की पूर्णता होती है।

(ix) कुछ विद्वान् इसके बाद भी तीन श्लोकों को स्वीकार करते हैं, जिसका उल्लेख हमने परिशिष्ट–(v) पृष्ठ–459–462 के मध्य प्रक्षिप्त श्लोकों के रूप में किया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **सम्भृत**– सम्+ √भृ+क्त, बढ़ी हुई।

(ii) **सौहार्दात्**–शोभनं हृदयं यस्य सः, सुहृत्, बहुव्रीहि, तस्मात्।

(iii) **अनुक्रोशबुद्धया**–अनुक्रोशस्य बुद्धिः तया, अनु+ √क्रुश्+घञ्

(iv) **अनुचितप्रार्थनावर्तिनः**– न उचितः, इति अनुचितः, अनुचिता चासौ प्रार्थना, अनुचितप्रार्थनायां वर्तते तच्छीलः, तस्य √वृत्+णिनि।

(v) **विचर**– वि+ √चर्+लोट्, मध्यमपुरुष, ए.व., विचरण करो।

(vi) **मा भूत्**– √भू+लुङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन, माङि् लुङ्

संजीवनी टीका– **सम्प्रति स्वापराधसमाधानपूर्वकं स्वकार्यस्यावश्यं करणं प्रार्थयमाने मेघं विसृजति– एतदिति। हे जलद! सौहार्दात् सुहृद्भावात्। 'हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च' इत्युभयपदवृद्धिः। विधुरो वियुक्त इति हेतोर्वा। विधुरं तु प्रविश्लेषम्' इत्यमरः। मयि विषयेऽनुक्रोशबुद्ध्या करुणाबुद्ध्या वा अनुचिता तवाननुरूपा या प्रार्थना प्रियां प्रति 'सन्देशं मे हर' इत्येवं रूपा तत्र वर्तिनो निर्बन्धपरस्य मे ममैतत् संदेशहरणरूपं प्रियां कृत्वा सम्पाद्य प्रावृषा वर्षाभिः। 'स्त्रियं प्रावृट् स्त्रियां भूम्नि वर्षा' इत्यमरः। सम्भृतश्रीरुपचितशोभः सन्। इष्टान्स्वाभिलषितान् देशान् विचर। यथेष्टदेशेषु विहरेत्यर्थः। 'देशकालाध्वगन्तव्याः कर्मसंज्ञा ह्यकर्मणाम्' इति वचनात् कर्मत्वम्। एवं मद्वत्क्षणमपि स्वल्पकालमपि ते तव विद्युता। कलत्रेणेति शेषः। विप्रयोगो विरहो मा भून्मास्तु। माङीत्याशिषि लुङ्। 'अन्ते काव्यस्य नित्यत्वात् कुर्यादाशिषमुत्तमाम्। सर्वत्र**

व्याप्यते विद्वान् नायकेच्छानुरूपपिणीम्।।' इति सारस्वतालंकारे दर्शनात्काव्यान्ते नायकेच्छानुरूपोऽयमाशीर्वादः प्रयुक्त इत्यनुसंधेयम्।।55।।

अवतरणिका– इसप्रकार यक्ष द्वारा, मेघ के माध्यम से दिए गए सन्देश के विषय में जानकर, यक्षाधिपति कुबेर की प्रतिक्रिया के विषय में काव्य के अन्त में प्राप्त होने वाले फल को महाकवि कहते हैं कि–

श्रुत्वा वार्तां जलदकथितां तां धनेशोऽपि सद्यः
शापस्यान्तं सदयहृदयः संविधायाऽस्तकोपः।
संयोज्यैतौ विगलितशुचौ दम्पती हृष्टचित्तौ
भोगानिष्टानविरतसुखं भोजयामास शश्वत्।।56।।[1]

अन्वय– धनेशः अपि, जलद–कथिताम्, ताम् वार्ताम् श्रुत्वा, सदय–हृदयः, अस्त–कोपः च, सद्यः शापस्य अन्तम् संविधाय, विगलित–शुचौ हृष्ट–चित्तौ एतौ दम्पती, संयोज्य इष्टान् भोगान् अविरत–सुखम् शश्वत् भोजयामास।।57।।

अनुवाद– मेघ द्वारा उस समाचार को सुनकर, दयालु हृदय एवं शान्त क्रोध वाले कुबेर ने भी, अपने शाप का अन्त करके, शोक रहित तथा प्रसन्न चित्त वाले, इन दम्पत्तियों को मिलाकर, अभीष्ट भोगों वाले निरन्तर सुखों को हमेशा के लिए अनुभव कराया।

'चन्द्रिका'– जब यक्षाधिपति कुबेर ने मेघ द्वारा सम्पूर्ण वृत्तान्त को सुना तो दयालु हृदय उसने अपने क्रोध को शान्त करके, उस यक्ष के शाप का अन्त कर दिया। इसके पश्चात् शोक से पूर्णतया रहित एवं प्रसन्न मन वाले उन दोनों अर्थात् यक्ष और यक्षिणी ने मिलकर अपने अभिलषित भोगों का निरन्तर आनन्द के साथ भोग किया।

विशेष–(i) प्रस्तुत श्लोक में कवि ने यक्षाधिपति कुबेर को कोमल एवं दयालु हृदय वाला प्रतिपादित किया है।

---

[1]. प्रस्तुत श्लोक को कुछ विद्वानों ने प्रक्षिप्त माना है। आचार्य मल्लिनाथ ने भी इस पर टीका नहीं लिखी है, किन्तु चारित्रवर्द्धिनी टीकाकार ने इस श्लोक पर टीका की है। हम भी इसे काव्यकार द्वारा विरचित स्वीकार करते हैं।

(ii) वस्तुतः यक्ष की अत्यन्त कारुणिक कथा को सुनकर ही कुबेर का हृदय दया से आर्द्र हुआ था, क्योंकि इसप्रकार की कारुणिक कथा सुनकर तथा यक्षिणी की करुणामयी स्थिति को देखकर कठोर हृदय भी अपने निर्णय को बदल सकता है।

(iii) इसप्रकार काव्यकालिदास का यह प्रथम काव्य, कवि परम्परा के अनुसार सुखान्त हो जाता है, जो सहृदयों को आह्लादित करने वाला है।

(iv) कुछ विद्वान् इसके बाद भी एक श्लोक को स्वीकार करते हैं, जिसका उल्लेख हमने परिशिष्ट–(v) पृष्ठ–460 में किया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी–(i) **संयोज्य**– सम्+ √युज्+णिच्+ल्यप्।

(ii) **जलदकथिताम्**– जलदेन कथिता, ताम्, तृतीया तत्पुरुष।

(iii) **सदयहृदयः**– दयया सहितम्, सदयं वर्तते, इति अथवा सदयं हृदयं यस्य सः, बहुव्रीहि।

(iv) **विगलितशुचौ**– विगलिता शुक् ययोः तौ, बहुव्रीहि समास।

(v) **हृष्टचित्तौ**– हृष्टं चित्तं ययोः तौ, बहुव्रीहि समास।

(vi) **भोजयामास**– √भुज्+णिच्+लिट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

(vii) **संविधाय**– सम्+वि+ √धा+क्त्वा(ल्यप्)

संस्कृत टीका– **अनन्तरम् धनेशोऽपि मेघकथिताम् ताम् कथाम् विश्रुत्य सदयोभूत्वा अस्तक्रोधः सन् तस्य यक्षस्य शापस्य अन्तम् विश्रान्तिम् विधाय कृत्वा, शोकरहितौ प्रसन्नचित्तौ तौ दम्पतीम् परस्परम् मेलनम् कारयित्वा अभिलषितान् भोगान् सर्वान् निरन्तरम् व्यवधानरहितम् कारितवान्। पश्चात् नैव तयोः वियोगो संजातः कदापि कुबेरादेशात्।**

•••

परिशिष्ट

श्लोकानुक्रमणिका (अकारादिक्रम से)

(i) पूर्वमेघ

श्लोक		संख्या
1.	अद्रेः श्रृंगं हरति	14
2.	अप्यन्यस्मिंजलधर	38
3.	अम्भोबिन्दु	22
4.	आपृच्छस्व प्रियसखे	12
5.	आराध्यैनं शरवणभवं	49
6.	आसीनानां सुरभितं	56
7.	उत्पश्यामि त्वयि तटगते	63
8.	उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे	23
9.	कर्तुं यच्च प्रभवति	11
10.	कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा	01
11.	गच्छन्तीनां रमणवसति	41
12.	गत्वा चोर्ध्वं दशमुख	62
13.	गम्भीरायाः पयसि	44
14.	छन्नोपान्तः परिणत	18
15.	जातं वंशे भुवनविदिते	06
16.	जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः	36
17.	ज्योतिर्लेखावलयि	48
18.	तं चेद् वायौ सरति	57
19.	तत्र व्यक्तं दृषदि	59
20.	तत्र स्कन्दं नियतवसतिं	47
21.	तत्रावश्यं वलयकुलिशो	65
22.	तस्माद्गच्छेरनुकनखलम्	54
23.	तस्मिन्काले नयनसलिलम्	43

(ii) उत्तरमेघ

•••

(iii) अन्य प्रक्षिप्त श्लोक

•••

(iv) मेघदूत में प्रयुक्त सूक्तियाँ–

पूर्वमेघ–

- मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः
  कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।।3।।
- कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।।5।।
- यांचा मोघा वरमधिगुणं नाधमे लब्धकामा।।6।।
- कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षते जायां
  न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः।।8।।
- आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यंगनानां
  सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि।।10।।
- प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः।।17।।
- रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय।।20।।
- स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु।।29।।
- मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः।।42।।
- ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः।।45।।
- आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम्।।57।।
- के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः।।58।।

उत्तरमेघ–

- वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति।।4।।
- सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम्।।20।।
- या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः।।22।।
- प्रायेणैते रमणविरहेष्वंगनानां विनोदाः।।27।।
- प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा।।33।।
- कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः संगमात् किंचिदूनः।।40।।
- कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा,
  नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।।49।।
- स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा–
  दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति।।52।।

•••

(v) प्रक्षिप्त श्लोक

जैसा कि हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं कि मेघ में श्लोकों की संख्या को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। अधिकाँश विद्वानों की दृष्टि में मान्य कुल श्लोकों का हमने क्रमशः पूर्वमेघ (67) तथा उत्तरमेघ (55) कुल 122 श्लोकों का उल्लेख किया, किन्तु इसके अतिरिक्त भी कुछ श्लोक अकारादिक्रम से यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं, जिन्हें कुछ टीकाकार काव्यकार कालिदास की रचना के रूप में स्वीकार करते हैं। कुछ श्लोकों को हमने यथास्थान टिप्पणी में भी दे दिया है–

अध्वक्लान्तं प्रतिमुखगतं सानुमानाम्रकूटः
तुंगेन त्वां जलद! शिरसा वक्ष्यति श्लाघ्यमानः।
आसारेण त्वमपि शामयेस्तस्य नैदाघमग्निः
सद्भावार्द्रः फलति न चिरेणोपकारो महत्सु।।1।।

(पूर्वमेघ में श्लोक 18 के बाद प्रयुक्त)

अन्वय– हे जलद! श्लाघ्यमानः, आम्रकूटः, सानुमान्, अध्व–क्लान्तम्, प्रतिमुख–गतम्, त्वाम् शिरसा वक्ष्यति। त्वम् अपि आसारेण तस्य नैदाघम् अग्निः शमयेः, महत्सु सद्भाव–आर्द्रः उपकारः न चिरेण फलति।।1।।

अनुवाद– हे मेघ! प्रशंसनीय आम्रकूट पर्वत मार्ग की थकान से युक्त, सामने आए हुए तुम्हें, अपने मस्तक पर धारण करेगा और तुम भी अपनी अत्यधिक वर्षा द्वारा उसकी गर्मी की अग्नि को शान्त कर देना, क्योंकि महापुरुषों के प्रति सद्भावपूर्वक किया गया उपकार शीघ्र ही फल प्रदान करने वाला होता है।।1।।

अन्वेष्टव्यामवनिशयने सन्निकीर्णैकपार्श्वां
तत्पर्यन्तप्रगलितलवैश्छिन्नहारैरिवास्रैः।
भूयो भूयः कठिनविषमां सारयन्ती कपोला–
दामोक्तव्यामयमितनखेनैक वेणी करेण।।2।।

(उत्तरमेघ में श्लोक 49 के बाद प्रयुक्त)

अन्वय– अवनि–शयने, सन्निकीर्णः एक–पार्श्वाम् तत् पर्यन्त–प्रगलित–लवैः, छिन्न–हारैः इव, अस्रैः, अन्वेष्टव्याम् अयमित–नखेन

करेण कठिन–विषमाम् आमोक्तव्याम् एक–वेणीम्, कपोलात् भूयः भूयः सारयन्तीम् (उपेयाः)।।2।।

अनुवाद– पृथ्वीरूपी शय्या पर एक ही करवट में पड़ी हुई, पास में बिखरे हुए, मोतियों के हार के समान, आँसुओं से ही जानने योग्य, बिना कटे हुए नाखूनों वाले हाथों से कठोर तथा उलझी हुई एक चोटी को अपने कपोलों से बार–बार हटाती हुई उस मेरी प्रिया को देखोगे।।2।।

इत्थं भूतं सुरचितपदं मेघदूताभिधानं
कामक्रीड़ाविरहितजने विप्रयोगे विनोदः।
मेघस्यास्मिन्नतिनिपुणताबुद्धिभावः कवीनां
नत्वाऽऽर्यायाश्चरणकमलं कालिदासश्चकार।।3।।

(उत्तरमेघ 55 के बाद प्रयुक्त)

अन्वय– कालिदासः आर्यायाः चरण–कमलम् नत्वा, सुरचित–पदम् इत्थम् भूतम् मेघदूत–अभिधानम् (काव्यम्) चकार, अस्मिन् काम–क्रीड़ा–विरहित–जने, विप्रयोगे विनोदः, मेघस्य अति–निपुणता कवीनाम् बुद्धि–भावः।।3।।

अनुवाद– महाकवि कालिदास ने माँ काली के चरणकमलों में प्रणाम करके, सुन्दर रचे हुए पदों वाले इसप्रकार के मेघदूत नामक काव्य की संरचना की। इसमें विरहकाल में कामक्रीड़ा से वंचित लोगों के मनोविनोद हेतु मेघ का अत्यन्त चातुर्यपूर्ण तथा कवि का बुद्धिमत्ता पूर्ण परिचय प्रदान किया गया हैं

इत्याख्याते सुरपतिसखः शैलकुल्यापुरीषु
स्थित्वा स्थित्वा धनपतिपुरीं वासरैः कैश्चिदाप।
मत्वाऽऽगारं कनकरुचिरं लक्षणैः पूर्वमुक्तै–
स्तस्योत्संगे क्षितितलगतां तां च दीनां ददर्श।।4।।

(उत्तरमेघ 54 के बाद प्रयुक्त)

अन्वय– इति, आख्याते (सति), सुरपति–सखः, शैल–कुल्या–पुरीषु स्थित्वा, स्थित्वा, कैश्चित् वासरैः, धनपति–पुरीम् आप, पूर्वम् उक्तैः लक्षणैः, कनक–रुचिरम् आगारम्, मत्वा तस्य उत्संगे क्षिति–तल–गताम् ताम् दीनाम् च ददर्श।।4।।

अनुवाद– यक्ष द्वारा इसप्रकार कहने पर मेघ, पर्वतों, नदियों एवं नगरों में रुक–रुककर कुछ ही दिनों में कुबेर की नगरी अलकापुरी में

पहुँच गया और वहाँ पर पूर्व में बताए गए लक्षणों वाले स्वर्ण के समान चमकीले भवन को पहचानकर, उसने उसके अन्दर भूमि पर लेटी हुई उस दीन अवस्था वाली यक्षिणी को देखा।।4।।

तं सन्देशं जलधरवरो दिव्यवाचाऽऽचचक्षे
प्राणांतस्या जनहितरतो रक्षितुं यक्षवध्वाः।
प्राप्योदन्तं प्रमुदितमनाः साऽपि तस्थौस्वभर्तुः
केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थनाह्युत्तमेषु।।5।।

(उत्तरमेघ 54 के बाद प्रयुक्त)

अन्वय– जन–हित–रतः जलधरः, यक्ष–वध्वाः, प्राणान् रक्षितुम् दिव्य–वाचा, तम् सन्देशम्, तस्याः आचचक्षे, सा अपि स्व–भर्तुः उदन्तम् प्राप्य प्रमुदित–मनाः तस्थौ, हि केषाम् उत्तमेषु प्रार्थना अभिमत–फला न स्यात्।।5।।

अनुवाद– इसप्रकार लोककल्याण में लगे हुए मेघ ने यक्ष की पत्नी के प्राणों की रक्षा के लिए दिव्य वाणी द्वारा वह सन्देश यक्षिणी को कह दिया और वह यक्षिणी भी अपने पति के समाचार प्राप्त करके प्रसन्नचित्त हो गयी, क्योंकि श्रेष्ठ लोगों द्वारा की गयी प्रार्थना किसे अभीष्ट फल प्रदान करने वाली नहीं होती है?।।5।।

तस्माददद्रेर्निगदितुमथो शीघ्रमेत्यालकायां
यक्षागारं विगलितनिभं दृष्टचिह्नैर्विदित्वा।
यत्संदिष्टं प्रणयमधुरं गुह्यकेन प्रयत्नात्
तद् गेहिन्याः सकलमवदत् कामरूपी पयोदः।।6।।

(उत्तरमेघ 54 के बाद प्रयुक्त)

अन्वय– अथो काम–रूपी पयोदः (सन्देशम्) निगदितुम्, तस्मात् अद्रेः शीघ्रम् एत्य दृष्ट–चिह्नैः विगलित–निभम् यक्ष–आगारम् विदित्वा, गेहिन्याः प्रणय–मधुरम् तत् सकलम् अवदत्, यत् गुह्यकेन प्रयत्नात् सन्दिष्टम्।।6।।

अनुवाद– इसके बाद स्वेच्छापूर्वक रूप धारण करने वाले मेघ ने सन्देश देने के लिए उस रामगिरि पर्वत से शीघ्र चलकर, बताए हुए चिह्नों से मलिन शोभा वाले यक्ष के भवन को पहचानकर, उसकी पत्नी से वह सब बता दिया, जो यक्ष ने प्रयत्नपूर्वक सन्देश के रूप में कहा था।।6।।

धारासिक्तस्थलसुरभिणस्त्वन्मुखस्यास्य बाले
दूरीभूतं प्रतनुमपि मां पंचबाणः क्षिणोति।
धर्मान्तेऽस्मिन्विगणय कथं वासराणि व्रजेयु
र्दिक्संक्तप्रविततघनव्यस्तसूर्यातपानि।।7।।

(उत्तरमेघ 46 के बाद प्रयुक्त)

अन्वय– हे बाले! पंचबाणः धारा–सिक्त–स्थल–सुरभिणः अस्य त्वत् मुखस्य दूरीभूतम् प्रतनुम्, अति माम् क्षिणोति, अस्मिन् घर्मान्ते दिक् संसक्त–प्रवितत–घन–व्यस्त–सूर्य–आतपानि वासराणि कथम् व्रजेयुः, इति विगणय।।7।।

अनुवाद– हे प्रिये कामदेव के बाणों द्वारा की गयी वर्षा की गीली पृथ्वी के समान सुगन्धित तुम्हारे मुख से दूर दुर्बल हुए मुझे अपेक्षाकृत अधिक कृश बना रहा है। इस ताप के अन्त में दिशाओं में फैले हुए सघन मेघों द्वारा सूर्य की धूप को आच्छादित करने वाले दिन कैसे व्यतीत होंगे, इसपर तुम्हें विचार करना चाहिए।।7।।

स्निग्धः सख्यः कथमपि दिवा तां न मोक्ष्यन्ति तन्वी–
मेकाप्रख्या भवति हि जगत्यंगनानां प्रवृत्तिः।
स त्वां रात्रौ जलद शयनासन्नवातायनस्थः
कान्तां सुप्ते सति परिजने वीतनिद्रामुपेयाः।।8।।

(उत्तरमेघ श्लोक संख्या 49 के बाद प्रयुक्त)

अन्वय– दिवा स्निग्धाः, सख्यः, ताम् तन्वीम् कथम् अपि, न मोक्ष्यन्ति, हि जगति अंगनानाम् प्रवृत्तिः एका–प्रख्या भवति, हे जलद! सः त्वम् शयन–आसन्न–वातायनस्थः, (सन्) परिजने सुप्ते वीत–निद्राम् कान्ताम् उपेयाः।।8।।

अनुवाद–दिन में प्रेम करने वाली सखियाँ उस तन्वंगी यक्षिणी को किसी भी प्रकार से अकेला नहीं छोड़ती होंगी, क्योंकि इस संसार में स्त्रियों की प्रवृत्ति एक समान ही होती है। इसलिए हे मेघ! तुम शय्या के पास वाली खिड़की पर बैठकर, सेविकाओं के सो जाने पर खुली हुई निद्रा वाली मेरी प्रिया के पास जाना।।8।।

•••

डॉ. राकेश शास्त्री द्वारा लिखी हमारे प्रकाशन की पुस्तकें

1. **तर्कभाषा,** डायग्रामिक 'चन्द्रिका' व्याख्या **पृष्ठ–562**
2. **अर्थसंग्रह,** डायग्रामिक 'चन्द्रिका' व्याख्या, **पृष्ठ–379**
3. **योगसूत्रम्,** डायग्रामिक 'चन्द्रिका' व्याख्या, **पृष्ठ–512**
4. **नाटककार कालिदास,** कालिदासत्रय का प्रतिपादक, **पृष्ठ–625**
5. **प्रतिमा नाटकम्,** विस्तृत भूमिका, अनुवाद, 'चन्द्रिका' व्याख्या **पृष्ठ–453**
6. **रत्नावली नाटिका,** विस्तृत भूमिका, अनुवाद, 'चन्द्रिका' व्याख्या, **पृष्ठ–487**
7. **मुद्राराक्षस नाटकम्,** विस्तृत भूमिका, अनुवाद,'चन्द्रिका' व्याख्या, **पृष्ठ–589**
8. **पंचस्वराः,** विस्तृत भूमिका डायग्रामिक 'चन्द्रिका' व्याख्या, **पृष्ठ–332**
9. **चाणक्य–नीति,** विस्तृत भूमिका, अनुवाद, 'चन्द्रिका' व्याख्या **पृष्ठ–530**
10. **भुवन–दीपक,** विस्तृत भूमिका, डायग्रामिक 'चन्द्रिका' व्याख्या, **पृष्ठ–332**
11. **वृत्तरत्नाकर,** विस्तृत भूमिका, डायग्रामिक 'चन्द्रिका' व्याख्या **पृष्ठ–343**
12. **मनुष्यालय–चन्द्रिका,** विस्तृत भूमिका, 'चन्द्रिका' व्याख्या, **पृष्ठ–357**
13. **ज्योतिष–दिग्दर्शिका,** विस्तृत भूमिका, डायग्रामिक 'चन्द्रिका' **पृष्ठ–324**
14. **संस्कृत–अन्त्याक्षरी चन्द्रिका,** 500 से अधिक श्रेष्ठ श्लोकसंग्रह, **पृष्ठ–121**
15. **शांखायन ब्राह्मण** (दो खण्डों में), विस्तृत भूमिका, हिन्दीअनुवाद **पृष्ठ–713**
16. **पाणिनीय–शिक्षा,** विस्तृत भूमिका, डायग्रामिक 'चन्द्रिका' **पृष्ठ–138**
17. **सांख्य–दर्शनम्,**भूमिका सांख्य–ग्रन्थों पर आधारित संदर्भग्रन्थ, **पृष्ठ–288**
18. **कठोपनिषद्** (सम्पूर्ण), भूमिका, शांकरभाष्य सहित 'चन्द्रिका' **पृष्ठ–316**
19. **मार्कण्डेय महापुराणम्,** विस्तृत भूमिका, हिन्दी–अनुवाद, **पृष्ठ–872**
20. **काव्यप्रकाश** (दो खण्डों में), डायग्रामिक 'चन्द्रिका' व्याख्या **पृष्ठ–1304**
21. **काव्यदीपिका** (सम्पूर्ण)विस्तृत भूमिका, डायग्रामिक 'चन्द्रिका' **पृष्ठ–448**
22. **कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद्** विस्तृत भूमिका, हिन्दी–अनुवाद, **पृष्ठ–208**
23. **ऐतरेय उपनिषद्** भूमिका, शांकर–भाष्य सहित 'चन्द्रिका' **पृष्ठ–200**
24. **आपस्तम्ब धर्मसूत्रम्** विस्तृत भूमिका, पदच्छेद, 'चन्द्रिका' **पृष्ठ–984**
25. **वासवदत्ता** विस्तृत भूमिका, पदच्छेद, 'चन्द्रिका' व्याख्या, **पृष्ठ–504**
26. **कादम्बरी कथामुखम्** विस्तृत भूमिका, पदच्छेद, 'चन्द्रिका' **पृष्ठ–584**
27. **दर्शनशास्त्र का अंतरंग इतिहास,** नौ दर्शनों का सरल परिचय **पृष्ठ– 672**
28. **शतकचतुष्टयम् भर्तृहरि** विस्तृत भूमिका, मूल अन्वय अनुवाद **पृष्ठ– 360**
29. **मेघदूतम्,** विस्तृत भूमिका,अन्वय, अनुवाद, 'चन्द्रिका' व्याख्या **पृष्ठ– 464**

इसी क्रम में डॉ. शास्त्री की शीघ्र प्रकाश्यमान उपयोगी पुस्तकें–

i) **छान्दोग्योपनिषद्,** विस्तृत भूमिका, अनुवाद 'चन्द्रिका' व्याख्या
ii) **वेणीसंहारम्** विस्तृत भूमिका,अनुवाद 'चन्द्रिका' व्याख्या
iii) **रसगंगाधर,** भूमिका, अनुवाद डायग्रामिक 'चन्द्रिका' व्याख्या
iv) **उत्तररामचरितम्,** विस्तृत भूमिका,अनुवाद 'चन्द्रिका' व्याख्या
v) **गोपथ ब्राह्मणम्,** दो खण्डों में भूमिका, 'चन्द्रिका' व्याख्या
vi) **कथामालिका,** संस्कृत कथाओं का अनुवाद सहित संग्रह मौलिक।
vii) **शांखायन आरण्यकम्**,विस्तृत भूमिका, पदच्छेद, हिन्दी अनुवाद।
viii) **कौषीतकि गृह्यसूत्र,** विस्तृत भूमिका, हिन्दी अनुवाद।
ix) **शांखायण श्रौत्रसूत्र,** विस्तृत भूमिका, हिन्दी अनुवाद।
x) **शांखायण गृह्यसूत्र,** विस्तृत भूमिका, हिन्दी अनुवाद।
xi) **तैत्तिरीय उपनिषद्,** शांकर–भाष्य सहित 'चन्द्रिका' व्याख्या
xii) **ऐतरेय ब्राह्मण,** तीन खण्डों में, सायणभाष्य सहित, अनुवाद।
xiii) **दशरूपकम्,** भूमिका, अनुवाद डायग्रामिक 'चन्द्रिका' व्याख्या
xiv) **साहित्यदर्पणम्** भूमिका, अनुवाद डायग्रामिक 'चन्द्रिका' व्याख्या
xv) **स्वर–चन्द्रिका,** वैदिक स्वरों की सरल मीमांसा ।
xvi) **ऋक्चन्द्रिका**, ऋग्वेद के चयनित सूक्तों की सरल व्याख्या।
xvii) **ध्वन्यालोक,** दो खण्डों में भूमिका, अनुवाद 'चन्द्रिका' व्याख्या
xviii) **गोभिल गृह्यसूत्र,** विस्तृत भूमिका, पदच्छेद, हिन्दी–अनुवाद
xix) **मुण्डकोपनिषद्** शांकर–भाष्य सहित 'चन्द्रिका' व्याख्या
xx) **पंचतन्त्र सम्पूर्ण** विस्तृत भूमिका, अनुवाद 'चन्द्रिका' व्याख्या
xxi) **पारस्कर गृह्यसूत्र** दो खण्डों में भूमिका, 'चन्द्रिका' व्याख्या
xxii) **पदपाठ की सरल विधि** , छात्रोपयोगी संस्करण।
xxiii) **निरुक्त,** तीन खण्डों में, (दुर्गाचार्य टीका सहित अनुवाद)
xxiv) **श्वेताश्वतरोपनिषद्** शांकर–भाष्य सहित 'चन्द्रिका' व्याख्या
xxv) **वैदिक साहित्य का इतिहास** छात्रोपयोगी संस्करण।
xxvi) **याज्ञवल्क्य स्मृति** विस्तृत भूमिका, अनुवाद 'चन्द्रिका' व्याख्या

लेखक परिचय



नाम– डॉ. राकेश शास्त्री

शिक्षा– बी.ए.(ऑनर्स संस्कृत) मेरठ विश्वविद्यालय की 1975 की योग्यता सूची में छटवाँ स्थान, महाविद्यालय स्वर्णपदक, एम.ए.(संस्कृत–साहित्य वैशिष्ट्य) (1977), प्रथम श्रेणी, पी–एच.डी.(वेद), पुराणेतिहासाचार्य (1984) सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, वि.वि. योग्यता सूची में प्रथम स्थान, विश्वविद्यालय स्वर्णपदक, साहित्याचार्य (सभी परीक्षाएँ प्रथमश्रेणी में उत्तीर्ण), डी.लिट् (2013) (राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर)

अनुभव– सेवानिवृत्त अध्यक्ष, संस्कृत–विभाग, श्री गोविन्द गुरु राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाँसवाड़ा (राज.) लगभग 29 वर्ष राजस्थान सरकार की उच्चशिक्षा सेवा, एम.फिल्, पी–एच.डी. के छात्रों को निर्देशन। गुरुकुल काँगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार के संस्कृत–विभाग में लगभग 5 वर्ष अध्यापन, वैदिक एवं पौराणिक रिसर्च इन्सटीट्यूट नैमिषारण्य, उ.प्र. में शोध–सहायक 2 वर्ष।

ग्रन्थ–लेखन– ऋग्वेद के निपात (पी–एच.डी. शोधप्रबन्ध), मार्कण्डेय महापुराण (हिन्दी अनुवाद), मनुस्मृति (सम्पूर्ण), वेदान्तसार, सांख्यकारिका, तर्कसंग्रह, तर्कभाषा, अर्थसंग्रह, भारतीय दर्शन की मूल अवधारणाएँ, दर्शनशास्त्र का अन्तरङ्ग इतिहास, महाभारतीय सांख्य, सांख्यदर्शनम्, स्नातक संस्कृत सरला, सुगम संस्कृत व्याकरण, कालिदास नाट्यग्रन्थावली, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम्, रघुवंशम् (13, 14सर्ग), कुमारसम्भवम् (पञ्चम सर्ग) मेघदूतम्, ऋतुसंहारम्, स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिमा नाटकम्, मुद्राराक्षसम्, नागानन्दम्, रत्नावली नाटिका, वेणी संहारम्, उत्तररामचरितम्, शतकचतुष्टयम्, नलचम्पू (प्रथम उच्छ्वास), वासवदत्ता, कादम्बरी कथा–मुखम्, हर्षचरितम् (पञ्चम उच्छ्वास), बुद्धचरितम् (प्रथमसर्ग), काव्यप्रकाश (दो खण्ड), रसगङ्गाधर (प्रथम आनन), काव्यदीपिका (सम्पूर्ण), वक्रोक्तिजीवितम् (प्रथम उन्मेष), ध्वन्यालोक (प्रथम उद्योत), दशरूपकम्, बृहदृक्सूक्त चन्द्रिका, ऋक्सूक्त चन्द्रिका, ऋक्सूक्तकलिका (भाग–1–2), वेदवेदाङ्ग कलिका (भाग–3), बृहद्देवता (प्रथम अध्याय), शाङ्खायन ब्राह्मणम् (दो खण्ड), शाङ्खायन आरण्यक, आपस्तम्बधर्मसूत्र (दो खण्ड), बृहदारण्यकोपनिषद्(तृतीय अध्याय), कौषीतकि उपनिषद्, ऐतरेयोपनिषद्, कठोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद्, पाणिनीय–शिक्षा, वृत्तरत्नाकर, चाणक्य–नीति, ज्योतिष–दिग्दर्शिका, पञ्चस्वराः, मनुष्यालय–चन्द्रिका, भुवन–दीपक, अर्थशास्त्र (प्रथम अधिकरण), मनुस्मृति (1, 2, 7 अध्याय), महाभारतकार एवं कालिदास की काव्यकला (डी.लिट् शोध प्रबन्ध), नाटककार कालिदास, कालिदास की काव्यचेतना, कालिदास की वैज्ञानिक दृष्टि, कालिदास की उपमा–योजना, संस्कृत निबन्ध चन्द्रिका, संस्कृत बोध–कथा मञ्जरी, संस्कृत नाट्य निकुञ्जम्, संस्कृत कविता मञ्जरी, संस्कृत कथा मञ्जरी, संस्कृत कथा–मालिका, संस्कृत अन्त्याक्षरी चन्द्रिका, मधुकणिका आदि 108 से भी अधिक मौलिक, सन्दर्भ एवं व्याख्या ग्रन्थों के लेखक।

शोध–पत्र– प्रसिद्ध शोध पत्र–पत्रिकाओं एवं अभिनन्दन ग्रन्थों में 70 से अधिक शोध निबन्ध प्रकाशित, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय शोध–संगोष्ठियों में 70 से अधिक शोधलेख पठित, सत्रों की अध्यक्षता तथा मुख्यवक्ता।

पुरस्कार व संदर्भ ग्रन्थों में नामोल्लेख– आदिवासी जनजाति क्षेत्र, बाँसवाड़ा में पूर्णतया समर्पित 'संस्कृत प्रचार–प्रसार' के लिए राष्ट्रीय, राज्यस्तरीय तथा स्थानीय स्तर पर लगभग 34 से अधिक पुरस्कारों से सम्मानित तथा राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ–ग्रन्थों में नामोल्लेख।



चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या, आयुर्वेद तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक

बंगलो रोड, 9-यू.बी., जवाहर नगर (निकट कमला नगर) दिल्ली-7 (भारत)

फोन : 011-40230818, 9910289743

Email : chaukhambhaorientalia@gmail.com